# चौमासा

वर्ष-31 अंक-95
जुलाई-अक्टूबर 2014

प्रधान सम्पादक
**रेनू तिवारी**

सम्पादक
**अशोक मिश्र**

आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल का प्रकाशन

ISSN 2249-5479
© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

**सम्पर्क**
आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स
भोपाल-462002
फोन/ फैक्स : 0755-2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com,
mptribalmuseum@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

**मूल्य**
एक प्रति बीस रूपये
वार्षिक सदस्यता - पचास रूपये
आजीवन सदस्यता - पन्द्रह सौ रूपये
चौमासा का वार्षिक शुल्क अनुषंग पुस्तिका के साथ सौ रूपये

**प्रचार/प्रसार**
प्रवीण गावण्डे - (मो. 9827351093)

**शब्दांकन**
आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

**मुद्रण**
मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

- चौमासा में प्रकाशित सामग्री लेखकों के अपने कार्य और विचार हैं। आवश्यक नहीं कि अकादमी उससे सहमत हो।
- पत्रिका और प्रकाशन से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल रहेगा।

निदेशक, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्- भोपाल मुद्रक, प्रकाशक द्वारा मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल से मुद्रित कराकर आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स- भोपाल से प्रकाशित।

**सम्पादक-अशोक मिश्र**

मृत्यु इस बात का प्रमाण है कि उस प्राणी का जीवन कैसा रहा है। धरती की सभी सभ्यताओं में मृत्यु उपरांत किसी न किसी प्रकार का संस्कार 'आत्मा' की अगली यात्रा को सुगम और पवित्र बनाने के लिए अथवा उस असीम-अज्ञात शक्ति के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मृतक के परिजनों द्वारा सम्पादित किया जाता है। इस अवसर के गीत प्राय: मोह से मुक्ति एवं उसकी नश्वरता के हैं। इन गीतों की एक और खासियत है कि वे हमें प्रत्येक तरह के राग एवं भ्रमों से मुक्त हो अपने आत्म तत्त्व को पहचानने और सदाशयी जीवन की प्रेरणा भी देते हैं। पंचतत्त्वों से बनी इस देह को उन्हीं मूल तत्त्वों में विलीन करना और उसकी अनुष्ठानिकता रचकर उसके प्रति धन्यता प्रकट करना भी मृत्यु संस्कारों का अहम पक्ष है।

अलग-अलग समुदायों में जीवन प्रवाह के अन्तिम विश्राम को महिमा प्रदान करने और श्रद्धा व्यक्त करने के लिए पृथक-पृथक संस्कारों की मान्यताएँ हैं। स्थानीयता एवं वैचारिक भेद के कारण संस्कारों की मान्यता एवं उनके आचरण अलग हैं- किन्तु आत्मा की अमरता का स्वीकार सभी आध्यात्मिक मतों में एक-सा है। 'आत्मा' अमर है- वह फिर नये रूप में जन्म लेगी। सभी आचरण और उस आत्मा की अगले शरीर में जन्म लेने की निष्कंटक यात्रा के लिए हर सम्भव पवित्र रचना ही अन्तिम रूप से अंत्येष्टि संस्कारों के मूल में है।

आज के जीवन की चुनौतियों, आधुनिक और पारम्परिक जीवन-दृष्टि तथा उससे पैदा हुए द्वन्द्व से हमारी सभी मान्यताएँ तेजी से बदल रही हैं। एक वर्ग बहुत तेजी से पारंपरिक मान्यताओं के विरुद्ध उनके औचित्य पर ही प्रश्न खड़े कर रहा है, जिनके संतोषजनक उत्तर प्राचीन मान्यताओं के साथ जीवन यापन कर रहे बहुसंख्यक समुदायों के पास या तो है नहीं या उनके कथन में वह तीक्ष्णता और तर्कपूर्ण समाधान नहीं है, जैसाकि आधुनिक प्रश्नों के पास है। हालांकि पारम्परिक मूल्यों के त्याग के पक्षधर विचारकों के पास भी वैकल्पिक मूल्य के सारपूर्ण सुझाव नहीं हैं। ऐसे में परम्परागत संस्कारों के विज्ञान को समझना और उसके सामाजिक मूल्य को पुनर्परिभाषित कर नयी पीढ़ी तक सम्प्रेषित करना, हम सबका दायित्व है।

चौमासा का यह विशेषांक अलग-अलग जातीय समुदायों में मृतक संस्कारों की मान्यता और उसकी व्यवहारिकी परम्परा पर एकाग्र प्रकाशित है। हम सभी लेखकों/ संकलनकर्त्ताओं के प्रति हृदय से आभारी हैं।

**- अशोक मिश्र**

## इस अंक में


**मृत्यु संस्कार – लोक का परिसर** / श्यामसुंदर दुबे /7
**मृतक संस्कार : सामाजिक, मनोवैज्ञानिक पक्ष** /डॉ. मालती शर्मा/ 11
**मृत्यु संस्कार की मान्यता** / डॉ. एस.के. मालवीय / 19
**मृत्यु पूर्व मंगल-मरण की दर्शना** / डॉ. महेन्द्र भानावत / 25
**पारसी धर्म और मृत्यु की अवधारणा** / डॉ. ज़रीन नज़र / 34
**इस्लाम में मृत्यु की अवधारणा** / डॉ. एम.आई. मसूद/ 38
**बौद्ध धर्म में मृत्यु की अवधारणा** / डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शाक्य / 40
**मृत्यु संस्कार : सांस्कृतिक पक्ष** / डॉ. वी. के. शर्मा / 45
**मृत्यु संस्कार** / डॉ. देवदत्त द्विवेदी / 50
**मृत्यु संस्कार** / लक्ष्मीनारायण तिवारी / 54
**अन्त्येष्टि का लोक विज्ञान** / एम.एस. पाराशर / 57
**अंतिम संस्कार** / रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय /61
**मृत्यु संस्कार सम्बन्धी लोकाचार** / डॉ. नीलिमा गुप्ता /63
**इक दिन जाय लंगोटी झार बंदा** / डॉ. देवेन्द्र पाठक /66
**मृत्य संस्कार की प्रासंगिकता** / डॉ. लक्ष्मीनारायण गुप्त 'विश्वबंधु'/69
**मृत्यु संस्कार के जनपदीय रूप** / डॉ. प्रफुल्ल कुमार सिंह/ 75
**बज्जिका गीतों में अन्त्येष्टि संस्कार** / डॉ. ब्रजनन्दन वर्मा/ 79
**छत्तीसगढ़ी मृतक संस्कार** / राम कुमार वर्मा /81
**हिमाचल में अन्त्येष्टि संस्कार** / डॉ. मनोरमा शर्मा/ 88
**भोजपुरी के मृत्यु गीत** / डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी/92
**मृत्यु का संस्कार** /मायापति मिश्र/96
**कोरकू मृत्यु संस्कार** / डॉ. धर्मेन्द्र पारे/ 99
**बैगाओं में मृत्यु संस्कार** / विजय चौरासिया / 107
**जनजातियों में मृत्यु संस्कार** / डॉ. निशा जैन /111
**झारखण्ड की जनजातियों में मृत्यु संस्कार** / डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा/ 116
**कुमाउनी जनजातियों के मृतक संस्कार** / डॉ. शेखर चन्द्र जोशी/ 121
**उराँव मृत्यु-संस्कार** / डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी/ 124
**बंजारों के मृत्यु संस्कार** / डॉ. रवीन्द्र भारद्वाज/ 127
**अन्त्येष्टि संस्कार** / डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित/ 130
**मृत्यु संस्कार** / डॉ. पूरन सहगल/ 135
**मरणोत्सव के मसाणिया गीत** / डॉ. प्रहलाद चन्द्र जोशी/ 139
**मालवांचल में मृत्यु संस्कार** / डॉ. शशि निगम/ 145
**मरण गान भी है मालवा में** / नरहरि पटेल/ 150
**निमाड़ी मृत्यु गीत** / डॉ. सुमन चौरे/ 153
**हम परदेशी पावणा** / रमेशचन्द्र तोमर 'निमाड़ी'/ 160
**मृत्यु संस्कार : एक अनुष्ठान** / डॉ. दुर्गेश दीक्षित/ 179
**लोक में मृत्यु और गीत** / गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त/ 185
**बुन्देलखण्ड में मृत्यु संस्कार** डॉ. बहादुर सिंह परमार/ 190
**दतिया के मृत्यु-गीत** / डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला/ 193
**होशंगाबाद के मृत्यु गीत** / डॉ. हंसा कमलेश/ 196
**बघेलखण्ड में मृत्यु गीत** / बाबूलाल दाहिया/ 199
**बुन्देली मृत्यु संस्कार** / डॉ. ओमप्रकाश चौबे/ 202

# मृत्यु संस्कार - लोक का परिसर

श्यामसुंदर दुबे

मृत्यु का उपरांत रहस्यमय हो सकता है, लेकिन मृत्यु पूर्व का जीवन तो प्रत्यक्ष है। इसी प्रत्यक्ष की कल्पना ने मृत्यु के पार जाने की कोशिश इस तरह से की है। कल्पना के साथ बुद्धि का भी समायोजन हुआ और मृत्यु-दर्शन के अनेक अभिप्राय प्रकट हुए। मनुष्य की मेघा और कल्पना ने मृत्यु को जीवन जैसा ही सम्भव किया है। कभी उसे चिरनिद्रा कहा, तो कभी उसे पुनर्जन्म का पड़ाव माना। इसी चिन्तन ने मृत्यु के उत्तरवर्ती संस्कारों का विधान किया। ये विधान भूभौतिकीय अभिप्रेरणाओं और चिंतन-मनन की परम्परा-प्रणालियों से वैभिन्य को प्रकट करते हैं, किन्तु इनका लक्ष्य एक ही है कि मृत्यु के पार भी जीवन जैसी कुछ गतिविधियाँ हैं। इन गतिविधियों का आधार भारतीय दर्शन में आत्मा को स्वीकार किया जाना है। इस आत्मा के प्रोत्यर्थ ही मृत्यु संस्कारों की विनिर्मिति हुई है।

आत्मा अनेक जन्मों में विचरण करने वाली सतत् यात्रारत चेतना है। यह अनेक कलेवरों का आश्रय लेती हुई निरंतर है। यह एक सिद्धांत बनाया गया। यदि इस यात्रा-चक्र में विराम जैसी कोई अवधारणा नहीं मानी जाती, तो मृत्यु -संस्कारों का यह रूप हमारे समक्ष न होता, जो हमारी परम्परा में परिलक्षित हो रहा है। इस मृत्यु-यात्रा में अनेक परिवर्त क्षेपक की तरह जुड़ते गए। इन क्षेपकों ने विभिन्न तरह की संस्कार धारणाओं को जन्म दिया। स्वर्ग-नरक और प्रेत योनि जैसे प्रकल्प भी मृत्यु-दर्शन के अंग बनते गये। इनके साथ मनुष्य के लौकिक सम्बन्धों के विस्तार की भावना प्रबल होती गयी । मनुष्य ने मान लिया कि मृत्यु के उपरांत भी आत्मा से उसकी पारिवारिकता समाप्त नहीं हुई है। इसी पारिवारिक भाव के परिणाम पिण्ड-दान, त्रयोदशगात्र, तर्पण आदि विधानों में निहित है।

शव-यात्रा के पूर्व से ही पिण्ड-दान का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। पिण्ड का एक अर्थ देह भी है। यथा 'ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे' जो कुछ ब्रह्माड में समाहित है- वही देह में स्थित है। अब तो वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि न केवल ब्रह्माण्ड का संक्षिप्तीकरण देह है, बल्कि परमाणु में भी ब्रह्माण्ड का विस्तार समाया हुआ है। इस अर्थ में पिण्ड-दान का तात्पर्य है- अंशी को अंश का दान देकर अंश को ही अंशी बनाया जा रहा है। बूंद को समुद्र बनाया जा रहा है। भारतीय दर्शन मानता है कि मोक्ष ही जीवन यात्रा का लक्ष्य है- इसलिए पिण्ड-दान एक तरह से मोक्ष मार्ग की यात्रा का संकल्प है जो कि सम्बन्धियों द्वारा लिया जाता है कि हम तुम्हें इन सम्बन्धों से मुक्त करते हैं, जिनकी डोर से अभी तक देह जुड़ी हुई थी। पहले गृह-त्याग पर पिण्ड-दान, फिर ग्राम-त्याग हेतु ग्राम की सीमा पर पिण्ड-दान और बाद में चिता पर पिण्ड-दान एक-एक कर सबका त्याग। यज्ञ हवि में जिस तरह चावल तिल और जौ जैसे अनाजों का प्रयोग किया जाता और कहा जाता है- 'इदन्नमम्' यह हवि मेरे लिए नहीं, यह आपको है। पिण्ड-दान में जिस पिण्ड का निर्माण किया जाता है, वह उड़द की दाल का बनता है- उड़द को सम्भवत: मांस कहे जाने के कारण देह का पर्याय मान लिया होगा- यह पिण्ड-दान तेरह दिनों तक त्रयोदश गात्र के रूप में एक यज्ञ की तरह ही किया जाता है। उन संख्याओं का अपना महत्त्व है- विशेष रूप से तांत्रिक एवं प्रेत क्रियाओं में तेरह की संख्या की अपनी विशिष्टता है। द्वादश आदित्यों को पार कर परम प्रकाश को पा लेने के लिए तेरहवाँ प्रकाश सोपान जहाँ न चन्द्रमा प्रकाशित होता है, न सूर्य प्रकाशित रहता है, न अग्नि जलती है- उस परम प्रकाशित लोक में प्रवेश ही तेरहवाँ का क्रम निर्धारण है। लोक-कल्पना का भी यही रहस्य है। भूर्भव: जन: मन: आदि लोको से ऊपर पहुँचना पिण्ड दान की प्रक्रिया में निहित उद्देश्य भावना है। यद्यपि तेरह को अशुभ अंक मानने वालों का भी एक समूह है। पश्चिमी संसार में तेरहवां अंक अशुभ माना जाता है। क्या यह अशुभ तेरहवीं जैसी मृत्यु संस्कारी धारणा की प्रतिक्रिया तो नहीं है?

श्राद्ध और तर्पण भी मृत्यु के उत्तरवर्ती संस्कार हैं। श्राद्ध और तर्पण का दैनिक विधान है, किंतु आश्विन मास का प्रथम पखवाड़ा इस निमित्त निर्धारित ही कर दिया गया है। दैनिक तर्पण न हो सके, तब वर्ष में पाक्षिक तर्पण का यह विधान, मृत्यु प्राप्त जनों का वार्षिक स्मरण जैसा ही है। श्राद्ध में अपनी पूर्व पीढ़ियों के प्रति श्रद्धा भाव का समर्पण है, तो तर्पण में स्वर्गीय आत्माओं की संतुष्टि के लिये किये जाने वाले भावना व्यापार का समावेश है। पिता-माता, पितामह-मातामही, प्रपितामह- प्रपितामही आदि के नाम लेकर तर्पण किया जाता है, उनको जल देते है, जिनका कोई नहीं हो वे अन्य भूमिचर, जलचर, खेचर आदि प्राणियों का भी स्मरण कर और सबके लिए कहते हैं- 'तृप्यताम्।' मेरे दिये गये इस जल से सभी तृप्त हों। मुझे वे उस समय काल के सनातन प्रवाह में अपने आपको समर्पित करने वाले हवि होता पुरुष लगते थे। परम्परा के प्रति कृतज्ञता और परम्परा के स्मरण का यह प्रसंग इसलिए अद्‌भुत है कि यह न केवल पूर्व पीढ़ियों के नामों के पाठ का सिलसिला है, बल्कि इस गौरवानुभूति का भी प्रदाता है कि हम किस पूर्वज पीढ़ियों के सदस्य हैं। आखिर पारिवारिक इतिहास का यह आख्यान हमारे जैव-द्रव्य को पुलकित करता ही है।

आश्विन मास के प्रथम पखवाड़े को पितृ स्मरण के रूप में इसलिए निर्धारित किया गया होगा कि इस समय सूर्य दक्षिणायन में प्रवेश कर जाते हैं। दक्षिण में यम का निवास है। अत: यम लोक में स्थित प्राणियों के साथ यह अवसर सीधे संवाद का होता है। पितृ भोज्य के रूप में उड़द की दाल के पकोड़े एवं सामान्य पूड़ी का प्रावधान है। इसे भूरा कुम्हड़े के पत्तों पर रखकर कौवों को खिलाया जाता है। कौवों को आवाज देकर इस हेतु आमंत्रित किया जाता है। इस भोजन पत्तल को 'कागौरी' कहा जाता है। जिन पक्षियों को वर्ष भर कोई नहीं पूछता है, उन्हें 'आदर दे बोलियतु बायस बलि की बेर।' इस बलि भक्षण हेतु आदर देकर आमंत्रित किया जाता है। भाई सबके दिन बहुरते हैं! कौवा भी हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। कागभुसुंडी की गति सर्वत्र है- वे भगवान के निकट हैं। मृत्यु तिथि को ब्राह्मण भोज का विधान है। इस भोजन में मेथी के दानों की सब्जी बनाने का लौकिक रीति-रिवाज है। आश्विन और कार्तिक शरद ऋतु के महीने हैं। सृष्टि का प्रारम्भ शरद ऋतु से ही माना जाता है। शरद का एक अर्थ वर्ष भी होता है। हो सकता है वर्ष के प्रारम्भ में पितरों का स्मरण हमारे शेष वर्ष को मंगलकारी बनायेगा, कुछ ऐसा चिंतन हमारे संस्कार निर्धारकों का रहा हो। धुर आदिवासी क्षेत्रों में यह समय प्रेत जगाने का भी होता है। तांत्रिक जन प्राय: इसी समय अपनी मंत्र-सिद्धि

के लिए साधना करते हैं। भूत योनि पर विश्वास करने वाले अपने ढंग से भूत-प्रेत को बलि आदि का अर्पण करते हैं। प्रेत योनि से मुक्ति के प्रसंग यह स्पष्ट करते हैं कि पितृ-पक्ष में 'गया' तीर्थ में पिण्ड-दान करने से प्रेत योनि से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। श्रीमद्भागवत महापुराण के महात्म्य में धुंधकारी के चरित्र का आख्यान है। वह अपने निषिद्ध कर्मों के परिणाम स्वरूप महाप्रेत बनता है, गौकर्ण जो कि उसका भाई था- गया में पिण्ड-दान करता है- फिर भी धुंधकारी प्रेत योनि से मुक्त नहीं होता है। गौकर्ण सूर्य से इस हेतु परामर्श करते हैं। सूर्य उन्हें सप्त दिवसीय श्रीमद्भागवत महापुराण के कथा वाचन का संकेत करते हैं। इस कथा प्रसंग से धुंधकारी की मुक्ति हो जाती है। आज भी इस आयोजन में प्रेत मुक्ति का अभिप्रेत समाया हुआ है। प्रदूषित वातावरण ही शायद प्रेत संज्ञक है। मन, वाणी और कर्म से जहाँ जिस स्थान विशेष पर गर्हित कार्य किये जाने लगते हैं- वहाँ का वातावरण तनावपूर्ण और मानवीय आचरण के विपरीत छाया-छवियाँ रखने लगता है। सत्संग और सद्विचारों का संप्रसारण वातावरण को पवित्र करता है, इस पवित्रीकरण से प्रेत संज्ञक दूषित वृत्तियाँ समाप्त होती हैं।

बस्तर जैसे लोकांचली इलाके में मृतक की आत्मा के साथ यह विश्वास संलग्न है कि लगभग दस दिनों तक आत्मा किसी वृक्ष पर निवास करती है। मृत्यु के बाद दस दिनों तक उस वृक्ष के पास मृत आत्मा के लिए भोजन एवं पानी रखा जाता है। भूख-प्यास जीवन के अनिवार्य सत्य हैं। जीवन-मृत्यु के बाद भी सतत् है। सम्बन्धों के संस्कार भी मृत्यु के उपरांत आत्मा में बने रहते हैं, ये विश्वास ही परिजनों से मृत व्यक्ति की आत्मा की आवश्यकताओं की आपूर्ति जैसे कराता है। गाँवों में दशगात्र का विधान आज भी प्रचलन में है। दशगात्र को 'दिन' कहा जाता है। इस दिन वंश-कुटुम्ब एवं गाँव के कर्मकार वर्ग को कच्चा भोजन यथा कढ़ी-दाल, चावल, रोटी का कराया जाता है। इस दिन शाम को मृतक के मृत्यु स्थान पर महीन राख बिखेर दी जाती है। इसी राख के पास भोजन की थाली रख दी जाती है। उस स्थान को एकदम एकांतिक बना दिया जाता है। कोई वहाँ झांक भी नहीं सकता। सुबह थाली उठाई जाती है, तब यह परिलक्षित किया जाता है कि बिखरायी गयी राख पर मृतक की ऊँगुलियों के चिन्ह स्पष्ट हो रहे हैं। यह भी ध्यान में लाया जाता है कि थाली में रखे भोज्य पदार्थों की मात्रा कुछ न्यून हुई है। इस घटना में यह विश्वास निहित है कि मृतक की आत्मा भोजन हेतु आयी थी। सम्बन्धों की यह दृढ़ धारणा भले ही विश्वासमयी हो, किंतु है - मूल्यवान।

अस्थि संचय का प्रावधान इस सिद्धांत की पुष्टि करता है कि मृत देह का प्राकृतिक अवयवों में सर्वथा समर्पण ही दैहिक रागों का त्याग है। चिता स्थान से मृतक की अस्थियों के संचय हेतु यथा निश्चित तिथि पर पारिवारिक जन एकत्रित होते हैं। वे एक लोटे में दूध और कटोरी लेकर श्मशान भूमि पहुँचते हैं। पवित्र लकड़ियों के छोटे-छोटे टुकड़ों से एक शंशी जैसा औजार बना लिया जाता है। चिता स्थल पर दूध का छिड़काव किया जाता है। इसे चिता को ठंडा करना कहा जाता है। तदुपरांत सगे-सम्बन्धीजन अस्थि संचय करते हैं। कटोरे में दूध भर लिया जाता है। लकड़ी की शंशी से आदरपूर्वक और आहिस्ता-आहिस्ता सिर की ओर से अस्थियाँ चयन की जाती हैं। अस्थि को उठाकर पहले दूध भरी कटोरी में डुबाया जाता है, फिर उसे पवित्र कलश में रखा जाता है। इस तरह सम्पूर्ण अस्थियों का चयन कर लिया जाता है। शेष राख को एक अलग पात्र में रख लिया जाता है। चिता -स्थल को साफ कर उस पर गोबर लीप दिया जाता है। नमक बिखेरकर उस स्थल पर हरी घास बिछा दी जाती है। तेरह दिन तक इस स्थल पर पारिवारीजन द्वारा विशेष रूप से चिता को मुखाग्नि देने वाला व्यक्ति ही शाम को दीपक रखता है। राख किसी प्रवहमान जलाशय में समर्पित कर दी जाती है। यह जलाशय आसपास का ही होता है- और अस्थियाँ पवित्र नदियों में समर्पित कर दी जाती हैं। गंगा-यमुना, नर्मदा आदि नदियों में परम्परानुसार अस्थि विसर्जन का कार्य किया जाता है। एक तरह से यह विधान पाँच प्राकृतिक तत्त्वों में शरीर संरचना में निहित पाँच तत्त्वों का तिरोहण है। कबीर ने इसी आधार पर कहा था- 'फूटा कुंभ जल जलहिं समाना।' शरीर में निहित आत्म तत्त्व चला गया- अब यह शरीर अपने मूल तत्त्वों में मिल गया। चिता भूमि पर गोबर लीपना एक तरह से उस स्थल का पवित्रीकरण भी है और उस वातावरण में निहित अवरुद्ध रोगाणुओं का विनष्टीकरण भी है। नमक और घास वहाँ इस उद्देश्य से रखा जाता है कि गायें उसे खायेंगी और उस स्थल को अपनी जीभ से चाटेंगी। इस क्रिया का अर्थ सम्भवत: यही है कि गाय इस स्थल को पवित्र करेगी और गाय

उस स्थल से प्राप्त घास और नमक से संतुष्ट होगी। गाय का संतृप्त होना पुण्य कार्य है।

अस्थि संचित पात्र को पीपल की डालों में लटका दिया जाता है- इस स्थल पर भी नित्यप्रति दीपक रखा जाता है- बाद में यह अस्थि ही विभिन्न नदियों में प्रवाहित हो जाती है। पीपल का पेड़ वासुदेव स्वरूप है। यह वृक्षों में सर्वश्रेष्ठ वृक्ष है। यह दिन-रात ऑक्सीजन छोड़ने वाला वृक्ष है। इसका आश्रय पाकर अस्थि के रूप में शरीर शांतिपूर्वक रह सकता है। यही धारणा इस विधान में परिलक्षित होती है।

मरणासन्न व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि वह अपने घर में और अपने परिजनों के बीच में ही प्राणों का त्याग करे, यही वजह है कि कभी-कभी चिकित्सक भी इस तरह के रुग्ण व्यक्तियों को घर में ही रखने की सलाह देते हैं। व्यक्ति का सहज और दृढ़ रागपूर्ण सम्बन्ध परिवार और घर के प्रति ही होता है- वह इन सबके बीच सम्भवत: मृत्यु के भयंकर कष्ट को परिवार के भीतर कुछ सुरक्षा तलाश लेता है। कहा तो यह भी गया है कि 'मरना भले विदेश का जहाँ न रोबे कोय, पशु पक्षी भोजन करें कोटि जग्य फल होय।' घर-परिवार से दूर मृत्यु होना अधिक अच्छा है। मृत शरीर का भोजन पशु कर लें, तो जन्म कृतार्थ हो उठेगा। यह धारणा इसलिए विकसित हुई कि अपनों से चिरविछोह का दु:ख मरने वाले को नहीं साले। लेकिन यह धारणा गार्हस्थिक प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है। अंतिम समय जानकर मृत्यु मुख में पड़े प्रारंभिक और अंतिम शरण स्थल घर-परिवार है। जन्म के समय भी शिशु ने जमीन का प्रथम स्पर्श किया था और मृत्यु के समय में वह धरती की गोद में ही रहे।

मृत्यु के उत्तरवर्ती वे संस्कार जो धर्मशास्त्रों के अनुरूप हैं। देश के प्रत्येक भाग में लगभग एक जैसे ही सम्पन्न होते हैं, किन्तु लोक प्रचलित संस्कार कुछ-कुछ भिन्न रहते हैं। इनका सम्बन्ध लोक परम्पराओं से रहता है। लोक परम्पराएँ परिवार-ग्राम-इलाके के आधार पर परिवर्तित स्वरूप लेकर चलती हैं। आर्थिक और सामाजिक स्थितियों के प्रभाव के कारण इन संस्कार प्रथाओं में भिन्नता परिलक्षित होती है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से अनुभव किया जा सकता है। कहीं शव को स्नान कराके लँगोटी पहनाकर चिता पर रखा जाता है-कहीं तेल का मर्दन करके एकदम नग्न अवस्था में ही शव का दाह संस्कार किया जाता है। कहीं दाह संस्कार के उपरांत चिता स्थल की कंकड़ी मृतक के घर तक लायी जाती है, उसका स्पर्श करके ही सभी लोग अपने-अपने घर जाते हैं। ये संस्कार विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिकता एवं समाजार्थिक परिस्थितियों के अनुसार ही अपना स्वरूप निर्धारित करते रहे हैं।

# मृतक संस्कार : सामाजिक, मनौवैज्ञानिक पक्ष

डॉ. मालती शर्मा

*भूख, बेकारी, उपेक्षा, भय, कलह, विध्वंस, क्षय*
*आदमी को मृत्यु के अतिरिक्त सब स्वीकार है।* -कविवर नीरज

पर आदमी को मौत स्वीकार हो या न हो, मृत्यु लेकिन इस जड़-चेतन भय विश्व का त्रिकालिक अटल सत्य है। इस सत्य से भलीभाँति परिचित होते हुए भी, यह जानते हुए भी कि दी गई और लिखी उम्र 'राई घटे न तिल बढ़े' 100-125 वर्ष की दीर्घायु और अमरता लोक जीवन की चिरंतन आकांक्षाएँ हैं। विश्व की लोकवार्त्ता में लम्बी आयु पाने और मृत्यु को टालने के असंख्य जप-तप, पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र, अभिचार, बलि-नर बलि तक है। दीर्घ जीवन के, वट पीपल से अधिक उम्र पाने के सुबह-शाम मिलते ढेर से आशीर्वाद हैं। पर जीना और मरना ये दोनों मनुष्य के हाथ में नहीं, उस अदृश्य शक्ति के हाथ में हैं, जिसके इस संसार में न जाने कितने नाम हैं। मृत्यु उसकी कही का पालन करती जाती है। जैसे मृत्यु टालने के उपाय उसकी मर्जी के बिना निष्फल हो जाते हैं, उसी तरह बड़ी से बड़ी दुर्घटना में भी न मरने के और आत्महत्या के प्रयास भी 'बिना आई के' (मृत्यु के न आने से) सफल नहीं होते। पर शास्त्र और लोक दोनों में, आज भी रहस्य बनी मृत्यु-चिन्तन और मृतक संस्कार, दोनों की अवधारणाएँ अलग हैं। मृतक संस्कार मृत्यु के बाद मृतात्मा की सद्गति और पुनर्जन्म में अच्छे जीवन की चिन्ता करते हैं। मृतक संस्कार मानव जीवन के सोलह संस्कारों में अन्तिम और आवश्यक संस्कार है। इसका शास्त्रीय नाम अंत्येष्टि है। जिन मृतात्माओं के ये संस्कार नहीं होते, वे भूत-प्रेत, चुड़ैल-जिन्न बन भटकती हैं। जिनके ये संस्कार पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र परिजनों द्वारा कर दिये जाते हैं, वे 'पितर' हो जाते हैं। मृतक संस्कारों की अनुष्ठानिकता के शास्त्र और लोक दो पक्ष हैं। मृतक संस्कारों की शास्त्रीय अनुष्ठानिकता का, मान्यताओं का बहुत विस्तार है। इन्हें कराने वाले हर धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण और प्रान्त भेद से कुछ विशिष्ट नाम के व्यक्ति होते हैं। एक बहुज्ञात नाम 'महाब्राह्मण' है। उपर्युक्त आधारों पर

अन्तर होते हुए भी, मूल उत्स वैदिक संस्कृति होने से शास्त्रोक्त और लोक की अनुष्ठानिक विधियों में मूलभूत एकरूपता दिखती है। कुछ संरचनागत रीतियाँ भिन्न अर्थ लिये भी हैं। जैसे राजस्थान और महाराष्ट्र में विधवा स्त्री लाल साड़ी पहनती और सिर ढँकती हैं, जबकि अन्य प्राप्तों में लाल रंग, सौभाग्य सूचक रंग माना जाता है।

शास्त्रीय संस्कारों की अनुष्ठानिकता और मान्यताओं से वेष्टित होते हुए भी लोक के मृतक संस्कारों का अपना सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष अधिक यथार्थ और सामाजिक जीवनोन्मुख है।

लोकजीवन में किसी भी व्यक्ति के मरने को आमतौर पर 'मर गए' कहकर सूचित नहीं किया जाता। अधिक प्रचलित शब्द हैं-'चले गए', 'नहीं रहे'। कुछ इनसे अधिक परिनिष्ठित हैं- 'स्वर्गवास हो गया', 'शान्त हो गए', 'चल बसे', 'गुजर गए', 'निधन हो गया', 'शरीर त्याग दिया', देहावसान हो गया इत्यादि। अंग्रेजी का 'नो मोर' शब्द 'नहीं रहे' का समानार्थी है। मराठी में 'मेले' शब्द 'मर गए' के लिए और 'गेले' शब्द चले गए के लिए आता है। मृत जीव की, जीवात्मा के सूक्ष्म रूप की, स्वर्ग, नरक, यमलोक, वैकुंठ, गोलोक इत्यादि में जाने की यात्रा को समेटता एक कथन है-'अनंत यात्रा पर चले गए'।

लोकजीवन में मरणासन्न व्यक्ति की जब उर्ध्व श्वास चलने लगती है, घर्राटा आने लगता है, शरीर ठंडा पड़ने लगता है तो पाँच तत्त्वों में से चार की विदाई देख, व्यक्ति को धरती से मिलाने के लिए धरती पर उतार लिया जाता है और यमलोक की दिशा माने जाते है दक्षिण की ओर पैर करके लिटा दिया जाता है। यमलोक की दिशा दक्षिण से बहुत से लोक विश्वास जुड़े हैं। सामान्य तौर पर दक्षिण को पैर न करके सोना कहा जाता है।

शास्त्रीय अनुष्ठानों के साथ-साथ चलते हुए लोक परम्परा के मृत्यु संस्कारों की संरचनागत रीति-नीतियों में पारिवारिक-सामाजिक पक्ष, मृतक व्यक्ति से जुड़े सम्बन्धों को निभाने का दायित्व बोध जगाते हैं। विधवा स्त्री पर 'रड़सरा' डालने की रस्म और कुटुम्ब प्रमुख के रूप में 'पाग बाँधने' का संस्कार उदाहरण हेतु लिये जा सकते हैं।

पति पर भरण-पोषण के लिए निर्भर उस युग में तो विशेषत: पति की मृत्यु से निराश्रित हुई विधवा को भाई का 'रड़सरा' के रूप में साड़ी उढ़ाने का मृत्यु संस्कार और अन्य स्नेही सम्बन्धियों की उसे एक-एक साड़ी देने की रीति, प्रतीक स्वरूप उसके जीवन निर्वाह में सहभागिता व्यक्त करता है। इसी तरह पति की मृत्यु के बाद स्त्री की अपने मायके अवश्य जाने की रीति उसको शोकाकुल परिवेश से कुछ समय के लिए अलग करती है। मातृकुल परिवेश से कुछ समय के लिए अलग करती है। मातृकुल की सांत्वना के साथ, परिवार में फिर शामिल होना भी व्यक्त करती है। परिवार के मुखिया, बाबा, पिता, बड़े भाई की मृत्यु होने पर, तेरहवीं होने के बाद 'पाग बाँधने' का संस्कार होता है। बड़े पुत्र, चाचा, बड़ा भाई या परिवार के अन्य किसी बड़े व्यक्ति के कुटुम्ब प्रमुख के रूप में सिर पर पगड़ी बाँधी जाती है। एकत्रित सगे-सम्बन्धी, नाते-रिश्तेदार, पंचों की उपस्थिति में दागी के सिर पर पगड़ी बाँध उसे कुटुम्ब प्रमुख की मान्यता देते हैं। यह संस्कार व्यक्ति को सभी परिजनों के साथ परिचित कराके उनसे अपने सम्बन्धों की जानकारी और उन्हें निभाने का दायित्व देता है। पगड़ी बाँधने के संस्कार की संरचना की छोटी-छोटी रीतियाँ इन्हें व्यक्त भी करती हैं कि किसके साथ कैसा सम्बन्ध है। दु:ख-शोक में अपने आँसू अपने ही हाथ पोंछना सामाजिकता नहीं। विदेशों में तो किसी प्रियजन की मृत्यु होने पर पेशेवर सांत्वना देने वाले होते हैं, उन्हें बुलाया जाता है। पर हमारे पारंपरिक संस्कारों में सुख और दु:ख दोनों को परिजनों, स्नेही सम्बन्धियों, परिचितों के बीच बाँटकर सुख को बढ़ाने और दु:ख-शोक को घटाने के बहुत से रीति-रिवाज संस्कार हैं। मृत्यु के संस्कारों के ये रीति-रिवाज प्रिय व्यक्ति की मृत्यु से दु:खी व्यक्ति के मन को दूसरों से जोड़ प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के दु:ख को हल्का करने वाली रीतियाँ हैं। इनमें खास है किसी की मृत्यु पर नाते-रिश्ते के लोगों का, परिचितों का, मृतक के घर सांत्वना देने को 'फिरने आना', 'मुँह पल्ला लेना' और 'बैन पढ़ना' रीतियाँ हैं। ये रीतियाँ शोकाकुल व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक उपचार भी किन्हीं अंशों में कही जा सकती हैं।

लोक जीवन में 'फिरने आई' लड़की के घर बाहर से रोते हुए आने का रिवाज है, ताकि रोना सुन, पास-पड़ौस के लोग समझाने आ सकें। युवा पुत्र और पति की मृत्यु पर माँ और विधवा स्त्री के मुँह पर पल्ला लेकर तेरह दिन तक रोना, बिसरना, गहरे आघात के असहनीय दु:ख को कम करता है। इसके साथ 'बैन

पढ़ना' से तात्पर्य मृत व्यक्ति के जीवन की घटनाओं उसके गुणों को याद कर-करके, कहकर रोना भी, उन यादों को सबके बीच बाँटना भी, प्रिय के बिछोह के गहरे सदमे से बचाते हैं। मन का शोक बाहर निकल आता है। मृत्यु के शोक से मूर्च्छित, गुमसुम, सुध-बुध-खोये, ऐसे व्यक्ति को डॉक्टर भी रूलाने की, कुछ बात करने की सलाह देते देखे गए हैं। सबसे बड़ी बात है 'फिरने आये' स्वजन परिजनों से मिलती दिलासा की बातों में, अकाल मृत्यु के दु:ख का, लोकबीती-जगबीती के साथ सामान्यीकरण हो जाना। अपने परिवारों में और परिचितों के घरों में, आसपास घटी ऐसे शोक की कहानियाँ सुन, अपने से भी अधिक दु:खद प्रसंग सुन मृतक परिवार को थोड़ा ढाँढस बँधता है। दूसरे का पक्ष जान शोक कम होता है। किसी की मृत्यु होने पर व्यक्तियों को आस-पड़ोस, स्नेह सम्बन्धियों द्वारा खिलाने और तीन- चार दिन फिरने आकर दिलासा देने तक ही मृतक संस्कारों की सामाजिकता सीमित नहीं है। लोक के ये मृत्यु संस्कार मृतक के परिवार के शोक को बाहर निकाल उसे जीवन-यापन क्रम और प्रिय जन की मृत्यु से अस्त-व्यस्त हुई टूटी-बिखरी, सामान्य दिनचर्या भी देते हैं।

मृतक के परिवार को दु:ख भुला, काम-धंधे और अपने-अपने व्यवसाय में लगाने की सांस्कारिक रीति है, जो उठामना या उठामनी कही जाती है। यह पारम्परिक लोक संस्कार नगरों-महानगरों में भी, अभी भी बचा है। थोड़ा आडम्बर बढ़ गया है। उठामनी या 'उठामना' संस्कार का शाब्दिक अर्थ लें तो वह 'उठमन' होगा। यह मृत्यु संस्कार नियत दिन पर होता है। उठामनी में निश्चित समय, स्थान पर आस-पड़ौस, जाति-बिरादरी के गणमान्य व्यक्ति एकत्र होकर मृतक को श्रद्धांजलि दे- उसके परिवार का व्यवसाय शुरू कराते हैं। बन्द रही दुकानें, कारखाने खुलवाते हैं। काम-धंधे और कारीगरी के औजार उनके हाथ में दे- काम शुरू कराते हैं। नौकरी-पेशा लोगों के हाथ में कलम दे- काम पर भेजते हैं। प्रतिदिन की जीवनचर्या शुरू कराते हैं।

उठामनी संस्कार में मृतक के ऐसे परिवारों को जो रोज कुआँ खोदकर पानी पीने वाले हैं, काम शुरू करने की जरूरतें पूरी करने के लिए आर्थिक सहायता देने की एक रीति है-उठामनी में एकत्र जनसमूह अपनी इच्छा से एक लोटे में एक, दो, पाँच रूपए डालता है कि इस तरह एकत्र हुई राशि से उस दिन काम शुरू करने की जरूरतें पूरी हो सकें । सब्जी-भाजी वाले, फूल माला बेचने वाले, फूल-पान वाले आदि अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीद सकें।

सरकारी सर्वेक्षणों की गरीबी रेखा कुछ भी कहती रहे, पर वास्तविकता यह है कि स्वतंत्रता से पूर्व का लोकजीवन जितना अभाव ग्रस्त रहा, उतना आज नहीं है। आज का व्यक्ति, किसी सीमा तक, जन्म-मृत्यु, विवाह आदि के खर्चे स्वयं करने में 'सक्षम' है। कम ब्याज दर पर ऋण मिलने की भी सुविधाएँ हैं, पर हमारी लोक परम्परा में, लोक संस्कारों में, जन्म- मृत्यु, विवाहादि संस्कारों पर शिक्षा और तीर्थ यात्रादि पर जाते समय जरूरतमंद व्यक्ति की सहायतार्थ उसके खर्चे के लिए धन एकत्र करने की संस्कारिक रीतियाँ हैं, जो अब खत्म होती जा रही हैं।

उत्तरप्रदेश और बिहार में अभी भी नौकरी के लिए परदेश जाते और नौकरी से घर लौटते, तीर्थयात्रा आदि पर जाते व्यक्ति को 'मिलाई' दी जाती है। इस तरह एकत्र छोटी-सी धनराशि से किसी के घर नहीं भरते थे, पर मन भरते थे। आर्थिक मदद तो थोड़ी ही मिलती थी, पर इन रीतियों से सुख और दु:ख दोनों की परिस्थितियों में व्यक्ति के जुड़ाव, लगाव और प्रेम की सामाजिक सहभागिता व्यक्त होती थी, सौहार्द्र महसूस होता था, अहंकार भी कम होता था। आज इन रीतियों पर विचार अपेक्षित है।

मृत्यु संस्कारों की मूल अवधारणा में जितने भी संरचनागत लोकाचार हैं, उनमें घर और पर्यावरण की शुद्धि, मृत आत्मा की कुटुम्ब-समाज में स्थिति के अनुसार विदाई, परिवार और समाज में स्मृति रक्षा और सबके साथ विछोह के शोक को कम करने, भूलने के प्रयास हैं। 'मृत्युभोज, 'पैहरावनी' और 'विदाई' के मृतक संस्कार किसी समय भरे-पूरे परिवार के बुजुर्ग की मृत्यु के प्रसंग में मृत्युभोज के रूप में समस्त प्रिय जनों के मिलन और मृतक की कोई यादगार का स्मृति चिन्ह देने के लिए शुरू हुए होंगे, आगे चलकर ये बाध्यता और प्रतिष्ठा का प्रश्न बनकर मृतक के परिवार के लिये बोझ बन गए। गाँव-देहातों में, खासतौर पर मालवा, राजस्थान में, इन संस्कारों को लेकर परिवार कर्ज तक में डूबने लगे। अब फिर से समाज के कुछ वर्गों में इनके औचित्य पर विचार शुरू हुआ है।

ठीक से सन् और तारीख तो याद नहीं, पर घटना 15-20 वर्ष पुरानी तो है। रात के कोई बारह-साढ़े बारह बजे छोटे भाई का

फोन आता है-दीदी! हमारे साथ के एक व्यक्ति की अचानक मृत्यु हो गई है- बतायें, हमें तुरंत क्या करना है? जन्म और मृत्यु के ऐसे मौकों पर जरूरी संस्कारों से नई पीढ़ी की अनभिज्ञता की यह कोई एक अकेली घटना नहीं है। ऐसी कई बातें है, जिनकी जानकारी नहीं है। हमारी वाचिक लोक परम्परा में जीवन के समस्त पक्षों का ज्ञान पीढ़ी की अनभिज्ञता की यह कोई एक अकेली घटना नहीं है। इनकी संख्या बढ़ रही है, क्योंकि बिचली पीढ़ी के पल्ले भी अधिक जानकारी नहीं है। संस्कारों से अनभिज्ञता आज आम बात है।

हमारी वाचिक लोक परम्परा में जीवन के समस्त पक्षों का ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता आया है। वर्तमान समय में, मार्डन बनने के साथ और कारण जो भी रहे हों, इस प्रक्रिया में गतिरोध आया है। इसके पहले कि इस ज्ञान की जानकार पीढ़ी हमसे विदा ले जाये, इनका इसी रूप में संग्रह वक्त की आवश्यकता है। उसमें से युगानुरूप चयन अलग कदम होगा।

**अन्त्येष्टि संस्कार**

मानव जीवन का यह अन्तिम संस्कार एक ऐसा संस्कार है, जिसमें गीत लोकाचारों के संगी नहीं रहते। अन्त्येष्टि से जुड़े जितने भी लोकाचार हैं, उनमें घर और पर्यावरण की शुद्धि, मृतक का कुटुम्ब-समाज में स्थिति के अनुसार विदाई और स्मृति रक्षा है। विछोह के दु:ख को भूलने का प्रयास है।

**गऊदान एवं धरती पर उतारना** - बीमार व्यक्ति के प्राण न निकल रहे हों या लगे कि अब दम निकलने वाले हैं, तो उसके हाथ से गऊदान कराते हैं। बुजुर्ग अधेड़ों को थोड़ा दही-पेड़ा खिलाते हैं। फिर गोबर से धरती लीपकर व्यक्ति को धरती पर उतार लेते हैं। दक्षिण दिशा को पैर कर लिटा देते हैं। मुँह में तुलसी, गंगाजल और जरा-सा सोना डालते हैं। कान में 'राम-राम' कहते हैं। आकस्मिक रूप से कहीं भी मरा हुआ व्यक्ति धरती पर ही लिटाया जाता है।

**अर्थी उठना**- मृतक के घर कुटुम्ब-समाज के जानकार बुजुर्ग और पंडित के बताये अनुसार अन्तिम-यात्रा का सारा सामान लाया जाता है। काँठी, कफन, पिंडौती का सामान मृत्यु पाये व्यक्ति बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, सुहागिन, विधवा-विधुर के अनुसार होता है। जन्मते ही मरे बच्चे से लेकर 7-8 वर्ष की उम्र तक मरे बच्चे न तो जलाये जाते हैं, न उनकी अर्थी बनती है। उन्हें कोरे कपड़े में लपेटकर, गोद में या पंखे पर रखकर ले जाते हैं। साथ में नमक और शिलायें ले जाते हैं, जो मृत देह दबाने के बाद गड्ढे में डालकर ऊपर से मिट्टी डालते हैं। उपनयन हुए लड़के की अर्थी बनती है।

**स्त्री वाले पुरुष के मरने पर** - मृतक को सफेद कफन और दागी 'मुखाग्नि देने वाले' के लिये भी कोरे कपड़े आते हैं। मृतक को गंगाजल पड़े पानी से स्नान कराते हैं, चंदन लगाते हैं, लंगोटा पहनाते हैं, छाती पर पिंड-पैसा रखते हैं, उसकी पत्नी के चूड़ी बिछिया फोड़कर उसके ऊपर रखे जाते हैं, स्त्री के आभूषण उतार दिये जाते हैं, सिन्दूर-बिन्दी पोंछ देते हैं। पत्नी अर्थी की सात उल्टी परिक्रमा करती है, मृतक के पाँव छूती है।

**विधुर पुरुष के मरने पर**- स्नान कराते, लँगोटा लगाते, चंदन लगाते हैं। छाती पर पिण्ड-पैसा रखते हैं।

**सुहागन स्त्री के मरने पर**- मृत शरीर धरती पर उतारते ही निम्न वस्तुएँ मँगाई जाती हैं-काजल, मेहंदी, बिन्दी, सिंदूर, हरी चूड़ी, नथ, बिछिया, चूँदरी। इन श्रृँगार की वस्तुओं से स्त्री का पूरा श्रृँगार किया जाता है। काँसे के बिछिया पहनाते हैं। सुहाग चिन्ह छोड़कर आभूषण उतार लेते हैं। स्त्री के जननांग में पैसा रखकर मिट्टी से ल्हेस देते हैं, चूँदरी ऊपर डालते हैं। बड़े बेटे की बहू, सास या अन्य बड़ी स्त्री छाती पर जौ का पिंड और पैसा रखती है। पति अर्थी को कंधा देता है। बेटा मुखाग्नि देता है। कन्धा देने वाले 'काँधये' कहलाते हैं। पति का कंधा पाना सौभाग्य माना जाता है। परन्तु स्त्री पति को कंधा नहीं दे सकती।

**विधवा की मृत्यु पर**- ऊपर कोरी धोती डाली जाती है। दो चोली उसकी बगल में रखते हैं, पैसा और पिण्ड आगे रखा जाता है।

**नाती-पन्ती वाले वृद्ध के मरने पर** - भरा-पूरा परिवार छोड़कर मरने वाले बुजुर्गों की मृत्यु मुक्ति का अवसर है। इन्हें श्मशान ले जाने के लिए विमान बनाया जाता है। मृतक देह पर शाल डालते हैं। घर के अतिरिक्त ये पौत्र-प्रपौत्रों की ससुराल के होते हैं। अर्थी पर गुलाल, रूपये-पैसे और मेवा-मखाने बिखेरते हैं। बैन्ड-बाजों के साथ विमान निकलता है। कीर्तन और रामधुन होती

है। अर्थी उठने पर स्त्रियाँ पीछे से पानी डालती हैं। जमाई और स्त्रियाँ शव-यात्रा में नहीं जाती। लाश के साथ राहगीर पाँच कदम चलते हैं। यह 'पंचपैंड़ी' भरना कहा जाता है।

गाँव बाहर जाकर, प्राय: जगह निश्चित होती है, अर्थी उतारकर नीचे रखते हैं। छाती पर से पिण्ड निकालकर फेंक देते हैं। यदि मृतक पंचक में मरा हो तो उसके साथ घर से चक्की की शिर भी ले जाते हैं। गाँव बाहर उसे फोड़ा जाता है। जहाँ मुर्दा रखते हैं, वहाँ दो पैसे रखकर चले जाते हैं। ऐसा विश्वास प्रचलित है कि जमीन का मूल्य चुकाना पड़ता है।

मरघट में जाकर मृतक को नहलाते हैं। चिता चुनते हैं। मृतक पर पड़े सारे कपड़े उतार कर चिता पर लिटा उसे कंडों से दबा देते हैं। मृतक के सभी सम्बन्धी चिता पर लकड़ी रखते हैं। एक-आधी लकड़ी चंदन की भी डालते हैं। माता-पिता को बड़ा या सबसे छोटा बेटा, स्त्री को पति और कुँवारी बहिन को भाई दाग (मुखाग्नि) देता है। आधी चिता जल चुकने पर 'कपाल क्रिया' की जाती है। दागी मृतक का लकड़ी से सिर फोड़कर उसमें घी डालता है। पंडित हो तो मंत्रोच्चारों से पूरा अग्नि संस्कार कराता है। पूरी चिता जलने तक शव यात्री वहीं बैठे रहते हैं। जल चुकने पर उस स्थान को नदी के जल से धोते हैं और वहाँ बायें हाथ की छोटी उँगली से 'राम' लिखते हैं। फिर दागी दो बार मृतक को 'धाय' (आवाज) देता है। शव यात्री वापस आते हैं। चलने से पूर्व बाल-युवा की मृत्यु पर वहीं दो-चार भुने चने मुँह में डालकर थूक देते हैं। लेकिन यदि मृत व्यक्ति नाती-पोतों वाला, प्रपौत्र वाला बुजुर्ग है, तो घाट पर ही मगद (खा, मैदा, घी, बूरे के लड्डू) बँटता है। यह नाती-पंती, बेटों की ससुराल की ओर से या घर से ही खरीदे लड्डू दिये जाते हैं। इन्हें बुजुर्ग का प्रसाद मानकर वहीं घाट पर ही खा लिया जाता है। घर लेकर नहीं आया जाता।

**कंकरी डालना**-मुखाग्नि देकर लौटे गाँव के लोग घर के पास आकर नीम की पत्ती खाते और रास्ते से कंकड़ी उठाकर पीछे को फेंकते हैं। फिर नदी, तालाब, कुँए पर नहाते हैं। शवयात्री आने तक स्त्रियाँ वहीं मरण स्थान पर बैठी रहती हैं। अर्थी बनाने से बचा फूँस-सुतली आदि भी वहीं पड़ा रहता है। शव यात्री आते हैं तो स्त्रियाँ फूँस-सुतली लेकर तालाब, पोखर, कुँए इत्यादि में से किसी स्थान पर जाती हैं, उसे वहाँ सिरा देती हैं। नीम की पत्ती चबाती, कंकड़ी फेंकती फिर नहाती हैं। मृतक के प्राण छूटे कपड़े-लत्ते/बिस्तर तकिया आदि सब किसी पात्र को दे देते हैं। वह स्थान धोकर वहाँ तेल का दीपक जलाया जाता है। शव यात्री और रोने आई स्त्रियाँ दीपक के दर्शन करके अपने घर वापस जाते हैं।

**गौ ग्रास और भोजन** - दाह क्रिया के बाद पहले दिन का खाना घर में नहीं बनता। स्थानीय समधियाने से, रिश्तेदारी से आता है या आस-पड़ोस से। कहीं कोई न लाये तो बाजार से सब्जी-पूड़ी खरीद लाते हैं। दूसरे दिन से मृतक के लिए गौ ग्रास रूप में आहार निकलता है। घर पर भोजन बनता है पर नहान तक, दाल व साग में हल्दी नहीं पड़ती, छौंक नहीं लगता, कढ़ाई नहीं रखी जाती। अधिकतकर छिलके वाली उर्द की दाल बनती है और तवे की रोटियाँ (चार रोटी और दाल एक लुटिया में पानी)। बायें हाथ से इतना प्रतिदिन गौ ग्रास निकलता है। पहले दागी भोजन करता है, उसके बाद सब लोग खाते हैं। अधिकतर नहान तक का खाना बहन-बेटियाँ बनाती हैं।

दागी और मृतक की विधवा तेरहवीं तक जमीन पर कम्बल बिछाकर सोती हैं। फिरने वाले स्त्री-पुरुष इन्हीं के पास आते-बैठते हैं। मृतक के घर फिरने (शोक-संवेदना के लिए) गुरुवार को कदापि नहीं जाते। मंगल, शनि भी अच्छे नहीं माने जाते, पर चलते हैं।

**सूतक**- मृत्यु के समय से नहान तक 'सूतक' अर्थात् अशौच रहता है। सूतक सारे घर कुनबा को लगता है। सूतक में बालों में तेल नहीं पड़ता, चोटी-बिन्दी-काजल कुछ नहीं होता। नया कपड़ा नहीं पहनते, दाढ़ी नहीं बनाते। ये काम नहान के बाद होते हैं, किन्तु तेरहवीं तक किसी भिखारी को भीख नहीं देते। नहान के बाद घर के भगवान की सेवा-पूजा बहन-बेटियाँ ही करती हैं। बच्चों के मरने के सूतक 3-5-7 दिन के होते हैं। सूतक वाले घर में जो स्त्रियाँ फिरने जाती हैं, वे अपने घर में प्रवेश करने से पूर्व हाथ-मुँह-पैर धोती हैं। थोड़ी-सी कोई वस्तु खा लेती हैं।

**फूल बीनना** - मृत देह जलने के बाद शेष रही अस्थियाँ 'फूल' कहलाती हैं। फूल बरकटा नहान के सुबह-सुबह बीने जाते हैं। फूल एक कपड़े की थैली में बीनकर पीपल के पेड़ पर टाँग देते हैं। नहान के बाद मृतक का पुत्र या पौत्र उन्हें किसी पवित्र

नदी या त्रिवेणी संगम में विसर्जित करने लेकर जाता है। बरकटा नहान मरने के बाद के सोमवार या वृहस्पति को अथवा घर-कुल परम्परानुसार किसी अन्य दिन होता है। घर-कुनबे के सभी लोग गाँव के बाहर जाकर एक कम्बल बिछाकर सिर के बाल और मूँछ मुड़वाते हैं। सब नदी-तालाब पर नहाते हैं। स्त्रियाँ भी नहाने जाती हैं। उनके सिर में थोड़ी-थोड़ी खल डाल दी जाती है। बाल कटने के बाद पीपल के पेड़ की डाल पर पेंदी में छेद करके एक घड़ा (छोटा) टाँगते हैं। उसमें तेरहवीं तक रोजाना पानी भरा जाता है, ताकि वह सूच्याकार जीवन अपनी प्यास बुझा सके। इसे 'घट बाँधना' कहते हैं।

बरकटा नहान के दिन घर में कढ़ी-चावल, बाजरा और जलपातर के लिए नेवज (नैवेद्य) बनता है। नेवज में दो-दो पूरी, फुलकी, छल्ला, पुआ, गुझिया, शक्कर-गुड़ भरके फूल बनाके कढ़ाई में सेंके जाते हैं। यह सब सामान कढ़ी-चावल-बाजरा एक मलरिया में रखकर उसी पीपल के पास मृतक को खिलाने जाते हैं। यह सामान एक पत्तल पर रखकर जल चढ़ाते हैं। यह 'जल पातर' कही जाती है। फिर लौटकर चूल्हा-चौका साफ कर उर्द की दाल और रोटी होती है। यह सामान कढ़ी-चावल आदि सब घर-कुटुम्ब के लोग और काँधिये खाते हैं।

**पत्ता फाड़नो**- पहले स्त्रियों के आगे एक-एक पत्ता रखा जाता है। उस पर सब थोड़ा सामान रखा जाता है। उसे पैर से दबाकर वे घर के पीछे फेंक आती हैं। इसे 'पत्ता फाड़नो' कहते हैं। फिर सब स्त्री-पुरुष और काँधिए खाते हैं। पहला कौर बायें हाथ से खाया जाता है। शेष रहा सामान फेंक दिया जाता है। बचाया नहीं जाता।

**सरग छाप**- रात को मृतक का अगला जन्म देखने के लिए आँगन में राख छानकर उर्द की दाल बाँधकर और एक रोटी रखकर परात या कठौती से ढँक देते हैं। ऐसा विश्वास है कि मृत आत्मा जिस योनि में जन्म लेती है। उसका निशान राख में उतर आता है। फिर चार बजे सवेरे मृतक के फटे कपड़े में, काले उर्द की दाल, गुड़ की डल्ली, आटा और टका (दो पैसे) बाँधकर दिये जाते हैं।

**उठामनी**- नहान के बाद अपरान्ह में या बाद में, किसी-किसी जाति वर्ग विशेषकर बनियों में उठामनी/उठामना होता है। इसमें जात-बिरादरी, आस-पास के परिचित लोग एकत्र होकर मृतक के परिवार का व्यवसाय शुरू कराते हैं। दुकान या फैक्टरी को खुलवाते हैं। नौकरी-पेशा लोगों के हाथ में कलम देते हैं और व्यापारी के हाथ में तराजू बाट, गज अर्थात् व्यवसाय के औजार-इत्यादि देते हैं, ताकि दिन-प्रतिदिन का व्यवसाय चलना शुरू हो जाये। नौकरी पेशा कलम लेकर नौकरी पर जाने लगें।

**गरुड़ पुराण बाचना** - यदि मृत व्यक्ति बुजुर्ग है तो रात को धूप-अगरबत्ती जलाकर (दीपक तो जलता ही रहता है) दागी और परिवार के अन्य सदस्यों को पंडित गरुड़ पुराण और नचिकेतोपाख्यान की कथा सुनाता है। दागी कुशासन पर बैठता है। एक और कुशासन खाली डाला जाता है। ऐसी मान्यता है कि मृतात्मा जो 10-12 दिन तक भटकती रहती है, स्वयं आकर कथा सुनती है। इस कथा में केवल तुलसी दल का ही भोग लगता है और वही तुलसी दल उपस्थित श्रोताओं को दिया जाता है।

**चिट्ठी फाड़ना** - तीसरे दिन या कुंवार (बुरा दिन) बचाकर अच्छा दिन देख ब्राह्मण भोजन या तेरहवीं की चिट्ठियाँ फाड़ी जाती हैं, अर्थात् सभी सम्बन्धियों को ब्राह्मण भोजन की सूचना दी जाती है। चिट्ठी का कोना फाड़ देते हैं। चिट्ठी पाने वाला चिट्ठी पढ़कर फाड़ देता है।

**नौवाँ नहान या दसवाँ**- यह बरकटा नहान की तरह सब जातियों में नहीं होता। इस नहान में घर-कुटुम्ब के सभी सदस्य घर से बाहर किसी जलाशय पर एकत्र होकर नहाते हैं। जनेऊ बदलते हैं। इस दिन स्त्रियाँ सिर धोती और साबुन लगाती हैं, जो अभी तक नहीं लगा सकती थी। यहाँ चौथी बार पिंडदान होता है। घाट से लौटने पर साबुत पान के पत्ते और कोई एक दो फल लेकर प्रवेश करते हैं। पान पढ़ैनी (पीने का पानी रखने की जगह) पर रख देते हैं और दरवाजे पर आकर सब लोगों के हाथ जोड़ देते हैं, तब सब स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर चले जाते हैं। यह रीति सनाढ्य ब्राह्मणों तथा चौबे समाज में प्रचलित है।

**तेरहवीं/त्रयोदशा**- स्त्रियों के मृत्यु से बारह दिन और पुरुष के तेरह दिन पीछे ब्राह्मण, अधेड़ है तो घर-परिवार और काँधिये और अगर भरा-पूरा परिवार छोड़ा बुजुर्ग है तो बड़ा मृतक भोज अपनी सामर्थ्य के अनुसार होता है। दूर-दूर के नाते-रिश्तेदार बुलाते हैं। इसे 'कारज' कहते हैं। प्राय: खीर-मालपुओं का भोज

होता है या लड्डू कचौरी का। स्त्रियों के मृत भोज में एक स्त्री तेरहवाँ ब्राह्मण होती है। पुरुष के मृतक होने पर पुरुष ही तेरहवाँ ब्राह्मण माना जाता है। इसे शैय्या दान दिया जाता है। दामाद तेरह ब्राह्मणों में नहीं बैठ सकता, पर धेवता बैठ जाता है।

**ब्रह्मभोज के दिन**- घर की ब्याही बेटी सुबह घर-बाहर जाकर 'बाबुला-बाबुला' कहते रोती हुई आती है। घर के कौरों से लिपटकर रोती है। कहते हैं- 'बबुल मर्‌यौ तब जानिये, जब धीयरि रोमति आवै'। तेरहवीं के दिन घर से गौ-ग्रास नहीं निकलता। सुबह मृतक की क्रिया (क्रियाकर्म) होती है, इसे 'विधि' भी कहते हैं। यह शास्त्रीय विधान से पंडित कराता है। यह भी दो स्थान पर होती है, जहाँ घट बँधा होता है वहाँ और घर पर मृतक को रखने की जगह पर। सारे घर में गंगाजल, गौ-मूत्र छिड़कते हैं। पीपल से टँगा घट उतार देते हैं। वहाँ तिलांजलि दे मृतक से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं । दागी के दाग के कपड़े आदि सब फेंक दिये जाते हैं।

बारह दिन तक जलता रहा दीपक हटा दिया जाता है। उस जगह रखा चित्र भी। ब्रह्मभोज में जितने भी रिश्तेदार, लड़के-लड़की की ससुराल वाले, पौत्रों-धेवतों की ससुराल से आते हैं, सब बताशे लेकर आते हैं। मृतक की ससुराल से दागी के लिये पाँचों कपड़े आते हैं। बुजुर्ग की मृत्यु पर सारे बेटों और पौत्रों की ससुराल से अपनी-अपनी लड़की-दामाद के लिये कपड़े आते हैं। दाग देने वाले के लिए कपड़े और विधवा के लिये रड़सरा लाता है। यह कोरा सफेद कपड़ा होता है। गाँवों में तो भाई आटा-गुड़ भी लाता है। विधवा के लिये चूड़ी भी।

**शैय्या दान**- विधि और शुद्धि होने के बाद ब्रह्मभोज के लिये तेरह ब्राह्मण बैठते हैं। उधर शैय्या दान भी होता है। शैय्या दान में मृतक व्यक्ति के दैनंदिन व्यवहार की वस्तुएँ चारपाई, गद्दा, रजाई, चादर, जूता, चप्पल, कपड़े, छाता, टोपी, छड़ी, खाने के बर्तन, टार्च, लालटेन, माला और सोने की चेन या अँगूठी हल्की-भारी जैसी श्रद्धा होती है। हुक्का पीता हो तो हुक्का, पानदान भी रहता है। तेरह ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूपयों के साथ आसन, जपमाला, गीता या रामायण की पोथी, लोटा या गिलास, चप्पल, छाता, छड़ी तिलक लगाकर दिया जाता है। 'क्वारे काछे का घर' को ध्यान में रखते हुए परिवार में मंगल कार्यों के लिए छटमाही और बरसी भी यदि साथ-साथ करनी हो तो शैय्या दान में, उसी हिसाब से सामान बढ़ाकर, उसी समय बरसी भी कर दी जाती है। तेरह ब्राह्मण खाकर उठे कि बरसी के बार बिठा दिये जाते हैं।

शैय्यादान (चारपाई और उस पर रखी दैनंदिन जरूरत की मृतक के लिये लाई कोरी वस्तुएँ) की मृतक के घर-कुटुम्ब के सारे बच्चे-बड़े, स्त्री-पुरुष, लड़की-दामादों को छोड़कर परिक्रमा और प्रणाम करते हैं। पंडित दान का संकल्प कराता है। शैय्यादान के साथ मृतात्मा की विदाई हो जाती है।

**रड़सरा**- मृतक की विधवा ब्रह्मभोज का, तेरहवीं का बना खाना नहीं खाती। छूती भी नहीं। उसके लिए बाजार से पूरी-सब्जी मँगाई जाती है। ब्रह्मभोज के बाद विधवा के सिर में तेल लगाया जाता है। उसे 5-5 हरी चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं। तब भाई-भतीजा उस पर रड़सरा डालता है। रड़सरा कोरा सफेद कपड़ा होता है। दूसरे दिन विधवा अँधेरे में तालाब पर नहाकर रड़सरा और चूड़ियाँ वहीं छोड़ आती है। घर आकर भाई की लाई या बेटों की ससुराल से आई सफेद धोती पहनती है। फिर अँधेरे पाख 'कृष्ण पक्ष' में विधवा मायके जाती है। भाई या भतीजा उसे चूड़ी, साड़ी देता है। पीहर से वह उसी दिन या दूसरे दिन लौट आती है। ये चूड़िया चाँदी की या सोने की होती हैं। पीहर से न मिलें तो बेटे, बहू, नाती बनवाकर देते हैं।

**पाग बँधना**- इसी दिन समस्त कुटुम्बियों और नाते-रिश्तेदारों, पंचों की उपस्थिति में उत्तराधिकारी का पाग बन्धन होता है। अपने भाइयों के साथ (यदि हों तो) दागी बैठता है। उसकी ससुराल से पगड़ी, कपड़े, नारियल, बताशे जो आते हैं, उसे टीका कर दिये जाते हैं। कुछ धनराशि भी थाली में डालते हैं और पाग बाँधते हैं। मृतक के बेटों, पोतों, धेवतों की ससुराल से जो भी रिश्तेदार पाग बताशे कपड़े लाते हैं, वे पगड़ी पर बताशे रखकर टीका करके, रूपये थाली में डालते जाते हैं। बहिन-बेटियों के यहाँ से आये बताशे पगड़ी पर नहीं रखे जाते। एकत्र हुए बताशे बँट जाते हैं। नाइन उन्हें कुटुम्बियों के घरों के आले में रख आती है। तब दागी को पंचों की उपस्थिति में, भाई बंदों के साथ, हाथ में बताशे और नारियल लेकर देव-दर्शन कराने मंदिर ले जाते हैं। वहाँ दागी अपने हाथ से बताशे, नारियल और कुछ रूपये मंदिर की चौखट पर रखता है। मंदिर से लौटते में बाजार से कोई वस्तु, फल, मिठाई आदि खरीदकर लाते हैं। आगे कुल परम्परानुसार महीने का

ब्राह्मण भोज वर्ष भर खिलाना, दाग तिथि और वर्ष श्राद्ध का क्रम चलता रहता है।

**विदाई**- समस्त आगतों को बुजुर्ग के कारज का प्रसाद रूप में सभी के साथ मालपुए और लड्डू-कचौरी बाँधी जाती है। अब तो डिब्बे में भरकर देते हैं। पहले पत्तलें बाँधते थे। बहन-बेटी के ससुराल वालों को मालपुए या लड्डू कचौरी के साथ रूपये भी देते हैं।

**डलिया आना**- तेरहवीं के बाद अँधियार पाख में मतलब यदि अमावस्या की तेरहवीं हो तो उसी दिन और उजियार पाख में हो तो अमावस्या के बाद किसी दिन बहन-बेटी या शैय्यादान लेने वाला डलिया लाता है। डलिया में एक टूटी-सी टोकरी में तेल की दस पूरी होती है। उसमें से एक-दो किसी को देकर शेष कुत्ता व गाय को डालकर डलिया फेंक देते हैं। डलिया लाने वाले को रूपया देते हैं।

**सोने की सीढ़ी**- मरने के बाद स्वर्ग पाना लोक जीवन की बहुत बड़ी आकांक्षा है। अपने पूरे जीवन में लोक की करनी और रहनी, उसके सारे कर्म और व्यवहार, स्वर्ग को पाने के लिए और नरक से बचने के लिए होते हैं। पुत्र वाले व्यक्ति को 'पूत' नाम नरक से बचाता है, ऐसा शास्त्र कहते हैं। लोकजीवन में 'पूत का मूत प्रयास का पानी' मुक्तिदाता माना जाता है। दादा-पोतों वाले दादा-दादी की स्वर्ग प्राप्ति निश्चित है। किन्तु जिन बुजुर्गों के प्रप्रौत्र हो जाये, पंती हो जाये, वे तो पंत देखने के बाद सीधे 'सुरग नसैनी' चढ़ जाते हैं। वे सोने की सीढ़ी पर चढ़कर स्वर्ग जाते हैं। उनकी राह में कोई व्यवधान नहीं होता, ऐसा विश्वास है। 'सुरग नसैनी चढ़ना' सोने की सीढ़ी चढ़ना एक लोकाचार है। यह लोकाचार पंडित के बताये हुए तिथि मुहूर्तानुसार होता है। इसके लिए परदादा-परदादी के लिए प्रपौत्रों की ससुराल से पूरे (पाँचों कपड़े) आते हैं। आँगन लीप कर चौक पूरा जाता है। एक चौड़े बर्तन में चावल भरते हैं। उसमें अपनी सामर्थ्य के अनुसार हल्की-भारी दो डंडों की बनवाई जाती है। तब वे नसैनी के पहले डंडे पर सीधे पैर का अंगूठा और दूसरे डंडे पर बाँये पैर का अँगूठा रखते हैं। पंडित मंत्रोच्चार से यह क्रिया सम्पन्न कराता है। पंडित का मंत्रोच्चार खत्म होने पर उन्हें कुछ मीठा खिलाया जाता है। इस अवसर पर पूरे कुटुम्ब का भोज होता है। सोने की नसैनी और चावल बहन-बेटियों के होते हैं।

**त्योहार उठना**- कारज के बाद मृतक के घर के क्रम से त्योहार आते हैं। त्योहारों को घर-कुटुम्ब के लोग नहीं, नाते-रिश्तेदार, बहन-बेटियाँ उठाती हैं। त्योहार उठाने की सभी रस्में अँधियार पाख में होती हैं। 'कृष्ण पक्ष' में अमावस्या से पहले।

**रक्षाबंधन**- दागी की ससुराल से, बहुओं के पीहर से, हरियाली अमावस्या से पहले उनके पिता-भाई, सेंवई-चावल देकर जाते हैं, जिन्हें बनाकर खाये जाते हैं। बहन-बेटियाँ राखियाँ और घेवर लेकर आती हैं। उन्हीं राखियों से सोना पूजते हैं। विदा देते हैं।

**दीवाली**-अँधियारे पाख में करवा चौथ से पहले बहुओं के पीहरिये मिठाई लेकर आते हैं। बहन-बेटियाँ दौज का टीका और मिठाई लाती हैं, विदा देते हैं।

**मकर संक्रान्ति** -मकर संक्रान्ति से पहले दागी की ससुराल से और अन्य बहुओं के पीहरवाले खीचड़ी (दाल, चावल और लड्डू आदि) देकर जाते हैं। वह रखी रहती है, संक्रांति पर बनाकर खाते हैं।

**होली**- होली उठाया जाने वाला वर्ष का अन्तिम त्योहार है। मृतक के घर में अँधेरे पाख में बड़ी, मंगौड़ी, पापड़ बनाये जाते हैं, फिर गुंजिया, पपड़ी, सेव, लड्डू इत्यादि होली के पकवान बनते हैं। मृतक के घर में ये चीजें बनने के बाद कुटुम्ब के अन्य भाई-बन्दों के यहाँ यही सब शगुन का थोड़ा-थोड़ा बनाया जाता है। फागुन की पूर्णिमा को होली जलती है। धूलिवंदन के दिन गाँव के स्त्री-पुरुषों की टोलियाँ मृतक के घर जाकर, घर के लोगों को (सभी स्त्री-पुरुषों को) गुलाल लगाती, रंग छिड़कती हैं और उन्हें अपनी बाँहों में भर, साथ चलने-शोक छोड़ने का आग्रह करती हैं।

# मृत्यु संस्कार की मान्यता

डॉ. एस.के. मालवीय

*एक दिन मरघट सब खां जाने, तज सब ठौर ठिकाने।*
*राजा रंक कोउ न बचबे, जब आवे परवानें।।*
*ऊंच नीच को भेद न हुइये, कंडा सौ धुधवानें।*
*सब जानत भये पै भी मूरख, तज सब ठौर ठिकाने।।*

जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसकी मृत्यु सुनिश्चित है, और जिसकी मृत्यु हुई है, उसका जन्म भी निश्चित है।

मनीषियों ने मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना विकसित करने हेतु कई प्रकार के अभिचारों और उपचारों की व्यवस्था की है, जिनके प्रतिपालन से वह बाह्य एवं अंत:शक्तियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

भारतीय संस्कृति में मानव का सम्पूर्ण जीवन धर्म पर ही आधारित है। अत: इस जीवन की सार्थकता एवं सफलता कायम रखने के लिए संस्कारों का विधान किया गया है। इन विधानों के तहत मानव जीवन में जन्म से लेकर मृत्योपरान्त तक अनेक संस्कार हैं। भारतीय संस्कृति में मानव जीवन का ध्येय आदर्शमय बनकर मोक्ष प्राप्त करना है। अत: बच्चे के गर्भ में आने के पश्चात् एवं उसके जन्म से पूर्व उसकी शुद्धि हेतु संस्कारों का विधान शुरू हो जाता है, जो कि जीवनपर्यन्त सम्पादित किये जाते हैं।

प्रत्येक संस्कार में दो स्वरूप दिखाई पड़ते हैं- एक पौरोहित्य रूपी जो कि पंडित-पुरोहित द्वारा मंत्रादि से सम्पन्न कराये जाते हैं, दूसरा लौकिक रूपी जो कि लौकिक रूप में पारिवारिक महिलायें स्वयं सम्पादित कर लेती हैं। गीतों में लोकाचारों का लेखा मिलता है। संस्कारों का हिन्दू जाति में धार्मिक महत्त्व है। आगे चलकर ये लोकाचार धर्म के अंग बन गये।

मानव जीवन में मनुष्य इष्ट के पूर्ण एवं अनिष्ट के निवारण हेतु सदा से ही सजग एवं धार्मिक विश्वास के कारण कुछ कर्म विधान करता आया है, इनमें मानव जीवन की सभ्यता का इतिहास छिपा है। विश्व के मानचित्र में चिन्हित अनेक संस्कृतियों में मृतक संस्कार को धर्म के अन्तर्गत रखा गया है। विश्व की पुरातन सभ्यताओं में असेरियन, सुमेरियन, सिन्धु सभ्यताओं में भी मृतक संस्कार, धार्मिक अंधविश्वास के अंतर्गत होते आये हैं। मिस्र एवं असेरियन सभ्यता के लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। सिंधु सभ्यता में मृतक संस्कार को तीन प्रकार से किया जाता था। यही संस्कार समस्त विश्व में आज भी प्रचलित है। भारत में मृतक संस्कार तीन प्रकार से किया जाता है- शव की दाहक्रिया, दफन करना या गाड़ना और शव को लटकाना।

मृत्यु विश्वजनीन सत्य है- ध्रुव सत्य और अपरिहार्य है। सृष्टि तथा प्रलय का यह संधि स्थल है। श्रीमद्भागवत के 11वें स्कंध में श्री शुकदेव मुनि ने राजर्षि परीक्षित को अंतिम उपदेश के क्रम में कहा है- *जन्तोर्वे कस्यचिद् धेतोर्मृत्यरत्यन्तविस्मृतिः।* अर्थात् किसी कारण से हो, जीव की अपने स्वरूप की अत्यन्त विस्मृति ही मृत्यु है।

देहान्त और देहान्तर धारण बीजांकुर न्याय है। जिस प्रकार बीज से अंकुर और अंकुर से बीज की उत्पत्ति होती है, वैसे ही एक देह से दूसरी की और दूसरी से तीसरी की उत्पत्ति होती है।

जन्म-मृत्यु बीजांकुरण अन्योन्य एवं एक-दूसरे का पूरक और दोनों ही सापेक्ष हैं। यह चक्र पानी की रहट की तरह बराबर चलता रहता है। जिस प्रकार सूर्य का उदय और अस्त अपने आप होता रहता है और उसमें कभी बाधा या अन्तर नहीं पड़ सकता, उसी प्रकार जन्म-मृत्यु अनिवार्य है। मृत्यु के बाद इन जीवात्माओं में से अपने-अपने कर्मों के अनुसार एवं कोई-कोई तो वृक्ष, पाषाण आदि अचल शरीर को भी धारण कर लेते हैं। सांसारिक जीवन का अवसान मृत्यु में और संस्कारों की परिसमाप्ति अन्त्येष्टि में होती है। हिन्दू शास्त्रकार इस लोक का महत्त्व समझते हैं, किन्तु उनके सामने परलोक और परमार्थ का महत्त्व इससे कहीं बढ़कर है। इस लोक को सुखमय और धार्मिक बनाने की चेष्टा साधन रूप से है। जीवन को पवित्र करने वाले संस्कार लौकिक कल्याण के साथ-साथ परलोक की भी चिन्ता रखते हैं। अन्त्येष्टि संस्कार परलोक परक हैं।

इस संसार में आत्मा के महाप्रस्थान को सुखमय और सफल बनाने का प्रयास होता है। बोधायन के अनुसार जातकर्म से मनुष्य इस लोक को जीतता है और अन्त्येष्टि से परलोक की विजय करता है। शास्त्रोक्त संस्कारों को नियमपूर्वक करता हुआ मनुष्य भौतिक बन्धन और मृत्यु को पार करके अमृत तत्त्व को प्राप्त करता है।

हममें से प्रायः सभी का मन अपनी विशालता, शक्ति और ज्ञान को भूलकर एक शरीर की प्रवृत्ति में इतना ज्यादा फँस जाता है कि हम अपने को शरीर के अतिरिक्त और कुछ समझने का प्रयास ही नहीं करते। मानव मन की इस दुर्बलता के कारण संसार में सारे दुःख और द्वन्द्व हैं। यह मन, जो चिन्मय है, जब तक पुनः अपने चिन्मयत्व का अनुभव नहीं कर लेता, तब तक सुखी और शान्त नहीं हो सकता। इसके लिए भावना के अभ्यास की आवश्यकता है। पंचभूतों की धारणा द्वारा मन को धीरे-धीरे अल्पता के कारागार से निकालकर अखण्ड-स्वातन्त्र्य में जो कि अनन्त है, स्थापित किया जाता है। वास्तव में यही उसका स्वरूप है। स्वरूप की उपलब्धि ही इस साधना का उद्देश्य है, यद्यपि मार्ग में सभी प्रकार की सिद्धियाँ भी मिलती हैं।

पंचभूत है- पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। इनकी धारणा का अर्थ है क्रमशः चित्त में इन्हें बांधना। यद्यपि ये सब चित्त में बंधे हुए हैं, तथापि वर्तमान काल में शरीर की प्रायः मनोवृत्ति को देखते हुए, ऊपर उठाने का यही क्रमिक उपाय मालूम पड़ता है। उपरोक्त पंचभूतों में से सर्वप्रथम पृथ्वी की धारणा की जाती है। उस धारणा का यह स्वरूप है कि ये पाँचों भूत, जो इन्द्रियों से बाहर दिख रहे हैं, सबके सब मन के अंदर हैं। इस मानव शरीर में पैर से लेकर जानुपर्यन्त पृथ्वी मण्डल है। उसका वर्ण हरताल के समान पीला है, उसकी स्थिति चतुष्कोण है, उसके अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा हैं, उसका बीज 'लं' है। प्राणों को स्थिर करके पाँच घटिकापर्यन्त उपर्युक्त धारणा करनी चाहिए। यह धारणा करते-करते ऐसा अनुभव होने लगता है कि मैं सम्पूर्ण पृथ्वी हूँ। ये बड़े-बड़े नदी-नद मेरे शरीर की नस-नाड़ियाँ हैं और सम्पूर्ण जीवों के शरीर के रोग अथवा आरोग्य के कीटाणु हैं। समस्त पार्थिव शरीर मेरे अपने ही अंग हैं। शारीरिक मृत्यु पर उनका आधिपत्य हो जाता है और सिद्ध होकर वे पृथ्वी-तल में विचरण करते हैं।

जल धारणा इस प्रकार की जाती है- जानु से लेकर पायु इन्द्रिय पर्यन्त जल का स्थान है। जलमण्डल शंख, चन्द्रमा और कुन्द के समान श्वेतवर्ण है। इसका बीज अमृतमय 'वं' है। इसके अधिष्ठाता देवता चतुर्भुज पीताम्बरधारी शुद्ध स्फटिक मणि के समान श्वेत वर्ण भगवान नारायण हैं। इस जल मण्डल का चिन्तन करके प्राणों के साथ इसको हृदय में ले आयें और पाँच घटिकापर्यन्त चिन्तन करें। इसके चिन्तन से ऐसी अनुभूति होती है कि मैं जल तत्त्व हूँ। पृथ्वी का कण-कण मेरे अस्तित्व से ही स्निग्ध है। अमृत और विष मेरे ही स्वरूप हैं। पृथ्वी मेरा ही परिणाम है। मैं ही पृथ्वी के रूप में प्रकट हुआ हूँ। जल धारणा सिद्ध हो जाने पर अन्त:करण के विकार धुल जाते हैं। अगाध जल में भी उसकी मृत्यु नहीं होती।

पायु-इन्द्रिय से लेकर हृदय पर्यन्त अग्नि मण्डल है। इसका वर्ण रक्त है, आकार तिकोना। इसका मुख्य केन्द्र नाभि और 'रं' बीज है। इसके अधिष्ठाता देवता रुद्र हैं। इसका चिन्तन करते हुए प्राणों को स्थित करें। हमें ऐसा अनुभव होता है कि मैं अग्नि हूँ। सम्पूर्ण वस्तुओं का रंग-रूप, मणियों की चमक, पुण्यों का सौन्दर्य मैं ही हूँ। सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत के रूप में मैं ही प्रकाशित हूँ। जल और पृथ्वी मेरी ही लीला है। सबके नेत्रों के रूप में प्रकट होकर मैं ही सब कुछ देखता हूँ। समस्त देवताओं का शरीर मेरे द्वारा बना है। पाँच घटिका-पर्यन्त अग्नि धारणा सिद्ध होने से कालचक्र का भय नहीं रह जाता। इस धारणा में रुद्र का चिन्तन इस प्रकार किया जाता है- रुद्र भगवान् मध्यान्हकालीन सूर्य के समान प्रखर-तेजस्वी हैं, आँखें तीन हैं। सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाये हुए हैं, प्रसन्नता से वर देने को उत्सुक हैं।

वायु धारणा इस प्रकार की जाती है- हृदय से लेकर भौहों के बीच तक वायुमण्डल है। इसका वर्ण अन्जन पुन्ज के समान काला है। यह अमूर्त तत्त्वशक्ति रूप है, इसका बीज है 'यं'। इसके अधिष्ठाता देवता हैं ईश्वर। प्राणों को स्थिर करके हृदय में इसका चिन्तन करना चाहिए। इसकी भावना जब पाँच घटिक तक होने लगती है, तब ऐसा अनुभव होता है कि मैं वायु हूँ। अग्नि मेरा ही एक विकास है। इस अनन्त आकाश में सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि को मैंने ही धारण कर रखा है। यदि मैं नहीं होता तो ये सब इस शून्य में निराधार कैसे टिक पाते? मेरी सत्ता ही इनकी सत्ता है। प्रत्येक वस्तु में जो आकर्षण-विकर्षण शक्ति है, वह मैं ही हूँ। ये ब्रह्माण्ड मण्डल मेरे क्रीड़ा-कन्दुक हैं, मैं गतिस्वरूप हूँ, सबकी गतियाँ मेरी कला हैं, समुद्र में मैं ही तरंगें उछालता हूँ। बड़े-बड़े वृक्षों को झकझोरकर मैं ही पुष्प वर्षा करता हूँ। सबका श्वासोच्छवास बनकर मैं ही सबको जीवन-दान कर रहा हूँ। मेरी गति अबाध है। शास्त्रों में कहा गया है कि यह वायु-धारणा सिद्ध होने पर साधक निर्द्वन्द्व भाव से आकाश में विचरण कर सकता है। जिस स्थान में वायु नहीं हो, वहाँ भी वह जीवित रह सकता है। वह न जल से गलता, न आग से जलता, न वायु से सूखता। बुढ़ापा और मौत उसका स्पर्श नहीं कर सकती।

आकाश की धारणा का प्रकार निम्नलिखित है- भौहों के बीच में मूर्धापर्यन्त आकाश मण्डल है। समुद्र के शुद्ध निर्मल जल के समान इसका वर्ण है। इसका बीज है 'हं'। इसके अधिष्ठाता देवता हैं आकाश स्वरूप भगवान सदाशिव। शुद्ध-स्फटिक के समान श्वेतवर्ण है, जटा पर चन्द्रमा है। पाँच मुख, दस हाथ और तीन आँखें हैं। हाथों में अपने अस्त्र-शस्त्र लिये हुए, दिव्य आभूषणों से आभूषित, वे समस्त कारणों का कारण, पार्वती के द्वारा आलिंगत, भगवान सदाशिव प्रसन्न होकर वरदान दे रहे हैं। प्राणों को स्थिर करके पाँच घटिक पर्यन्त धारणा करें। इसका अभ्यास करने से ऐसा अनुभव होता है कि मैं आकाश हूँ। मेरा स्वरूप अनन्त है, देश-काल मुझमें कल्पित है। मैं अनन्त हूँ, इसलिये मेरा कोई अंश नहीं हो सकता। मेरी सम्पूर्ण विशेषताएँ मन के द्वारा आरोपित हैं। मन ही मुझमें हृदयाकाश और बाह्याकाश की कल्पना करता है। मैं घन हूँ, एकरस हूँ। न मेरे भीतर कुछ है और न तो बाहर। मैं सन्मात्र हूँ। इस आकाश धारणा के सिद्ध होने पर मोक्ष का द्वार खुल जाता है, सारी सृष्टि मनोमय हो जाती है। सृष्टि और प्रलय का कोई अस्तित्त्व अथवा महत्त्व नहीं रह जाता। मृत्यु के वाच्यार्थ का अभाव हो जाने से केवल उसका लक्ष्यार्थ शेष रहता है, जो अपना स्वरूप है।

इन धारणाओं का साधारण क्रम यह है कि पहले पृथ्वी मण्डल का चिन्तन करके उसको जलमण्डल में विलीन कर दें, जल मण्डल को अग्नि मण्डल में, अग्नि मण्डल को वायु मण्डल में और वायु मण्डल को आकाश में। इस प्रकार क्रमश: कार्य को कारण में विलीन करते हुए सबको परम कारण सदाशिव में स्थापित करें और अन्तत: सदाशिव को आत्म स्वरूप, परमात्म स्वरूप जानकर उन्हीं के स्वरूप में स्थित हो जायें। इस विषय में अनुभवी

योगियों का ऐसा उपदेश है कि प्रत्येक मण्डल का चिन्तन करते समय प्रणव के द्वारा तीन-तीन प्राणायाम करके कार्य मण्डल को कारण मण्डल में हवन कर दे।

ब्रह्मवेत्ता परम योगी देव-वैद्य अश्विनी कुमारों ने कहा है कि सबके शरीर पंचभौतिक हैं, इन शरीरों में तीन तत्त्व हैं - वात, पित्त और कफ। पंचभूतों की इस धारणा से ये तीनों तत्त्व शुद्ध हो जाते हैं। अग्निधारणा से वातज दोष, पृथ्वी और जल धारणा से श्लेष्मज दोष निवृत्त हो जाते हैं। वायु धारणा से पित्तज और श्लेष्मज दोष नष्ट हो जाते हैं। आकाश धारणा से त्रिदोषजनित सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं।

पंचभूतों की इस धारणा से कैसे-कैसे विचित्र अनुभव होते हैं, इसका बड़ा सरस वर्णन योगवाशिष्ठान्तर्गत निर्वाण प्रकरण के उत्तरार्द्ध में अट्ठासिवें से बानवे सर्ग तक हुआ है। साधकों को वहीं उसका अनुशीलन करना चाहिए। इस धारणा से यह अनुभूति तो बहुत ही शीघ्र होने लगता है कि यह स्थूल प्रपंच व मनोमय है। आगे चलकर मन की चिन्मयता का अनुभव होता है और यही जड़ स्फूर्ति और जड़त्त्व वासना से शून्य अन्त:करण की शुद्धि है। जब इस शुद्ध अन्त:करण में तत्त्व को स्वीकार करने की योग्यता आ जाती है, तब उस विशुद्ध एकरस तत्त्व का बोध होता है। यह बोध ही समस्त साधनों का चरम और परम फल है।

**पंचाग्नि विद्या**

उपनिषदों की अनेक विद्याओं में से एक का नाम है 'पंचाग्नि विद्या'। यह पुनर्जन्म का सिद्धांत बताने वाली विद्या है। मुत्यु के अनन्तर किसका जन्म होता है और किसका नहीं, और जिनका होता है उनका किस प्रकार होता है? इन बातों का समावेश इस विद्या में है।

स्थूल शरीर को त्यागने पर जीव सूक्ष्म शरीर के साथ ही साथ स्थानान्तर हो जाता है और फिर एक निर्दिष्ट क्रम से वापस आता हुआ जन्मान्तर में स्थूल शरीर को पाता है। उपनिषद् में इस तत्त्व को निम्न प्रकार से समझाया है- अग्नि में किसी वस्तु की आहुति डालने पर उस वस्तु का रूपान्तर में परिवर्तित होकर हवा में उड़ जाना, हम सभी के अनुभव में आया है। तोलाभर घी अग्नि में डालने से वह सुगन्धमय धूप के रूप में बदलकर वायु में मिल जाता है। घी और उसका उत्तरकालीन परिवर्तित रूप तत्त्वदृष्टि से एक ही वस्तु है। रासायनिक विश्लेषण की प्रक्रिया के ही कारण घी में इतना परिवर्तन हो जाता है और इस परिवर्तन का कारण अग्नि है।

इस प्रत्यक्ष दृष्टान्त की सहायता को लेते हुए ऋषियों ने बतलाया है कि किस प्रकार एक देह को छोड़ने से दूसरे देह को ग्रहण करने तक जीव का शरीर अनेक रासायनिक परिवर्तनों को प्राप्त करता है।

मृत जीव का सूक्ष्म भूतमय शरीर श्रद्धा कहा जाता है और 'अप' भी कहलाता है, क्योंकि उस समय उसमें जल तत्त्व की प्रधानता रहती है। इस श्रद्धा का संयोग होता है 'सोम' से और जहाँ यह संयोग होता है, उसको 'परलोक' कहते हैं। यह प्रथम रासायनिक परिर्वतन भूमि से ऊर्ध्व प्रदेश में- अन्तरिक्ष में होता है, अतएव इसे परलोक कहते हैं। परलोक रूपी प्रथम अग्नि में 'श्रद्धा' की आहुति से इस प्रकार 'सोम' होता है। यही 'सोमरस' पर्जन्यरूपी अग्नि में पड़कर 'वर्षा' रूप में परिवर्तित होता है। अतएव पर्जन्य द्वितीय अग्नि है। तद्नन्तर वर्षा का जल अन्न रूप में परिवर्तित होता है और पृथ्वी में इस प्रकार के परिवर्तन होने के कारण पृथ्वी को तृतीय अग्नि कहा जाता है। यह अन्न फिर वीर्यरूप में परिवर्तित होता है और पुरुष शरीर में इस परिवर्तन के होने के कारण पुरुष को चतुर्थ अग्नि कहा जाता है। अन्त में वीर्य ही गर्भ रूप में परिवर्तित होता है और पत्नी में इस परिवर्तन के होने के कारण पंचम अग्नि कहलाती है।

इस प्रकार पाँच अग्नियों में होता हुआ 'श्रद्धा' नामक द्रव्य 'गर्भ' रूप में आता है। गर्भ वीर्य अन्न से, अन्न वर्षा से, वर्षा सोम से और सोम श्रद्धा से होता है। श्रद्धा से लेकर गर्भ तक पाँच दशाएँ बतायी गई हैं। जीव अन्त:करण सहित ही इन पाँचों दशाओं में रहता है। जिस प्रकार गर्भाशय में स्थित रजोवीर्य से उत्पन्न शरीर में जीव और उसके सूक्ष्म शरीर का सम्पर्क रहता है, उसी प्रकार वीर्य में, अन्न में, वर्षा में और सोम में भी जीव के साथ अन्त:करण का सम्पर्क रहता है।

प्रथम देह त्याग के अनन्तर की अवस्था को श्रद्धा कहा गया है। यह वह स्थिति है, जिसमें जीव की अग्रिम यात्रा का निश्चय होता है- *'यो चरूछद्ध: स एव स:'*। जन्मभर सत्कर्मों के अनुष्ठान से मरणानन्तर भी शुभ श्रद्धा ही रहती है और दुष्कर्मों के आचरण से

दुष्ट श्रद्धा रहती है। अग्रिम जन्म का निर्णय हो जाने पर जीव अपने अन्त:करण के साथ ही साथ सोमावस्था, जलावस्था, अन्नावस्था, वीर्यावस्था और गर्भावस्था के स्थूल पंचभूतों में निवास करता है और अन्तिम अवस्था से ही भूमि पर जन्म लेता है। जन्मानन्तर सूक्ष्म शरीर संयुक्त जीव से अधिष्ठित स्थूल शरीर में ही बाल्य, यौवन और जरा का परिणाम होता है। इस प्रकार श्रद्धा और कर्मानुसार जीव संसार में आवागमन का चक्कर काटता रहता है और चौरासी लाख योनियों में घूमता-फिरता सुख-दु:ख मोह दशाओं में रमता रहता है।

जन्म-मरण के चक्र को पितृयान भी कहा जाता है और कृष्ण-गति भी। अज्ञान का रंग काला माना गया है। अतएव अज्ञान से होने वाले जन्म-मरण को कृष्ण गति कहते हैं। इसके विपरीत ज्ञान का वर्ण शुक्ल माना गया है और इसलिए ज्ञान से होने वाली मुक्ति की दशाओं को शुक्ल गति कहते हैं। शुक्ल गति में अन्त:करण व सूक्ष्मशरीर भी हट जाता है। तब आत्मा अपने विशुद्ध रूप में निवास करता हुआ चिदानन्द का उपभोग करता है।

मृत्यु उपरांत किये जाने वाले संस्कार -

*राम घरै सोई जाने इक दिन, राम घरै सोई जाने।*
*लीप-पोतकें भौं में पारे, घर के लोग डराने।*
*एक तो टटिया टाट करत हैं, एक तो लेत उमाने।*
*चार जनें मिल डुलिया सजाई, लैके मरघट जानें।*
*जार-बार कें खाक जो कर दई, औघट घाट नहाने।*
*कहें कबीर सुनो भाई साधू, राम घरै सोई जाने।।*

उक्त गीत में मृत्यु उपरांत किये जाने वाले संस्कारों की विवेचना है तथा भगवत भक्ति को प्राथमिकता दी गई है।

मृतक को मृत्यु के समय भूमि पर लिटा दिया जाता है। स्थानीय भाषा में जिसे भोंसरन कहते हैं। उसके पश्चात् गंगाजल, तुलसीदल उसके मुँह में डाला जाता है। उसके हाथ से अन्न-दान, गौ-दान कराया जाता है। अगर समय है तो गीतापाठ भी सुनाया जाता है। उस समय समस्त परिजन एकत्रित होते हैं। अगले दिन या जिस दिन मृतक की अंत्येष्टि करनी होती है, उसे स्नान करवाकर स्वच्छ वस्त्र या नये वस्त्र पहनाये जाते हैं। माथे पर तिलक आदि लगाते हैं। इसी समय अंत्येष्टि की तैयारियाँ होने लगती हैं। घर के बाहर कंडे से आग जला दी जाती है। घर आये हुए लोग मृतक की अर्थी बनाते हैं। अर्थी पर शव लिटा देते है, ऊपर से कफन डाला जाता है। कफन को पचरंगे धागे और रस्सी से अर्थी पर बाँधते हैं। मृतक के गले में फूल मालाएँ, गुलाल आदि डाला जाता है। फिर मृतक के परिजन, पुरुष-स्त्रियाँ उसके अंतिम दर्शन को आते हैं और मृतक को प्रणाम करते हैं। श्मशान के समीप ही अर्थी को एक जगह रखकर पिंडदान किया जाता है। पिंडदान लड़के के द्वारा करवाया जाता है। वही दाह क्रिया तथा मृतक के समस्त संस्कार करता है। अगर पुत्र न हो तो मृतक का भाई अथवा भतीजा संस्कार करवाते हैं।

गरुड़ पुराण में तो इतना तक बतलाया गया है कि जिसका कोई भी रिश्तेदार न हो तो उसका कोई भी परिचित/मित्र इस कार्य को सम्पन्न करा सकता है।

श्मशान पहुँचकर जहाँ मृतक को जलाना होता है, उसके समीप ही अर्थी रख दी जाती है। अग्नि वाले घड़े को पास ही फोड़ दिया जाता है। जिस स्थान पर दाह संस्कार करना होता है, उसकी पहले सफाई की जाती है। तदुपरांत उस स्थान को गाय के गोबर से लीपकर उस पर लकड़ियाँ जमा दी जाती हैं। लगभग आधे से अधिक लकड़ी नीचे रखकर उन पर मृतक को रखा जाता है। यहाँ भी पिंडदान कराया जाता है। दाह संस्कार करने वाले को मुण्डन करवाना होता है। मुण्डन के उपरांत उसको स्नान करवाकर मृतक को अग्नि दी जाती है। अग्नि देने के पूर्व जवा, तिल, घी मिश्रित हवन सामग्री से पंडित पुत्र द्वारा हवन करवाता है। वही अग्नि चिता में लग जाती है और चिता जलने लगती है। उसके बाद जिसने मुखाग्नि दी होती है, वह व्यक्ति अपने कंधे पर जल से भरा हुआ मिट्टी का घट रखकर चिता की परिक्रमा लगाता है। परिक्रमा के पूर्व उस घट में छेद कर दिया जाता है, इससे घड़े से पानी गिरता जाता है और तीन परिक्रमा की जाती हैं। तीसरी परिक्रमा पश्चात् उस घड़े को एक पत्थर पर फोड़ दिया जाता है, वह पत्थर 'प्रेतशिला' के नाम से जानी जाती है। यह प्रेतशिला अस्थियों/फूलों के साथ गंगाजी/नर्मदाजी में विसर्जित कर दी जाती है।

जल से भरे हुए घट की परिक्रमा के विषय में प्रो. पं. सुरेश आचार्य जी का कहना है कि हमारा शरीर पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है और मृत्यु हो जाने पर वे पाँच तत्त्व उन्हीं तत्त्वों में विलीन हो

जाते हैं, जिनसे बना था। घट भी पाँच तत्त्वों से बना है- मिट्टी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि। घट मिट्टी का है, उसे अग्नि में पकाकर बनाया जाता है। उसमें जल भरा है, आकाश के नीचे तथा वायु भी होती है। तो वह घट पंचतत्त्वों से मिलकर बना है। इन पाँच तत्त्वों के अलावा शरीर में रजोगुण, सतोगुण एवं तमोगुण होते हैं। रजोगुण अर्थात् ब्रह्मा, सतोगुण अर्थात् विष्णु एवं तमोगुण अर्थात् शिव। इन त्रिदेवों के अंश भी शरीर में समाहित हैं। जल से भरे घट की तीन परिक्रमा का आशय उन तीन देवों को उनके अंश लौटाने से होता है। यानि पाँच तत्त्व, पाँच तत्त्वों में विलीन हो गये और तीन गुण हमने त्रिदेवों को लौटा दिये। इस कारण ही तीन परिक्रमा होती है। ठीक से अग्नि लग जाने पर मृतक की कपाल क्रिया कराई जाती है। लगभग आधे से अधिक शव के जल जाने पर मृतक की कपाल क्रिया की जाती है। कपाल क्रिया करना अर्थात् ब्रह्मरंध्र को लकड़ी के प्रहार से तोड़ना, इसे कपाल क्रिया कहते हैं। यह क्रिया अग्नि देने वाले के द्वारा की जाती है। एक लम्बे बाँस के सिरे पर घृत से भरा एक लोटा, पान के पत्ते सहित बाँधे जाते हैं। उसके बाद पुत्र उस घी को जलती हुई चिता पर डालता है, तत्पश्चात् उसी बाँस से मृतक के सिर पर तीन बार आघात किया जाता है। आशय यह होता है कि इस क्रिया से खोपड़ी की हड्डी टूट जाये। वरन् जलते समय वह विस्फोट के साथ फूट जाती है। कपाल क्रिया के पश्चात् शवयात्रा में आने वाले मृतक को पंचलकड़ी देते हैं। पंच लकड़ी में चंदन की लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े अथवा सूखी तुलसी की लकड़ियाँ चिता में डाली जाती हैं, फिर शवयात्रा में आये लोग मृतक की चिता की परिक्रमा करते हैं। पंच लकड़ी देने के बाद मृतक आत्मा को श्रद्धांजलि देने के पश्चात् श्मशान से लौटकर शवयात्रा में शामिल लोग अगर पास में कोई जलाशय हुआ तो वहाँ स्नान करते हैं, अन्यथा अपने-अपने घर के बाहर स्नान कर गृह प्रवेश करते हैं।

सामान्यत: तीसरे दिन अस्थि संचय हेतु लोग उस स्थान पर जाते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में पंडित की सलाह से कार्यक्रम करते हैं। अस्थि संचय में भी स्थानीय कर्मकाण्ड होते हैं, जिन्हें करने के उपरांत अस्थि/फूल एवं खारी अलग-अलग संचय करके उन्हें पवित्र नदियों - नर्मदा जी, गंगा जी में विसर्जित की जाती है। अस्थि विसर्जन में पिण्डदान, गौदान, शैय्यादान होता है। उक्त समस्त संस्कार अग्नि देने वाले पुत्र/व्यक्ति द्वारा ही सम्पादित कराये जाते हैं। दस दिन में दशगात्र तथा तेरह दिन में त्रयोदशी, ब्राह्मण भोज, गंगाजली पूजन आदि किया जाता है। छ: मास के पश्चात् छै:मासी तथा एक वर्ष पर्यन्त बरसी होती है।

पितृपक्ष में पुत्र द्वारा 15 दिन तक मृतक को पानी देने का विधान है। मृत्यु की तिथि में श्राद्ध किया जाता है। मृतक के तीसरे वर्ष या पाँचवें वर्ष सपिण्डीकरण श्राद्ध होता है। वह श्राद्ध गयाजी में किया जाता है। पूरे वर्ष में पड़ने वाले प्रमुख त्योहारों को अनरये के त्योहार कहते हैं। इन अवसरों पर अर्थात् त्योहार पर मृतक के रिश्ते-नातेदार आते हैं, इनके साथ ही स्वजन भी संवेदना व्यक्त करने आते हैं।

मृत्यु संस्कारों की प्रासंगिकता के विषय में यह कहा जा सकता है कि जब तक मानव इस पृथ्वी पर रहेगा, तब तक ये संस्कार शाश्वत रहेंगे। इसका कारण यह है कि संस्कार हमारे जीवन में ऐसे घुल-मिल गये हैं कि भले ही इन पर आधुनिकता का कितना ही प्रभाव क्यों न पड़े, लेकिन फिर भी ये सम्पादित होते रहेंगे। ये संस्कार पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं और पुरानी पीढ़ी से नयी पीढ़ी इन्हें ग्रहण करती है। यह प्रक्रिया पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है और चलती रहेगी।

---

**संदर्भ**


1. मृत्यु के बाद : एक शास्त्रीय दृष्टि, पं. जनार्दन मिश्र, कल्याण अंक 6, गीताप्रेस गोरखपुर 1962
2. गरुड़ पुराण - सारोद्धार
3. संस्कार गीत : सं.डॉ. कपिल तिवारी, म.प्र. आदिवासी लोककला परिषद्, भोपाल
4. श्री रमेश रावत के निजी संकलन से।
5. श्रीमद्भागवत, 22/38
6. बसंत, सं. डॉ. बी.एस. परमार, जिला सहकारी संघ मुद्रणालय, छतरपुर,
7. कठोपनिषद्, 2/2/7
8. संस्कार साधना : डा. राजबली पाण्डेय, कल्याण अंक 01, गीताप्रेस गोरखपुर
9. मनुस्मृति
10. पंचभूतों की धारणा - कल्याण अंक 01, 1997, गीताप्रेस, गोरखपुर
11. लोक में कबीर - सं. डॉ. कपिल तिवारी, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल

# मृत्यु पूर्व मंगल-मरण की दर्शना

डॉ. महेन्द्र भानावत

किसी भी जीवधारी के लिए जन्म और मृत्यु दो छोर हैं। इनमें जन्म पर कोई बवाल नहीं, पर मृत्यु को लेकर कई तरह की मान्यताएँ-धारणाएँ और सिद्धांत हैं। इस पर कोई एकमत नहीं है, बल्कि गूढ़ चिंतन तथा सोच-विचार के बाद भी इसके रहस्यतल तक कोई नहीं पहुँच पाया। सच ही है, मृत्यु के बाद जीव की क्या दशा-दिशा और गति-मति होती है, इसे कोई नहीं जान पाया। ज्ञानियों, गुणीजनों ने अपने-अपने ढंग-रंग से मृत्यु को व्याख्यायित किया, लेकिन पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का विश्वासी लोकमन कर्मानुसार फल भोगने की आत्मचेतना को महत्त्व देकर वर्तमान जीवन में अच्छे कार्य करने को महत्त्व दिये रहते हैं और उस आधार पर यह मान्यता रखते हैं कि उनका अगला जन्म भी सफल, सार्थक तथा सद्गति लिए हो। इस दृष्टि से जैन लोक अधिक सक्रिय तथा सचेत लगता है।

कई लोग जीतेजी सुकृत्य नहीं कर पाते हैं, किंतु अंतिम अवस्था में, मरणासन्न स्थिति में अपने को बदलते हुए अच्छी भावना वाले बन जाते हैं। परमशक्ति परमात्मा में विश्वासी हो जाते हैं। अपने द्वारा जो कुछ दुष्कर्म हुए हों, उनकी चिंतना कर पापकर्म का प्रायश्चित करते मिलते हैं और निर्मल भावों से, समता दृष्टि रखते हुए मृत्यु का वरण करते हैं। मृत्यु पूर्व ऐसे मंगल मरण की कामना व्यक्ति स्वयं तो करता ही है, मगर अन्य परिजन भी उसकी मंगल-मृत्यु के लिए नाना प्रकार के धर्माचरणीय कर्म करने का निर्वाह करते हैं। ऐसी स्थिति में जीवन की अंतिम करवट लिए व्यक्ति को कई प्रकार के गीत, भजन, तवन, थोकड़े, ढालें, चिंतारणियें, चौक, कथा-कथन, वचन, ब्यावले, तुकें आदि सुनाई जाती हैं, ताकि उसका मन सांसारिकता से विरक्त हो आत्म-कल्याणक विचार-बोध में रमण कर सके। इन श्रवणों में बैरी बुढ़ापे को खूब कोसा जाता है और जीवन में किये गये दुष्कर्मों की चिन्ता की जाती है। गलतियों पर गाली एवं धिक्कार खाकर शुद्ध भावों का वरण कर सके। रत्न, चिंतामणि तथा हेम से मूल्यवान जीवन की करणी पर आत्मालोचन करते हुए

अब और अधिक जीवित नहीं रहकर शीघ्र ही सुगति एवं परमपद पाने की वांछा कर सके।

इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर कई बार मरणासन्न व्यक्ति को संथारा तक करा दिया जाता है। इस अवसर के गीत संथारा गीत कहे जाते हैं, जो समूह रूप में गाकर सुनाये जाते हैं। संथारा उन्हीं को दिया-दिलाया जाता है, जो मृत्यु के अति निकट पहुँचने लगते हैं। इसमें अन्न, जल, दवाई आदि सबका परित्याग किया जाता है। ऐसे संथारा लिए व्यक्ति की मौत अच्छी मौत कही जाती है, जो भाग्यशालियों को ही नसीब होती है। संथारा साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं को ही नहीं, गृह-पशुओं तक को असाध्य बीमारी की मरणासन्न स्थिति में पछखाया जाता है।

एक तवन में कहा गया है- बचपन को हँसी- खेल में समाप्त कर दिया। भर यौवन में खूब रंगरेलियाँ-ठाठाठेलियाँ कीं, पर अब बुढ़ापे में तो रह-रहकर जरा सताने लग गया है। कमर करड़ी पड़ गई है। सुध-बुध पर ताला पड़ गया है। जीवन डगमग झोले खा रहा है। न कोई साल-सम्हाल करने वाला है, न कोई पल दो पल की सहानुभूति देने वाला है। भाँति-भाँति के पकवान खाने की उमंग उठती है। नमकीन चाट खाने को जिव्हा लपलपाती है, मगर दाँत जवाब दे रहे हैं। घर वाले उलाहना दे मृत्यु के मुँह में धकेलना चाह रहे हैं। परणी का प्रेम भी छूट गया है, लेकिन विधाता की विडम्बना देखो कि मौत माँगे नहीं मिल रही है। ऐसे बैरी बने बुढ़ापे से किस तरह छुटकारा पाया जाय-

*बुढ़ापा बैरी किसवद होसी थारो छूटको।*
*बाळपणो हँस खेल गंवायो, तरियो जोवन बच में*
*बुढ़ापा में जरा सतावे,खातो पीतो तरसै रे, बुढ़ापा...*
*गोड़े हाथां देकर उठे, कमर कीधी करड़ी*
*डाग महळ में डगमग चालै, सुधबुध सारी खोई रे, बुढ़ापा...*
*बाळपणै तो लाडू जीम्या, भर जीवन में सेवां*
*बुढ़ापा में सांसा पड़ग्या, राबड़िया रा मेवा रे, बुढ़ापा...*
*घरसूं रोटी करड़ी आवै, नरम खीचड़ी भावै*
*दांता सूं तो चबीव न जावै, दिल में गैरी आवै रे, बुढ़ापा...*
*बउवां छोड्या काण कायदा, कद मरसी यो डाकी*
*खाई सकांनी पैरी सकांनी, हीड़ो कर-कर थाकी रे, बुढ़ापा...*
*घर को खरचो दोरो लागै, छोरा नै परणावां*
*थानें भावै माल-मसाला, म्ही कई मांगी खावां रे, बुढ़ापा...*

ऐसा ही एक भजन मैंने पहली बार सन् 1958 में उदयपुर के बेदला गाँव में आयोजित लोक-कलाकारों के प्रशिक्षण शिविर में सुना था। उसके बाद तो कई भजन-मण्डलियों में यह गीत बड़ा लोकप्रिय है। धर्मस्थानों में भी इसकी बहुरंगी हवा देखने मिली। भजन है -

*थारी मोह माया ने त्याग क्रोध ने तज रे।*
*थारी उमर बीती जाय, हरि ने भज रे।।*
*थारी डगमग हालै नाड, धोळा ने लज रे।*
*थारी आंख्यां सूं दीसै नाहीं, कान गया लुळ रे।।*
*थारी परणी छोड्यो पेम, नहीं थारी अद रे।*
*थारे बेटा बोले बोल, मरेला कद रे।।*
*करम खोडला चेत, अबै भी पद रे।*
*थारो लेखो लेसी राम, मरेला जद रे।।*

मोह माया को छोड़। क्रोध को त्याग। उम्र बीती जा रही है। हरि का स्मरण कर ले। गर्दन हिल रही है। श्वेत बालों की लज्जा कर। आँखों से दिखता नहीं। कान लटक गये। प्रियतमा ने प्रेम करना छोड़ दिया। कोई अदब, इज्जत, आबरू नहीं रख रहा। पुत्र खोटे बोल कह रहे हैं। अब भी संभल, कुछ कर। मरेगा जब रामजी तेरा लेखा लेंगे, तब पछतायेगा।

पंथीड़ा गीत में मरणासन्न व्यक्ति को मृत्यु उपरांत की वस्तुस्थिति का ज्ञान करा सांसारिक पिंजड़बंदी से मुक्त होने की सीख दी गई है। यह ऐसी अवस्था होती है, जब व्यक्ति कुछ भी कर्म करने की सामर्थ्य नहीं रखता है, किंतु यदि उसने ठीक से सुन भी लिया, तब भी वह अपनी भाव शुद्धि तो कर ही सकता है-

*काच सूना म्हेलां ऊपर, सूतो खूंटी ताण रा*
*सान्या में थारे कोई न समझे, आण रोक्यो कंठ रा*
*म्हारा पंथीड़ा मत पड़ पिंजर, सेंसार मार्‌यो जाय जी।*
*धंधो करी ने धन्न जोड्यो, लाखां ऊपर क्रोड़ रा*
*मरती वेरां मानवी थारो, लियो कंदोरो तोड़ रा, म्हारा...*
*कोरो बिस्तर घरे लाया, थाणे लियो ओड़ाय रा*
*फूटी हांडी लारां लीधी, उठ चल्या लीलधार रा, म्हारा...*
*माता थारी सदाई झूरे बैन वार तेवार रा*
*घर की तिरिया नैन झूरै, कोई नी राखणहार रा, म्हारा...*

वह काँच जिसमें तू बार-बार अपना मुख-मंडल निहारा करता, सूना पड़ा है और तू खूंटी तान सो रहा है। तेरे इशारे को कोई नहीं समझ रहा है। बोलती बंद हो गयी है। मेरे पंथी! संसार-चक्र में मत पड़। बुरी तरह मारा जायेगा। जीवन भर धंधा कर-कर धन जोड़ा। लाखों-करोड़ों कमाये, लेकिन मरते समय तुम्हारी कमर का कंदोरा तक तोड़ दिया। कोरा बिस्तर घर लाया। ऊपर तुम्हें सुलाया। टूटी हंडिया साथ ली और तुम्हें विदाई दी। तुम्हारी माता सदैव रोती रही। बहिन वार-त्योहार रोई। गृह लक्ष्मी भी रोई, पर कोई भी तुम्हें रखने वाला नहीं।

यही नहीं, मृत्यु शैय्या पर पड़े व्यक्ति को गर्भ चिंतारणियाँ भी सुनाई जाती हैं। गर्भावस्था की याद में जो गीत-कथाख्यान प्रचलित हैं, उन्हे गर्भ चिंतारणियाँ कहते हैं। इनमें गर्भस्थ शिशु की चिंतना के साथ-साथ मनुष्य-जीवन को सहिष्णु और समतावान बनाने की सीख रहती है। ये गर्भवती महिलाओं को भी सुनाई जाती हैं, ताकि गर्भ में पल रहा शिशु जीवयोनि के स्वरूप, कर्मफल, सांसारिक मोह जाल, रोग-भोग तथा सुख-दु:ख का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर जन्म धारण करे और अपने जीवन को सार्थक करता हुआ मंगल मरण का वरण करे। इस दृष्टि से ये गर्भ चिंतारणियाँ जीवयोनि का गूढ़ दर्शन लिये होती हैं। मरणासन्न व्यक्ति को ये चिंतारणियाँ इसलिए सुनाई जाती हैं, ताकि वह अपने को सांसारिक मोह-ममता से मुक्त कर आनंद से देह त्याग कर आत्मलीन हो सके। गर्भ चिंतारणियों के विभिन्न रूप मिलते हैं। यथा-

*नर नारी रे मिल्या रे संजोग, भोग रया संसार्यां रा भोग।*
*गर्भवती ओ नारी ना रोवती।*
*भस्ट जो भाकर पेट जो माय, नीचा रे मस्तक ऊंचा जो पाय।*
*छाती समाण घोड़ा रया रे अपार।*
*नेत्र कने दोई मुखिया न जार, आई थूं उपन्यारे घर बे मुजार।*
*रूदय सुद राखी दंत ने आर।*
*थूं चेते उचेते मानवी।।*

× × ×

*छब जगां थूं उपन्यो रे जीव, जाजेरी दीदी नम्मा सस्तेरी नीम।*
*चामेचड़ी सूं चेंटीर्‌यो।*
*माता ने खुदिया ने बेटा ने मूक, जिस दिन मैं घणा भोगवती दुख।*
*सुभ आचारांग इम केवे।*
*सतखंड पेली समाई री जोत, सुई समाणी साड़े तीन से क्रोड़।*
*अगत वरण जुंई आकरी।*
*चांपे दियो रे थारो सगरो शरीर, भाख गया भगवंत म्हावीर।*
*थूं चेते उचेते मानवी।।*

× × ×

*रमणी तो रच्छी वेइरे संसार, बेटा ववु ने सोई परिवार।*
*अन्त थक्यो जाणे अवसरा।*
*कयो नु लोपे तोतै तणीकार, हुक्म घणा परचा लावतो।*
*दासी तो थारे ऊबी बे कर जोड़।*
*एके बुलावे ने दस आवे दोड़, परबलाओ पन्न परसाद सूं।*
*गेणा रा डाबा ने रतना री मंजु।*
*लाग रही थारे जगमग जोत, थूं चेते उचेते मानवी।*

× × ×

*कारा भमर थारे होताजी केस, जी दन करतो नवा नवा वेस।*
*सैल सपाटा करतो घणो।*
*चालतो नरखतो आपणी पाग, तीजे तमासे ने देखतो बाग।*
*मात पिता नहीं पूछतो।*
*देतो रे ताण मरोड़तो मूंछ, चावे तो बिडियां ने सूंघे तो फूल।*
*धरम बना थारे कई होसी।*
*थूं चेते उचेते मानवी।।*

× × ×

*रतना रा प्याला ने सोना री थाल, मूंग मिठाई ने चावल दाल*
*भोजन भली भली भांतरा।*
*गंगाजल पाणी दीदो छे ठार, वस्तु मंगावो ने तुरत तियार।*
*कमी ए नहीं कणी बात री।*
*बड़ा-बड़ा होता रे राणा ने राव, सेठ सेनापति ने उमराव।*
*खातर में नहीं राखता।*
*जी नर भोगन्ता सख भरपूर-देकंता-देकंता होई गया धूर।*
*देको रे गत संसार की।*
*थूं चेते उचेते मानवी।।*

× × ×

*पर नारी सूं लगावतो पीत, खोटा रे कर दिया सु सेरा नीत।*
*परणीयो दाय नु आवसी।*

*माटी तो थारी रेती रे टस्ट, काचे लपेटे थूं होई गयो भस्ट।*
*देखो रे गत संसार की।*
*परबारी जावे थारे पंचा में साक, दंडत फंडत काटे सी नाक।*
*लोका माई फटफट करे।*
*असी कणी थने दीदी रे सीक, भव भव माय थूं मांगसी भीक।*
*थूं चेते उचेते मानवी।।*

गर्भ चिंतारणियों में गर्भावस्था में पल रहे शिशु का वर्णन मिलता है। किस तरह माता के पेट में शिशु की दशा रहती है। वह उल्टे शरीर बामुश्किल पड़ा रहता है। ऐसी स्थिति में माता कितने कष्टों में रहती है। जन्म के बाद कार्य के अनुसार प्राप्त गति वाले में सुख या कि दु:ख भोगना पड़ता है। अच्छी गति में होने पर नौकर-चाकर, सेवक सेवा में बने रहते हैं। एक को बुलाने पर दस हाजिर रहते हैं। किसी चीज की कमी नहीं रहती है। हीरे-पन्ने, माणक-मोती से पूरा घर जगमगा रहता है। काले भ्रमर जैसे बाल और फिर नित नई-नई पोशाक धारण करने को मिलती है। चलते हुए अपने को निहारता चलता है। नखरेबाज इतना कि हर समय नया दिखने की कोशिश करता है। सीना तान चलता है। माता-पिता तक को कुछ नहीं समझता है। रत्नों के प्याले और स्वर्ण थाल में भाँति-भाँति का भोजन। गंगाजल पीने को लेकिन ऐसे राव-उमराव श्रेष्ठिजन तक की अवदशा जब आई तो धूल होते देखे गये। संसार की गति ही ऐसी है। पराई स्त्री से प्रेमाचार। पंचों के बीच घटती साख। अच्छे-अच्छों की नाक कटती देखी गई। हे जीव! ऐसी किसने सीख दी। आगे भव में ही तेरी ऐसी ही दुर्गति होती रहेगी। अत: सावधान रह। सोच-समझ और अच्छे कार्य कर। गर्भ चिंतारणियाँ छोटी और बड़ी दोनों रूपों में मिलती हैं। छोटी चिंतारणी का नमूना-

*गरभावास में ऊँदे मुख झूल्या नो म्हीनां तांई।*
*निसर वाने नीं जगां अब कांई करसां भाई।।*

गर्भवास में उल्टे मुँह झूला नौ महीने तक। बाहर निकलने की जगह नहीं। क्या करे भाई?

*म्हांणी करणी तो म्हां कीदी, खोटी कीदी कमाई।*
*भजो तो भगवान भजलो, ढील मत करजो भाई।।*

हमारा कर्म हमने किया। खोटी कमाई की। अब भगवान का भजन कर लो। शिथिलता मत करो।

*घणो दियाड़ो घटवा लागो, आऊको मोड़ो आयो।*
*मरती वेरां धरम करे जो, बैकुंठा ने पायो।।*

दिन जल्दी-जल्दी घटने लगे। मृत्यु नजदीक है। मरते समय धर्म करे तो बैकुंठ प्राप्त हो।

गर्भ चिंतारणियों के अलावा ऐसे थोकड़े भी प्रचलित हैं, जिनमें पापी जीवन को धिक्कारा जाता है। पापों का प्रायश्चित किया जाता है। आत्मालोचन कर मन की मलीनता दूर की जाती है। आत्म-निंदा और आत्म-भर्त्सना के खुले पृष्ठों पर जीवन को कसौटित किया जाता है। जिनवर की स्तुति में मन को केन्द्रित करने पर जोर दिया जाता है और बार-बार उसे आत्मचेतित किया जाता है।

इन थोकड़ों के अन्त में सारांश-रूप में सारभूत संकेत मिलता है और भूलों तथा पापों का प्रायश्चित किया जाता है। यथा- 'यो थाकड़ो कोई सुणे सामरे, सामरतां रो परायचित जावे। अगलो बोल पाछे क्यो वे। पाछो बोल आगे क्यो वे। काना मातर शुद्घ नी क्या वे, पाप दोष लागावे तो तस्स मच्छामि दुक्कडम्' अर्थात् यह थोकड़ा जो भी सुनता समझता है, उसका प्रायश्चित हो जाता है। अगला बोल पीछे हुआ हो या पिछला बोल आगे हुआ हो तथा बोलने में काना-मात्रा की अशुद्धि हुई हो तो जो पाप लगा हो उन सभी पापों का मैं प्रायश्चित करता हूँ।

यहाँ आत्मनिंदा के थोकड़े का आदि और अंत भाग दिया जा रहा है-

आदि भाग - ये आत्मा। ये चेतना। कोई साध्यो वे। कोई परत्यो वे। रस गिरदीपणा में खोटी- खोटी ध्रस्टी आणी वे तो दो घड़ी रे समै में असी चिंतावणा मत कर। तेवारे काम राग में। तेवारे संदे राग में। तेवारे मन-धन में। तेवारे वचन मन में। तेवारे काया सरण में। तेवारे मिथ्या ध्रस्टी में। तेवारे नील लेस्या। तेवारे कपोत लेस्या। तेवारे इरियावगाई। तेवारे रसगावगाई। तेवारे सातागावगाई। आठ करमा री एक सौ ने अडतालिस परकरति। अठसण थानक थारा जीवदोरा लागीर्‌या रे बापड़ा। शीलव्रत गांजो भांग तमाखु दाख रो तजारो, अतरी हरी लीलोती रा होगन लेईने भांगसी तो थारा जीव री गरज कठा सूँ सरसी रे बापड़ा।

ज्यूँ समुन्दर में हिलोरा उछरे छे ज्यूँ थारी तिस्णा रूपी किलोरां उछरे छे। अरे जीव थूं करणी तो करे छे पण सूना मन सूँ करे। धरप

मन सूँ करसी तो थारे लके लगा जी नीतर साई रूलेप समान होसी। अतरा जीवां ने वश करीने आवों म्हारा पारस पुत्तर। आवो म्हारा चवदे रतन। आवो म्हारा लवलु ध्यान। आवो म्हारा रसाण चतराई। आओ म्हारा रस रा घटका। आओ म्हारा अमरत रा कूंम्मा। अतरा जीवां ने वश करी ने सेठ-वइग्या। सेनापति वेइग्या। लाखनी वेइग्या। क्रोडम वेईग्या। राजा वेइग्या। मिस्तरी वेइग्या। परधान वेइग्या ने गमास्ता वेइग्या। भिन-भिन करी ने पुदगल्यां रो उपाव करीर्‌यो छै।

अन्त भाग - अरे चेतन माता री अग्या में चाल। समगत माती री अगग्या में चाल। मोख अखारा बीज ने बार। क्रोध, मान, माया, लोभ री चकरी ने पटरी पार। आकुल-विकल पणो थारे मटे नती। तरसणा रूपी गा थारे वधे नती। अन्न आरे। पन्न आरे। अरस आरे। वरस आरे। अन्न जीवा। वरस जीवा। करण संचे जोग। खमावंत ने वेरागवंत। रसवंती ने सरपवंती। सातारे ठकाणे ने असाता रे ठकाणे नती। पांचमी गति पावसी नती। कंचण तो प्राप्ति करे ने पाथर ने दूर करे। कंचण तो कबू न मिलसी ने पाथर थारी छाती पडसी या सम या समाई तो थारी नहीं छे रे नहीं छे। या समाई तो वांरी छे रे वांरी छे।

आनंदजी, कामजी, शंखजी, पोकरजी, चंदगुपतराजा, सुमनसेह, पुन्यानामा श्रावक, या समाई तो वांरी छे रे वांरी छे। थारी समाई तो या छे रे या छे। रोदर क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, देस जगजगारमान होईरयाछे। थारी समाई तो या छे ने या छे। नतनत नती सूँ। नती सूं के घंटा सूं। घंटा सूं के पंटा सूं। पंटा सूं के भवि सूं। भवि सूं के अभिवि सूं। ग्यान तो ग्यानी म्हाराज। सकारे तो ते ते। दरा रा डोटा। नंदी रा ढावा। साता रे ठकाणे। असाता रे ठकाणे नती।

इन थोकड़ों में आत्मा को सम्बोधित कर बार-बार यह चेतना दी जाती है कि मनुष्य संभले और सत्मार्ग तथा सत्संगत का अनुसरण करे। यही नहीं, बार-बार आत्मचिंतन के लिए प्रेरणा दी जाती है और गलत किये कार्यों के प्रति प्रायश्चित करने और क्षमा याचना करने की भावना भरी जाती है।

गलत कार्य करना ही नहीं, किसी से गलत वचन नहीं कहना और न मन से गलत कार्य करने की सोचना। यही नहीं, ऐसा कार्य करना ही नहीं और किसी अन्य से करवाना भी नहीं, न किसी करते हुए का अनुमोदन करना। इन सबमें उसे पाप-कर्म का भागी बनना पड़ता है।

पराई नारी के प्रति गलत भावना नहीं रखना। आचार-विचार को शुद्ध रखना। स्वस्थ तन, स्वस्थ मन रखना। सभी प्रकार के कुव्यसनों से दूर रहना। समुद्र की लहरों पर लहरें आयें, उस तरह की महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं पालना। अपनी सीमा में रहना। संयममय जीवन और अनुशासन की डोर में बंधकर जीवन यापन करना। क्रोध, मान, माया, लोभ से बचना। इस प्रकार जीवन व्यतीत करना, जिससे आत्मा परम प्रसन्न रहे। मन स्वस्थ रहे। इसका अभ्यास जीव को प्रारंभ से हो, तभी जाकर वह सुसंस्कारी बनेगा।

इसलिए बार-बार आत्मचेतना की ओर व्यक्ति का ध्यान केन्द्रित किया जाता है, ताकि वह शुद्ध बना रहे और सांसारिक ऊहापोह और गुत्थमगुत्थी से बचा रह सके।

चौकों में कर्म-फल का माहात्म्य बताने के साथ-साथ विषय-वासना, मोह-माया, जाल-व्याल से दूर रह स्वस्थ जीवन जीने की सीख एवं भलावण मिलती है। नमूने के लिए चौक के तीन उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं -

*करम नचावे ज्यूं ही नाचे, ऊँची होवण ने सब कस्ता।*
*नीची होवण ने कोइय न राजी, नन्द्या विरथा क्यूँ करता।।*
*चवदे पूरब चार ग्यान का, करमां से छूटा जो नाहीं।*
*ऊँचा चढ़के पड़े कीच में, ग्यानी वचन झूठा जो नाहीं।।*
*सोम चाख मोटो मद पीसे, ओगण पारका थूं क्यूँ जीवे।*
*थारा ओगण थने नहीं दीसे, अनेक ओगण है म्हारे रे आतमा।।*
*ग्यानी वचन पकड़ो रस्ता।।*

× × ×

*पंच पकार का काम भोग है, सेवे सेवाये सब कस्ता।*
*संबद वरण गंध रस फरस है, जैर खाय के क्यूँ मरता।।*
*आखिर यूँ डीकता लोगां की, करत आतमा भर करता।*
*कीनै सरावे कीनै बिसरावे, हरख-हरख आनन्द धरता।।*
*आम वंश ने बंबुर खावे, आम रस मुख किम पड़ता।*
*रोग शोक करो दारिदर, दु:ख में दु:ख पैदा करता।।*
*थारी म्हारी करतां दिण जावे, आमा रे सामा भाटा भिड़ावे।*
*सुख में दु:ख थूँ वेर गलावे, रस रो लोभी चटखा खावे।।*

*ज्यूँ दीपक में पड़े पतंग्या, चेतन दुरगत क्यूं पड़ता।।*

× × ×

*होत का थूं कांई सरावे, अणोत क्या बिसराता है।*
*पुन्न पाप तो बांध्या जीव ने, जैसा ही फल पाता है।।*
*किन्हे माया दीधी भोगवने, कोई रखवारी करता।*
*जस अपजस तो बांध्या जीव ने, जैसा ही कारज सरता।।*
*पाप अठारे सेंधा जीव ने, इण में सबही फसता है।*
*स्वादवाद रस काम भोग में, कूंचा पूना का करता है।।*
*आक थोर और तुमाली मोरी, पाप करम कड़वा लगता।।*

इन चौकों में कर्म के प्रति व्यक्ति का अधिक ध्यान केन्द्रित हुआ रहता है। नर को अच्छा-बुरा बनाने वाले उसके कार्य हैं। यदि वह अच्छे कर्म करेगा तो अच्छा बना रहेगा। इसलिए मनुष्य कार्यों का दास न बने। यदि वह कर्म का दास बन गया तो कर्म उसे बुरी तरह घेर लेंगे और नाना प्रकार से उसे नचाते रहेंगे। कर्म के वशीभूत हो जाने पर व्यक्ति बेबस हो जाता है, फिर उसी के अंधानुकरण में फँसा रहता है और अपना जीवन बर्बाद कर देता है। इसलिए व्यक्ति कर्मों के कुचक्र में न फँसे और न उसका दास बने अन्यथा उसका यह जीवन तो व्यर्थ होगा ही, अगला जीवन भी भटकन भरा रहेगा।

सच है, जीवन की रेख सीधी और सपाट नहीं है, बड़ी विकट और घुमावदार है। किन्तु जीवन तो जीना ही है, इसलिए यह जानते हुए भी कि कई बड़ी चुनौतियाँ हैं, संघर्ष चारों ओर कंटीली बाड़ की तरह घेरे हैं। बावजूद इनके मनुष्य अपने जीवन को कैसे सहज और सरल ढंग से जीये, ताकि मरते वक्त भी वह शांति प्रिय बना रहे और उसकी आत्मा किन्ही उलझनों में न उलझते हुई परम शांति को वरण करे। यह ठीक ही कहा है- जीवन तो एक विकट मोड़ है।

(1)
*चलते चलिये धीरे-धीरे, जैसे नदिया कलकल नीरे।।*
*सभी ओर आपाधापी है, पाप घृणा कुंठा व्यापी है।।*
*समझ नहीं कैसे समझाऊं, बाहर के अन्तर में जाऊं।।*
*मन ही मन में लगी होड़ है, जीवन तो एक विकट मोड़ है।।*

(2)
*तुम कहते कूका मैं काकू, पानी से डरते तैराकू।*
*सारी जांच शरीर स्वस्थ है, फिर क्यों कोई रोग ग्रस्त है।।*
*पंक और पंकज लड़ते हैं, अनघड़ को ही सब घड़ते हैं।*
*किसकी कितनी जोड़-तोड़ है, जीवन तो एक विकट मोड़ है।।*

जैन ग्रंथों में मृत्यु को लेकर बड़ा विशद वर्णन मिलता है। मृत्यु का सामान्य अर्थ देह मुक्त होना है। जिसको अपने जीवन के प्रति आसक्ति है, जो विषय भोगों में लिप्त रहता है, मृत्यु से डरता है अथवा मरना ही नहीं चाहता, लेकिन उसकी चाह चलती नहीं और मरने को मजबूर होना पड़ता है। दूसरी ओर जो मृत्यु को हँसी-खुशी वरण करता है, मृत्यु से भयभीत नहीं रहता है और जीवन के प्रति आसक्ति भी नहीं होती। अत: मोटे रूप में मृत्यु के दो भेद- अकाल मृत्यु और सकाल मृत्यु होते हैं। अकाल मृत्यु अज्ञानी, अबोध और नासमझों की होती है। विवेकवान और ज्ञानी सकाल मृत्यु स्वीकारते हैं। अकाल मृत्यु को बाल मरण और सकाल को पंडित मरण भी कहा है।

स्थानांग सूत्र में मृत्यु के अप्रशस्त और प्रशस्त नामक दो भेदों का उल्लेख करते हुए अप्रशस्त मरण के सत्रह भेद बताये हैं, जबकि भगवती आराधना में सत्रह भेदों का उल्लेख मिलता है।

संथारा सावचेत जीवन की अंतिम परिणति है। मृत्यु प्राप्त करने का कठोर व्रत याकि तप- किंवा साधनामूलक विशिष्ट अनुष्ठान है। इसके भिन्न-विभिन्न नामों में संलेखना, समाधि-मरण, संन्यास-मरण, उद्युक्त-मरण, सकाम-मरण, पंडित-मरण जैसे नाम हैं। उत्तमार्थ, अन्तक्रिया जैसे नाम भी मिलते हैं। संथारे का शाब्दिक अर्थ शय्या से है। इसमें जीवन-शय्या से मुक्त हो मृत्यु-शय्या का वरण करना होता है। संथारा समभावपूर्वक विवेक रीति से देह का विसर्जन करना है। मोटे रूप में ये कारण बनते हैं-

(अ) अकाल, महामारी, दुर्भिक्ष आदि की चपेट में आना
(ब) बुढ़ापे से बुरी कदर जीवनयापन से तंग होना
(स) असाध्य बीमारी के रहते कष्टप्रद जीवन से मुक्ति प्राप्त करना
(द) प्राणघातक बीमारी से आक्रांत होना
(य) आपातकालीन संकट से बचने की उम्मीद नहीं रखना

संल्लेखना दो शब्दों से बना है - सम तथा लेखना। सम से तात्पर्य सम्यक् प्रकार से और लेखना का अर्थ कृश करना अर्थात् समुचित रीति से काया को कषाय से क्षीण कर निर्मल बनाना है। इसमें राग-द्वेषादि से ऊपर उठकर सर्व प्रकारेण शरीर तथा मन की शुद्धि द्वारा मृत्यु का वरण करना होता है। किसी घटना से आहत होकर या किसी के दबाव में आकर अथवा इस जन्म या अगले जन्म को सार्थक कर पुण्यार्जन याकि सुगति प्राप्त करने की स्वहित भावना लिये संथारा नहीं किया जाता है।

संथारा का संस्तारक के शाब्दिक अर्थ से विचार किया जाये तो इसका तात्पर्य शय्या से है। इसमें जीवनयापन के अंतिम पड़ाव में जीवन-शय्या त्यागकर मृत्यु-शय्या का वरण करना होता है। इस समय आहार आदि का त्याग कर समभाव में मृत्यु के आगमन की प्रतीक्षा रहती है। संस्तारक का एक अर्थ बिछावन भी है। इसमें व्यक्ति तृण अथवा काष्ठ पर शरीरांत करता है। इसके अलावा केवल भूमि पर भी व्यक्ति जीवनान्त करता है। शय्या अथवा बिछावन व्यक्ति की चाह अथवा रहन क्षमता पर निर्भर करता है।

जैन आगमों तथा अन्यान्य ग्रंथों में संलेखना के प्रकार और प्रक्रिया विविध रूपों में वर्णित है। संलेखना के तीन प्रकारों में जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट संलेखना क्रमशः छः माह, एक वर्ष एवं बारह वर्ष की होती है।

रत्न कण्डक श्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र का यह कथन उल्लेखनीय है- संलेखना व्रत ग्रहण करने से पूर्व साधक को विचारों की शुद्धि के लिए सांसारिक सम्बन्धों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिए। यदि किसी के प्रति द्वेष भावना हो तो क्षमा याचना करनी चाहिए। मानसिक शांति के लिए सबसे पहले गुरु के सामने निःशल्य होकर आलोचना करनी चाहिए। तन, मन एवं वचन से जो पाप किये हों, करवाए हों अथवा प्रेरणा दी हो तो उसकी आलोचना कर हृदय को शुद्ध बनाना चाहिए। गुरु के अभाव में अपने से बड़ों या जंगल में वृक्ष के नीचे दोषों को प्रकट करना चाहिए एवं पंच परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए। (गाथा 5-3-7)

संथारा अथवा समाधिमरण जीवनेच्छा नहीं है, किन्तु मरणाकांक्षा भी नहीं है। यह आत्म हत्या भी नहीं है। संथारे के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए डॉ. सुरेश सिसोदिया ने यह ठीक ही लिखा- व्यक्ति आत्म हत्या या तो क्रोध के वशीभूत होकर करता है या फिर सम्मान या हितों को गहरी चोट पहुँचने पर अथवा जीवन से निराश हो जाने पर करता है। ये सभी चित्त की सांवेगिक अवस्थाएँ हैं, जबकि समाधि-मरण चित्त की समत्व की अवस्था है। फिर आत्म-हत्या या आत्म-बलिदान में मृत्यु को निमंत्रण दिया जाता है। इसमें व्यक्ति के अन्तस में मरने की इच्छा छिपी हुई होती है, जबकि समाधि-मरण में मरणाकांक्षा का अभाव ही अपेक्षित है। इसमें साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं मृत्यु की आकांक्षा से रहित होकर आत्म-मरण करता हूँ- कांल अकंखमाणं विहरामि।[1]

यों आत्मा को अजर-अमर कहा गया है। वह न जन्मती है न मरती है। यह तो शरीर है, जिसका जन्म होता है। अतः उसकी मृत्यु भी अवश्यंभावी है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो संथारा आत्मा द्वारा शरीर से विलग होने की प्रक्रिया मात्र है। जीवन-शुद्धि से मरण-शुद्धि की ओर प्रवृत्त होने का पवित्र भाव है।

प्रो. प्रेमसुमन ने प्राचीन जैन ग्रंथों में उल्लिखित समाधिमरण के दृष्टांतों के हवाले से यह स्पष्ट किया - संसारावस्था में शरीर प्राप्ति जन्म और शरीर छूटना मरण कहा जाता है। मरण को अज्ञानी बुरा मानता है। अज्ञानी पर्याय दृष्टि होने से प्राण वियोग रूप मरण पर दुःख करता है, किन्तु ज्ञानी दिव्य दृष्टि की प्रधानता से प्राण वियोग या शरीर छूटने से भी प्रसन्न रहता है। सदा समरस रहता है। वह विचार करता है कि मैं त्रिकाल सत्य हूँ। इस शरीर से पूर्व भी सत्ता थी, इस शरीर में है और शरीर छूटने पर रहूँगा। सुकृताचरण से कृतकृत्य हो चुका हूँ, अतः मुझे मरण से क्या चिंता है? ऐसा चिंतन करता हुआ साधक शास्त्रोक्त समाधिमरण या संल्लेखना से विधिपूर्वक शरीर छोड़ने में प्रयत्नशील होता है। साधक के लिए जितना महत्त्व जीवन-शुद्धि का है, उससे अधिक महत्त्व मरण-शुद्धि का है।[2]

जैन धर्म के प्रभावक आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में संथारा तपस्या का विशिष्ट प्रयोग है। यह किसी परम्परा का निर्वाह भी नहीं है। आत्महत्या भी नहीं है और न ही सती प्रथा है। जैसाकि कुछ लोग कहते पाये गये हैं। भिवानी में अपने व्याख्यान में संथारे का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा- जो व्यक्ति अच्छा जीवन जीता है, वह तपस्या के अनेक प्रयोग करता है। जब उसे लगे कि शरीर उत्तर दे रहा है, तब वह अपना अंतिम समय तपस्या के

विशिष्ट प्रयोग के साथ समाधिपूर्वक बिताता है। उनकी दृष्टि में संथारे का एक नियम है- न जीने की इच्छा करना और न ही मरने की इच्छा करना यानी समभाव में रहना। जब व्यक्ति का शरीर इतना क्षीण हो जाये कि वह कुछ भी करने की स्थिति में न रहे तो उस मरणासन्न स्थिति में वह अपने शरीर के प्रति सर्वथा अनासक्त बन जाये। संथारा या अनशन इसी आसक्ति को छोड़ने का एक विशिष्ट प्रयोग है।

आचार्यश्री ने कहा कि किसी भी प्रथा के साथ अनिवार्यता की बात जुड़ी होती है, जबकि संथारे के साथ कोई भी अनिवार्यता नहीं है। यही कारण है कि लाखों करोड़ों में से कभी-कभार दो चार व्यक्ति इस प्रकार की साधना का प्रयोग करते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ सती प्रथा से भी इसे जोड़ने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कथन है कि सती प्रथा में महिला अपने पति के पीछे, पति के लिए सती होती है, जबकि संथारा या अनशन न तो किसी के पीछे किया जाता है और न किसी के लिए किया जाता है। अत: संथारा न तो कोई प्रथा है न यह सती प्रथा के समकक्ष है और न आत्महत्या ही कहा जा सकता है।[3]

जान देने अर्थात् आत्म हत्या करने और देह-विसर्जन अथवा संथारा करने में आध्यात्मिक अंतर के पक्षधर आचार्य कनकनंदी महाराज के विचार में संक्लेष कषाय के आवेश में आत्म-हत्या की जाती है, जबकि समता-संवेग की साधना से आत्म-समाधि या शुद्धि की जाती है। आत्म-स्वरूप के अनुरूप प्रवृत्ति नहीं करना आत्महत्या है। उन्होंने कहा कि प्रति समय कम होती आयु के साथ हमारी सूक्ष्म मृत्यु भी हो रही है। मात्र अन्न-जल त्याग करके कोप-रोष आविष्ठ होकर अकाल में देह त्याग देना आत्महत्या है। समाधि में मृत्यु की भी इच्छा नहीं होती है, जबकि सती प्रथा में प्रेम-भाव राग-भाव के आवेश में अमूल्य देव दुर्लभ देह का असमय में ही अग्नि को होम कर दिया जाता है। उनकी दृष्टि में आध्यात्मिक जीवन कानून से भी ऊपर माना है।[4]

मरने के भाव को पाप तथा आत्म हत्या करने को महापाप मानने वाले सुधासागर महाराज ने संथारे को समाधि की एक उत्कृष्ट प्रक्रिया माना और कहा कि जब अन्न से शरीर को फायदा नहीं उल्टा नुकसान व विकृति होने लगे तो उन विकृतियों को रोकने और उनसे शरीर को बचाने के लिए शनै:-शनै: अन्न-जल का त्याग किया जाता है। यही समाधि की प्रक्रिया है। कहीं शरीर की विकृतियाँ आत्मा में क्लेश उत्पन्न न कर दें, इसलिए स्वस्थ होकर रत्न त्रय को बचाने के लिए समाधि-संथारा एक औषधि है।[5]

प्रज्ञा महर्षि उदय मुनि संथारे को आत्मशुद्धि की चरम परिणति मानते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि जीने का अधिकार यदि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में मान्य है तो उसमें जीवन, शारीरिक जीवन, दैहिक, ऐहिक, पौद्गलिक जीवन का जीने का अधिकार भी व्यक्तिगत स्वातंत्र्य है।[6]

थोड़े काल के लिए किया जाने वाला संथारा सागारी संथारा कहलाता है, जबकि आयुष्य निकट आया समझकर साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका की साक्षी से किया जाने वाला संथारा जावजीव संथारा कहा जाता है। इसे चरम पच्चक्खाण भी कहते हैं। इसका पाठ है-'अपच्छिम मारणांतिय संलेहणा- झूसणा सहित चरम पच्चक्खाई तिविहंपि चक्रविहंपि आहारं-असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण जावजीवाए तस्स भंते। पडिक्कमेह निंदेह गरहेह अप्पाणं वोसिरे।'

सागारी संथारा नवकारसी आदि के रूप में, संकट के समय या रात्रि में सोते समय किया जाता है। चार लोगस्स का ध्यान करके फिर प्रकट में लोगस्स बोलकर सीमंधरस्वामी को नमस्कार कर यह पाठ उच्चारित किया जाता है-

*आहार शरीर उपधि, पचखूं पाप आठार।*
*मरण होवे तो वोसिरे, जीवूं तो आगार।।*

संथारा धारण किये व्यक्ति को नाना प्रकार की स्तुतियाँ, भक्ति-रचनाएँ, मंगलपाठ सुनाये जाते हैं, ताकि उसका मन सांसारिकता में नहीं रमकर देव-ईश की शरण में समर्पित हो जाय। इस अवसर पर संथारा गीत भी सुनाये जाते हैं। एक संथारा गीत में कहा गया है -

*संथारो प्यारो घणो, रतन चिंतामणि है,*
*हो भविजन पंचमी गति पोंचाय।*
*आरपाणी आदरे नहीं, सब जीवां रा छे रवमाय,*
*हो भविजन पंचमी गति पोंचाय।*
*करोनी शुभ आलोचणा, लगावो मुगत्यां सूं ध्यांन,*

*हो भविजन पंचमी गति पोंचाय।*
*ऐसी सदा हो मुझ में वीरता, होवे तरत कल्याण,*
*हो भाविजन पंचमी गति पोंचाय।*

संथारा अति प्यारा है। यह रत्न चिंतामणि (दुर्लभ) है। यह मोक्ष पहुँचाता है। इसमें आहार-पानी वर्जित है। सर्व प्राणियों से क्षमायाचना हो। अपने किये पाप कर्मों की आलोचना करो। सांसारिक मुक्ति का ध्यान लगाओ। सदा ऐसे वीर भाव पैदा हों कि तुरंत कल्याण पथ की प्राप्ति हो।

समाधिमरण का ऐसा महात्म्य कई ग्रंथों, सूत्रों में वर्णित है। इस मरण को समस्त साधनाओं में श्रेष्ठ मरण, उत्तम मरण कहा गया है। संस्तारक (6) में तो स्पष्ट उल्लेख है-

*वंसाणं जिणवंसो, सव्वकुलाणं च सावयकुलाई।*
*सिद्दिगई व्व गईणं, मुत्तिसुहं सव्वसोक्खाणं।।*
*धम्माणं व अहिंसा, जणवयवराणाण साहुवराणाई।*
*जिणवयणं च सुईणं, सुद्घीणं दंसणं च जहा।।*

तात्पर्य यही कि जिस प्रकार सभी वंशों में तीर्थंकर-वंश, कुलों में श्रावक-कुल, गतियों में सिद्धगति, सुखों में मुक्ति-सुख, धर्मों में अहिंसा-धर्म, मानवीय वचनों में साधु-वचन, श्रुतियों में जिन-वचन और शुद्धियों में सम्यक्- दर्शन उत्तम है, उसी प्रकार समस्त साधनाओं में समाधि-मरण उत्तम है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि संथारा-

(1) एक आध्यात्मिक संस्कार है, जबकि आत्महत्या एक विवेकहीन पद्धति।
(2) समाधि लेकर मृत्यु को वरण करना है।
(3) जीवन पर मृत्यु की विजय है।
(4) एक धार्मिक अनुष्ठान है। आत्महत्या की तरह भौतिक क्रिया नहीं।
(5) पूर्णत: स्वैच्छिक होता है।
(6) मरण के पीछे कोई विवशता या बाध्यता नहीं होती।
(7) मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य लिए होता है न कि सांसारिक कष्टों से मुक्ति प्राप्त करना है।
(8) अन्न-जल का त्याग लिए होता है।
(9) धीरे-धीरे प्राणांत की प्रक्रिया लिए होता है।
(10) जीवन के उत्तरार्द्ध में लिया जाता है।
(11) मृत्यु के स्वागत का पूर्व कल्प होता है।
(12) क्रोध मान माया लोभ एवं मरण का त्याग लिए होता है।
(13) संयमित जीवन जीने वाले ही करते हैं।
(14) भाग्यशाली एवं पुण्यशाली व्यक्ति करता है।
(15) न जीने का भाव और न मरने की इच्छा लिए होता है।
(16) शरीर के प्रति पूर्णत: अनाशक्ति का भाव लिए होता है।
(17) जो व्यक्ति ग्रहण करता है उसका परिवार भी पुण्य अर्जित करता है।
(18) वरण करने वाला समाज में प्रतिष्ठा और पुण्य अर्जित करता है।
(19) सर्व पापों से छुटकारा दिलाता है।
(20) वर्तमान जीवन से मुक्ति और भावी जीवन में सद्गति दिलाता है।
(21) मनुष्य को ही नहीं, पालतू जीवों को भी कराया जाता है।

---

**पाद टिप्पणी**-

1. समाधिमरण की अवधारणा, संपादक- डॉ. सुरेश सिसोदिया, आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, सन् 2002, पृ.49
2. वही, पृ. 33-34
3. दैनिक जन संसार, सूरत, 27 सितंबर 2006, पृ.13
4. सागवाड़ा के वात्सल्य सभागार में व्यक्त विचार, नवज्योति, अजमेर, 1 अक्टूबर 2006, पृ. 12
5. उदयपुर में 1 अक्टूबर को अखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी में व्यक्त विचार, राजस्थान पत्रिका 2 अक्टूबर 2006, पृ. 9
6. संथारा आत्महत्या नहीं, परम आत्मसाधना है- उदय मुनि, प्रकाशक-भारत जारोली कॉलोनाइजर्स, नीमच, जुलाई 2006

# पारसी धर्म और मृत्यु की अवधारणा

डॉ. ज़रीन नज़र

भारतवर्ष में पारसी समुदाय जिस ज़ोरॉस्ट्रियन धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसमें 'मृत्यु' की अवधारणा पर कुछ भी कहने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि इस धर्म का दार्शनिक आधार क्या है? ईश्वर, आत्मा, कर्मवाद और पुनर्जन्म आदि बिन्दुओं पर क्या चिंतन है। ज़ोरॉस्ट्रियन धर्म के प्रवर्तक परशियन धार्मिक पैगम्बर ारथ्रुस्त्र माने जाते हैं, जिनका वास्तविक नाम 'स्पितमा' था। ज़रथ्रुस्त्र शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है- 'ज़रत' और 'उश्त्र'।'ज़रत' का अर्थ है- स्वर्ण और उश्त्र का -प्रभा मण्डित। अतः ज़रतथ्रुस्त्र का शाब्दिक अर्थ है- स्वर्ण प्रभा से आलोकित व्यक्ति।

ज़रथ्रुस्त्र के जन्म-काल के बारे में विवाद है, परन्तु एनकार्टा एनसाईक्लोपीडिया में (C.630-550 BC) ईसा पूर्व छठी शताब्दी बतलाया गया है। इनका जन्म (Airyanam Veejah) नामक स्थान पर हुआ, जो बाद में ईरान हो गया। कम उम्र में विवाह हो जाने के बावजूद इनका मन सांसारिक मोह-माया में न फँसा और ये बंधनों को तोड़कर तपस्या में लीन हो गये। 15 वर्षों की कठोर साधना के बाद इन्हें ज्ञान लाभ हुआ और इनकी बुद्धि स्वर्ण प्रभा से आलोकित हो गई। इन्हें अनुभव हुआ कि संसार का त्याग करना तो पलायन है। अतः पुनः सांसारिक जीवन की ओर वापस लौटे। ईश्वर वोहु मनः (Vohu Manah) स्वयं ज़रथ्रुस्त्र के सामने प्रकट हुए और उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके बाद उन्होंने उद्घाटित धर्म (Revealed Religion) के रूप में ज़ोरॉस्ट्रियन धर्म का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ कर दिया।

ईरान में अपने धर्म के संदेश प्रचार में उन्हें काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। शासक वर्ग और जनता, जो अनेकेश्वरवाद में विश्वास करते थे, इनके एकेश्वरवादी विचारों का विरोध किया। परन्तु पड़ोसी देश के शासक वीरतारस्य ने अपने

कर्मचारियों सहित इस धर्म को स्वीकार किया और इन्हें सम्मानित किया। ईरान के शासक ने इस बात से क्रोधित होकर पड़ोसी देश पर आक्रमण कर दिया। परन्तु स्वयं ही पराजित हो गये और ईरान पर वीरतास्य का ही शासन हो गया। ोारॉस्ट्रियन धर्म ईरान का राष्ट्र धर्म घोषित कर दिया गया। कालान्तर में इस्लाम धर्म के उदय एवं ोारॉस्ट्रियन धर्म के अनुयायियों को धर्म-परिवर्तन के लिए मजबूर किए जाने पर ईरान से इस धर्म के अनुयायियों ने अपने धर्म को सुरक्षित रखने के लिए प्रवजन (Migration) शुरू कर दिया। उन्हीं में से एक समूह सुरक्षित और सुव्यवस्थित जीवन की तलाश में भारत की ओर आया और गुजरात के शासक जदि राणा से संरक्षण माँगा।

संजान के राणा ने उनके सामने दूध से भरा एक गिलास रखा, जिसका तात्पर्य था कि हमारे साम्राज्य में कोई खाली स्थान नहीं है। तब ोारॉस्ट्रियन धर्म के समूह के सरदार ने उस गिलास में एक चम्मच चीनी डालकर घोल दिया, जिसका तात्पर्य था कि हम आपके साम्राज्य में ऐसे घुल मिल जायेंगे जैसे चीनी दूध में। राणा उनके बुद्धिमत्ता पूर्वक दिए गए जवाब से बेहद प्रसन्न हुआ और उनका भव्य स्वागत करके उन्हें सुरक्षा प्रदान की। उस समूह ने गुजरात की ही भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन आदि को अपनाया। आज भी इस धर्म के अनुयायी भारतीय रंग में रंगे अपने उस वचन से बँधे हुए भारत वर्ष में जीवन यापन कर रहे हैं। चूँकि ये पारस से माइग्रेट होकर आए है, इन्हें भारत में पारसी कहा जाने लगा। इनका सबसे बड़ा धर्मस्थल आतश बेहराम, जिसमें आज भी वही पवित्र अग्नि है, जो वह समूह पारस से अपने साथ लाया था, उदवाड़ा में है। इनमें दो समूह हैं- शहेनशाही और कदमी। पारसी समुदाय स्वयं तो घुल-मिलकर रह रहा है, परन्तु उसने कभी भी किसी व्यक्ति का धर्म- परिवर्तन कर पारसी बनाने का प्रयास नहीं किया। यही कारण है कि इनकी संख्या दिन पर दिन कम ही होती जा रही है। संख्या कम होने के बावजूद पारसियों ने देश के विकास और समृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ज्ञान-विज्ञान, राजनीति, शिक्षा, उद्योग-धंधे, खेल, कानून, चेरिटी हॉस्पिटल, स्वतंत्रता संग्राम, सेना सभी क्षेत्रों में पारसियों ने अपना नाम दर्ज करवाया है। उनके धार्मिक चिंतन ने उन्हें यह सम्मान दिलवाया है। इनके रीति-रिवाज हिन्दू धर्म से काफी मिलते-जुलते हैं।

पारसी जेन्द अवेस्ता (Zend Avesta) ग्रंथ में विश्वास करते हैं, जिसकी पश्तू भाषा बहुत कुछ संस्कृत के निकट है। यह पाँच भागों में विभक्त है।

1. यस्न - इनमें पैगम्बर ारथ्रुस्त्र के वचन तथा उपदेश हैं, जो गाथा (मंत्र) कहलाते है। गाथा पाँच हैं- अहुनवहूति, उस्तवइति, रुपेन्त मइन्यु, वोहु-क्षश्च और वहिश्तो- इश्नु।
2. विस्पेरद- इसमें पारसी कर्मकाण्डों की व्याख्या है, जिनका पालन आराधना के समय किया जाता है।
3. वेन्दिदाद- इसमें शुद्धि के धार्मिक-व्यवहारिक नियमों का उल्लेख है।
4. यश्त- इसमें विभिन्न मंत्रों का संकलन है, जिनका पालन अनुष्ठान विशेष के अवसर पर किया जाता है।
5. खोर्देह अवेस्ता- यह लघु अवेस्ता है, जिसमें उपासना के वक्त पढ़ी जाने वाली स्तुतियों का वर्णन है।

पारसी जेन्द अवेस्ता में अभिव्यक्त एकेश्वरवादी दर्शन में विश्वास करता है, जिसके अनुसार परम-सत्ता एक है और वह है- अहुरमादा। वह सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्त्ता है। वह सर्वत्र, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान हैं। उनमें अनंत गुण है, जिनमें छः मुख्य है- प्रकाश, शुभ, भला मन, धर्मनिष्ठा, प्रभुत्व और अमरत्व। वह न्यायप्रिय है।

इनके विपरीत एक अशुभ सत्ता है, जो अंधकार और बुराई का प्रतीक है। यह अहरिमन है जिस पर धार्मिक मान्यताओं के अनुसार लगभग बारह हजार वर्षों बाद अहुर-मादा अपना आधिपत्य जमा लेगा। इस प्रकार यह धर्म द्वैतवाद और एकात्ववाद के मिश्रण का एक अनोखा उदाहरण है जो वास्तव में एकत्ववादी ही है। पैगम्बर ारथ्रुस्त्र ने आजीवन एकेश्वरवाद का ही उपदेश दिया है। गाथा में (29/1) में कहा भी है कि 'परमपिता अहुरमादा के अतिरिक्त हमारा कोई भी रक्षक नहीं हैं।'

पारसी आत्मा के अस्तित्त्व और भविष्यत जीवन में विश्वास करते हैं। मृत्यु के उपरान्त आत्मा मृत शरीर के आसपास तीन

दिनों तक घूमती रहती है तथा चौथे दिन उसके कर्मों का निर्णय होता है। आत्मा (उर्वन) को शुभ-अशुभ कर्मों अनुसार पारितोषिक अथवा दण्ड मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने शुभ-अशुभ कर्मों का भार स्वयं ही ढोना पड़ता है। शुभ कर्म करने वाले व्यक्ति धार्मिक होते हैं, उनकी आत्मा स्वर्ग में जाती है। स्वर्ग में चार अवस्थाएँ हैं- शुभ विचार, शुभ वचन, शुभ कर्म और पूर्ण प्रकाश। इसके विपरीत अशुभ कर्म करने वाले व्यक्तियों की आत्मा नर्क में जाती है। नरक में चार अवस्थाएँ होती हैं- बुरे विचारों की अवस्था, बुरे वचनों की अवस्था, बुरे कर्मों की अवस्था तथा अनंत अन्धकार की अवस्था। स्वर्ग और नरक के बीच एक रिक्त स्थान है, जहाँ पर ऐसी आत्माएँ रहती हैं, जिनका (Judgement) निर्णय नहीं हुआ है। ऐसी आत्माओं को केवल शीतल वायु और गर्म हवा की अनुभूति होती है।

वास्तव में यह धर्म मूलत: कर्मवादी है। मनुष्य क्षणभर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। वह कर्म करता है और फल भोगता है। मनुष्य की सारी उपलब्धियाँ कर्मजन्य हैं। कर्म और ज्ञान को मुक्ति का साधन माना गया है। मुक्ति दो प्रकार की होती है- वैयक्तिक और सामूहिक। सामूहिक मुक्ति वैयक्तिक मुक्ति से श्रेयस्कर है और यही मनुष्य जीवन का अंतिम आदर्श है, जबकि वैयक्तिक मुक्ति व्यक्ति के स्तर पर अशुभ का विनाश है। जिस दिन विश्व स्तर पर समस्त दु:ख दूर हो जायेंगे, अहरिमन की पूर्ण पराजय हो जाएगी, वही सामुहिक मुक्ति या सर्वमुक्ति का दिन होगा।

वास्तव में पारसी व्यवहारिक नैतिकता में विश्वास करते हैं और इसी वजह से सभी सत्कर्मों को सद्व्यवहार मानते हैं। जैसे प्रतिद्वंद्वियों का खुलकर सामना करना सत्कर्म है- दया, परोपकार सत्कर्म है, दान देना सत्कर्म है, अनाथों की मदद करना सत्कर्म है। ईमानदारी, विनम्रता, दया, शांति भाव, उपयोगी चीजों की रक्षा और अनुपयोगी जीवों का विनाश, सत्यवादिता, कठोर परिश्रम, शुद्धता, आत्मनिर्भरता आदि सभी सत्कर्म है। यही कारण है कि पारसी समुदाय के लोगों ने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक, ज्ञान-विज्ञान सभी क्षेत्रों में सफल प्रतिनिधित्व किया है।

पारसी समुदाय में मृत्यु का अर्थ है (Infections) संक्रमण। इसलिये मृत शरीर जो संक्रमित (Infections) होता है, उसे शीघ्रातिशीघ्र अंतिम संस्कार द्वारा खत्म करके जीवित व्यक्तियों से अलग कर देना चाहिए ताकि संक्रमण फैल न सके।

यह और बात है कि मृत्यु के बाद पवित्र आत्मा एक समान होती है, चाहे वह राजा की हो या रंक की। मृत्यु के पूर्व पुरोहित को बुलाकर एक धार्मिक अनुष्ठान अखियांना होता है, जिसमें पतेत (एक प्रार्थना) पापों से मुक्ति हेतु पढ़ी जाती है और (Haoma Juice) पिलाया जाता है, जो अमरता का सूचक होता है। मृत्यु के बाद अंतिम स्नान होता है जो पहले गौमूत्र और बाद में कुएँ के साफ पानी से करवाया जाता है और कश्ती (भेड़ के 72 धागों से बनी जनेऊ) बाँधी जाती है। फिर दो व्यक्ति मृत शरीर के पास बैठकर लगातार 'अषेम वोहू' प्रार्थना पढ़ते हैं। दूसरे दो व्यक्ति सरोशबाज पढ़कर पैवंद (Paywand) पकड़कर मृत शरीर को जमीन पर सफेद चादर बिछाकर पूरा ढँक देते हैं और मुँह पर 'पदन' बाँध देते हैं। उत्तर दिशा को सामान्यत: उपेक्षित किया जाता है, क्योंकि ऐसा विश्वास है कि उत्तर दिशा से ही सारे खतरे और अशुभ चाहे भौतिक हों या मानसिक आते हैं। फिर मृत शरीर को चौकोर पत्थरों पर रखकर एक रेखा खींच दी जाती है। फिर सागदीद (Sagdid) रस्म होती है, जिसमें कुत्ते को लाश के पास खड़ा करते है, इसके कुछ कारण हैं-

1. कुत्ते को ऐसी पवित्र चक्षु मिले हैं कि वह जीवित और मृत का अंतर समझ सकता है।
2. कुत्ता मालिक का सबसे ज्यादा विश्वसनीय होता है।
3. कुत्ता समाज के लिए बेहद मूल्यवान सेवा (Service) करता है।
4. कुत्ते की उपस्थिति का प्रतीकात्मक अर्थ है कि अनैतिक वासनाओं का विनाश हो जाएगा।

मृत -शरीर को शांति मीनार दख्मा में ले जाने से पहले तक पुरोहित (Zend Avesta) पढ़ते रहते हैं। फिर शव यात्रा में शामिल सभी लोग दो-दो जोड़े में पैवंद पकड़कर ही चलते हैं। फिर बाज और गेह सारना और फिर गाथा पूर्ण होने के बाद सभी अंतिम दर्शन करते हैं। दख्मा के बाहर कुछ दूरी पर सभी लोगों पर गौमूत्र छिड़ककर पवित्र किया जाता है और फिर बहुत निकटस्थ रिश्तेदार ही अंदर जाते हैं। (Nassa salars) अंदर जाकर (Paavis) पर शरीर रख देते हैं और जो पुराने कपड़े पहनाये गये

थे, उसे फाड़ देते हैं और लौट आते हैं। दो-तीन दिन में मृतक शरीर को गिद्धों द्वारा खत्म कर दिए जाने के बाद हड्डियों को गड्ढे में डाल दिया जाता है। इसके मूल में शरीर के दान का भाव है। चौथे दिन चहरूम होता है और शुद्धिकरण प्रक्रिया (पदयब) होती है। इसके दो दृष्टिकोण होते हैं-

1. भौतिक दृष्टिकोण से यह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।
2. प्रतीकात्मक दृष्टिकोण से यह नैतिक दृष्टि से आवश्यक है।

इसके बाद पारसी विश्वास करते हैं कि (Humata, Hukhta, Huvarshta) अर्थात् शुभ विचार, शुभ संकल्प और शुभ कर्म उसकी आत्मा को मृत्यु के बाद स्वर्ग के द्वार की ओर तथा ( Dushmata, Duzukhta, Duzuvar shta) अर्थात् बुरे विचार, बुरे संकल्प और बुरे कर्म ही उसे नरक द्वार की ओर ले जाते हैं। जहाँ तक पर्यावरणीय चेतना की बात है- यह समुदाय अग्नि, जल, पृथ्वी और वायु इन चार तत्त्वों को मानता है और इसीलिये इनको सुरक्षित रखने के लिए आराधना करता है, जैसे पवित्र अग्नि जिसे अहुरमादा का पुत्र भी माना जाता है, को अदृश्य अहुरमादा का प्रतीक माना जाना। इसी वजह से मृत शरीर का दाह संस्कार नहीं किया जाता है। प्रश्न उठता है कि मनुष्य का जन्म होने से पहले रुवान (आत्मा) कहाँ रहती है? जन्म के समय माँ के गर्भ में कैसे पहुँचती है? क्या सभी आत्माओं का पुनर्जन्म होता है या कुछ आत्माओं का जन्म नहीं होता है? क्या यही चक्रीय यात्रा है?

वास्तव में पारसी समुदाय की एक प्रार्थना है- 'जसमे अवंघे मझदा' जिसमें आत्मा की यात्रा के तीन स्तरों की व्याख्या है-

1. पृथ्वी पर जन्म से मृत्यु तक।
2. मृत्यु के बाद अगली दुनिया में स्थान।
3. निर्णय की अगली अलौकिक दुनिया में यात्रा का अंत और इस बात की तैयारी कि पुनर्जन्म होगा अथवा जीवन-मृत्यु चक्र छोड़कर अहुरमादा की ओर जाने वाले पवित्र रास्ते पर चल देगा। पुनर्जन्म को (Tanaasakh) और अहुरमादा की ओर यात्रा को (Tanpasin) कहते हैं।

सभी आत्माओं का पुनर्जन्म नहीं होता है, बल्कि केवल उन्हीं आत्माओं का पुनर्जन्म होता है, जिनके बारे में निर्णय लिया जाता है कि उनका पुनर्जन्म हो। शेष आत्माओं को जो अच्छे विचार, वचन व कर्म मार्ग पर चलकर अंतिम निर्णय तक पहुँचती है, उन्हें निर्णय दिया जाता है कि अहुरमादा की ओर जायें। वे सभी आत्माएँ उस मार्ग की ओर अग्रसर हो जाती हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। यह उन आत्माओं की चक्रीय यात्रा का अंत है- मुक्ति है।

# इस्लाम में मृत्यु की अवधारणा

डॉ. एम.आई. मसूद

इस्लाम धर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से एक है। इस्लाम का शाब्दिक अर्थ अल्लाह के समक्ष पूर्ण समर्पण है, इसका एक अन्य अर्थ शान्ति भी होता है। इस्लाम की मान्यताओं के अनुसार अल्लाह जो कि इस सृष्टि का रचयिता है, सदा से है और सदा रहेगा, उसने स्वर्ग में प्रथम मानव हज़रत आदम की मिट्टी से रचना की और परीक्षा स्वरूप प्रकाश से बने समस्त फ़रिश्तों से कहा कि वह आदम को सादा (नतमस्तक) करें। सभी ने इस आदेश का पालन किया, परन्तु इब्लीस ने इस आदेश को नहीं माना। तत्पश्चात् अल्लाह ने अम्मा-हव्वा की रचना की। इब्लीस के भ्रम और बहकावे के कारण आदम और हव्वा को स्वर्ग से इस धरती पर उतार दिया गया। यह कहा गया कि जो अपने पालनहार के आदेशों का पालन करेगा, वह मृत्यु पश्चात् पुनः स्वर्ग में जाएगा और जो अवहेलना करेगा वह नरक में डाला जाएगा। स्वर्ग-नरक का जीवन अनन्तकालीन होगा।

यहाँ इस भ्रान्ति को दूर करना नितान्त आवश्यक है कि इस्लाम धर्म हज़रत मोहम्मद साहब द्वारा नहीं लाया गया था, अपितु इस्लाम धर्म प्रथम मानव हज़रत आदम के काल से चला आ रहा है। मोहम्मद साहब इस कड़ी के अन्तिम पैग़म्बर (दूत) थे। क़ुरआन इस कड़ी का अन्तिम प्रमाणित ग्रन्थ है तथा इसमें दिया गया संदेश क़यामत अर्थात् महाप्रलय तक सम्पूर्ण मानव जाति एवं सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक रहेगा।

इस्लाम धर्म में जीवन और मृत्यु का चक्र केवल एक बार ही होता है। इस प्रकार मृत्यु या इन्तिक़ाल एक सहज प्रक्रिया है। मृत्यु इस धरती पर जीवन का अन्त हैं, अर्थात् इसके द्वारा कर्मों का भी अन्त हो जाता है। मानव का मिट्टी से बना शरीर मिट्टी में मिल जाता

है, उसकी आत्मा सुरक्षित रहती है। यहाँ तक कि क़यामत (महाप्रलय) आ जाए, उसको क़ब्र से निकालकर पुन: उसकी आत्मा (रूह) उसमें डाली जाए एवं उसके जीवनकाल के कर्मों को परीक्षण कर अल्लाह यह निर्णय करे कि वह स्वर्ग भेजा जाएगा या नरक। इस्लाम का मूल आधार तौहीद (एकवाद) पर है। इसी आधार पर उसके किये गये कृत्यों का आकलन किया जाएगा।

इस्लाम धर्म के अनुसार मृत्यु उपरान्त रीति-रिवाजों में व्यक्ति की मृत्यु का समय निकट आ जाए तो क़ुरआन की आयतों (वाक्यों) का उच्चारण किया जाए। मृत्यु पश्चात् शव को नहलाया जाता है। इसके लिए बेरी या अनार के पत्ते डालकर गरम पानी से उसको विधिवत नहलाया जाता है, फिर पुरुष को तीन बिना सिले कपड़ों और महिला को पाँच बिना सिले कपड़ों में लपेटा जाता है। इन वस्त्रों को कफ़न कहते हैं। दफ़न (ज़मीन में गाड़ने) से पूर्व जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जाती है, अर्थात् क़ब्रस्तान (दफ़न करने का स्थान) ले जाने से पूर्व उपस्थित व्यक्ति मृतक के लिए नमाज़ अदा करते हैं तथा अल्लाह से मृतक हेतु दया-याचना करते हैं। क़ब्र की गहराई मृतक की लम्बाई की आधी होना चाहिए और लम्बाई उसके बराबर होना चाहिए। सामान्यत: दो व्यक्ति क़ब्र के अन्दर उतरकर शव को अपने हाथों पर लेकर उसको लिटाते हैं, उसके कफ़न की गठान खोल देते हैं, फिर उसके ऊपर फ़र्शी (पत्थर के पटिए) तिरछे टिकाए जाते हैं, फिर उसके ऊपर क़ब्र खोदने में निकली मिट्टी वापस डाल दी जाती है। मिट्टी डालते समय पवित्र क़ुरआन की यह पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं कि 'हमने (अल्लाह) तुम्हें इस मिट्टी से बनाया, अब इसी मिट्टी में तुमको लौटा रहे हैं और इसी मिट्टी से हम तुमको पुन: निकालेंगे।'

दफ़न करने के पश्चात् क़ब्र पर पानी का छिड़काव करना अच्छा माना जाता है। इस्लाम में पक्की क़ब्र बनाना वर्जित है। दफ़न दिन या रात किसी भी समय सुविधानुसार किया जा सकता है। मृत्यु पश्चात् दफ़न करने में शीघ्रता करनी चाहिए। अपरिहार्य कारणों के बिना अनावश्यक देरी नहीं करनी चाहिए। मृत्यु पश्चात् इस्लाम में तीजा या चालीसवाँ या मृत्यु भोज आदि का कोई अस्तित्व नहीं है।

यदि किसी व्यक्ति का देहान्त समुद्री यात्रा में हो जाता है तो उसको दफ़न करने के बजाए समुद्र में ससम्मान उतार दिया जाएगा। इस्लामी मान्यताओं के अनुसार मृत्यु होते ही व्यक्ति के कर्मों का दरवाज़ा बन्द हो जाता है, उसका नश्वर शरीर मिट्टी में मिल जाता है, उसकी आत्मा क़यामत की प्रतीक्षा करती रहती है, जिसके पश्चात् स्वर्ग या नरक का अमरकाल है।

# बौद्ध धर्म में मृत्यु की अवधारणा

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शाक्य

मृत्यु एक अवांछित वस्तु है, इस कारण प्राचीनकाल से ही विभिन्न धर्मों में एवं धर्मों से हटकर भी मृत्यु चिन्तन एवं विश्लेषण का विषय रही है। बौद्धधर्म में तथागत बुद्ध की शिक्षा सर्वप्रथम चार आर्य सत्यों पर केन्द्रित रही है, उनमें पहला सत्य दु:ख सत्य है। दु:ख की पहचान बहुत जरूरी है, दु:ख को त्रिविध माना गया है- यथा दु:ख-दु:ख, विपरिणाम दु:ख एवं संस्कार दु:ख। इनके विश्लेषण में दु:ख के कारणों की पहचान करना जरूरी समझा गया, ताकि उसके कारणों की पहचान द्वारा दु:ख निरोध प्राप्त हो सके। यही विचार मृत्यु के सम्बन्ध में भी लागू होता है।

बौद्ध धर्म में इस तथ्य पर बल दिया गया कि किसी पदार्थ का विनष्ट होना अथवा प्राणियों के संदर्भ में उनकी मृत्यु निश्चित है, मृत्यु देर-सबेर प्रत्येक जीव की अनिवार्य है। धम्मपद बौद्ध धर्म का एक पवित्र ग्रंथ है। इसमें भगवान बुद्ध के वचन हैं-

*नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये, न पर्वतानं बिबरं प्रविश्य।*
*न विद्यते स जगति प्रदेशो, यत्र स्थितं न प्रसहते मृत्यु:।।*

अर्थात् न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के बाहर, संसार में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ रहने वाले को मृत्यु न सताये। मृत्यु का स्थान जल, वायु एवं पृथ्वी सभी लोक है।

संयुक्त निकाय में बुद्धवचन है कि 'सभी जीव मरण शील हैं, एक न एक समय उनको मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह बच नहीं सकते। सभी जीव मरेंगे, मृत्यु में ही जीवन का अंत होता है, उनकी गति पुण्य-पाप के अपने कर्मों के अनुसार होगी। पाप

करने से नरक को, पुण्य करने से सुगति की प्राप्ति होगी। इसलिए सदा पुण्य कर्म करो, जिससे परलोक बनता है। अपना कमाया पुण्य ही प्राणियों के लिए परलोक में आधार होता है।

संयुक्त निकाय के पव्वत्पम सुत्त में उपदेश देते हुए तथागत बुद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया है कि 'राज्य करने वाले राजा- हस्ति युद्ध, अश्व युद्ध, रथ युद्ध, पैदल युद्ध, मंत्र युद्ध, धन युद्ध का तो सामना करते हैं, परंतु ये युद्ध जरा एवं मृत्यु के  के सामने बेकार हैं।

जरा और मृत्यु के निरंतर बढ़ते रहने का तात्पर्य मृत्यु का समीप आना है। सभी समान रूप से मृत्यु को प्राप्त करते हैं, मृत्यु को न तो मंत्र से रोका जा सकता है न धन से रोका जा सकता है, मृत्यु अनिवार्य है जो जन्म लेता है, वह मरने से कभी बच नहीं सकता।

*न ऊपर आकाश में, न नीचे समुद्र के बीच*
*न पर्वत की कंदराओं में बैठकर*
*संसार में कहीं भी ऐसा स्थान नहीं*
*जहाँ छिपकर मृत्यु के हाथों से बचा जा सके।।*

आकाश से भी ऊपर उठकर, नीचे समुद्र के बीच गोते लगाकर बड़े-बड़े महलों के ऊपर चढ़कर भी, कंदराओं में, गुफाओं में और पर्वत के ढालों पर भी जाकर मृत्यु के हाथों से नहीं बचा जा सकता। विश्व के महान बौद्ध आचार्य वसुबंधु ने अभिधर्म कोश में लिखा है कि 'जीवन (जीवितेन्द्रिय) चेतना (विज्ञान तथा ऊष्मा) का आधार है।' बुद्ध वचन है कि 'जब आयु ऊष्मा तथा विज्ञानकाय का परित्याग करते हैं तो अपविद्ध काय शमन करता है, जैसे अचेतन काष्ठ। अर्थात् जब तक स्थूल तथा क्षणिक काय, चेतना समूह के साथ रहता है, प्राणी जीवित रहता है, जब वे अलग-अलग हो जाते हैं, तब मृत्यु हो जाती है। स्थूल काय से चेतना का अलग हो जाना ही मृत्यु है।

महायानी आचार्य शांतिदेव कहते हैं कि 'मृत्यु निश्चित है, इसलिए पुण्य कर्म करना चाहिए। मृत्यु के समय सगे- सम्बन्धीजनों से चारों ओर से घिरे होने पर भी, खाट पर पड़े हुए मृत्यु की संवेदना का अकेले ही अनुभव करना पड़ेगा। मृत्यु जब हमको हाथों में जकड़ लेगी, उस समय कोई भी अपना मित्र-बंधु सहायता नहीं कर सकता। उस समय मात्र अपना पुण्य कर्म साथ देता है, इसलिए जीवन में पुण्य कर्म का संचय करना चाहिए, जिससे जीवन के अंत में पछताना न पड़े।

बौद्ध ग्रंथों में दो प्रकार की मृत्यु का उल्लेख मिलता है। काल मृत्यु एवं अकाल मृत्यु। इनका विस्तृत निरूपण इस प्रकार है -

**काल मृत्यु** - पूर्व जन्म में किये गये भिन्न-भिन्न पाप कर्मों के फल से या इस जन्म में कर्मों के कारण लड़कपन, जवानी या बुढ़ापे में मृत्यु होती है, उसे काल मृत्यु कहते हैं। काल मृत्यु जिंदगी के पुर जाने से ही होती है। कर्म फल से काल मृत्यु होती है जो समय आने पर मरता है, वही काल मृत्यु है। मिलन्द प्रश्न में काल  मृत्यु  के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि 'जो अपनी माता की कोख में ही मर जाते हैं, उसका वही काल समझना चाहिए। जो एक महीने का होते ही मर जाता है, उसका वही काल समझना चाहिए। जो सौ वर्ष का बूढ़ा होकर मरता है, उसका वही काल समझना चाहिए।' इस प्रकार काल मृत्यु का समय निश्चित नहीं है, परंतु इसका सम्बन्ध कर्मफल से अवश्य है।

**अकाल मृत्यु** - जो जीव जिंदगी पूरी होने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उन्हें अकाल मृत्यु की संज्ञा दी गई है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में अकाल मृत्यु को सात प्रकार से बताया गया है-

1. भूखा आदमी भोजन नहीं मिलने के कारण अपने पेट की आग से तपकर अकाल में ही मर जाता है।
2. प्यासा आदमी पानी नहीं मिलने से हृदय के सूख जाने से अकाल में ही मर जाता है।
3. साँप का काटा आदमी अच्छे झाड़ने वाले के न मिलने से जहर चढ़ जाने के कारण अकाल में ही मर जाता है।
4. जहर दिया गया आदमी उचित दवा न मिलने के कारण अंग-प्रत्यंग जल-जलकर अकाल में ही मर जाता है।
5. आग में गिर गया आदमी किसी के द्वारा न बचाये जाने के कारण अकाल में ही मर जाता है।
6. पानी में डूबा आदमी कोई बचाव का न मिलने से घुट-घुट कर अकाल में ही मर जाता है।
7. तीर लगा आदमी अच्छे वैद्य के न मिलने से उसी घाव से अकाल में ही मर जाता है।

ये सात प्रकार अकाल मृत्यु के मिलन्द प्रश्न ग्रंथ के अनुसार हैं। इस प्रकार जो लोग आयु पूरी होने के पहले ही मर जाते हैं, उनकी गणना अकाल मृत्यु की कोटि के अंतर्गत की जाती है।

मिलन्द प्रश्न में मृत्यु के आठ कारण ऐसे बताये गये हैं, जिसके कारण जीव मृत्यु को प्राप्त करते हैं, यथा- वायु के उठने से, पित्त के बिगड़ जाने से, कफ के बढ़े जाने से, सन्निपात हो जाने से, मौसम के बिगड़ जाने से, रहन- सहन में गड़बड़ हो जाने से, किसी भी बाहरी कारण से, कर्म फल के आने से। इसके अतिरिक्त निम्न कारण मृत्यु के साधारणत: माने गये हैं- जीवन अवधि समाप्त होने पर प्राणी मर जाता है। पुण्य क्षय होने पर मृत्यु हो जाती है। दुर्घटना मृत्यु का कारण बनती है। शराब पीकर बाहर चलना, सड़क मार्ग, रेलमार्ग, वायुमार्ग पर दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण मृत्यु हो जाती है। कुछ लोग भयक्रांत होकर मर जाते हैं।

आचार्य वसुबंधु के ग्रंथ अभिधर्म में प्रश्न किया गया कि मरण कैसे होता है? इसके प्रत्युत्तर में कहा गया है कि एक प्राणी आयु के क्षय से मरण को प्राप्त होता है। पुण्य के क्षय से मृत्यु को प्राप्त होता है, इसकी चार कोटियाँ हैं- आयु विपाक (कर्मफल) क्षय के कारण मृत्यु का होना, भोग विपाक (कर्मफल) क्षय से मृत्यु का होना, उभयाक्षय से मृत्यु का होना, विषय के अपरिहार से मृत्यु (अकाल मृत्यु) का होना।

क्लेशों के समाप्त हो जाने पर जन्म का अंत हो जाता है। मृत्यु एवं अनित्यता पर विचार विमर्श करने से कृत्रिम विषयों के प्रति रूचि कम हो जाती है, फलत: जब वास्तव में मौत आयेगी तो आसान रहेगी, उससे दु:ख भी न होगा।

बौद्ध धर्म में यह माना गया कि मृत्यु के समय दूसरों से प्रार्थना करना अशोभनीय है। यदि कोई कहे कि मुझे नरक लोक से जाने से बचा लो, मानों यह दूसरे के हाथ में है। यदि स्वयं उसने कुछ नहीं किया है तो दूसरा भी कुछ नहीं कर सकता। भगवान बुद्ध की सामर्थ्य भी नहीं है कि वे उसे बचा लें। भगवान बुद्ध के हाथों में कर्मफल सामर्थ्य होता तो वे कर्मफल सिद्धांत की बात क्यों करते? इसलिए बौद्ध मत में मृत्यु के बारे में सजग रहने एवं पुण्यकर्मों के संचय करने का उपदेश दिया गया है।

बौद्ध धर्म में इस बात पर अत्यधिक बल दिया गया है कि मृत्यु के समय मात्र पुण्य कर्म ही आपके लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकते हैं। चिकित्सक भी जब आपको जवाब दे जाता है कि उपचार करने से कोई लाभ नहीं है, तब आप विपरीत स्थिति का सामना कर रहे होंगे, आप मृत्यु प्रक्रिया से गुजर रहे होंगे, आपका अंतिम भोजन दवाईयाँ होंगी, शायद उन्हें भी खा न पायें, उस समय शरीर भारी हो जायेगा, धीरे-धीरे श्वांस की सामर्थ्य भी क्षीण हो जायेगी। मित्र तथा सगे-सम्बन्धीजन आध्यात्मिक सत्त्वों से प्रार्थना कर रहे होंगे। मृत्यु प्रक्रिया की अंतिम स्थिति में श्वास केवल बाहर निकाल सकेंगे, भीतर न खींच सकेंगे, उस समय आप मृत्यु को प्राप्त कर लेंगे, आप स्वर्गीय हो जायेंगे। इस प्रक्रिया के प्रति सजग रहना बहुत जरूरी है। उपरोक्त प्रक्रिया पर मनन करना बहुत आवश्यक है। इसलिए बौद्ध आचार्य धर्मकीर्ति ने कहा है कि 'अनित्यता का मनन करते हुए व्यक्ति संसार से अवगत हो जायेगा' जो लोग मृत्यु की चिंता नहीं करते, वे आराम से प्राण का त्याग नहीं करते हैं। मृत्यु के समय चित्त ही भविष्य के जीवन की यात्रा जारी रखने में सहायक होता है, इसलिए बौद्ध धर्म में चित्त के अभ्यास पर बल दिया गया है।

मृत्यु के प्रति सजग रहने से उसका सामना किया जा सकता है, मृत्यु देर सबेर अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति, प्राणी मृत्यु नहीं चाहता, परंतु क्लेश कर्मों के कारण यह अवश्य होती है। मृत्यु की तैयारी करने से उससे भय नहीं होगा और न सोच की स्थिति अधिक उलझनपूर्ण होगी।

भगवान बुद्ध की शिक्षाओं में मृत्यु से परिचित होना महत्त्वपूर्ण शिक्षा है, भगवान बुद्ध ने सर्वप्रथम चार आर्य सत्यों का जो उपदेश दिया, उसमें मृत्यु एवं अनित्यता से परिचित होने की शिक्षा है। मृत्यु एवं अनित्यता के सम्बन्ध में चिंतन की प्रक्रिया अत्यंत हर्षपूर्वक होनी चाहिए। बहुत समय से मृत्यु के लिए तैयार रहने वाले व्यक्ति के लिए मृत्यु एक अचानक आघात की तरह न होगी, क्योंकि वह पूर्व से ही इसके लिए तैयार रहता है, उसे मृत्यु केवल कपड़े बदलने की भाँति प्रतीत होगी। इसके विपरीत जो व्यक्ति मृत्यु के प्रश्न से बचता है, मृत्यु उसके निकट आती है, तो अचानक ही वह घबरा जाता है और व्याकुल हो उठता है। मृत्यु एवं अनित्यता का सार इस प्रकार कहा गया है -

*पहले तो निवारण करो अकुशल कर्मों का*

*तथा आत्मा का मध्य में*
*अंत में समस्त कुदृष्टि प्रहाण हो*
*बुद्धिमान वही है जो उक्त क्रम से परिचित हों।।*

बौद्ध दर्शन में विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों का विभाजन पंच स्कंधों में किया है। पंच स्कंधों के अंतर्गत रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान स्कंध की सत्ता को माना गया है। जबकि वेदांत दर्शन में पंच महाभूतों से विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों की रचना मानी गई है। बौद्ध दर्शन की मान्यता है कि पंच स्कंधों से परे किसी जीव की सत्ता नहीं है। सभी जीव, मनुष्य पंच स्कंधों से ही निर्मित हैं। मृत्यु यदि सामान्य है तो क्रमबद्ध रूप से पंच स्कंधों का क्षय होगा और मृत्यु किसी दुर्घटना से हुई है तो सभी पंच स्कंधों का क्रमबद्धता का चरण शीघ्रता से पूर्ण होगा। मृत्यु की वास्तविक प्रक्रिया के मध्य समस्त उपादान स्कंध धीरे-धीरे लय को प्राप्त होते हैं।

प्रथम चरण में स्कंधों का विघटन एवं अवसान होता है। सबसे पहले रूप स्कंध, जिसमें भूत (पृथ्वी) आदि तत्त्व शामिल हैं, उसका विघटन शुरू होता है। पृथ्वी धातु अपनी शक्ति खो देती है, क्योंकि वह चेतना का आधार बने रहने से असमर्थ हो चुकी होती है। फलत: शरीर में जलतत्त्व में चेतना का आधार बने रहने की क्षमता अधिक हो जाती है। इस प्रक्रिया में पृथ्वी तत्त्व का जल तत्त्व में विलय हो जाता है, इसके बाह्य लक्षण के रूप में अंगों पर यह प्रभाव दिखायी देता है कि वे अधिक पतले, निर्बल एवं कमजोर हो जाते हैं और शरीर का फुर्तीलापन, ताजगी की शक्ति भी क्षीण हो जाती है।

दूसरे चरण में वेदना स्कंध (प्रतीकभूत शक्ति तत्त्व वायु) का विघटन होता है। प्राण और वायु तत्त्व की शक्ति क्षीण हो जाती है। फलत: अग्नि तत्त्व जो ऊष्मा प्रदान करता है, उसकी सामर्थ्य बढ़ जाती है। इसके बाह्य लक्षण के रूप में शरीर के तरल तत्त्वों का सूखना शुरू हो जाता है, मुँह सूखने लगता है, आँखों में तरल द्रव्य की कमी हो जाती है। इस प्रकार वायु तत्त्व भी क्षीण हो जाता है।

तृतीय चरण में संज्ञा स्कंध(प्रतीक भूत शक्ति तत्त्व तेज) का पतन होता है, इस अवस्था में अग्नि तत्त्व की सामर्थ्य चेतना को बनाये रखने में लुप्त हो जाती है। शरीर की तेजता, उष्णता लुप्त हो जाने से ऊष्मा कम हो जाती है, फलत: स्मृति क्षीण हो जाती है। इस प्रकार संज्ञा स्कंध क्षीण होता है।

चतुर्थ चरण में संस्कार स्कंध का विघटन शुरू होता है, उस समय चेतना के आधार के रूप में प्राण और वायु तत्त्व की सामर्थ्य क्षीण हो जाती है। इस अवस्था का लक्षण बाह्य रूप में यह दिखायी देता है कि- दिल का धड़कना बंद हो जाता है, साँस की गहराई का पता नहीं लगता, साँस रुक रही होती है, इस स्थिति को लोग प्राय: मृत्यु समझते हैं, परंतु मानसिक चेतना शेष रहती है, यही मृत्यु की अवस्था है। इस अवस्था से मनुष्य पुनर्जीवन की अवस्था को पुन: प्राप्त नहीं कर सकता, यही जीवन की अंतिम अवस्था है। अंतिम स्कंध विज्ञान स्कंध है। बौद्ध ग्रंथों में अनेक प्रकार से विज्ञान स्कंध का निरूपण किया गया है। मृत्यु की प्रक्रिया में जब सभी प्रकार की चेतनाएँ यथा इंद्रिय, चक्षु, श्रवण आदि क्षीण हो जाती है, तब मनुष्य के अंदर प्रभास्वरता का उदय होता है, यह आभा चित्त कहलाता है। इसकी उपमा शरद चंद्रमा की ज्योति से की जाती है, जो आकाश में प्रकाशित होती है। यह समस्त सत्व में अनादिकाल से अनंतकाल तक प्रत्येक जीवन में स्थिर रहता है।

बौद्ध धर्म में मृत्यु को एक धार्मिक संस्कार माना गया है, जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है। इसलिए स्वाभाविक बातों की भाँति मृत्यु भी एक प्राकृतिक धर्म है। ।

कोई भी व्यक्ति जब मरणासन्न अवस्था में होता है तो उसके निकट सम्बन्धीजन को आसपास से कोई भिक्षु या अन्य कोई धर्म-पाठ सुनाने वाला उपलब्ध हो, उसे आदर के साथ बुलाकर ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि मरणासन्न व्यक्ति को, तथा अंतिम समय पर उपस्थित उसके सगे-सम्बन्धीजनों को मृत्यु का भान एवं धर्मपाठ को सुनने का अवसर मिल सके। मृत्युपाठ मरणासन्न व्यक्ति की मानसिक शांति के लिए सुनाया जाता है। ऐसे अवसर पर प्राय: परित्राण पाठ एवं अनित्य पाठ सुनाते हैं।

मृत्यु जीवन की प्रकृति का अंत है। यह मनुष्य के जीवन का अंतिम संस्कार है। हिन्दू जलाने का आग्रह करते हैं, मुसलमान गाड़ने का। बौद्धों के लिए जलाना एवं गाड़ना दोनों ऐच्छिक है, यह प्रश्न धार्मिक से अधिक आर्थिक है, जो जला सके वे जलायें, जो जला न सकें, उन्हें गाड़ने की व्यवस्था करना चाहिए। बौद्ध मत में

प्राचीन काल से ही मृतक को जला देने की प्रथा को अपनाया गया था, परंतु मृतक को गाड़ने एवं पानी में बहाने की प्रथा वर्जित नहीं थी।

इस अवसर पर मृत व्यक्ति के पारिवारिक जन सामर्थ्य के अनुसार कुछ श्वेत वस्त्र दान कर सकते हैं, यह 'मृतक वस्त्र दान' कहलाता है। निम्न वचनों को बोलकर शोक संतप्त परिवार को शोक रहित रहने की भावना करें- 'सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न होकर नष्ट होना उनका स्वभाव है, उत्पन्न होकर वे शांत हो जाते हैं, उनका सर्वथा शांत होना परम सुखदायक है।'

इस अनित्य देशना के पश्चात् मृतक का शरीर श्मशान या भूमिगत करने के स्थान पर ले जाना चाहिए। साथ जाने वाले स्त्री-पुरुष गंभीरतापूर्वक गमन करते हैं। वे धीरे-धीरे *'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि'* कहते हुए जाते हैं। श्मशान पहुँचने पर बौद्ध भिक्षु या धर्माचार्य पुनः त्रिशरण व पंचशील प्रदान करेंगे और अनित्य भावना का उपदेश करेंगे। यदि घर पर मृतक व्यक्ति के लिए वस्त्र या धन का दान न किया गया हो तो श्मशान भूमि पर भी दान किया जा सकता है।

इसके बाद मृत व्यक्ति के किसी निकटतम सम्बन्धी के हाथ में एक जल भरा पात्र दिया जाता है, जिससे जलधारा बाँधकर मृतक के चारों ओर उड़ेलता है। विधिकर्त्ता तीन बार बोलता है- ऊँची जगह से बहने वाला पानी नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार यहाँ जो दानादि पुण्यकर्म किया है, वही मृत व्यक्ति के साथ जाये।

विधिकर्त्ता यह गाथा भी तीन बार बोले- इदं नो जातीनं होन्तु सुखिता होन्तु जातओ अर्थात् 'यह पुण्य कर्म हमारे मृत व्यक्ति ने किया है, हमारा मृत स्व. बन्धु उससे सुखी होवे।'

श्मशान भूमि पर शव को चिता पर लिटाकर चंदन, कपूर-पुष्प मालाओं से सजाकर, सुगंधित वस्तुओं के साथ अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। बौद्ध लोगों की चिता चैत्य के निकट बनायी जाती थी। स्वयं भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण के पश्चात् दाह कर्म किया गया था। दाह क्रिया से मृत शरीर को दग्ध किया जाता है, इसमें अग्नि को इतना तेज स्वरूप में प्रज्ज्वलित किया जाता है कि केवल अस्थियाँ ही शेष रह जायें।

दाह कर्म के पश्चात् शव के साथ गये हुए सभी व्यक्ति स्नान करते हैं, जिसे मृत्यु स्नान कहा जाता है। इस स्नान के बाद ही लोग गाँव व अपने घर में प्रवेश करते हैं। मृतक प्राणी के घर पर लोग उसके गुणों का स्मरण कर तथा भोजन आदि ग्रहण न करके शोक प्रकट करते हैं।

दाह क्रिया के पश्चात् तीसरे दिन अस्थि चयन किया जा सकता है। महान व्यक्तियों की अस्थियाँ सम्मानार्थ सुरक्षित रखी जाती हैं। अन्य जनों की अस्थियों को पास की किसी नदी आदि में प्रवाह किया जाता है। तथागत भगवान बुद्ध की अस्थियों को विभाजित कर उन पर दस स्तूपों का निर्माण किया गया था। महापुरुषों की अस्थियों पर स्तूप का निर्माण किया जाता है, स्तूप की पूजा भी होती है। माला गंध एवं पुष्प चढ़ाकर उनका अभिवादन किया जाता है।

**संदर्भ**


1. धम्मपद/128 पापवग्गो/13, अनु.भिक्षु धर्मरक्षित
2. संयुक्त निकाय/पहला भाग/3/3/2 भिक्षु जगदीश काश्यप एवं भिक्षु धर्मरक्षित
3. मिलंद प्रश्न/मृत्यु के हाथों से बचना, अनु.भिक्षु जगदीश काश्यप
4. अभिधर्म कोश/द्वितीयकोश स्थान/45ए, अनु. आचार्य नरेन्द्र देव
5. आचार्य शांतिदेव कृत बोधिचर्यावतार/पाप देशना 41-42, अनु. कर्मा मौनुलम
6. आनंद की ओर, प्रवचनकार- परम पावन दलाई लामा, अनु.परमानंद शर्मा
7. करुणा, स्फुटता, अंतर्दृष्टि- दलाईलामा के प्रवचन, अनु. परमानंद शर्मा
8. बौद्ध जीवन पद्धति, लेखक- भदंत आनंद कौसल्यायन
9. बौद्ध वंदना सुत्त संग्रह, धम्मचारी विमलकीर्ति

# मृत्यु संस्कार : सांस्कृतिक पक्ष

डॉ. वी. के. शर्मा

व्यक्ति का जन्म से मृत्यु तक अटलचक्र है, जिसके अन्तर्गत वह जीवन जीता है और कुछ समय बाद वह मृत्यु को प्राप्त होता है। यह निरंतर और शाश्वत क्रम है। मृत्यु सबसे दु:खदायी घटना है, जो व्यक्ति के जीवन के अन्त का पर्यायवाची है। जीव की मृत्यु कब होगी तथा कैसे होगी, इसका अनुमान लगाना लगभग असम्भव है। ज्योतिष विद्या तथा ग्रह–नक्षत्रों के अनुसार मृत्यु का कुछ सीमा तक अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु उसका निश्चित काल नहीं जाना जा सकता, क्योंकि ज्योतिष गणना आधार ज्योतिषी के अनुभव पर आधारित है कि इस गणना का फल कहाँ तक सत्य है?

शास्त्रों तथा परम्पराओं के अनुसार मनुष्य शरीर के अन्त के संस्कार को अंत्येष्टि कर्म कहा जाता है। इसमें मृतक का शरीर पूरी तरह पंचतत्त्वों में विलीन होता है। हमारे पौराणिक तथा धार्मिक ग्रन्थों और ऐतिहासिक कथाओं में मृत्यु का वर्णन कई प्रकार से किया गया है। साधारणतया माना जाता है कि जब व्यक्ति की हृदयगति रुक जाती है तथा उसका रक्तचाप या नाड़ी का कंपन बंद हो जाता है, तब मृत्यु होती है। कुछ अवसरों पर हृदयगति इतनी मंद होती है कि साधारण व्यक्ति को लगता है, वह बंद है। स्थायी तौर पर हृदयगति बंद होने पर मृत्यु होती है। वास्तव में मस्तिष्क द्वारा नियन्त्रित हृदयगति जब बंद होती है, तभी व्यक्ति को मृत घोषित किया जाता है। इसमें कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इसे वैधानिक मृत्यु कहा जाता है। इस समय मृतक की आँखें बंद कर देनी चाहिए। मृत्यु का कारण कुछ भी हो सकता है। परन्तु यह बात निश्चित है कि इस शरीर का अन्त अवश्य होगा और यही मृत्यु है।

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उसका अपना निजी पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन है। इन चारों प्रकार के जीवन को वह संसार में जीता है। हम जिस समाज में रहते हैं, जिसके लिखित और अलिखित नियम हमने स्वयं ही बनाये हैं। यह नियम हमें

अनुशासन में रहने को विवश करते हैं और हम अपेक्षा करते हैं कि हर व्यक्ति इन नियमों का पालन करेगा, परन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिए समाज में प्राणियों के आचार-विचार और व्यवहार में भिन्नता हो जाती है, जो हर व्यक्ति को उसकी पहचान देती है।

हम किसी अन्जान व्यक्ति से मिलते हैं, उससे परिचय होता है, कुछ समय साथ में व्यतीत करते हैं, इससे आपस में कुछ लगाव हो जाता है। परिवार में रहने वाले व्यक्ति का अपने परिवार के साथ सम्बन्ध रहता है, जो जितना समीप होगा या जिसका जितना सम्बन्ध होगा, वह उतना ही घनिष्ट होगा। इस घनिष्टता की सीमा या गहराई उस व्यक्ति के आपसी सम्बन्धों पर आश्रित होती है। जहाँ 'खून का रिश्ता' हो जाता है, वहाँ यह सम्बन्ध और भी गहरा हो जाता है। इस सम्बन्ध को हम लगाव भी कह सकते हैं। एक-दूसरे को जानने या उसके दु:ख-सुख का साझेदार होना स्वभाविक है। इस सम्बन्ध को हम पारिवारिक सम्बन्ध कहते हैं। इसमें सगे-सम्बन्धी सभी आ जाते हैं। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, बहिन-भाई, ताया-ताई, चाचा-चाची, दादा-दादी, नाना-नानी, मामा-मामी, दामाद, बहू, पौत्र-प्रपौत्र, नाती-नातिन इसमें प्रमुख हैं। इन रिश्तों के बाद अन्य पारिवारिक रिश्ते दूर के माने जाते हैं। आजकल सीमित परिवार होने के कारण बहुत से रिश्ते ही नहीं रहे। नई पीढ़ी के अनुसार अब न्यूक्लियर परिवार होने के कारण आपसी सम्बन्धों में और भी कमी आ रही है।

सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक कार्यों में व्यस्त होने के कारण व्यक्ति के सम्बन्धों की सीमा बढ़ जाती है। उसकी पहचान अधिक हो जाती है और उसके व्यवहारिक सम्बन्ध बढ़ जाते हैं। इन्हीं घनिष्ट सम्बन्धों के कारण जब व्यक्ति की मृत्यु होती है तो लोगों में शोक-दु:ख के भाव उत्पन्न होते हैं। मृतक के साथ जिसने जितना समय बिताया और जैसा व्यवहार किया या पाया है, उसी के अनुसार उसे शोक होता है। सामान्यतया परिवार वालों को उस व्यक्ति के जाने का दु:ख अधिक होता है। अपेक्षाकृत समाज, राजनीति या अन्य क्षेत्र के व्यक्तियों के दु:ख में ऐसा देखा गया है कि अब शोक केवल प्रदर्शन के लिए किया जाता है।

धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं के अनुसार व्यक्ति को मृत घोषित करने का काम प्राय: वैद्य, डॉक्टर अथवा अनुभवी वरिष्ठ व्यक्ति का होता है। व्यक्ति के अन्तिम समय का ज्ञान होते ही उसे एक दरी या चादर बिछाकर भूमि पर लिटा दिया जाता है। चारपाई या बिस्तर पर मृत्यु होना अच्छा नहीं माना जाता। ऐसा कहा जाता है कि ऐसी मृत्यु पर मृतक को नरक में जाना होता है। नरक में दु:ख भोगने पड़ते हैं। जिस चारपाई और बिस्तर पर मृत्यु होती है, उसे नष्ट कर दिया जाता है। क्योंकि उससे रोग के फैलने का भय रहता है तथा वातावरण दूषित होता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मृतक को चारपाई पर सम्भालना कठिन होता है। चारपाई और बिस्तर पर व्यय भी अधिक होता है।

मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे व्यक्ति का मुख या सिर घर के मुख्य द्वार से विपरीत रखा जाता है। उसके पैर द्वार या बाहर की ओर होते हैं। सामान्यतया उत्तर दिशा की ओर सिर और दक्षिण की ओर पैर रखे जाते हैं। हमारी शारीरिक रचना के यह अनुकूल होता है, क्योंकि उत्तर से दक्षिण की ओर ढलान होती है।

इस समय गीता का पाठ, मुख्यतया अट्ठारहवें अध्याय का पाठ किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को यह याद दिलाना है कि अब तुम संसार से विरक्त हो गए हो और तुम्हारा अंत समय आ गया है। भगवान् का स्मरण करो और अच्छे विचारों से अपनी देह त्यागो। ऐसा प्राय: हिन्दुओं में किया जाता है। ईसाई-बाइबल और मुसलमान-कुरान की आयत का पाठ करते हैं। कुछ स्थानों पर इस समय व्यक्ति के सिरहाने की ओर दीया जलाया जाता है, ताकि उसे स्वर्ग का मार्ग दिखाई दे। वैज्ञानिकों के अनुसार वातावरण की शुद्धि के लिए और प्रकाश के लिए दीया जलाया जाता है। दीया यहाँ ऊर्जा का द्योतक है।

ऐसे व्यक्ति के मुँह में गंगा जल या किसी अन्य पवित्र नदी का जल डाल दिया जाता है। गंगा जल सबसे उत्तम माना गया है। इस जल में ओजोन गैस की अधिकता होती है, इसलिए यह शोधन का कार्य अधिक करता है। सामर्थ्य अनुसार दान करना भी ऐसे समय में अच्छा माना जाता है। गोदान, वस्त्रदान, अन्नदान प्राय: किया जाता है। धार्मिक और अनाथालय जैसे संस्थानों के लिए कुछ धन, वस्त्र, अन्न आदि दान किए जाते हैं। दान की जाने वाली वस्तुओं पर मृत्यु शैय्या पर पड़े व्यक्ति का हाथ लगवाना होता है। यदि यह सम्भव न हो तो उसकी ओर से परिजन यह कार्य करते हैं। यह इस बात की ओर इशारा करता है कि व्यक्ति ने मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए भी औरों का ध्यान रखा है।

प्राय: सभी धर्मों में मृतक के शरीर को साफ करने के लिए उसे स्नान करवाया जाता है। पुरुष को पुरुष तथा स्त्री को स्त्रियाँ स्नान करवाती हैं। इस स्नान के लिए साफ जल आवश्यक है। कुछ स्थानों पर गंगा जल मिश्रित जल लिया जाता है। मृतक के शरीर से अन्य अवांछनीय पदार्थों को हटाकर शरीर को साफ किया जाता है। सामर्थ्य अनुसार किसी सुगंधित पदार्थ का लेप लगाया जाता है, ताकि मृतक के शरीर से कोई दुर्गन्ध न आए।

सुगन्धित लेप प्राय: चन्दन का लगाया जाता हैं, बाद में मृतक को नए वस्त्र पहनाए जाते हैं। कुछ स्थानों पर ये वस्त्र सिले नहीं होते, केवल कपड़ा ही होता है। मृत शरीर को वस्त्र पहनाना कठिन होता है तथा कई परिस्थितियों में उसके शरीर में ऐंठन आ जाती है, अत: हाथ-पैर मोड़ना या हिलाना सम्भव नहीं होता। इसलिए शव को कपड़े से लपेट दिया जाता है। शव के पास धूप, अगरबत्ती या अन्य सुगन्धित पदार्थ जलाया जाता है। इससे वातावरण की दुर्गंधता का नाश होता है।

व्यक्ति की मृत्यु होने पर सामान्य परिस्थितियों में कोई भी परिवार का सदस्य या अन्य सम्बन्धी उस व्यक्ति की मृत देह को घर में नहीं रखना चाहता। मृत देह को शीघ्रातिशीघ्र घर से बाहर करना चाहते हैं। मनुष्य शरीर या जीवित प्राणी जैविक पदार्थों के योग से ही निर्मित होता है। इसमें माँस-पेशियाँ, हड्डियाँ, रक्त एवं कुछ अन्य स्राव होते हैं। जैविक पदार्थों के साथ-साथ कुछ लवण और खनिज पदार्थ भी होते हैं। जैसा भोजन उस व्यक्ति ने जीवन भर किया होगा, उसी के अनुसार उसके शरीर में खनिज तत्त्वों का होना स्वभाविक है। जब तक व्यक्ति जीवित है, सामान्य शारीरिक और रासायनिक क्रियाएँ शरीर में सम्पन्न होती रहती हैं, जिसके कारण शरीर से व्यर्थ और कुछ अवांछनीय या अनावश्यक पदार्थ मल, मूत्र, पसीना आदि के रूप में शरीर से बाहर निकलते रहते हैं, इसलिए शरीर से दुर्गन्ध नहीं आती। इसके विपरीत मृत व्यक्ति के शरीर में सभी विघटन क्रियाएँ तीव्र हो जाती हैं, जिस कारण शरीर से दुर्गंध आनी शुरू हो जाती हैं। मल-मूत्र पर शरीर का नियन्त्रण न होने से यह स्वत: ही शरीर से बाहर निकल आते हैं।

यदि व्यक्ति रोग से ग्रसित हो या चोटिल हो तो प्रयुक्त औषधियों के कारण भी दुर्गंध आने लगती है तथा जीवाणु और कीटाणुओं के फैलने का भय रहता है। ये दोनों ही आक्रमण करते हैं, जिस कारण रासायनिक और जैविक विघटन तीव्र गति से होता है। इस प्रकार शरीर से गंध आती है। घर के अन्य व्यक्तियों को रोग से बचाने के लिए तथा वातावरण को शुद्ध रखने के लिए शरीर को तुरन्त घर से बाहर किया जाना परम्परागत है।

शव को लिटाते समय सीधा लिटाया जाता है। बाजू और टाँगें सीधी रखी जाती हैं। अन्यथा मृत शरीर में ऐंठन आ जाती है। यदि शरीर का कोई अंग यथा बाजू, टाँग, पैर या हाथ सही दशा में न हों तो बाद में समस्या हो जाती है। यदि मृत शरीर अर्थात् शव को लम्बे समय के लिए रखना हो तो दोनों टाँगें सीधी रखकर कपड़े या रस्सी से बाँध दी जाती हैं, ताकि वे मुड़ न पाये। बाजुओं को शरीर से बिल्कुल सटा कर रखा जाता है। कभी-कभी रस्सी या कपड़े से उन्हें शरीर के साथ बाँध दिया जाता है। शवगृह में शव को रखते समय ऐसा करना आवश्यक है अन्यथा शवगृह में शव की टाँगें तथा बाजू ऐंठ कर टेढ़े हो सकते हैं।

पारिवारिक तथा अन्य सम्बन्धियों के दर्शनार्थ मृतक के मुख को कुछ समय के लिए नंगा रखा जाता है। उस समय उसकी दोनों नासिकाओं में रूई लगाई जाती है। इससे नासिका का स्राव रुक जाता है, जिससे दुर्गंध नहीं फैलती। इस समय सभी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार शोक व्यक्त करते हैं तथा दिवंगत आत्मा को अन्तिम प्रणाम करते हैं। यह इस बात का द्योतक है कि हर व्यक्ति का अंत होना है और उसे अन्तिम समय पर शान्त होना चाहिए और यह स्मरण करना चाहिए कि सबका अन्त होना है और हमारा भी ऐसा ही अन्त होगा।

अर्थी पर सफेद कपड़ा या चादर बिछाकर मृतक के शरीर को सीधा रख दिया जाता है। दोनों बाजू और टाँगे सीधी तथा मुँह उत्तर की ओर रखा जाता है। मुँह को छोड़कर पूरे शरीर को नीचे बिछे सफेद वस्त्र में लपेट दिया जाता है और पूरे शरीर को रस्सियों से अर्थी के साथ बाँध दिया जाता है। रस्सियाँ केवल लपेटी जाती हैं। लोगों के दर्शन के लिए मृतक की देह को कुछ समय के लिए अर्थी पर रखा जाता है, ताकि परिवार के सदस्य या अन्य उपस्थित लोग उसके दर्शन कर सकें । बाद में मुँह को ढँक दिया जाता है तथा कुछ सम्बन्धी उस देह पर शॉल आदि डालना शुरू करते हैं। कुछ व्यक्ति फूलों की माला या हार भी चढ़ाते हैं। इन सभी को अर्थी पर रखकर बाँधा दिया जाता है।

लम्बे समय तक जीवन जीकर मृत्यु पाना अच्छा माना जाता है। ऐसी धारणा है कि चिरायु वाला व्यक्ति सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। इसलिए परिवार के सदस्यों को अधिक शोकाकुल नहीं होना चाहिए। मृतक ने संसार में सुख भोगा है और अपने सभी कर्त्तव्य पूर्ण किए हैं।

वयोवृद्ध व्यक्ति के लिए अर्थी को विशेष प्रकार से सजाया जाता है। इसका उद्देश्य उस व्यक्ति को सम्मान देना है, क्योंकि चिरायु होने पर उसके परिवार की अब उसके सामने तीन पीढ़ियाँ हो चुकी हैं। प्रपौत्र आदि सम्पन्न हैं तथा उसने सांसारिक सुख भोग लिए हैं और इस समय वह संन्यासी या वानप्रस्थी है। इस क्रिया को 'बड़ा करना' कहते हैं। सभी व्यक्ति मानते हैं कि जाने वाला व्यक्ति सुखी और समृद्ध है तथा सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर स्वर्ग सिधारा है।

यह यात्रा अन्य यात्राओं से काफी सीमा तक भिन्न है। सामान्य यात्रा सामाजिक तथा पारिवारिक कारणों अथवा धार्मिक और राजनैतिक कारणों से भी हो सकती है। सभी यात्राओं का कोई न कोई उद्देश्य होता है। अर्थी उठाते समय घर से पहले मृतक के पैरों को बाहर निकाला जाता है। साधारणत: व्यक्ति जब घर या किसी कक्ष से बाहर निकलता है तो पहले उसके पैर ही बाहर की ओर निकलते हैं। लोगों को लगे कि व्यक्ति सही प्रकार से विदा हो रहा है। आधे रास्ते या श्मशान के पास जाकर अर्थी की दिशा बदल दी जाती है। अब सिर आगे की ओर और पैर पीछे की ओर कर दिए जाते हैं।

शव यात्रा के साथ गए व्यक्ति प्राय: 'राम नाम सत्य है' या 'हरि का नाम सत्य है' का उच्चारण करते रहते हैं। इसके दो प्रयोजन हो सकते हैं। पहला तो यह कि गंतव्य स्थान तक बोझ उठाना कष्टदायी है, अत: मानसिक तथा शारीरिक बोझ कम हो जाए। दूसरा अन्तिम समय पर भगवान् का नाम लेना शुभ है और हर व्यक्ति को मृत्यु के सत्य को मान लेना चाहिए, ताकि उसके अहम् में कमी हो।

श्मशान घाट या शवदाह गृह प्राय: नगर या ग्राम से दूर जल स्रोत के पास होते हैं। नदियों, नालों, खड्ढों या झीलों के किनारे घाट होते हैं। आजकल ऐसा होना कठिन है। साधारणत: श्मशान स्थल एकल स्थान पर नगर से दूर ही होते हैं। आजकल शवदाह के लिए लकड़ी के साथ-साथ गैस या विद्युत का प्रयोग भी किया जाता है।

शवयात्रा पर जाना सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता है। मृतक की देह को श्मशान घाट तक पहुँचाने में सम्बन्धियों के साथ पड़ोसियों तथा अन्य जान-पहचान वालों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे घर वालों की इस समय हर प्रकार की सहायता करें। घर वाले पहले ही शोक में होते हैं। उन्हें इस कार्य के बारे में कम ही पता होता है, इसलिए पड़ोस के अनुभवी व्यक्ति यह कार्य करते हैं। इससे आपस में भाई-चारे की भावना और एकता का संचार बना रहता है। इसीलिए समाज के कुछ अनकहे बन्धन हैं।

शास्त्रों के अनुसार श्मशान घाट में जहाँ शव को जलाया जाता है, उस स्थान को वेदी बनाना ही कहा गया है। यह स्थान समतल होना चाहिए। इसकी दिशा उत्तर से दक्षिण की ओर होनी चाहिए। सामान्य तल से थोड़ा गहरा रखा जाता है। इसमें ध्यान रखा जाता है कि सिर की ओर वाला किनारा कुछ ऊँचा तथा पैरों की ओर वाला स्थान थोड़ा नीचा रहे। इस स्थान की लम्बाई मनुष्य शरीर के हाथ ऊपर करने पर जितना लम्बा हो, उतनी होना चाहिए। इसी प्रकार इसकी चौड़ाई व्यक्ति के फैले हाथों के बराबर हो। सामान्यतया यह स्थान लगभग चार मीटर लम्बा और एक मीटर चौड़ा होता है। तैयार स्थान पर गोबर या मिट्टी का लेप लगाया जाता है।

पलाश या अन्य प्रकार की शीघ्र जलने वाली लकड़ी के बड़े-बड़े गट्टुओं या तीन से पाँच फुट लम्बे टुकड़ों की एक तह बिछा दी जाती है। पहले सीधा फिर उसके ऊपर विपरीत दिशा में एक तह और लगाई जाती है। यह लकड़ियाँ हिलनी नहीं चाहिए। लकड़ियों के बीच थोड़ा खाली स्थान रखना चाहिए, ताकि वायु का संचार हो। ऐसी दो या तीन तहें लगाई जाती हैं। मृत शरीर को इस चिता के मध्य में रखा जाता है। इसके दोनों ओर लकड़ी के गट्टू लगा दिए जाते हैं। बाद में उनके ऊपर चौड़ाई में लकड़ी के गट्टू रख दिए जाते हैं। इस प्रकार लकड़ी के गट्टुओं की तीन या चार तह लगा दी जाती है। सभी गट्टू इस प्रकार लगाए जाते हैं कि वे गिरे नहीं और उनमें वायु का संचार हो सके। सूखा घास, लकड़ी के छोटे टुकड़े और चन्दन का बुरादा या अन्य लकड़ी का बुरादा भी आवश्यक होता है। यह आग को जलाने में सहायक रहता है।

इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि लकड़ियाँ सूखी, रोग व कीट रहित और बिना कील के होनी चाहिए।

शव को पूर्णतया जलाने के लिए ऐसी सामग्री का प्रयोग किया जाता है, जिससे न तो धुआँ हो और न ही कोई दुर्गंध हो। पलाश, आम, गूलर जैसे पेड़ की लकड़ी ली जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में यह प्रथा है कि हर घर से चिता के लिए लकड़ी लाई जाती है। इससे मृतक के परिवार पर लकड़ी इकट्ठी करने का बोझ नहीं रहता।

चिता को जलाते समय एक चूल्हा जलाया जाता है, जहाँ से आग लेकर चिता को जलाया जाता है। घी को गरम कर उसमें पहली लकड़ी के लम्बे टुकड़े के छोर पर रस्सी या कपड़ा बाँधकर भिगोया जाता है और आग लगाई जाती है इस जलती मशाल को मन्त्रों के उच्चारण के साथ चिता को अग्नि दी जाती है। आग पहले सिर की ओर तथा बाद में पैरों की तरफ लगाई जाती है। मशालें चार बनाई जाती हैं। प्रत्येक मशाल से चिता को चारों ओर से आग दी जाती है। यह कार्य प्राय: व्यक्ति के पुत्र या प्रपौत्र द्वारा किया जाता है।

चिता में अग्नि देने के उपरान्त चिता की चार बार परिक्रमा कन्धे पर मिट्टी का घड़ा लेकर करते हैं और अंत में पैरों की ओर खड़ा हो जाता है। चिता की ओर मुख कर घड़ा पीछे की ओर फेंक दिया जाता है। इस घड़े में छोटा सुराख रखा जाता है, जिससे चिता के पास वाली धरती गीली हो जाती है। इस क्रिया का प्रयोजन यह हो सकता है कि चिता में लकड़ी की आग से कुछ टुकड़े बाहर की ओर गिर सकते हैं। ये टुकड़े किसी को हानि न करें तथा गीले स्थान पर ही गिरें । स्थान गीला होने के कारण आग के कारण अन्य व्यक्ति दूर ही खड़े होते है।

जब आग पूर्णतया सारी चिता को लग जाती है, तब कपाल-क्रिया आरम्भ की जाती है। अर्थी के एक लम्बे बाँस को सिर की ओर से मृतक के सिर पर रखकर जोर से प्रहार किया जाता है। सिर के अन्दर ही मस्तिष्क होता है। यह शरीर का सबसे कठोर भाग होता है। साधारणत: इस पर चोट नहीं लगती। इस खोपड़ी को तोड़ने के लिए ही कपाल-क्रिया सम्पन्न की जाती है। यह कार्य निकटतम सम्बन्धी द्वारा इसलिए किया जाता है, ताकि उसे इस बात का बोध हो जाए कि वह सभी कार्य सम्पन्न कर रहा है, वह भी बड़े सन्तोष से। अपने परिचित को अग्नि देना एक अनुष्ठान है।

चिता की आग जब पूर्णत: चरम सीमा पर होती है। सभी उपस्थित व्यक्ति चन्दन की छोटी-छोटी लकड़ियाँ और कुछ प्रज्ज्वलन पदार्थ चिता पर डालते हैं। यह उनकी तरफ से मृत व्यक्ति के लिए अन्तिम भेंट समझी जाती है।

# मृत्यु संस्कार

डॉ. देवदत्त द्विवेदी

प्राचीन काल से संस्कार समाज में एक संस्था के रूप में कार्य करते आ रहे हैं। संस्कार मानव के मानस पर सचेतन एवं अचेतन दोनों अवस्थाओं में सक्रिय रहते हैं। समाज में प्रचलित मृत्यु संस्कार के कर्म-काण्ड वैदिक एवं लौकिक पद्धति का मिला-जुला स्वरूप होते हैं, इनमें स्थानीय एवं जातीय प्रथायें भी सम्मिलित रहती हैं। ऋषि-मुनियों (पूर्वजों) द्वारा बहुत सोच-विचार कर बनाये गये इन मृत्यु संस्कारों का उद्देश्य एवं अर्थ समझना जरूरी हैं, क्योंकि इनमें लोक मान्यताओं के साथ अध्यात्मिकता व वैज्ञानिकता छुपी हुई है। धर्मशास्त्रों के अनुसार मृत्यु संस्कार प्रेतात्मा को पवित्र बनाकर तृष्णा-वासना से मुक्त करके अध्यात्मिक बल बढ़ाती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि 'मृत्यु संस्कार धार्मिक मान्यताओं की कसौटी पर कसा गया भावनात्मक चमत्कारी अध्यात्म है।'

मृत्यु संस्कारों के साथ भावनाएँ, संवेदनाएँ और आस्थाएँ जुड़ी होती हैं। इसी से इनका प्रभाव जीवात्मा पर तत्काल फलित होता है। कुछ कर्म तत्काल फल देते हैं, जैसे मदिरा पीते ही नशा आ जाता हैं, उसी तरह स्वच्छ मन व सद्भाव से विधिपूर्वक किये गये संस्कार तत्काल फलदायी होते हैं। मृत्यु संस्कारों की क्रिया पद्धति में भले ही जातीयता या क्षेत्रीयता के आधार पर भेद-विभेद दिखाई पड़ते हों, परन्तु इनका मूल उद्देश्य प्रेतात्मा का कल्याण ही होता है। इसीलिए पारम्परिक पद्धति में अधिकांश जातियों के कई अनुष्ठानिक लोकाचार मिलते-जुलते हैं। मनोवैज्ञानिक डॉ. ब्राउन का मत है कि 'दूषित संस्कारों के निवारण हेतु संस्कार किया जाना आवश्यक हैं।' शास्त्रों में भी कहा गया है कि संस्कार जन्म-जन्मांतरों तक मनुष्य का पीछा करते हैं। जिस प्रकार वायु जहाँ से गुजरती है, वहाँ की गंध भी अपने साथ ले जाती है, वैसे ही जीवात्मा भी जिस देह और वातावरण को त्यागती है, उसके संस्कार ग्रहण करके जाती है।

मृत्यु से पहले मरणासन्न व्यक्ति की सुखद मृत्यु के लिये कुछ कर्म किये जाते हैं, जिनमें उसकी अंतिम इच्छा पूछकर यथासम्भव पूरी करने का प्रयत्न करते हैं। परिवार व अन्य प्रियजनों से मिलना-मिलाना होता है। एक तरह से दिल-दिमाग को पूर्ण

सन्तुष्ट एवं खुश करने का प्रयास किया जाता हैं, जिससे व्यक्ति अंत समय में मानसिक संताप से मुक्त होकर मृत्यु का आलिंगन करते हुए पूर्ण संतुष्ट भाव से विदा हो सके।

मृत्यु पूर्व के सभी संस्कार वातावरण परिवर्तन का काम करते हैं। चूँकि व्यक्ति के अंत:करण की संरचना दैवी-तत्त्वों से हुई है, अत: उन्हीं दैवी संस्कारों का प्रभाव बढ़ाने एवं सांस्कारिक मोहमाया को छुड़ाने के लिए ही मरणासन्न व्यक्ति को गीता सुनाना, गंगाजल पिलाना, अन्न-दान, गौ-दान कराना आदि धार्मिक कार्य किये जाते हैं। दान में जहाँ प्रायश्चित व पाप निवारण का भाव होता है, वहीं गीता आदि सुनाने से मरणासन्न के मन का शोधन होता है। धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि-

*महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत्।*

मृत्यु के बाद स्वर्गीय सुख-शांति की कामना की जाती है, किंतु जब तक व्यक्ति का मानसिक मल नहीं धुलता, स्वर्ग सम्भव नहीं हो पाता है। पौराणिक कथा है कि कैसे केवल नारायण-नारायण पुकारने पर अजामिल जैसे पापी का भाव परिवर्तन हुआ, पशु से इंसान-इंसान से देवता बन गया। शास्त्रों में मरणासन्न अवस्था के समय किये जाने वाले संस्कारों को महत्त्वपूर्ण पवित्रीकरण की क्रिया बताया गया है। जैसे गंदगी से सने सुन्दर बच्चे को भी कोई गोद में नहीं उठाता है, उसी दृष्टि से परमात्मा की शरण में जाने से पूर्व जीवात्मा को साफ-स्वच्छ बनाने की कामना से ही सभी मृत्यु संस्कार किये जाते हैं।

शव को गंगादि के पवित्र जल से स्नान कराकर मुख में छोटा सा सोने का टुकड़ा रखते हैं, फिर पूरे शरीर पर घृत (शुद्ध घी) का लेप करके वस्त्र, माला, चंदन, सुगन्धित द्रव्यों से विभूषित करते हैं। यदि शरीर के किसी अंग में कोई रक्षा सूत्र, धागा वगैरह बंधा हो तो उसे काटकर बंधन मुक्त करके शव का यथा विधि संस्कार किया जाता है। बाँस की चौखटी की सभी लकड़ियाँ कुशा (कॉस) की रस्सी (जिसे कसौरी कहते हैं) से ही बाँधी जाती हैं। इसके बाद कुशा बिछाकर शव को लिटाया जाता है। बाँस को वंश (कुल) का प्रतीक माना गया है, इसीलिये अर्थी को जलाया नहीं जाता है। मृत्यु संस्कार करने वाला ज्येष्ठ पुत्र या अन्य कोई सपिण्डी (सपिण्डी सात पीढ़ी तक माना गया है) जिसे संस्कार करना हो, सिर के बाल, दाढ़ी, मूछ बनवाकर स्नान करके धोती पहिनकर नंगे पाँव शव स्थान पर पहुँचता है। संस्कारकर्ता तेरहवीं (तेरा दिन) तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये भूमि पर शयन एवं नंगे पाँव रहता है।

मृत्यु स्थान पर ही पहला पिण्डदान मृतक के नाम व गोत्र से प्रदान किया जाता है। जौ (जवा) के आटे से बने इस पिण्ड को विधिपूर्वक कन्ठ पर रखा जाता है। इससे भूमि और भूमि के अधिष्ठाता देवता प्रसन्न होते हैं। पिण्ड दान के मंत्रों व शब्दों से अखिल ब्रह्माण्ड में संव्यक्त पिण्ड के सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों से गठबंधन की प्रक्रिया सम्पादित होती है। हविष्यान्न में सम्मलित जौ को संस्कारित पवित्र आहार माना गया है। यह शक्तिवर्धक एवं सर्वत्र उपलब्ध होता है, इसी से जौ के आटे से ही पिण्ड दान किया जाता है। इसके बाद शव को अर्थी पर लिटाकर कफन उढ़ाते हैं, कफन पर भी कुशा बिछाकर कुशा की रस्सी के बंधन लगाये जाते हैं। कुशा पवित्र एवं अधिक ज्वलनशील होती है, जैसे देव कर्म के लिए दूर्वा शुभ मानी गई है, उसी तरह प्रेतकर्म के लिए कुशा शुभ माना गया है। अर्थी के साथ एक हण्डी में अग्नि व एक मिट्टी के घड़े में पानी भरकर ले जाते हैं। शव यात्रा में अंतिम न्योछावर एवं दान की भावना से अर्थी पर मेवा, मखाने एवं रुपया-पैसा फेंके जाते हैं। आगे चलकर पीपल के नीचे या आधे मार्ग में पहुँचकर शव को विश्राम कराकर पीपल वास कराया जाता है। पीपल में सभी देवताओं का वास माना गया है। गरुण पुराण में कहा गया है कि इस पिण्ड दान से सभी दिशाओं में रहने वाले प्रेत-पिशाच आदि उस होतव्य देह के योग्यत्व को क्षति नहीं पहुँचाते हैं।

अग्नि संस्कार क्यों? यह अंतिम महत्त्वपूर्ण संस्कार है। जीवात्मा स्थूल शरीर से निकलने पर तत्काल एक 'वायवीय' शरीर ग्रहण करता है, जो वायु प्रधान होता है, जिसे प्रेत कहा गया है। इस समय वह अधिक चलने वाला हल्का जीव बन जाता है। स्थूल शरीर में अधिक समय तक रहने के कारण उस शरीर से उसका विशेष लगाव हो जाता है, जिससे जीवात्मा बारम्बार वायु प्रधान शरीर के द्वारा पूर्व स्थूल के सूक्ष्म अवयवों की तरफ रहने की चेष्टा करता रहता है।

मृतक (जीव) की वासना जमीन में गड़े हुये या कहीं पड़े हुए पूर्व शरीर पर न जाये, और उससे उसकी मुक्ति हो जाये, इसीलिये आदिकाल से मृत शरीर को जलाने की परम्परा चली आ रही है। जलाने (अग्नि संस्कार) से मृत देह का पार्थित तत्त्व जलकर रूपान्तर ग्रहण करता है। अग्नि संस्कार का उद्देश्य ही ये

है कि मृत देह के पाँचों तत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) अपने-अपने अवयवों में मिल जायें। अग्नि पवित्र करती है। अग्नि को सौंपने से अधिक शुद्ध रूप में शरीर के तत्त्व वितरित हो सकेंगे और प्रकृति चक्र में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं हो सकेगा।

श्मशान में पहुँचकर दाहस्थान (भूमि) का संशोधन करके, गोबर से लीपकर पवित्र करके लकड़ियों की चिता बनाई जाती है। शव को चिता पर लिटाने से पूर्व शव स्थान पर ही 'प्रेत' नामक पिण्ड दान किया जाता है। इसके बाद शव को चिता पर लिटाकर 'साधक' नामक पिण्ड दान करके शव पर व्यवस्थित ढंग से लकड़ियाँ रखी जाती है। तत्पश्चात् संस्कारकर्त्ता द्वारा मुखाग्नि दी जाती है। चिता को अग्नि देने के बाद मौन होकर चिता की परिक्रमा करते हैं। फिर संस्कारकर्त्ता एक लकड़ी को सिर के स्थान पर लगाकर कपाल क्रिया करके, पानी से भरा घड़ा सुराख बनाकर कंधे पर रखकर पानी का घेरा बनाते हुए परिक्रमा करता है। जिसका उद्देश्य चिता स्थान को ठण्डा करना एवं अग्नि को इधर-उधर फैलने से रोकना होता है। फिर खाली घड़े को फोड़कर पीछे न देखते हुए स्नान करने को चल देते हैं। नदी या तालाब पर सामूहिक स्नान करते हैं। नदी या तालाब में सामूहिक स्नान करने के बाद संस्कारकर्त्ता एक पत्थर को मृतक का प्रतीक मानकर (अमुक प्रेत एतते उदकम) मंत्र पढ़कर नाम व गोत्र का उच्चारण करते तिली और जल से प्रथम तिलांजलि देता है। यज्ञोपवीत (जनेऊ) को बायें कंधे से हटाकर दायें कंधे पर कर लिया जाता है।

घर में प्रवेश करने से पहले दरवाजे पर सभी लोग जल के छींटे मारकर आचमन करके ही अंदर जाते हैं। कहीं-कहीं दरवाजे पर नीम के पत्ते चबाकर आचमन करके घर में प्रवेश की परम्परा है। चिता स्थान पर अस्थि चुनने तक नित्य घी अथवा तेल का दीपक जलाते हैं। मृतक के शोक संतप्त घर-परिवार में उस दिन भोजन नहीं बनता है। इससे घनिष्ट सम्बन्धी मित्र या पड़ोसी आदि अपने घर से भोजन (पूड़ी-सब्जी) लाकर दु:खी परिवार को समझा-बुझाकर प्रेम बाध्य करके भोजन कराके ही जाते हैं। मृत्यु स्थान पर तेरह दिन (त्रयोदशी श्राद्ध) तक प्रेतात्मा के निमित्त नियमित दीपक जलाया जाता है। वेदज्ञ पंडित द्वारा गरुण पुराण का वाचन किया जाता है।

शुद्धता का सीधा अर्थ है रोग जनित जीवाणुओं को नष्ट करना एवं घर में नये वातावरण का निर्माण करना। दशाह संस्कार का विधान होने से दसवें दिन को ही शुद्धता की जाती है। विशेष परिस्थितियों में चौथे, पाँचवें, नवें दिन भी किये जाने की परम्परा है। इसमें पूरे घर की साफ-सफाई (लिपाई-पुताई) सभी ओढ़ने-बिछाने व पहनने के कपड़ों की धुलाई की जाती है। यदि घर में मिट्टी के बर्तन हण्डी, घड़ा, गगरी आदि हों तो उन्हें बदल दिया जाता है। इसके बाद पूरे परिवार के पुरुषों व बच्चों का मुंडन (क्षौर कर्म) होता है। बालों को विचारों का प्रतीक माना गया है। सूतक के मुंडन का शास्त्रीय विचार है कि मृत्यु -शोक के सन्ताप दायी विचारों से छुटकारा पाने के लिये ही पूरे परिवार का मुंडन कराया जाता है। शुद्धता के दिन शाम को परिवार, जाति-समाज एवं कामकर्त्ता दारों को बुलाकर सामूहिक भोजन कराया जाता है, जिसमें रोटी, दाल, चावल, कढ़ी, दहीबड़ा आदि खिलाये जाने की प्रथा है।

बुन्देलखण्ड में मृतक की अस्थियों को फूल कहा जाता है। इसी से इस संस्कार को फूल उठाना कहा जाता है। अस्थि चयन अधिकांश शुद्धता के दिन ही किया जाता है, किन्तु किसी विशेष कार्यवश तीसरे, सातवें, नवें दिन भी किये जाने की परम्परा है। अस्थि संचय स्थान पर विधि-पूर्वक अस्थि संचय निमित्त पिण्ड दान किया जाता है। फिर अस्थि चुनने हेतु सम्पूर्ण भस्म को जल मिश्रित दूध से सींचकर शमी (श्यामपुर) की डण्डी के सहारे अस्थियों को चुनकर मिट्टी के नये पात्र (करवा) में रखा जाता है। इसके बाद पूरी भस्म इकट्ठी करके विसर्जन हेतु भर ली जाती है। चिता को गोबर से लीपकर उस पर जौ, नमक आदि बिखेर दिया जाता है, जिससे गायें चिता के स्थान पर पहुँचें और अपने मुख से चाटकर उस स्थान को पवित्र बनायें। कहीं-कहीं चिता स्थान पर तुलसी का पौधा भी लगाया जाता है। अस्थियों के घट को पीपल वास कराकर गउशाला में रखा जाता है।

ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि मृत्यु के बाद भी सूक्ष्म शरीर (जीवात्मा) सब कुछ देख-सुन सकता है। जब तक जीवात्मा को कोई दूसरा स्थूल शरीर प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक उसे इंतजार में भटकना पड़ता है। इसी समय प्रेतात्मा अस्थि के कारण अपने घर के आसपास ही भटकती रहती है। वो अपने प्रियजनों और प्रिय वस्तुओं को तत्काल छोड़ ही नहीं पाती है। ऐसे में उस प्रेतात्मा को सद्गति प्राप्त कराने के उद्देश्य से ही अस्थि विसर्जन संस्कार किया जाता है। तरण तारिणी गंगादि पवित्र नदियाँ अपने

पावन जल से पार्थिव तत्त्व (भस्म व अस्थियों) को स्वरूप में परिवर्तित कर लेती हैं, जिससे प्रेतात्मा का सम्बन्ध पूर्व शरीर से पूरी तरह विच्छिन्न हो जाता है। आगे श्राद्ध आदि संस्कारों से तृप्त होकर वह प्रेत शरीर को छोड़ देता है। गरुण पुराण में कहा गया है कि दशगात्र एवं अस्थि विसर्जन के बाद प्रेतात्मा स्वर्ग गामी होकर देवतुल्य हो जाती है।

अस्थि विसर्जन हेतु जाने से पूर्व घर में अस्थि पूजन होता है। अस्थियों को नये सफेद कपड़े की थैली में रखा जाता है, फिर वंश-परिवार एवं गाँव के लोग अस्थियों की थैली पर रुपया-पैसा चढ़ाकर नमन करते हैं। इसमें मृतक के प्रति सम्मान एवं संस्कारकर्त्ता के प्रति सहयोग की भावना होती है। दूसरे दृष्टिकोण से गंगा माता के दर्शन-परसन, स्नान एवं पवित्र गंगा जल पान के पुण्य में किंचित भागीदारी का भाव भी माना जा सकता है। बुन्देलखण्ड से सभी जातियों के लोग अस्थि विसर्जन हेतु प्रयागराज (संगम) को ही जाते हैं। प्रयाग में संस्कारकर्त्ता की क्षौर्य क्रिया (मुंडन आदि) के बाद वहाँ के पुरोहित विधि-विधान से अस्थि विसर्जन संस्कार करवाते हैं, जिसमें एकादशा पिण्डदान, दशगात्र पिण्डदान एवं दान-दक्षिणा देना आदि धार्मिक कृत्य मुख्य होते हैं। इसके बाद मृतक का आह्वान स्मरण करके संगम में अस्थि विसर्जन किया जाता है। सभी संस्कारकर्त्ता पीतल आदि की गंगाजली एवं दान हेतु तेरा पद की सामग्री छोटे गीता, माला, चंदन, कुशासन आदि प्रयागराज से ही खरीद कर लाते हैं। गंगाजली में संगम का पवित्र गंगा जल भरकर लाया जाता है।

इस संस्कार को बुन्देली में अछुद्दुर छुटाना भी कहा जाता है। अस्थि विसर्जन के बाद जब संस्कारकर्त्ता अपने घर आता है, तो मार्ग (यात्रा) की अपवित्रता को दूर करने के लिये कुल पुरोहित द्वारा वेद मंत्रों से पवित्रीकरण संस्कार किया जाता है। इसका पूरे गाँव में बुलावा (बुलउआ) दिया जाता है। संस्कार सम्पन्न होने के बाद लाई, मलीदा का प्रसाद दिया जाता है। त्रयोदशी श्राद्ध (तेरहवीं) के दिन संस्कारकर्त्ता उपवास करते हुए वैदिक विधि-विधान से षोडश श्राद्ध, तर्पण एवं पिण्ड दान करता है। बाद में गंगाजली पूजन किया जाता है। गंगाजली पूजन के समय नाते-रिश्तेदार संस्कारकर्त्ता को नये गमछा, धोती या अन्य वस्त्र उढ़ाते हैं, यथाशक्ति नगद राशि अर्पित कर पुण्य लाभ अर्जित करते हैं। मृतक की आत्मशांति हेतु तेरह ब्राह्मणों को एक साथ भोजन कराके पद दान किये जाते हैं। जिसमें वस्त्र, बर्तन, आसनी, गीता, माला चन्दन, जनेउ, सुपारी, रुपया-पैसा आदि दिया जाता है। तेरहवीं का भोजन दिन में ही कराये जाने का विधान है। ऐसी मान्यता है कि रात्रि में भोजन को भूत-प्रेतादि जूठा कर जाते हैं। त्रयोदशी श्राद्ध के बाद प्रेतात्मा पितर देव कहलाती है। पौराणिक मान्यता है कि मृत्यु संस्कारों के बाद जीवात्मा को स्वर्ग प्राप्त हो जाता है, इसी से हर मृतक को स्वर्गीय या स्वर्गवासी कहा जाता है।

श्रीरामचरित मानस में भी राजा दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया में किये गये संस्कारों का क्रमानुसार वर्णन किया गया है।

*नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा, परम बिचित्र बिमानु बनावा।*
*गहि पद भरत मानु सब राखी, रहीं रानि दरसन अभिलाषी।*
*चंदन अगर भार बहु आये, अमित अनेक सुगंध सुहाए।*
*सरजु तीर रचि चिता बनाई, जनु सुरपुर सोपान सुहाई।*
*एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही, बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।*
*सोधि सुमृति सब बेद पुराना, कीन्ह भरत दसगात बिधाना।*

– मानस/ अयोध्याकाण्ड/ दो. 169 के बाद की चौपाई

वस्तुतः मृत्यु संस्कार मृतक के पाप विनाशक और स्वर्ग पहुँचाने वाले ऊर्ध्व -दैहिक कर्म हैं। इनकी पृष्ठभूमि बड़ी सूझ-बूझ से बनी है। प्रत्येक कर्म-काण्ड की प्रक्रिया का अंग अपने आपमें रहस्यपूर्ण है। सभी मृत्यु संस्कार विधि-विधान पूर्वक समय पर किये जाने से जीवात्मा को गहरी तृप्ति व संतुष्टि मिलती है और उसकी सद्गति का मार्ग प्रशस्त होता है। जीवात्मा भी संन्तुष्ट होकर अपने परिवार को शुभ आशीर्वाद देकर यथासम्भव सहयोग करती है।

बुन्देलखण्ड की सभी जनजातियों में प्रचलित मृत्यु संस्कार क्षेत्रीय संस्कारों से प्रभावित हैं। जनजातियों में मुख्य रूप से अग्नि संस्कार शुद्धता, अस्थि चयन, अस्थि विसर्जन एवं तेरहवीं, गंगाजली पूजन का विशेष महत्त्व है। पिण्डदान वगैरह पूर्व में न होने से आज भी नहीं होता है। कुछ संस्कार जैसे पितृपक्ष में मृत व्यक्ति की मृत्यु तिथि पर दरवाजे में उरेन डालकर सफेद कद्दू के (भूरा कुम्हड़ा) फूल बिखेरना एवं कागौर डालना आदि सूक्ष्म रूप में किये जाने की परम्परा है। गंगाजली पूजन में मृतक के सभी नाते-रिश्तेदार खाद्य सामग्री (आटा, दाल, चावल, गुड़-घी आदि) लेकर आते हैं। संस्कारकर्त्ता को धोती गमछा आदि उढ़ाते हैं। संस्कारकर्त्ता की तरफ से सभी को प्रयागराज से लाई गई कण्ठी माला पहनाई जाती है।

# मृत्यु संस्कार

लक्ष्मीनारायण तिवारी

मनुष्य जब माँ की कोख से जन्म लेता है, ठीक उसी के साथ विधाता उसकी मृत्यु भी लिख देता है। यह नियति का विधान बन गया, जो सृष्टि के जीव मात्र पर लागू होता है। यहाँ तक की चराचर जगत की हर वस्तु पर यह विधान लागू होता है। वनस्पति भी एक समय नष्ट हो जाती है। कठोर से कठोर पहाड़ भी कभी बिखर जाता है। कहने का मतलब यह कि संसार की हर वस्तु नश्वर है। मनुष्य का तन माटी का बना है, कभी भी मिट सकता है। पर विधाता के विधान में जो जन्मता है, उसकी मृत्यु अवश्य है। उसके जन्म लेने एवं मृत्यु की तिथि, समय और स्थान निश्चित है, जिस प्रकार मनुष्य को कोख चुनने का अधिकार नहीं है, उसी प्रकार मनुष्य को मृत्यु वरण का अवसर नहीं होता है। विधाता चाहेगा, तब ही मनुष्य के पास आयेगी मृत्यु। मृत्यु अटल है, एक है।

संसार में आने के बाद मनुष्य ने जन्म को एक संस्कार माना। जन्म के पश्चात् उसने एक-एक कर अपने सोलह संस्कारों की माला बना ली। मनुष्य मुंडन, जनेऊ, विवाह आदि सभी पन्द्रह संस्कार यथा समय पर घर-परिवार, रिश्ते-नाते, जाति-समाज के सानिध्य में अपनी परिपाटी, रीतिरिवाज, अनुष्ठानादि के अनुसार मंगल कामनाओं के साथ जीते जी सम्पन्न करता है, लेकिन मृत्यु संस्कार कोई भी प्राणी अपने जीते जी नहीं सम्पन्न कर पाता। उसके लिये घर-परिवार, समाज के लोगों पर निर्भर होना पड़ता है। यह भी वह नहीं देख पाता कि उसका मृत्यु संस्कार कैसा और किस तरह होता है। दूसरे लोग इसे देखकर उनके मरने के बाद की स्थिति का अनुभव कर सकते हैं। इसे 'श्मशान वैराग्य' कह कहते हैं।

संस्कार का शाब्दिक अर्थ है- 'परिशुद्धि करना।' अन्त्येष्टि संस्कार का उल्लेख दुनिया के सबसे प्राचीन ग्रंथ 'ऋग्वेद' में मिलता है। संस्कारों का प्रावधान किसी न किसी रूप में विश्व के प्रायः सभी समाजों में पाया जाता है, मृत्यु जीवन का अंत नहीं,

केवल पार्थिव शरीर का अंत है। शरीर का दाह संस्कार होता है। आत्मा का कोई संस्कार नहीं होता। आत्मा तो शरीर से पहले ही निकल जाती है। मृत देह अग्नि में समाहित होती है, वह भी विधि-विधान और संस्कार के साथ। क्योंकि जिस देह में इतने दिनों तक आत्मा रही। शरीर ने धर्म-कर्म किया है, इसलिए उस शरीर का मरने के बाद सम्मान करना जरूरी है। यही कारण है कि शरीर को दाह, दशाकर्म आदि संस्कार के साथ विदा किया जाता है। कहीं-कहीं इस माटी की देह को माटी में दबाकर दफनाने का संस्कार किया जाता है। इसे इस्लाम में 'सुपुर्दे खाक्' कहा जाता है। मूल मकसद तो मृत देह का पंच तत्त्वों में मिलाया जाना है, जिससे शरीर का निर्माण हुआ है।

मरता कौन नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर हमें गीता में कृष्ण के मुख से सुनने को मिलता है। कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं- 'ज्ञानी पुरुष कभी नहीं मरता। वह अजन्मा रहता है। न वह जन्म लेता है और न मरता है। जो पुरुष मुझे पूर्ण रूप से समर्पित होता है। वह स्वर्ग की नदी को पार करके मेरी शरण में आ जाता है। वह पुनः-पुनः माता की कुक्षि में नहीं जाता। एक तरह से ज्ञानतत्त्व ही उस पुरुष का मृत्यु संस्कार होता है।'

मृत्यु के इस रहस्य को सबसे पहले बालक नचिकेता ने पहचाना था। इसका वर्णन कठोपनिषद् में मिलता है। जब कृष्ण भी नहीं हुए थे। नचिकेता एक ब्राह्मण पुत्र था, एक दिन उसके पिता ने अपनी गायों में से कुछ गायें दान कर दी। पुत्र नचिकेता ने पिता से कहा- पिताजी! यह आपने ठीक नहीं किया। दान की हुई गायें तो अपंग-लूली-लंगड़ी, बूढ़ी, बिना दाँत की दूध न देने वाली बीमार है। ऐसे दान से क्या फायदा? सब गाये तो कसाई के यहाँ कट जायेंगी। आप पाप के भागीदार हो जायेंगे । पिता ने सुनी-अनसुनी कर दी। कुछ दिन बाद वे फिर ऐसी गायों का दान करने लगे। पुत्र ने पुनः टोका। पिता ने क्रोध में कहा- अरे मूर्ख! यह मेरी सम्पदा है, मैं कुछ भी करूँ। जा मैं तुझे भी यमराज को दान में देता हूँ। तू भी मेरी सम्पत्ति है। नचिकेता यमराज की शरण में सशरीर चला गया। नचिकेता यम के द्वार पर पहुँचा। तब यमराज वहाँ नहीं थे। मालूम हुआ कि वे तीन दिन के लिए बाहर गये हैं। नचिकेता भूखा-प्यासा तीन दिनों तक द्वार पर ही बैठा रहा। तीसरे दिन यमराज आये तो देखा-द्वार पर एक बालक बैठा है। उन्होंने उससे पूछा- बालक तुम कौन हो? मुझसे क्या चाहते हो? तुम यहाँ सशरीर किस प्रकार आये हो? बालक नचिकेता ने कहा- मेरे क्रोधी पिता ने मुझे आपको दान कर दिया। अब मैं आपकी शरण में आ गया हूँ।

यम ने कहा- यहाँ रहकर क्या काम करोगे? मेरे पास तुम्हारे योग्य कोई काम नहीं है? मैं तुम्हें अपने बंधन से मुक्त करता हूँ। मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। तुम तीन दिन तक भूखे-प्यासे रहे। इसलिए तुम्हें तीन वरदान देता हूँ। तुम जो भी चाहो, माँग लो। नचिकेता ने कहा- पहला वरदान मेरे पिता का क्रोध शांत कर दें और उन्हें पाप से मुक्त करें। दूसरा वरदान उन्हें फिर से धन-धान्य से परिपूर्ण कर दें। तीसरा वरदान मुझे जन्म और मृत्यु का रहस्य समझायें। यमराज ने कहा- बालक तुम्हारे दो वरदान तो मैंने तुम्हें दे दिये, पर तीसरे वरदान की पूर्ति मैं नहीं कर पाऊँगा। इसकी जगह कोई दूसरा वर माँग लो। नचिकेता जिद पर अड़ गया और उसने विनम्रता से कहा- प्रभु यदि देना हो तो तीनों वरदान दो, वरना ये भी वापस ले लो। आखिर में हारकर यमराज जन्म-मृत्यु का रहस्य नचिकेता के समक्ष प्रकट करते हैं।

जन्म-मृत्यु का वह रहस्य क्या है? यमराज ने नचिकेता को कहा था- ज्ञानी पुरुष कभी नहीं मरता। वह अजन्मा है। जो जन्म लेता है, वह मरता अवश्य है। शरीर मरता है, आत्मा नहीं। जिसे अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाता है या जो आत्मा को जान लेता है, उसकी मृत्यु संस्कार करने की जरूरत नहीं होती।

मृत्यु का मतलब इहलीला का समाप्त होना है, जिस तरह वृक्ष ऋतु आने पर अपना पुराना आवरण बदलकर नया आवरण धारण कर लेता है। यह प्रकृति का विधान है। नियति के नियमों से कोई छूट नहीं सकता। मृत्यु को संस्कार मान विश्व की सभी जाति-धर्म के लोग इस बात से आश्वस्त होते हैं कि एक बार मृत्यु को प्राप्त कोई भी व्यक्ति दुबारा उस रूप में लौटकर नहीं आता है। इसके लिये कर्मों के आधार पर योनियों की परिकल्पना की गई है। जीवों की लाखों योनियाँ बताई गई हैं। सभी योनियों में भटकने के बाद जीव या आत्मा को मनुष्य शरीर मिलता है। हर बार शरीर मरता है और आत्मा नया चोला ग्रहण करती है। मृत्यु संस्कार केवल मनुष्य योनि में किया जाता है, क्योंकि मनुष्य अन्य जीवों से अधिक विवेकशील है। उसके पास ज्ञान संचित पूँजी है, अनुभव का विज्ञान है, इसलिए वह संस्कारशील होता

है। जन्म से संस्कारों से बँधा रहता है, ताकि वह एक उच्च जीवन जी सके और शांति से मृत्यु की गोद में सो सके।

जहाँ अग्नि दाह संस्कार किया जाता है, वहाँ उपस्थित लोगों द्वारा पंचलकड़ी देने का रिवाज है। जहाँ जमीन में दफनाने की प्रथा है, वहाँ 'मुठ्ठी भर मिट्टी' डालने का चलन है। दोनों का एक ही अर्थ है, पंचतत्त्व में शरीर का मिलना या मिलाना। मृत्यु संस्कार में बहुत से छोटे अनुष्ठान या नियमकर्म है, जो मृतक की आत्मा की शांति के लिए किये जाते हैं। जिन्हें अलग-अलग जाति-समाजों ने अपने-अपने ढंग से संयोजित कर लिया है, जिसका मूल उद्देश्य शरीर को याद करना नहीं, बल्कि गतात्मा के द्वारा किये गये संस्कारों को पुनः-पुनः स्मरण करना है।

मृत्यु संस्कारों में पारसी समाज का मृत्यु संस्कार सबसे अलग है। पारसी समाज मूलतः अग्नि और सूर्य पूजक है। इस अर्थ में पारसी समाज संस्कारों के कारण सबसे पुरातन समाजों की पंक्ति में बैठता है। वेदकालीन समाज कभी अग्नि और सूर्य पूजक रहा है। ऋग्वेद में अग्नि और सूर्य की प्रार्थना में अनेक सूक्त रचे गये है। पारसी समाज उसी संस्कृति का अंग दिखाई देता है।

पारसी समाज में किसी की मृत्यु होने पर इसकी पहली सूचना धर्मगुरू को कर दी जाती है, फिर परिजन तथा जाति समाज को भी खबर दी जाती है। मृत देह को घी, शहद तथा दही का लेप किया जाता है। मृत देह को टेम्पल तक लाया जाता है, जहाँ देह को पवित्र जल से संस्कारित किया जाता है, पश्चात् शव को एक कूप के पास ले जाया जाता है, जहाँ कूप के आसपास घने वृक्ष होते हैं, जिन पर गिद्ध, चील, कौए हमेशा बने रहते हैं। शव को कूप के भीतर ले जाया जाता है। वहाँ एक बड़ा ताख होता है, उस ताख में मृत देह को उनके विधान के अनुसार बैठाया जाता है। जहाँ गिद्ध, चील, कौए शव को आहार करते हैं। पारसी समाज की मान्यता है कि अग्नि हमारा देवता है, हम सूर्य उपासक हैं। अस्तु मृत देह किसी का आहार बने, इससे बड़ा क्या संस्कार हो सकता है।

कुछ समाज में मृत देह को मुखाग्नि देकर शरीर को नदी की गहराई में निश्चित स्थान पर डूबो देते हैं। वहाँ रहने वाले मगरमच्छ, बड़ी-बड़ी मछलियाँ उसका भक्षण कर लेती हैं। इसे मुखाग्नि संस्कार कहा गया है।

मृत्यु संस्कारों के और कुछ विधान जैसे कोई जीवित अवस्था में ही मृत्यु संस्कार का वहन कर लेते हैं। उदाहरण के लिए तपोनिष्ठ संन्यासी समाधिस्थ होकर अपनी खुद की देह पर समाधि का निर्माण करवा लेते हैं। इसे समाधि अथवा ध्यानमुद्रा संस्कार हम कह सकते हैं। इसी शृँखला में जल समाधि का भी कहीं-कहीं वर्णन आया है। संस्कारों में मृत्यु संस्कारों का मूल तत्त्व यही है-

*शून्य है यह शून्य है वह*
*शून्य से निष्पन्न होती शून्य है,*
*शून्य में से शून्य को यदि दें निकाल*
*शेष तब भी शून्य ही रहता सदा।*

# अन्त्येष्टि का लोक विज्ञान

एम.एस. पाराशर

मनुष्य शरीर से प्राण निकल जाने पर उसका क्या किया जाये? इसका उत्तर भारतीय हिन्दू समाज में प्रचलित अन्त्येष्टि संस्कार में छिपा है। प्राचीन ऋषियों ने शरीर के प्रयोजन और इसके उत्सर्ग को अन्त्येष्टि संस्कार में सन्निहित कर दिया है। सामाजिक व्यक्ति की जब मुत्यु होती है, तब समाज को उसकी रिक्तता महसूस होती है। इस अवसर पर सभी स्वजन जो अंतिम विदाई देने आते हैं, उन्हें इस जीवनोद्देश को समझने का स्पष्ट अवसर मिलता है कि मृत्यु सभी के जीवन का अंतिम सत्य है। इसलिए इसे एक संस्कार का स्वरूप देते हुए इसका आयोजन करते हैं, जिसमें मृतक के शरीर का होम किया जाता है। हिन्दुओं की सारी रीति-नीति यज्ञ दर्शन से जुड़ी हुई है, इसलिए व्यक्ति के अवसान को भी उसी महान सत्य के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। इसका एक दर्शन यह भी है कि मृतक के स्वजनों को शोक होता ही है, पर यदि इस शोक को यज्ञ आयोजन व्यवस्था से जोड़ दिया जाये और तत्सम्बन्धित कर्मकाण्डों में लगा दिया जाये तो उसका दुखित चित्त बँट जाता है और शोक संताप हल्का हो जाता है। प्रायः अन्त्येष्टि संस्कार के दो चरण देखे जाते हैं। पहला घर या मार्ग में और दूसरा श्मशान घाट पर।

**शव संस्कार**

भारतीय संस्कृति जीवन के अनंत प्रभाव को मान्यता देती है। यह संस्कार इस तथ्य को समझाता है कि मृत्यु जीवन को छीन लेने वाली भयानक घटना नहीं, जीवन का जीर्णोद्धार करने वाली हितकारिणी प्रक्रिया है। जब आत्मा महतत्त्व की ओर बढ़ती है, तब

शरीरगत पंचतत्त्व पंचभूतों में परिवर्तित होते हैं। इसलिए जीवात्मा को सद्गति देने के साथ कायागत पंचतत्त्वों को पंचमहाभूतों में मिलाने के लिए यज्ञीय परिपाटी अपनाई जाती है। इन संस्कारों के माध्यम से शव को पवित्र किया जाता है।

शोक इस पुण्य प्रक्रिया में बाधक बनता है। दु:ख स्वाभाविक है। दु:ख उसे होता है, जिसे मृतात्मा से स्नेह हो। यह संस्कार स्नेह को जीवित रखने की प्रक्रिया भी है। यही वजह है कि उसे शोकपरक बनाने की अपेक्षा मृतात्मा की सद्गति को महत्त्व देते हुए निर्धारित कर्मकाण्ड में भावनात्मक योग की अपेक्षा की जाती है। शोकाकुल पारिवारिक जनों का ध्यान आकर्षित करके संस्कार के अनुरूप वातावरण बनाकर क्रम आरम्भ किया जाता है। प्रथा के अनुसार कहीं पर घर में ही स्नान कराके ले जाते हैं, तो कहीं पर नदी समीप हो तो वहाँ स्नान कराते हैं।

**पिण्डदान**

अन्त्येष्टि संस्कार के साथ पाँच पिण्डदान किये जाते हैं। यह सत्य को मान्यता देना है कि जीव चेतना शरीर में बंधी नहीं है, उसे संतुष्ट करने के लिए शरीरगत मोह से ऊपर उठना आवश्यक है। जीवात्मा की शांति के लिए व्यापक जीव चेतना को तुष्ट करना होगा। पिण्डदान के माध्यम से मृतक के हिस्से के साधनों को अर्पित किया जाता है। पिण्डदान इसी महान परिपाटी के निर्वहन की प्रतीकात्मक प्रक्रिया है।

**भूमि संस्कार**

श्मशान घाट पर शव को उपयुक्त स्थान पर रख पिण्ड देते हैं। चिता सजाने के लिए स्थान साफ करते हैं। जल से सिंचन और गोबर से उस स्थान को लीपा जाता। यज्ञ वेदी की तरह स्थान को स्वच्छ और सुसज्जित किया जाता है। चिता सजाने के पूर्व मंत्रों से उपचार किया जाता है। भारत में वैदिक काल से ही धरती को माता माना गया है। उस धरती माता के ऋण को याद रखने के निमित्त धरती माँ से श्रेष्ठता के संस्कार माँगते हैं।

**समिधारोपण**

यज्ञ कुण्ड या वेदी के चारों ओर मेखलाएँ बनायी जाती हैं। इस हेतु चार बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ चारों दिशाओं में स्थापित की जाती हैं। ऐसी ही लकड़ियाँ चिता के चारों छोरों पर उसकी सीमा बनाने वाली होनी चाहिये। शेष लकड़ियाँ इन चारों के भीतर ही रखी जाती हैं। दाह क्रिया करने वाला व्यक्ति समिधाओं को स्थापित करता है। इन समिधाओं की दिशावार स्थापना के पीछे यज्ञ में निम्न कारण होते हैं-

जीवन चारों दिशाओं से मर्यादित माना जाता है। इसी मान्यता के अनुसार मनुष्य को जीवन भर उसी मर्यादा में रहना चाहिये। मर्यादा का उल्लंघन कर उच्छृंखलता नहीं करनी चाहिये। ऐसी प्रतीकात्मक रचना मृतक हेतु रची गई चारों ओर चार समिधा स्थापित करके किया जाता है। पहली मर्यादा धन सम्बन्धी है। धन उसे उपार्जित तो करना चाहिये, पर अनीति पूर्वक नहीं। साथ ही इतना अधिक भी नहीं, जिससे समाज में असमानता, हिंसा, विलासिता उत्पन्न हो। इसलिए एक लकड़ी पूर्व दिशा में धन की आकांक्षा सीमित रखने के लिए रखी जाती है।

दूसरी समिधा काम सेवन सम्बन्धी मर्यादा का पालन करने की है। वासना की आग ऐसी है, जिसमें भोग का ईंधन जितना ही डाला जायेगा, वह उतनी ही भड़कती जायेगी। इसलिए मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य और आत्म बल तीनों ही दृष्टि से काम सेवन को जितना अधिक मर्यादित किया जा सके, उतना ही उत्तम होता है।

तीसरी समिधा यश मर्यादा की है। बुरे कार्यों से बचे रहने और सत्कर्म करने के फलस्वरूप लोक सम्मान का सुख मिलने की इच्छा एक सीमा तक उचित है। पर जब यह उच्छृंखल हो उठती है तो अवांछनीय उपाय सोचकर उच्च पद्वी पाने की लिप्सा उठ खड़ी होती है। अहंकार को पोषण करने वाले सभी प्रपंच व्यक्ति तथा समाज के लिए हानिकारक हैं। अतएव मनीषियों द्वारा यश कामना को मर्यादित रखने का निर्देश दिया गया है।

चौथी समिधा द्वेष को मर्यादित रखने की है। संस्कार में विभिन्न प्रवृत्ति के लोग रहते हैं, उनके विचार एवं कार्य अपनी रूचि एवं मान्यता से मेल नहीं खाते। अक्सर झगड़े के कारण बन जाते हैं। अपने से प्रतिकूल को पसंद नहीं किया जाता है और उसे नष्ट करने की इच्छा होती है। यह वैचारिकता ही संसार में हो रहे झगड़ों की जड़ है।

### चितारोहण

चिता एक प्रकार से यज्ञ प्रक्रिया है, इसलिए उसमें वे ही लकड़ियाँ काम आती हैं जो आम तौर से यज्ञ कार्यों में प्रयुक्त होती हैं। जैसे वट, पीपल, गूलर, ढाक, आम, शमी आदि पवित्र काष्ठों की ही समिधाएँ यज्ञ में काम आती हैं। अगर, तगर, देवदारू, चंदन आदि की सुगंधित काष्ठ यज्ञ आहुति में सम्मिलित कर लेने की परम्परा है। चितारोहण के बाद निर्धारित मंत्रों से पांचवा पिण्ड दान दिया जाता है। फिर शव के ऊपर भी लकड़ियाँ रख दी जाती हैं।

शरीर यज्ञ का प्रधान मंत्र 'ऊँ आयुर्यज्ञेन कल्पनताम् ऊँ स्वाहा, ऊँ प्राणीयज्ञेन कल्पतां ऊँ स्वाहा, ऊँ अपानीयज्ञेन कल्पतां ऊँ स्वाहा, ऊँ व्यानोयज्ञेन कल्पतां ऊँ स्वाहा।' हमें इस तथ्य को हृदयंगम करने और व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट करने का निर्देश करता है। मंत्र में निर्देश है कि मानवीय प्राण, चक्षु, कान, वाणी, मन, आत्मा सब कुछ यज्ञ के लिए हो, वह जब तक जिये परमार्थ के लिए जिये, अपने इष्ट की पूजा करता रहे और यह माने कि मैं अपने लिए नहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए जीता हूँ।

### सामूहिक प्रार्थना

शरीर यज्ञ के बाद सभी परिजन चिता की ओर मुख करके शांत भाव से पंक्तिबद्ध होकर मृत आत्मा के लिए पवित्र मंत्रों का जाप करते हैं-

*ऊँ धौ शांतिरन्तरिक्ष ऊँ शांतिः*
*पृथिवी शांति रापः शांतिरोषधयः शांतिः।*
*वनस्पतयः शार्न्तिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः*
*सर्व ऊँ शांतिः, शांतिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि।*
*ऊँ विश्वानिदेव सवितर्दुरितानिपरासुव।*
*यदभद्रं तन्नऽआसुव।*
*ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः। सर्वारिष्टसुशांतिभर्वतु।*

### कपाल क्रिया

मस्तिष्क मानव जीवन का केन्द्रीय संस्थान है, उसमें जैसे विचार या भाव उठते हैं, उसी के अनुकूल जीवन की दिशा निर्धारित होती है और उत्थान-पतन का वैसा ही संयोग बन जाता है। मस्तिष्क को किन्हीं सीमाओं में बांध कर नहीं आंका गया है। उसे व्यापक आधार पर सुविकसित होना भी चाहिये। इस तथ्य का प्रतिपादन करने के लिए कपाल क्रिया का कर्मकाण्ड करते हैं। खोपड़ी फोड़कर विचार संस्थान को यह अवसर देते हैं कि एक छोटी परिधि के भीतर ही वह सोचता न रहे, वरन् मानव विश्व की विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखकर अपना कर्तव्य पथ निर्धारित करे। मस्तिष्क की हड्डी का घेरा टूटने से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि सूक्ष्म से व्यापक दृष्टिकोण अपनाने में सुविधा हुई। मृत और जीवित सभी के लिए मानसिक संकीर्णता हानिकारक बताकर सोचने का दायरा बड़ा करना इस पूर्ण आहुति क्रिया का लक्ष्य है। यह इस तथ्य को बताता है कि जिसका मस्तिष्क अंतिम समय तक विवेकशील बना रहा, उसी ने जीवन यज्ञ की पूर्णाहुति भी की है। यही इसका प्रतीकात्मक संकेत है।

### वसोधरा सिंचन

वसोधरा में घी की धारा छोड़ते हुए पूर्णाहुति का अंतिम भाग पूर्ण किया जाता है। घृत का दूसरा नाम स्नेह है, स्नेह प्यार को कहते हैं। प्यार भरा जीवन ही सराहनीय है। वसोधरा में घृत की स्नेह की अखण्ड धारा 'ऊँ वसो पवित्र मसीसतधारानाम्' मंत्र से डाली जाती है। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति का जीवन स्नेह धारा में डूबा रहे।

### शांति पाठ

दिवंगत आत्मा के शरीर त्याग से जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं, मृतक के शरीर त्यागने से जो अशांति हुई हो, उसकी शांति के लिए यह पाठ किया जाता है।

### अस्थि विसर्जन

अन्त्येष्टि के बाद अस्थि अवशेष एकत्रित करके उन्हें किसी पुण्य एवं पवित्र जलाशय में विसर्जित करने की परिपाटी है। जीवन का कण-कण सार्थक हो, इसलिए शरीर के अवशेष भी पुण्य क्षेत्र में डाल दिये जाते हैं। अस्थियाँ चिता शांत होने पर तीसरे दिन उठाई जाती हैं। जल्दी उठानी हो तो दूध युक्त जल से अथवा केवल जल से सिंचित करके उठाते हैं।

### मरणोत्तर संस्कार

भारतीय संस्कृति के मान्य चिंतकों ने यह तथ्य घोषित किया है कि मृत्यु के साथ जीवन समाप्त नहीं होता, अनंत जीवन

शृँखला की एक कड़ी मृत्यु है। इसलिए संस्कारों के क्रम में जीव की उस स्थिति को भी बांधा गया है। जब वह एक जन्म पूरा करके अगले जीवन की ओर उन्मुख होता है, तब कामना की जाती है कि सम्बन्धित जीवात्मा का अगला जीवन पिछले की अपेक्षा अधिक सुसंस्कारवान् बने। इस निमित्त जो कर्मकाण्ड किये जाते हैं, उनका लाभ जीवात्मा को क्रिया कर्म करने वालों की श्रद्धा के माध्यम से ही मिलता है। इसलिए मरणोत्तर संस्कार को श्राद्ध कर्म भी कहा जाता है।

श्राद्ध कर्म का प्रारंभ अस्थि विसर्जन के बाद ही प्रारंभ हो जाता है। कुछ लोग नित्य प्रात: तर्पण एवं सायंकाल मृतक द्वारा शरीर त्याग के स्थान पर या पीपल के पेड़ के नीचे दीपक जलाने का क्रम चलाते रहते हैं। अन्त्येष्टि के 13 वें दिन मरणोत्तर संस्कार किया जाता है। यह शोक-मोह की पूर्णाहुति का विधिवत आयोजन है। मृत्यु के कारण घर से शोक-वियोग का वातावरण रहता है। बाहर के लोग भी संवेदना-सहानुभूति प्रदान करने आते हैं। यह क्रम तेरह दिन में पूरा हो जाने का क्रम चलता है।

मृतक के शरीर से अशुद्ध कीटाणु निकलते हैं, इसलिए मृत्यु के उपरांत घर की सफाई जैसे दीवालों की पुताई, जमीन की धुलाई-लिपाई, वस्त्रों की गर्म जल से धुलाई, वस्तुओं की घिसाई-रंगाई आदि का विधान है। यह कार्य दस से तेरह दिन की अवधि में पूरा किया जाता है।

श्राद्ध संस्कार मरणोत्तर के अतिरिक्त पितृपक्ष में अथवा देहावसान दिवस पर किये जाने वाले श्राद्ध के रूप में भी कराया जाता है। मृतात्मा की शांति के लिए तीर्थों में भी श्राद्ध कर्म कराने का विधान है।

**तर्पण**

आवाहन, पूजन, नमस्कार के उपरांत तर्पण किया जाता है। जल में दूध, जौ, चावल, चंदन डालकर तर्पण कार्य में प्रयुक्त करते हैं। इसमें गंगा जल का विशेष महत्त्व है। तृप्ति के लिए तर्पण किया जाता है। स्वर्गस्थ आत्माओं की तृप्ति किसी पदार्थ के खाने-पहनने आदि से नहीं होती, क्योंकि स्थूल शरीर के लिए ही भौतिक उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। मरने के बाद स्थूल शरीर समाप्त होकर, केवल सूक्ष्म शरीर ही रह जाता है। सूक्ष्म शरीर को भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि की आवश्यकता नहीं रहती, उसकी तृप्ति कोई खाद्य पदार्थ या हाड़-मांस वाले शरीर के लिए उपयुक्त उपकरण नहीं हो सकते। सूक्ष्म शरीर में विचारणा, चेतना और भावना की प्रधानता रहती है। इसलिए उसमें उत्कृष्ट भावनाओं से बना अंत:करण या वातावरण ही शांति दायक होता है।

समग्रत: इस दृश्य संसार में स्थूल शरीर वाले को जिस प्रकार इंद्रिय भोग, वासना, तृष्णा एवं अहंकार की पूर्ति में सुख मिलता है, उसी प्रकार पितरों का सूक्ष्य शरीर शुभ कर्मों से उत्पन्न सुगंध का रसास्वादन करते हुए तृप्ति का अनुभव करता है। उसकी प्रसन्नता तथा अकांक्षा का केन्द्र श्रद्धा भरे वातावरण के सान्निध्य में अपनी अशांति खोकर आनंद कर अनुभव करते हैं। श्रद्धा ही उनकी भूख है, इसी से उन्हें तृप्ति होती है। इसलिए पितरों की प्रसन्नता के लिए श्राद्ध एवं तर्पण किये जाते हैं। इन क्रियाओं का विधि-विधान इतना सरल एवं इतने कम खर्च का है कि निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी उसे आसानी से सम्पन्न कर सकता है।

तर्पण में प्रधानतया जल का ही प्रयोग होता है, उसे थोड़ा सुगंधित एवं परिपुष्ट बनाने के लिए जौ, तिल, चावल, दूध, फूल जैसी दो चार मांगलिक वस्तुएँ डाली जाती हैं। कुशाओं के सहारे जौ की छोटी सी अंजलि मंत्रोच्चार पूर्वक डालने मात्र से पितर तृप्त हो जाते हैं। किन्तु इस क्रिया के साथ आवश्यक श्रद्धा, कृतज्ञता, सद्भावना, प्रेम, शुभकामना का समन्वय अवश्य होना माना जाता है। यदि श्रद्धांजलि इन भावनाओं के साथ की गयी है तो तर्पण का उद्देश्य पूरा हो जायेगा। पितरों को आवश्यक तृप्ति मिलेगी, किन्तु यदि इस प्रकार की कोई श्रद्धा भावना तर्पण करने वाले के मन में नहीं है, तो केवल लकीर पीटने के लिए पानी इधर-उधर फैलाने मात्र से विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

# अंतिम संस्कार

रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय

वैसे तो मृतक के अंतिम संस्कार हर जगह लगभग एक समान ही होते हैं, परन्तु स्थान विशेष और थोड़ा बहुत जाति विशेष में अंतर हो सकता है। बुंदेलखण्ड में मृतक के अंतिम संस्कार की रीति-रिवाज के विषय में संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है- जब किसी का अंतिम समय नजदीक आ जाता है तो जानकार समझ जाते हैं और तुरंत मरणासन्न के मुँह में गंगाजल और तुलसी दल डालते हैं। कुछ लोग मरने वाले के हाथ में सुपारी-फूल एवं कुछ द्रव्य रखकर पंडित से संकल्प कराकर गोदान कराते हैं। मरने वाले को स्मरण कराते हैं कि ईश्वर का ध्यान करो। वे क्षण बहुत ही कठिन और शोक पूर्ण होते हैं। वे लोग समझ सकते हैं।

कोशिश यह रहती है कि प्राण निकलने के पहले मरने वाले को भूमि पर लिटा दिया जाता है। इस प्रक्रिया को भू-शरण करना कहते हैं। प्राण निकल जाने के बाद मृत देह पर कपड़ा डाल देते हैं। साधारणत: रात्रि में अन्त्येष्टि नहीं की जाती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि रात्रि में अन्त्येष्टि करने से अगले जन्म में जीव अंधा पैदा होगा। लोग अंतिम यात्रा का प्रबंध करते हैं। मृत शरीर को नहलाया जाता है। पुरुष हुआ तो छौर कर्म (बाल काटना) किया जाता है- फिर तैयार की गई अर्थी पर सीधा लिटा का ऊपर कफन बाँध देते हैं। घर के लोग और अन्य अंतिम दर्शन करते हैं, पुष्प चढ़ाते हैं- फिर अंतिम यात्रा शुरू होती है। श्मशान के पहले एक जगह उतारा करते हैं और अर्थी की दिशा परिवर्तन करते हैं। सौभाग्यवती स्त्री का पूर्ण शृँगार किया जाता है, विशेष तौर पर उसे शादी की साड़ी पहनाते हैं तथा जेवर भी पहनाए जाते हैं, जो श्मशान में अग्नि देने के पूर्व उतार लिए जाते हैं।

अंतिम संस्कार करने वाला पास के जलस्रोत पर नहाता है और कोरी धोती लपेट लेता है। किसी-किसी के यहाँ अंतिम संस्कार करने वाले का मुंडन भी किया जाता है।

मृत शरीर को चिता पर लिटा कर कुछ औपचारिकताएँ जैसे देह पर जगह-जगह घी-कपूर इत्यादि रखकर फिर उस पर लकड़ियाँ रख देते हैं। दाह संस्कार करने वाला चिता की परिक्रमा करते हुए मुखाग्नि देता है। जब चिता अच्छी तरह जलने लगती है, तब कपाल क्रिया की जाती है। इस क्रिया में बाँस के सिरे को घी में डुबोकर कपाल को छुलाते हैं। चिता की परिक्रमा करते हुए यह क्रिया पाँच बार दुहराई जाती है, फिर बाँस को पीछे फेंक दिया जाता है। चक्कर लगाने के पूर्व घड़े में छेद कर देते हैं। इस तरह अन्त्येष्टि का कार्यक्रम सम्पन्न हो जाता है। गाँव में यह परम्परा है कि शव यात्रा में शामिल सब लोग मृतक के घर जाते हैं तथा घर के बाहर रखे हुये पानी के बर्तन में पड़ी हुई नीम की डाली से अपने शरीर पर पानी छिड़ककर घर के लोगों से मौन विदा लेते हैं। घर से शवयात्रा निकलने के बाद घर के उस स्थान को गोबर से लीप दिया जाता है, यह कार्य घर की बुजुर्ग महिला करती है। लिपाई की दिशा उल्टी रहती है, अर्थात् भीतर से बाहर की ओर। जो बाहरी महिलाएँ बैठने आती हैं, वे शवयात्रा निकल जाने के बाद अपने-अपने घर चली जाती हैं। घर की महिलाएँ नहाती हैं। जब अन्त्येष्टि करके घर के लोग नहा-धोकर लौटते हैं। इन सबके बाद घर का चूल्हा जलता है और सादा भोजन बनता है। तीसरे दिन खारी उठाने का कार्यक्रम होता है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि यदि पंचक के दौरान मृत्यु होती है तो अर्थी के साथ पाँच बेसन के पुतले रख दिये जाते हैं, ऐसा इसलिए किया जाता है कि घर में और मौतें न हों। लोगों की ऐसी धारणा है कि यदि कोई पंचक में मरता है तो घर के अथवा रिश्तेदारों में पाँच लोगों के मरने की सम्भावना रहती है। इसी तरह खारी उठाने का कार्यक्रम मुहूर्त देखकर किया जाता है। अतः तीसरे की जगह मुहूर्त के अनुसार आगे-पीछे किया जा सकता है। खारी उठाने और अस्थि संचय के बाद खारी (राख) नदी में सिरा दी जाती है। अधिकतर लोग अस्थि विसर्जन के लिए गंगा जी जाते हैं। विशेष रूप से प्रयाग में संगम पर अस्थि विसर्जन किया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम पर अस्थि विसर्जन से मृतात्मा सीधे स्वर्ग को जाती है, उसे प्रेत योनी में भटकना नहीं पड़ता है।

जो व्यक्ति मुखाग्नि देता है, उसे दस दिन तक बहुत संयम-नियम से रहना पड़ता है। सादा भोजन और भूमि में सोना पड़ता है। गाँव में ऐसी प्रथा है कि दस दिन तक उस जगह पर दीपक रखा जाता है, जहाँ मृतक का अग्नि संस्कार हुआ हो और जहाँ घर में मृतक ने अंतिम श्वास ली हो। तीसरे दिन से घर में गरुड़ पुराण का पाठ किया जाता है। गरुण पुराण में जीवन की विभिन्न स्थितियों का वर्णन रहता है। ऐसी मानता है कि जीव आत्मा अंतिम क्रियाकर्म तक घर में वास करती है, अतः गरुड़ पुराण सुनकर उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी।

दसवें दिन घर की शुद्धता की जाती है। घर को लीप-पोत कर साफ किया जाता है। घर के सारे कपड़े धोने पड़ते हैं। इसी दिन नदी अथवा तालाब के किनारे घर के लोगों का मुण्डन होता है। साफ-सफाई और नहाने धोने के बाद भोजन तैयार होता है, भोजन पूरी तरह कच्चा होता है। पूड़ी वगैरह नहीं बनती, सिर्फ उड़द के बरे बनते हैं। दसवें दिन दशगात्र का विधान है। पूरा भोजन पत्तल में लगाकर श्मशान में चिता जलने के स्थान पर रखा जाता है, साथ में कोरे घड़े में पानी भी रखा जाता है। बारहवें दिन पिंडदान का विधान रहता है, इसमें महाब्राह्मण (कंटया) को दान देने का विधान है। मृतक के घर की आर्थिक स्थिति के अनुसार एवं श्रद्धा के अनुसार इस दान में घर-गृहस्थी में उपयोगी वे सभी वस्तुएँ रहती हैं।

तेरहवें दिन तेहरवीं एवं गंगाजली पूजन का आयोजन होता हैं। इसी दिन सम्पूर्ण शुद्धिकरण की पूजा होती है। पूजन के बाद सबसे पहले तेरह ब्राह्मणों को भोजन कराये जाते हैं और भोजन के बाद उन्हें दान-दक्षिणा देकर विदा किया जाता है, फिर अन्य लोगों के भोजन होते हैं। तेरहवीं का आयोजन व्यक्ति विशेष की आर्थिक और सामाजिक स्थिति के अनुरूप होता है। आजकल मृत्युभोज कई समाजों में बंद हो गये है, परन्तु गाँव में यह स्थिति आने में अभी समय लगेगा।

# मृत्यु संस्कार सम्बन्धी लोकाचार

डॉ. नीलिमा गुप्ता

भारतीय जनता का अधिकतम अंश ग्रामों में निवास करता है, जिसे लोक की संज्ञा दी जाती है। वह वस्तुतः यहाँ का ग्रामीण लोक समाज ही है। दूसरे शब्दों में 'आदि जाति के उन सब मनुष्यों का समूह जिनके मेल से समाज बनता है, लोक कहलाता है।' लोक का अर्थ है- वह सरल, स्वाभाविक मानव समाज, जिसकी भावनाओं, विचारों, परम्पराओं, क्रियाओं तथा मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्त्व विद्यमान रहते हैं। इसे ही लोक संस्कृति कह सकते हैं। कुछ मानववेत्ता लोक को संस्कृति तथा अवगुंठित सांस्कृतिक ढाँचों के साथ जोड़ते हैं।

आदिम मानव के समक्ष मृत्यु एक रहस्य थी। यह उसके ज्ञान से परे की बात थी कि कुछ समय पहले सामान्य व्यक्ति के समान जीवन जीने वाला व्यक्ति अचानक कैसे समाप्त हो जाता है? यह परिवर्तन क्यों होता है? उसका जीवत्व कहाँ चला जाता है?... आदि। अतः उसने मृत्यु का कारण भी अमानवीय शक्ति को माना। क्या मुत्यु के पश्चात् पुनः जन्म होता है? मानव के जीवन काल में यह प्रश्न भी और अधिक जटिल होते गये। अनन्तकाल से चले आ रहे इन प्रश्नों का कोई हल न मिल पाने पर उसके मन में अनेक तर्क-वितर्क बिना निराकरण के ही उभरते-मिटते रहे। विवश हो उसने अपनी आस्थाओं एवं विश्वासों के आधार पर ही अपने समस्त प्रश्नों के हल ढूंढने का प्रयास किया। इस प्रकार के उदाहरण भारत के अतिरिक्त यूनान, मिस्र एवं रोम जैसी प्राचीन सभ्यताओं में भी दृष्टिगोचर होते हैं।

मनुष्य मरने से पूर्व अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु को अपनी लाश के साथ ही दफनाने का आदेश देता था। ताकि वे कयामत के दिन उसे उपलब्ध हो सकें। प्राचीन समाधियों के खनन के साथ अनेक सम्राटों एवं साम्राज्ञियों के बहुमूल्य हार, स्वर्ण कलश, रत्न जड़ित पात्र, मंजूषाएँ उपलब्ध हुई है। मिस्र की ममियों पर अनेक प्रतीकात्मक अंकन उपलब्ध हुए हैं।

मृत्यु अपरिहार्य है, जन्म के पश्चात् मृत्यु निश्चित है। जीवन की समस्त उपलब्धियाँ मृत्यु में समा जाती हैं। प्रकट रूप में मृत्यु जीवन का अंतिम छोर है। मृत्यु चाहे जिस आयु में हो, त्रासद होती है। समाज व परिवार के मध्य व्यक्ति द्वारा किये गये सहयोग, समायोजन आदि से अनेकानेक सम्बन्धों में बंध जाता है। मृत्यु इन सभी सम्बन्धों को झुठला देती है। सम्बन्धों को विस्मृत करना सहज नहीं होता, किन्तु मृत्यु को स्वीकारने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प भी हमारे समक्ष नहीं होता। हाँ, दार्शनिकों द्वारा दिये गये विवेचन मृत्यु को शुभ, मंगलमय बताते हैं तथा हमें सत्य को स्वीकारने का सम्बल प्रदान करते हैं। मृत्यु मानव जीवन के अंतिम संस्कारों में से एक है।

मनुष्य के विकास के साथ-साथ अनेक गाथाओं तथा कहानियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें स्त्रियाँ अपने मृत पति को मृत्यु के मुख से वापस ले आती हैं। व्यक्ति के सम्बन्धी तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों द्वारा दूसरे लोक में भी मृतक को आराम, सुविधा प्रदान करने हेतु विभिन्न उपाय सोचे गये। ये ही मृत्यु सम्बन्धी लोकाचार होते हैं।

भील जनजाति में किये जाने वाले मृत्यु संस्कार में अन्य जातियों की अपेक्षा कुछ भिन्नता दिखायी देती है। हिन्दुओं में प्रचलित परम्परानुसार मृतक का दाह-संस्कार किया जाता है, किन्तु चेचक या किसी संक्रामक रोग से ग्रसित मृत्यु होने की स्थिति में दफनाया जाता है। ग्रामीणजनों को मृत्यु की सूचना विशिष्ट ताल में ढोल बजाकर दी जाती है।

कमार जनजाति में मृत्यु को किसी बड़ी शक्ति का कार्य रूप मानते हैं। सामान्यत : मृतक को गाड़ते हैं, गाड़ने से पहले उसे नहीं नहलाते, बल्कि उसके शरीर पर हल्दी तथा माथे पर टीका लगाया जाता है। शव को तेन्दू की लकड़ी तथा बाँस की बनी चोली (अर्थी) पर लिटाकर, सफेद कपड़े का कफन ढँककर गाँव के बाहर दक्षिण की ओर नदी किनारे या जंगल में बने श्मशान में ले जाते हैं। जहाँ गड्ढे में कफन बिछा कर शव लिटा दिया जाता है। सर्वप्रथम मृतक का लड़का तथा उसके पश्चात् अन्य लोगों द्वारा मिट्टी डाली जाती है। इस प्रकार शव के पूर्णत: ढँक जाने के पश्चात् सिर की ओर एक बड़ा-सा पत्थर रखा जाता है। तीज-नहावन (तीन या पाँच दिन) तक मृतक का सारा परिवार सूतक में रहता है। इसी दिन मृतक की पत्नी की चूड़ियाँ तोड़ कर उसे नयी साड़ी व 'पाटा' भेजा जाता है। मृतक की जीवात्मा बुलायी जाती है, जिसे 'जीवन उतारना' कहा जाता है। होली त्योहार में 'पितर-मिलौनी' के पश्चात् मृतक की गणना पूर्वजों में की जाने लगती है। असाधारण रूप से किसी की मृत्यु होने की दशा में मृत्यु सम्बन्धी भिन्न प्रक्रियाओं का निर्वाह किया जाता है। बाघ या भालू द्वारा मारे जाने पर व्यक्ति को वहीं गाड़ दिया जाता है। गर्भवती या प्रसूता की मृत्यु के बाद शव को श्मशान में गाड़ कर 'बेगा' (चारों ओर कांटे बिछाकर) से इस अभिप्राय से बांधा जाता है कि वह भूत किसी को सता न सके। किसी नवजात शिशु की मृत्यु छठी से पूर्व होने की स्थिति में उसका शव महिलाओं द्वारा ही गाड़ा जाता है।

देवरों (लोक देवी-देवताओं के थान) के सम्मुख उनके पुजारी मृतक भोपों की 'मूरतें' (प्रतीक चिन्ह चीरा) बनायी जाती हैं। जिन आकृतियों के हाथ में धनुष, तीर, ढाल, तलवार, बन्दूक या कटारी सुसज्जित की जाती है। मनुष्य के प्रिय रूप इन चीरों में बनाये जाते हैं। बच्चों के चीरे छोटे पत्थरों पर निर्मित किये जाते है। किसी-किसी घर में दादा की मृत्योपरान्त उनकी इच्छा का आदर रखते हुए घर पर 'भोमिये के देवता' भी प्रतिष्ठित किये जाते हैं। जन्म की साथिन लोक कला मरघट तक साथ जाती है। स्वस्तिक का प्रयोग प्रत्येक अवसर पर किया जाता है। दाह संस्कार के समय श्मशान घाट की जमीन को साफ करके, जल छिड़क कर उस स्थान को पवित्र कर उस पर स्वस्तिक बना 'ओऽम्' लिखा जाता है, साथ ही राम नाम भी लिखते हैं। किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके (उत्तराधिकारी) की 'पगड़ी रस्म' में परिवार के सबसे बड़े पुरुष सदस्य के पाटिये के नीचे सातिया बनाया जाता है। पशु की मृत्यु के पश्चात् भी घर से उसे जिस मार्ग से ले जाया जाता है, उस पर भी सातिया बनाया जाता है।

लोक विश्वास के अनुसार मरने के पश्चात् गुदने साथ जाते हैं, जिससे अगला जन्म समृद्ध तथा मंगलकारी बनता है। किसी शिशु की माँ मृत्योपरान्त इस विश्वास के साथ उसके शरीर पर काजल या मेहंदी से निशान लगाती है कि अगले जन्म में वह जिसकी भी कोख भरे, अमरता प्राप्त करे। 'म्हारी कुंख बाणी पण कंडी ओर की बाले मती' अर्थात् मेरी कोख जलाई किसी और की मत जलाना। राजस्थान में थापों (हाथ की अंगुलियों के ठप्पे) की परम्परा के अन्तर्गत प्राचीन काल में सती होने वाली स्त्री घर से प्रस्थान करते समय घर के प्रवेश द्वार पर दोनों ओर कुंकुम से थापे लगाती थी। राजस्थान तथा गुजरात के विभिन्न सती मंदिरों में इन थापों में पूरे हाथ के ऊपर आँखें भी बनायी जाती हैं। सम्पन्न घरों में देहलियों पर पत्थर के शिलालेख पर सती

के हाथ कोरे जाते हैं। भारत में मृतकों की याद बनाये रखने के लिये प्रतिवर्ष उनकी बरसी मनायी जाती है। मृत्यु के पश्चात् किये जाने वाले हवन पर मृतक की आत्मा की शांति के लिये भी आकृतियाँ बनायी जाती हैं। भारतवर्ष में अपने पूर्वजों की स्मृति में समाधि या स्मारक बनाने की परम्परा धनिक वर्ग से लेकर अधिकांश जनजातियों में प्रचलित है। आदिम परम्परानुसार अपने पूर्वजों की स्मृति तथा यश को चिरकाल तक स्थापित करने के उद्देश्य से तथा उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने हेतु काष्ठ, पाषाण तथा सीमेंट के स्तम्भों में स्मृति चिन्ह उकेरे जाते हैं।

कोरकू जनजाति में किसी विशिष्ट व्यक्ति की मृत्योपरान्त काष्ठ निर्मित मृतक स्तम्भ 'गातला' सिडौली उत्सव के साथ स्थापित किया जाता है। यह चतुर्भुज तथा चौरस मंदिर के आकार में बनाया जाता है। जिस पर मृतक के प्रतीक स्वरूप पूर्वजों की आकृतियाँ, घुड़सवार, गोदना आकृतियाँ, बेल-बूटे, पशु-पक्षी, ज्यामितीय आकृतियाँ तथा सूर्य-चन्द्र उकेरे जाते हैं।

भील- भिलालों में बनाये जाने वाले पुरुष स्मृति स्तंभ 'गातला' तथा स्त्री स्मृति स्तंभ 'सती' कहलाते हैं। आनुष्ठानिक क्रिया विधियों, मिथकीय परा-भौतिक शक्तियों से परिपूर्ण गातला, लौकिक जीवित मानवों और परालौकिक आत्माओं के बीच सेतु का कार्य कर एक तादात्म्य स्थापित करती है।' आजकाल अधिक टिकाऊ एवं आसानी से उपलब्ध शिलाखण्डों का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है। गातला में राजसी वेशभूषा धारण किये, तलवार या बन्दूक पकड़े पुरुष आकृति तथा दूल्हे रूप में सुसज्जित आकृति को कभी-कभी सपत्नि भी अंकित किया जाता है। कभी-कभी व्यक्ति की मृत्यु की घटना भी चित्रित की जाती है। ग्रामीण कलाकार छोटे से छोटे रिक्त स्थान को भी अलंकृत करना नहीं भूलते, अतः वह इन स्थानों को मोर, तोता, मछली, शेर, हिरन, पेड़-पौधा, मृतक के नाम, लहरदार रेखाओं, जालियों तथा अर्द्धचन्द्रकार आकृतियों से सुसज्जित करता है। 'सती' अलंकरण विहीन होती है। कुँवारी कन्या की सती में एक स्त्री आकृति तथा विवाहिता स्त्री को संतान सहित बनाया जाता है।

मुरिया जनजाति में निर्मित कलात्मक पाषाण तथा काष्ठ स्तम्भ 'गायत्री' विभिन्न पशु-पक्षियों, प्रकृति, त्रिशूल तथा पूर्वजों की आकृति युक्त निर्मित किये जाते हैं। आजकल यह परम्परा क्षीण होती जाने के फलस्वरूप कहीं-कहीं पुराने जीर्ण-शीर्ण गायत्री ही देखे जा सकते हैं। माड़िया जनजाति के 'बीत' एवं 'उरुसकाल' स्मृति स्तंभ कलापूर्ण नहीं होते। 'खम्भ' का निर्माण लकड़ी या पत्थर को तराश कर सुडौल आकृतियों द्वारा किया जाता है। 'मट्ठ' सीमेंट द्वारा निर्मित मठ के आकार वाली समाधि होती है। खम्भ तथा मट्ठ के कलागत रूपाकारों को चटक रंगों से सजाया जाता है। शिलाखण्ड के नुकीले शीर्ष पर चिड़िया अथवा मानवकृति तथा मध्य में शिव-पार्वती का प्रतीक चिन्ह त्रिशूल उकेरा जाता है, जिससे मृतक पर ईश्वर की कृपा बनी रहे। वर्तमान में इन स्तम्भों की निर्माण सामग्री तथा कलारूपों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सहज उपलब्ध सीमेंट द्वारा निर्मित इन स्तम्भों के शीर्ष पर भैंस का सींग, जहाज अथवा काँच द्वारा निर्मित आँख लगाकर सज्जित किया जाता है। गायता पुजारी के स्मृति स्तंभ में हरे या नीले रंग के कपड़ों का प्रयोग आवश्यक है, जिससे उनकी भिन्न पहचान संभव हो सके। स्मृति स्तम्भों में टोटम (गोत्र-चिन्ह), नर्तक-नर्तकी, शिकार-दृश्य, लॉदा (बीयर) पीकर जाता हुआ युवक, हाट जाती युवती, समूह मद्यपान के दृश्य आदि उकेरे जाते हैं।

स्मृति स्तम्भ के मुख्य रूप से तथा पूर्व निश्चित स्थानों पर इसलिये बनाये जाते हैं कि आते-जाते सब उनका स्मरण कर सकें तथा उनके विषय में सबको जानकारी प्राप्त हो सके। आदिवासियों में प्रचलित विश्वास के अनुसार यदि किसी स्तम्भ को दीमक नष्ट कर दे, तब माना जाता है कि उसे मोक्ष की प्राप्ति हो गयी।

---

**सन्दर्भ**


1. डॉ. सुरेश चन्द्र त्रिपाठी, कनउजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब, पृ.1
2. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, जिल्द 1, पृ. 444
3. डॉ. सत्येद्र, लोक साहित्य विज्ञान , पृ. 192-193
4. डॉ. गिरीराज किशोर अग्रवाल, कला समीक्षा पृ. 121, 130, 194,
5. Enakshi Bhabani, folk and tribbal designs of india, Page 9
6. श्याम परमार, मालवा जनपद की आंकिक लोकाभिव्यक्ति, 'सम्मेलन पत्रिका' लोक संस्कृति अंक पृ. 384
7. डॉ. एन.बी. चौधरी, लोकसाहित्य और पावरी भाषा, उत्तर संस्थान, कानपुर, प्रथम संस्करण 1978 पृ. 163
8. श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, पृ. 10
10. डॉ. महेन्द्र भानावत, राजस्थान के थापे संस्थापकीय, कला मंडल उदयपुर
11. डॉ. महेशचन्द्र शाडिल्य, काष्ठशिल्प, मध्यप्रदेश की जनजातीय काष्ठशिल्प परम्परा, मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल1996 पृ.100

# इक दिन जाय लंगोटी झार बंदा

डॉ. देवेन्द्र पाठक

*मैं केहि समुझावों सब जग अंधा।*
*इक-दुइ होय उन्हें समुझावों, सबहिं भुलाना पेट के धंधा।*
*पानी के घोड़ा पवन असवखा, ढरकि पैरे जस ओस के बुंदा।।*
*गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा के पड़िगा फंदा।*
*घर की वस्तु नजर नहिं आवत, दियना बारि के ढूँढत अंधा।।*
*लागी आग सबै बन जरिगा, बिनु गुरू ज्ञान भटकि गा बंदा।*
*कहै कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जाय लंगोटी झार बंदा।।* - कबीर

जीवन का अंतिम सत्य है मृत्यु! संसार में सबकुछ अनिश्चित है, निश्चित है तो केवल मृत्यु। इसलिए इसे 'अंतिम ईष्टि' याने अन्त्येष्टि कहा जाता है और यही मनुष्य का सोलहवाँ संस्कार होता है। जैसे नई नवेली दुल्हन सोलह श्रृँगार करके अपने घर से विदा होती है, वैसे ही मानव जीवन का यह अंतिम सोलहवाँ श्रृँगार 'अन्त्येष्टि संस्कार' के रूप में अपनी जीवन यात्रा को विराम प्रदान करता है। यह उसके माँस पिण्ड के शरीर का विराम होता है न कि उसकी आत्मा का। यह नश्वर शरीर ही केवल अग्नि की लपटों में जलता है- आत्मा नहीं, आत्मा कभी नहीं मरती। इसीलिए गीता के द्वितीय अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

*अन्तवन्त इने देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।*
*अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।* - गीता 2/18

अर्थात्- इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्य स्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये- हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर।

और भी -

*य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।*
*उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।* - गीता 2/19

अर्थात् - जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारती है और न किसी के द्वारा मारी जा सकती है।

यह तो स्वत: ही सिद्ध है कि जिसने जन्म लिया, उसकी मृत्यु निश्चित होती है। 'जग' का वास्तविक अर्थ ही आगमन और प्रस्थान से है। 'जग' शब्द में दो वर्णों का मेल है- 'ज' से जन्म और 'ग' से गमन याने मृत्यु।

मृत्यु के संदर्भ में रघुवंश महाकाव्य में महाकवि कालिदास का कथन है-

*मरणं प्रकृति: शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधै:।*
*क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।।*

-रघुवंश 8/87

अर्थात् -देहधारी के शरीर का मरना स्वभाविक ही है। विद्वानों का यह मत है कि जीवित रहना बड़ा भयंकर विकास है। प्राणी जितने क्षण जी जाय, उतने में ही उसे संतोष करना चाहिये।

पंचमहाभूतों से निर्मित यह देह नाशवान् है, प्रत्येक जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है, यह एक शाश्वत सत्य है। एक बार धृतराष्ट्र ने विदुरजी से पूछा-

*शतायुरूक्त: पुरुष: सर्ववेदेषु वै यदा।*
*नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायु: केनेह हेतुना।* - महाभारत उद्योगपर्व 37/9

अर्थात् - जब सभी वेदों में पुरुष की आयु सौ वर्षों की बताई है तो फिर वह किस कारण से अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त नहीं कर पाता।

विदुर जी उत्तर में कहते हैं-

*अतिमानोऽतिवादश्च तथा त्यागो नराधिप।*
*क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्।।*
*एत एवासयस्तीक्ष्णा: कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।*
*एतानि मानवान् हनन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तुते।।*

- महाभारत, उद्योगपर्व 37/10-11

अर्थात्- हे राजन्! अत्यंत अभिमान, बहुत अधिक बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, अपने ही भरण-पोषण की चिंता (स्वार्थी) तथा मित्रद्रोह ये छ: आदतें ही मनुष्य की आयु को क्षीण करती हैं। ये ही मनुष्यों का नाश करती है, मृत्यु नहीं।

यह जन्म के बाद मृत्यु की घटना ईश्वर रूपी निर्देशक दर्शकों (सामाजिकों) को दिखाना चाहता है, जो कि वास्तविकता के निकट ले-जाकर विश्व रंगमंच पर चलने वाले जीवनरूपी महानाटक की सत्यता और अंतिम यात्रा के रूप में प्रत्येक पात्र की भूमिका पर विराम लगाकर उसे वापस बुला लेता है। वह (मनुष्य रूपी पात्र) को नाटकीय मुखौटा लगाकर इस जग में भेजता है और कार्यभार की समाप्ति पर उस जीवन रूपी महानाटक का समापन भरतवाक्य (अन्त्येष्टि) के साथ मनुष्यों के अंदर जागृति पैदा करता है कि पाप और पुण्य का क्या फल होता है? मैं आपसे कहता हूँ कि किसी नाटक का रसास्वादन करो। उसके बाद इस जग के निर्देशक के नाटक से तुलना करो, तो यही पता चलेगा कि जैसे नाटक के प्रारंभ में मंगल स्तुति के रूप में नांदी के साथ नाटक उत्तरोत्तर गति को प्राप्त करता है, ठीक वैसा ही जीवन रूपी नाटक में भी जन्म लेने वाले शिशु के लिए मंगल गीत लोक परिपाटी के आधार पर गाये जाते हैं जो कि जन्म के समय किये जाने वाले संस्कार हैं और अंतिम यात्रा के समय भी मृत्यु गीतों का प्रचलन लोक में है जो कि नाटक के समान ही भरतवाक्य के रूप में सामाजिकों को संदेश प्रदान करते हैं।

मृत्यु संस्कार के लोक में प्रचलित गीतों की तान मनुष्यों को सोचने पर विवश कर देती है कि एक दिन हमें भी इस जग से जाना है। संत कबीर, सूरदास, ब्रह्मानंद, तुलसीदास इत्यादि की वाणी आज भी लोक में मृत्यु के समय गाई जाती है-

*जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।*
*ता दिन तेरे तन तरूवर के सबै पात झरि जैंहैं।*
*घर के कहैं बेगि ही काढ़ो, भूत भये कोऊ खैहैं।।*
*जा प्रीतम सो प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं।*

और भी–

*प्राण राम जब निकसन लागे।*
*उलटि गयीं तब दोनों पुतरियाँ।।*
*भीतर से जब बाहर लाये।*
*छूटि गयीं सब महल अटरियाँ।।*
*कहत कबीर सुनो भाई साधो।*
*संग चली वह सूखी लकरियाँ।।*

× × ×

*क्या तन माँजता रे इक दिन माटी में मिल जाना*
*माटी ओढ़न माटी बिछावन, माटी का सिरहाना*
*माटी का कलबूत बन्या है, जिसमें भँवर लुभाना।।*

× × ×

*करमाँ की रेखा न्यारी, विधना टारी नाय टरे।*
*लख घोड़ा लख पालकी, सिर पर छत्र फिरे।*
*हरिश्चन्द्र सतवादी राजा, नीच घर नीर भरे।।* – सूरदास

× × ×

*दो दिन का जग में मेला, सब चला–चली का खेला।*
*कोई चला गया कोई जावै, कोई गठरी बाँध सिधावै।*
*कोई खड़ा तैयार अकेला।* – ब्रह्मानंद

जगत की नश्वरता और क्षणभंगुरता का दृश्य देखते ही देखते मन भर आता है, हृदय की धड़कने तेज हो जाती हैं, आँखें स्तब्ध रह जाती हैं और शोक के कारण मस्तिष्क अचेतन–सा हो जाता है। एक ही बात ध्यान में रहती है, हमने क्या किया? अंत में बस इतना ही–

*क्षणभंगुर जीवन की कलिका,*
*कल प्रातः को जाने खिली न खिली।*
*मलयाचल की शुचि शीतल,*
*मंद सुगंध समीर मिली न मिली।।*
*कलिकाल कुठार लिये फिरता,*
*तन नम्रसे चोंट झिली न झिली।*
*रटले हरिनाम अरी रसना!*
*फिर अंत समय में हिली न हिली।।*

# मृत्य संस्कार की प्रासंगिकता

डॉ. लक्ष्मीनारायण गुप्त 'विश्वबंधु'

पुनर्जन्म- मृत्यु संस्कार भारतीय जीवन पद्धति में विशाल भारत राष्ट्र के विभिन्न भागों में न्यूनाधिक कर्मकाण्ड अनुशासन के साथ पौराणिक साहित्य के मूल स्रोत पर आधारित हैं। भारतीय पुनर्जन्म में पूर्ण आस्था और विश्वास रखते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न श्लोक प्रसिद्ध है-

*पुनरपि मरणं पुनरपि जीवनं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।।*

एक अन्य श्लोक भी बतलाता है कि पुण्यवान व्यक्ति मृत्योपरांत स्वर्ग जाते हैं। स्वर्ग के भोग साधनों का उपयोग करते हुए जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तब वे पुनः पृथ्वी पर जन्म लेते हैं, यथा-

*ते तं भुक्तवा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति।।*

जन्म-मृत्यु का यह पराविज्ञान पारदर्शी नहीं हैं। स्वर्ग और नर्क की कल्पना भारतीय जीवन दर्शन में ही नहीं विश्व के अन्य धर्मों में भी Hell & Heaven (ईसाई) जन्नत और दोजख (इस्लाम) नाम से की गई है। इस निश्चयात्मक निर्णय के पीछे कर्मवाद है। मानव देह में आत्मा के प्रवेश के बाद जब जीवन बनता है, तो उसका उद्देश्य जीवन का उत्कर्ष करना होता है। भोग और योग विस्तृत व्याख्या वाले दर्शन के तकनीकी शब्द हैं। मानव और मानवेत्तर जीव के दो प्रकार हैं- मानवेत्तर जीव-जन्तु स्वभाव से भोगवादी होते हैं, अर्थात् जन्म-जन्मान्तर में असत् कर्म करने के कारण उन्हें मानवेत्तर योनि को तब तक भोगना पड़ता है, जब तक उनके पापों का

क्षय नहीं हो जाता। मानव शरीर प्राप्त करने पर जब उसे दु:ख प्राप्त होता है, तो वह किये हुये पाप कर्मों का फल होता है और जब सुख प्राप्त होता है, तब माना जाता है कि यह पुण्य कर्मों (पूर्व या वर्तमान) के फल स्वरूप प्राप्त हुआ है। अत: मानव भोक्ता भी है और कर्ता भी, जबकि मानवेत्तर जीव केवल भोक्ता होते हैं।

जीवन दर्शन में कर्म करने का बड़ा महत्त्व है। कर्मफल भोगना ही पड़ते हैं, वे जन्मांतर में भी भोगना पड़ते हैं। आत्महत्या करके जीवन से छुटकारा पाकर भी कर्मफल मानव का पीछा नहीं छोड़ते। पुनर्जन्म में उसे ईश्वर फल भोगने को विवश करता है और आत्मोत्कर्ष करने हेतु सद्कर्म कर पुण्य कमाने का अवसर देता है। कर्मवाद सम्बन्धी स्पष्टीकरण निम्न श्लोक में देखिये-

*अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।*
*न काले क्षीयते कर्म जन्म कोटि शतैरपि।।*

इस प्रकार कर्मों का भोगना कर्मबंधन है और भोग समाप्त होने पर जीव का निर्मल, निर्दोष, निरहंकारी चरित्र ही जीवन मुक्ति है। शिवपुराण के विश्वेश्व संहिता अध्याय अठारह में मानव को प्राप्त होने वाली मुक्ति के चार प्रकार बताये गये हैं। कर्म से लेकर प्रकृति (आठ तत्त्व से निर्मित शरीर) पर्यन्त सब कुछ जब वश में हो जाता है, तब वह जीव मुक्त कहलाता है और सांत्वना रूप से विराजमान होता है। इन चार प्रकार की मुक्तियों के नाम हैं-

1. सालोका मुक्ति (ईश्वर के लोक में निवास), 2. सामीप्य मुक्ति (ईश्वर के समीप निवास), 3. बुद्धि के वश में हो जाने पर सार्ष्टि मुक्ति, 4. सायुज्य मुक्ति (ईश्वर के ऐश्वर्य को प्राप्त करना)।

वेद-शास्त्रों में वर्णित यह मुक्ति विधान सदेह (शरीर) को प्राप्त नहीं होता। इसके लिये मनुष्य के देहांत होने के बाद स्वर्गादि लोकों में जाने वाली उसकी माटी पंचतत्त्व निर्मित देह सूक्ष्म शरीर प्राप्त करती है। यह सूक्ष्मदेह स्वर्ग और नर्क दोनों में क्रमश: कर्मभोग हेतु जाता है। स्वर्ग में पुण्यों के स्थिर रहने तक सुख भोग करना और नर्क में भयानक दु:ख भोगता है। पुराणों में अनेक प्रकार के नर्कों का वर्णन है। सबसे भयंकर नर्क कुंभीपाक व रौख हैं। विश्वामित्र ने एक राजा को सदेह स्वर्ग भेजने का प्रयास किया था, पर वे असफल रहे। सूक्ष्म शरीर मृत्यु के बाद स्वर्ग-नर्क भोगता है। मनुष्य नरकगामी न हो, इसलिये ईश्वरीय विधान ने संतान का प्रावधान रखा है। इसमें विशेष रूप से पुत्र का ही महत्त्व है। पुत्र की परिभाषा/ व्याख्या ही पिता को नर्क से बचाने वाली है- यथा - *पुं नाम नरकात इति पुत्र:।*

सरल भाषा में चेतनाशील कर्ममय जीवन की श्वास का शरीर से निकल जाना या श्वासोच्छवास प्रक्रिया का बंद हो जाना, जीव की मृत्यु स्थिति कहलाती है। मृत्यु के सामान्य लक्षण हैं-

1. श्वास क्रिया का बंद हो जाना (बर्हिनिरसि नि: श्वासो विश्वास: क: प्रवतेते)।
2. अंगूठे की जड़ में चलने वाली नाड़ी की चाल बंद हो जाना। (यथा- स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा (नाड़ी) प्राणनाशिनी-भावप्रकाश)।
3. समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का अकर्मण्य हो जाना।
4. शरीर से प्राण निकल जाने के बाद व्यक्ति की संज्ञा मिट्टी हो जाती है।

लोकजीवन में मृत्यु होने पर अनेक शुभ शब्दों द्वारा अलंकृत किया जाता है। जैसे कि उनका अंतकाल हो गया है। वे देवलोक या स्वर्ग लोक सिधार गये.. आदि। लोक को प्रताड़ित करने वाले अत्यंत क्रूर और पापी को भी मुक्ति मोक्ष स्वर्गारोहण आदि शब्दों से ही सम्बोधित किया जाता है।

आयुर्विज्ञान के अनुसार मृत्यु दो प्रकार की होती है- काल मृत्यु और अकाल मृत्यु।

पौराणिक मतानुसार मानव जीवन की सामान्यतया विशिष्ट आयु (अवधि) सौ वर्ष मानी गई है, अत: वरिष्ठजन आशीर्वाद देते समय 'जीवेत शरद: शतम्' कहते हैं। जब महिला या पुरुष अपने जीवनकाल में अपने पुत्र-प्रपुत्र-पुत्री-दामाद सहित अपना जीवन संतोषप्रद व्यतीत करते हुए बिना किसी आकस्मिक घटना के मृत्यु को प्राप्त होते हैं, तब इसे स्वाभाविक या काल मृत्यु कहते हैं। अपने कर्मों के कारण उन्हें स्वर्ग या नर्क कहीं भी जाना पड़े, वे उत्तराधिकारियों (वंशजों/पुत्रों) के पितृ स्वरूप हो जाते हैं और पुत्रों से यथासमय श्राद्ध की आशा करते मोक्ष/ स्वर्ग प्राप्ति

की प्रतीक्षा में रहते हैं। यह शास्त्र द्वारा बनाई गई परम्पराओं एवं अनुमानों पर आधारित है, जिसका निराकरण पिण्डदान द्वारा होता है। प्रत्येक तीर्थ के अतिरिक्त मुख्य रूप से पितृ श्राद्ध का स्थान गया (बिहार) में फल्गु नदी के तट पर स्थित विष्णुपाद तीर्थ नियत है।

जब महिला या पुरुष की किसी भी आयु में किसी दुर्घटना के कारण, जल में डूबने, जहर खाने, आत्महत्या, दंगा-फसाद में गिरने-पड़ने आदि कारण से चलते-फिरते मृत्यु हो जाती है, तब इसको अकाल मृत्यु कहते हैं। मान्यता है कि अकाल मृत्यु वाले जीव का तरण-तारण नहीं होता और वह भूत या प्रेत योनि में तब तक भटकता रहता है, जब तक उसका शास्त्रीय विधि से श्राद्ध नहीं हो जाता।

गया नामक राक्षस के अत्याचारों से देवता पीड़ित थे। अत: विष्णु ने बड़ी युक्ति से उसका वध करने की योजना बनाई। विष्णु ने गयासुर को लेटने को कहा और जैसे ही वह लेटा, उसकी छाती पर बृहतशिला खण्ड रखकर उस पर खड़े हो गये। गया तीर्थ में फल्गु नदी के किनारे एक स्थान पर विष्णु के पाषाण पैर बने हुये हैं, जिन्हें छूने का प्रयास हर श्राद्धकर्ता करता है। वर्णन है कि भगवान राम ने पिता दशरथ का श्राद्ध यहीं किया था और पाण्डवों ने भी अपने पितरों का श्राद्ध यहीं किया था।

- अग्निपुराण 114 वां अध्याय

अकाल मृत्यु से मरने वाले पितरों का श्राद्ध गया तीर्थ में फल्गु नदी से थोड़ी दूर स्थित पर्वत माला पर वहाँ के कुशल पंडितों द्वारा विशिष्ट विधि से जब कराया जाता है, तब प्रेत -भूत योनि (भटकती आत्माओं) में पड़े हुये जीव का उद्धार होकर मोक्ष हो जाता है। यहाँ का श्राद्ध नरक से बचाता है।

भारतीय बहुसंख्यक आस्तिक हैं। ये शैव, वैष्णव एवं शाक्त धार्मिक सम्प्रदायों में विभाजित हैं। भारतीय देववाद में ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता, विष्णु पालनकर्त्ता और शिव संहारकर्त्ता हैं। इस प्रकार मृत्यु के देवता रूद्र या शिव हैं। ये पापी-पुण्यात्मा, धर्मी-अधर्मी, राजा-रंक सभी का नियत समय पर अंत करते हैं। अतएव अकाल मृत्यु से जीवों का संरक्षण करने वाले देवाधिदेव महादेव ही हैं। यथा-

*अकालमृत्यु हरणं सर्व व्याधि विनाशनम्।*
*अकालमृत्युयो: परिरक्षणार्थ वन्दे महाकाल महासुरेशम्।*

मंदिरों में चरणामृत (जल) देते समय पुजारी मनुष्य की अकालमृत्यु से रक्षा करने की कामना करते हुये यही मंत्रोचार करते हैं। शिव की भक्ति/ आराधना/ व्रत साधना से और महामृत्युंजय मंत्र के जाप से अकाल मृत्यु से शिव संरक्षण करते हैं। हमारी संस्कृति में मृत्यु से अमरत्व की ओर जाने/ पाने की भी आकांक्षा की जाती है। यथा- *मृत्योमाऽमृतंगमय।।*

**मृत्यु संस्कार**

मृत्यु के तुरंत बाद के संस्कारों का उल्लेख भारतीय पुराण साहित्य में वर्णित है। सबसे अधिक वर्णन गरुड़ पुराण में है। मृत देह को तुरंत जमीन पर लिटाया जाता है। मरते समय उसके मुँह में गंगाजल और तुलसी पत्र डालते हैं। देह के छिद्र नाक, कान आदि रूई से बंद कर दिये जाते हैं। मृत देह को स्नान कराकर उन्हें नये वस्त्र पहनाये जाते हैं, शरीर का लेप चंदन से कर पुरुष व महिलाओं का शृँगार किया जाता है। मृतक संस्कार कराने वाले पंडित मंत्र सहित पिण्डदान करवाकर उसका परलोक मार्ग सुगम और प्रशस्त्र करते हैं। शवयात्रा के बाद चिता पर रखने के पूर्व पुन: पिण्डदान व अन्य कर्मकाण्ड किया जाता है। मार्कण्डेय पुराण में निम्न उल्लेख है-

यमदूत जब उसे साथ लेकर जाते हैं तो वह बारह दिनों तक अपने घर की ओर देखता रहता है। उस समय पृथ्वी पर उसके निमित्त जो जल और पिण्ड दिये जाते हैं, उन्हीं का वह उपभोग करता है। 12 दिन बाद उसे यमराज का दर्शन होता है।

- मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 10-72 से 75 श्लोक

अन्य पुराणों में भी न्यूनाधिक वर्णन मृत्यु उपरांत संस्कारों का दिया गया है। तेरहवीं, द्वादशी, दसवां आदि संस्कार इसी पौराणिक संस्कार के अनुसार लोक सम्मति से किये जाते हैं।

माता-पिता या अपने सगोत्रीय परिवारजनों पितामह, प्रपितामह, इसी प्रकार आजी-दादी, नाना-नानी का सविध श्राद्ध करने का अधिकार शिष्य और पुत्र को पुराणों में दिया गया है। यही पिण्डदान करने के अधिकारी हैं। 'शिष्य की अपेक्षा पुत्र श्रेष्ठ है, क्योंकि शिष्य शेष पापों से पितरों को मुक्त करता है, जबकि

पुत्र समस्त पापों से बचा लेता हैं। यथा-

*शेषात् तारयते शिष्यः सर्वतो अपि हि पुत्रकः ।।*

- वामन पुराण 61/29

वामन पुराण के इसी अध्याय में पुत्रों के प्रकार उनके श्राद्ध करने के अधिकार और महत्त्व का वर्णन भी किया जाता है। पितृ ऋण से पुत्र को जन्म देने के बाद व्यक्ति इसलिये मुक्त हो जाता है, क्योंकि वह अपने सम्बन्धियों को सब प्रकार के पापों से श्राद्ध के द्वारा मुक्ति प्रदान कराता है।

मृतक का अग्नि संस्कार प्रायः पुत्र ही करते हैं और बारह दिन तक मृतक को पिण्डदान कर उसके मोक्ष की साधना करते हैं। घर का शुद्धिकरण व पवित्र नदियों सहित गंगा स्नान और तेरहवीं को गंगाजली के पूजन, ब्राह्मण भोजन आदि से मृतक के घर का शुद्धिकरण होता है।

**सूक्ष्म शरीर**

भारतीय सनातन चिंतन के अनुसार सृष्टि में जीव और जगत पर विभिन्न दृष्टियों से अनन्त युगों से सार्थक चिंतन होता आया है, किन्तु सृष्टि के आदि- अंत के अन्तर्गत जीव और जगत की रचना तथा मुख्य रूप से मानव एवं मानवेत्तर प्राणियों व जड़-चेतन के जन्म से मृत्यु तक यात्रा और मृत्यु के उपरांत जीव हमें भी विशेष रूप से मानव के पार्थिव देह त्यागने के बाद उसके सूक्ष्म शरीर या शरीर की उस चेतन शक्ति का जिसके देह में रहने से व्यक्ति जीवित रहता है- कहाँ? कैसे? और कब, और किस तत्त्व में विसर्जन या विलयन या महामिलन होता है, इसका पता निश्चयात्मक रूप से अभी तक सामने नहीं आया।

भारतीय चिंतनधारा कहती है कि शरीर या देह क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु इन पंचतत्त्वों से जड़ रूप में निर्मित होता है, जिसमें चेतन के प्रवेश से जिसे आत्मा कहते हैं, वह प्राणवान होकर ज्ञानवान और कर्मशील बनता है। यही जीव कहलाता है और मृत्यु के समय यही तत्त्व विघटित होकर पाँचों प्रकृतियों में अर्थात् पंचतत्त्वों में विलीन हो जाते हैं, तब प्रश्न उठता है कि कर्म विपाक के अनुसार जीव स्वर्ग या नर्क कैसे और कब जाता है। वह कहाँ जायेगा, इसकी व्यवस्था कौन करता है? इस समस्या पर विज्ञान अभी तक कोई उत्तर नहीं दे सका। हाँ, आध्यात्मिक विज्ञान ने अवश्य परलोकों में विष्णुधाम, शिवधाम, ब्रह्मलोक, सूर्यलोक, साकेत धाम, स्वर्ग और नर्क में मृत्युपरांत मानव के जाने और रहने-भोगने का भारतीय पौराणिक साहित्य में वर्णन कर मानव के बंधन और मोक्ष की व्याख्या कर सर्व काल, देश में उसके सदाशयी जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त किया है। पौराणिक कथा में नचिकेता और यम की वार्ता में मृत्यु उपरांत देह की चर्चा है।

समाज के मध्य निवास करने वाले महिला व पुरुष जाने-अनजाने कोई ऐसा कर्म कर डालते हैं, जो परपीड़ा का कारण होता है। समाज ने आदिकाल से प्रगति पथ पर चलने वालों के लिये, समय-समय पर परस्पर हितचिंतन के लिये नियम बनाये हैं, जिन्हें नीति कहते हैं। विकार रहित जीवन सदाशयी और सदाचारी होता है और निर्धारित नीति नियम का अनुपालन जब करता है, तब इसे धर्म स्थापन कहते हैं, जो सबको प्रिय और हितकारी होता है। गोस्वामी जी ने मानस में कहा है-

*नीति धर्म के चरण सुहाये। भांति अनेक मुनीसन गाये।*

नीति के विरुद्ध जीवन संचालन पापकर्म हैं। सुख-शांतिमय जीवन समस्त मानव समाज का हो तो पाप नहीं होंगे। अपराध नहीं होंगे।

सभी पुराणों में और पुराणेत्तर शास्त्रों व काव्यों में नीति पर चलने का मनुष्य को कहा गया है। जीवन का लक्ष्य भुक्ति और मुक्ति में विभाजित है। भोग मार्ग पर चलने वाले पाप कर बैठते हैं। उक्त ग्रंथों में पापों की लम्बी-चौड़ी सूचियाँ प्रस्तुत की गई हैं। जीवन में पूर्वजन्म के पापों और वर्तमान जन्म के पापों के परिणाम भोगने पड़ते हैं। सामाजिक पाप राज्य की दृष्टि से अपराध भी होते हैं, उदारहरणार्थ चोरी करने, दुष्कर्म करने का परिणाम कानून द्वारा दंडित करना भी है और दैहिक, दैविक, भौतिक ताप भोगना भी। वाराह पुराण अध्याय 13 में पाप क्षय और अध्याय 211 में पापनाश और कर्म विपाक का वर्णन है। मनुष्य की प्रज्ञा (बुद्धि) जब कहती है- अमुक अनिष्ट काम नहीं करना चाहिये, पर फिर भी वह करता है तो पाप करता है। कर्म विपाक व्यक्ति की क्रिया की प्रतिक्रिया है। सद्कर्म की प्रतिक्रिया पुण्यार्जन है, जबकि कदाचरण, कुकर्म, कुसंग, कुबुद्धि से प्रेरित कर्म दुःखदायी होते हैं और परिणाम में पाप संग्रह करते हैं। संभोग का कर्मविपाक

क्षय रोग निश्चित ही पीड़ा दायक और मृत्यु की ओर उन्मुख करता है।

पापमोक्ष के लिये शास्त्रों में अनेक उपाय बताये गये हैं। पापकर्त्ता स्वयं धार्मिक अनुष्ठान कर, ईश्वर की भक्ति में रत होकर, तीर्थाटन कर, दान, दया के कार्य कर अपने पापों को कम कर सकता है। श्राद्ध उत्तराधिकारियों द्वारा करने पर मृतक को शेष पापों से मुक्ति दिलाता है।

**श्राद्ध**

श्राद्ध का समय, पितृ परिचय, श्राद्ध की विधि और भेट, पिण्डदान का वर्णन वाराह पुराण के अध्याय 13 व 14 में प्रस्तुत है। नैमिषारण्य, प्रभासतीर्थ, बद्रीनाथ, गयाधाम श्राद्ध के लिये अधिकृत तीर्थ है।

श्री वाराह पुराण अध्याय 13 में पितृगीत का उल्लेख है। हमारे पितृ कहते हैं- 'कुल में क्या कोई ऐसा बुद्धिमान धन्य मनुष्य जन्म लेगा, जो वित्त लोलुपता को छोड़कर हमारे निमित्त पिण्डदान करेगा।' पितृ पिण्डदानकर्त्ता से सामर्थ्य के अनुसार कर्मकाण्ड कर दान-दक्षिणा की बात कहते हैं। यदि श्राद्धकर्त्ता अत्यंत गरीब है तो केवल प्रणाम कर उन्हें तृप्ति प्रदान कर सकता है, यह कहते हुये-

*न में अस्वि वित्तं न धनं न चान्यच्छाद्धस्य योग्यं स्वपितृन्नवोऽस्मि।*
*तुष्यन्ति भक्त्या पितरो मयैतौ, भुजौ ततौ वर्तमान भरुतस्य।।*

- श्री वाराह पुराण 13/58

इस प्रकार देश, वेग, रीति के अनुसार प्रत्येक सनातन धर्मी को यह समझना चाहिये कि मृतक संस्कार कोई रूढ़ या अंधपरम्परा नहीं, जीवन परा-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंश है, जिसके पालन से मृतक का मोक्ष अर्थात् पुनर्जन्म के कष्ट से मुक्ति और उत्तराधिकारी को सुख-शांति वैभव व भुक्ति-मुक्ति प्राप्त होती है।

मृत्यु को भयावह नहीं मानना चाहिए। प्राय: सभी अध्यात्मिक चिंतकों का विचार है कि जन्म यदि जीवन का एक छोर है तो मृत्यु दूसरा। जन्म के साथ ही मृत्यु का प्रादुर्भाव भी हो जाता है। मृत्यु छाया के समान व्यक्ति के साथ चलती है। इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध चिंतक काका कालेलकर जिनका 'पंचमहापातक' नामक लेख अत्यंत प्रसिद्ध है, मृत्यु को अपना परम सखा मानते हैं।

अपने 'प्रणमिनी' काव्य ग्रंथ में 'विश्वबंधु' जी मृत्यु को जीवनसंगिनी मानते हुये उसकी रमणीयता का वर्णन करते है, उसे नई-नवेली दुल्हन के रूप में प्यार भरी दृष्टि से देखने को कहते हैं-

*आ मेरी ओ जीवन संगिनी मृत्यु मुझे कर आलिंगन।*
*मुझे देख लेने दे पलभर उठा अरे यह अवगुण्ठन।।*

भगवान श्रीकृष्ण का गीता के अध्याय 8 के श्लोक 6 में कथन है कि अंत समय में जिसका जो भाव होता है, उसको पुनर्जन्म में वही प्राप्त होता है। श्लोक 5 में वे इसे अधिक स्पष्ट कर देते हैं। यथा-

*अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।*
*य: प्रयाति स भद्भावं याति नास्त्यत्र संशय:।।*

अर्थात् जो भगवान को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह भगवान के साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है। अत: मृत्यु वीभत्स नहीं जीवन का रमणीय संस्कार है। गीता के अनुसार उत्तरायण में देह त्याग करने वाले सीधे स्वर्ग पहुँचते हैं, यह पुण्यकर्म विपाक है। उनका पुनर्जन्म नहीं होता। दक्षिणायन देवताओं की अंधेरी रात्रि है और उत्तरायण देवताओं का प्रकाशमय दिन। अत: प्रत्येक मनुष्य अच्छे -पुण्य कर्म करके उत्तरायण के प्रकाश में मरकर सीधे देवताओं की शरण में जाना चाहते हैं। महाभारत में उत्तरायण में मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुये घायल भीष्म पितामह महीनों पड़े रहे थे।

सनातन धर्म व्यवस्था में श्राद्धकर्म या पितरों को पिण्डदान और विशेष रूप से आश्विन या क्वार मास में कृष्ण पक्ष की भाद्र पूर्णिमा से लेकर क्वार की अमावस्या जिसे पितृ मोक्ष अमावस्या कहते हैं, इन सोलह दिनों में उत्तराधिकारी पुत्र आदि को पितरों के श्राद्ध से पितृदोष का निवारण करने का शास्त्रों में प्रावधान किया गया है। पौराणिक कथा के अनुसार महाबली, पुण्यवान महारथी कर्ण जब मृत्यु के बाद चित्रगुप्त के समक्ष उपस्थित हुये तो उन्हें स्वर्गवास प्रदान इसलिये नहीं किया, क्योंकि वे पितृऋण से निवृत्त नहीं हुये थे, यद्यपि उन्होंने दान में सर्वस्व दे दिया था,

इसलिये चित्रगुप्त ने उक्त 16 दिनों में कर्ण को श्राद्ध करने की अनुमति प्रदान की।

वैदिक वाङमय के अनुसार मनुष्य जन्म लेने के बाद व्यक्ति को तीन ऋणों की अदायगी करना होती है। देव, ऋषि और पितृ ऋण। पितृपक्ष के 16 दिनों में मनुष्य तीनों ऋणों से श्राद्ध कर मुक्त होकर जहाँ एक ओर अपने पितरों को स्वर्ग या अमरत्व प्रदान करता है और पाप मुक्ति दिलाता है, वहीं अपने कल्याण भुक्ति और मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त कर लेता है। वह पितृ ऋण से मुक्त होकर स्वर्ग, विष्णु और ब्रह्मलोक स्वयं भी प्राप्त करता है। दान-पुण्य न करने वालों से पितृऋण अप्रसन्न रहते हैं। अत: भारतीय सनातन धर्म द्वारा लोकोपकारिता, सामाजिक समरसता और चित्त में शांति के लिये ब्रह्मवर्त पुराण के साथ अन्य पुराणों और मनुस्मृति में श्राद्ध की परम्परा और श्राद्ध अनुशासन का उल्लेख है। तदानुसार अपने पितरों के मोक्ष और अपने जीवन में सुख-शांति और संतान प्राप्ति हेतु अवश्य पितृ तर्पण, श्राद्ध, ब्राह्मण भोजन, गरीबों को दान कर पुण्यार्जन करना चाहिये। बिहार प्रांत के गया नामक नगर में फल्गु नदी के किनारे क्वार के सोलह दिन श्राद्ध कर पितृ तर्पण अवश्य करना चाहिये। यही मृत्यु की लोक प्रतिष्ठापना है।

**शोक साहित्य**

मानव को एक निर्धारित आयु के बाद मृत्यु तक पहुँचने के बीच का समय चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास का पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। चरित्रवान, मर्यादावादी और नीतिज्ञ महिला-पुरुष एक सदाशयी आदर्श समाज का संचालन करते हैं, इसलिये विद्वानों व धर्माचार्यों ने गद्य-पद्य की विभिन्न विधाओं में विकार रहित जीवन जीने के लिये उपदेशात्मक साहित्य का सृजन अपनी-अपनी भाषाओं में किया है और दुर्गतिपूर्ण जीवन की नि:सारता का वर्णन प्रस्तुत किया है। संस्कृत के निम्न श्लोक में यही भाव व्यक्त है-

*धनानि भूमौ पश्वश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वादिजना: श्मसाने।*
*देहस्चितायां परलोक मार्गे, कर्मानु गो गच्छति जीर एक।।*

इसका तात्पर्य है कि जीव सब कुछ छोड़कर केवल सद्-असद् कर्मों का लेखा लेकर जीवन से मृत्यु के लिये प्रस्थान करता है, जिसे उसके पुनर्जन्म के दु:ख-सुखमय जीवन का आधार बनता है।

अध्यात्मिक धारा के सुप्रसिद्ध महान कवि कबीरदास ने इसी भाव को आगे बढ़ाते हुये कहा है- हे मन! लोक से नहीं परलोक से नाता जोड़ो । यथा-

*मन फूला फूला फिरे जगत में कैसा नाता रे।*
*माता कहे यह पुत्र हमारा बहिन कहे यह वीर मेरा।*
*भाई कहे यह भुजा हमारी नारि कहे नर मेरा रे।*
*पेट पकरि के माता रोवे बांह पकरि के भाई।*
*लपट झपट के तिरिया रोवे हंस अकेला जाई।*
*हाड़ जले जैसे लाह कड़ी को केस जरे जैसे घासा।*
*सोने कैसी काया जर गई, कोई न आया पासा।*

'प्रणयिनी' काव्य में विश्वबंधु जी ने अपने प्राणेश के विरह में उसके तन तजने पर पिण्डदान और जलदान नयन जल से करने का चिंतन किया है, मृतक के कर्म इसी समय निकटता से स्मरण आते हैं। देखिये-

*मुझे बना देना तुम दुलहन, कर अपने हाथों श्रृँगार।*
*कंधे पर डोली ले चलना, सहना प्यार भरा यह भार।*
*नेह निवाहना अंत समय तक, क्रिया कर्म कर यादों से।*
*नयननीर से तर्पण करना, पिण्डदान दे हृदय अपार।।*

लोक जीवन में देश, भेष, भाषा की विविधता भले ही हो, पर जीवन मृत्यु से सम्बन्धित भावचिंतन सब काल-सब स्थान पर लगभग एक सा होता है। अनेक लोक गीतों में भी इस विषय पर बहुत कुछ लिखा और गाया गया है, किंतु मर्सिया (इस्लाम में शोक गीत) जैसा समेकित गान अभी देखने में नहीं आया।

# मृत्यु संस्कार के जनपदीय रूप

डॉ. प्रफुल्ल कुमार सिंह

जीवन और जगत की सृष्टि में सब कुछ रहस्यों से भरा है, जिसे जानने की चेष्टा में हम अनवरत लगे हुए हैं। यह सर्वज्ञात है कि जन्म और मृत्यु जीवन का सत्य है। इस सत्य को विभिन्न जनजातीय, जातीय, शास्त्रीय आदि परिधियों को 'संस्कार' बद्ध करने की चेष्टा की गयी है। यह भी सत्य है कि शास्त्र के मूल में लोक है, क्योंकि जो कुछ शास्त्र में अभिलिखित है, वह मूलतः लोक और उनकी संस्कृति में निहित है। 'शास्त्र' तो निःसंदेह परवर्ती अवधारणा है।

शास्त्रीय संदर्भ में संस्कार का विधान आत्मकल्याण को लोककल्याण के लिये एक सामाजिक विधान के रूप में उपस्थित किया गया है। शुभत्व की प्राप्ति एवं अशुभत्व का उच्छेदन, घर-आँगन का साफ रखना हमारा दैनिक कृत्य है, तो उसे धूप-दीप, गंध, पुष्पादि से परिवेश को सुवासित और पवित्र रखना संस्कार के अंतर्गत आता है। आत्मोन्नयन और लोककल्याण के लिये मनु, अत्रि, याज्ञवल्क्य, अंगिरा, कात्यायन, पाराशर, गौतम, वशिष्ठ आदि स्मृतिकार अपने बुद्धि-बल से समाज की आचार्यगत समस्याओं के समाधान के लिये मार्गदर्शन देते रहे। समाज को सुचारू रूप से संचालित करने वाली पद्धति संस्कृति कहलाती है। दूसरे शब्दों में संस्कार ही संस्कृति का आधार है और संस्कृति मनुष्य की जीवन यात्रा का नवनीत है।

शास्त्रीय संदर्भ में संस्कार की संख्या कहीं अड़तालीस (गौतम) कहीं पच्चीस (अंगिरा) तो कहीं सोलह (व्यास) कही गयी है। इनमें व्यास स्मृति के सोलह संस्कार ही सर्वमान्य हैं। इनमें तीन जन्म से पूर्व (गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमतोन्नयन) एवं शेष तेरह जन्म के बाद संपादित होते हैं। अन्यान्य तेरह संस्कारों में जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, वेदस्नान, विवाह, विवाहग्नि, परिग्रह और अन्त्येष्टि संस्कार। हमारा प्रतिपाद्य है अन्त्येष्टि संस्कार। सोलह संस्कारों का विधान

वैदिक दृष्टि से अभिजात्य वर्गीय विधान है, जबकि जनपदीय जीवन में यह संस्कार विधान तीन की संख्या में ही सिमट गया है- जन्म, विवाह और अन्त्येष्टि। ये संस्कार लोकानुष्ठानिक हैं और उत्सवधर्मिता से लोकानुरंजक बनाया गया है, क्योंकि जन्म और विवाह से जो सुख हमें मिलता है, वही सुख मरण (मृत्यु) से भी। क्योंकि जन्म की तरह मृत्यु भी जीवन का सत्य है। इसे सहर्ष स्वीकारना आवश्यक है।

उत्सवधर्मिता मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है। वन आखेट और कबीलाई संघर्ष में विजय को और उसके उत्सवधर्मी रूप को शैलाश्रयों में चित्रांकित किया गया है। कबीलों में सौंदर्यबोध था, रस-रोमांच भी था, लेकिन उनमें खुलापन था, आचार्यगत कोई बंधन नहीं था। यही आदिम उत्सव-धर्मिता सामाजिक चेतना के बाद किंचित मर्यादित होती चली गयी। इनके अवशेष आदिम जातियों, जनजातियों में आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

डॉ. वीरेन्द्र परमार ने अरुणाचल प्रदेश के आदिवासियों के बीच अवशिष्ट मृत्यु और तद्जनित लोकानुष्ठानिक क्रियाओं में उनकी मृत्यु विषयक अवधारणाओं का अनुशीलन किया है। उनमें शव को जलाने-दफनाने और खुले ऊँचे मचान पर रखने के विधानों का तात्विक अनुशीलन है। तद्नुसार मृत्यु के अनेक कारण होते है- वृद्धावस्था एवं लम्बी बीमारी के कारण, इसे देव इच्छा कहा गया है। असामयिक मृत्यु सर्पदंश, डूबने, जल जाने या मारे जाने के कारण, इसे दुष्ट शक्ति का कोप कहा गया है, और गर्भवती स्त्री का मरना दुर्भाग्यपूर्ण माना गया है। जबकि जातीय प्रधान की मृत्यु पर लोग एकजुट होकर नाचते-गाते, पशु बलि देते, मदिरा पीते-पिलाते और उत्सव मनाते हैं, शोक का कहीं आभास तक नहीं दिखता। यह आदिवासियों की उत्सवधर्मिता है।

झारखण्ड का छोटा नागपुर क्षेत्र आदिवासियों का सघन क्षेत्र है। यह क्षेत्र आदिवासियों की संस्कृति का जीता-जागता संसार है। आबादी से इतर भूखण्ड में मृतकों की समाधियों पर छोटे-बड़े सुगढ़ और अनगढ़े पत्थर स्मृति स्वरूप लगे हैं। इन्हें यथासमय अनुष्ठानिक बलि-पूजा दिये जाने का लौकिक विधान पारम्परिक है। यह अपने पूर्व पुरुष/ मृतात्मा के स्मृति बोधक हैं, जबकि उत्तर बिहार में ऐसे स्मृति बोधक पूर्व पुरुष 'डीहवार' के रूप में पूजे जाते हैं, अर्थात् बीजी पुरुष का देवतुल्य स्मारक। मिथिलांचल में इसे बरहम थान कहा जाता है। वहाँ के गाँवों में प्राय: ऐसे बरहम थान देखे जा सकते हैं। प्राय: प्रत्येक हरेतम बरहम (ब्रह्म के समानांतर) के अलग-अलग नाम हैं- पुरुषोत्तम बरहम (दरभंगा) होतम ब्रह्मम (भैरवा) आदि। वे अकाल मृत जीव होते हैं। पुरुषोत्तम बरहम की हत्या काफिरों ने कर दी थी। हरेतम बरहम ने जीवों की रक्षा के लिये आत्माहुति दी थी। शिवई सिंहपुर में युद्ध में मारे गये मृतकों (अकाल) को बरहम रूप में पूजा जाता है। यह प्रकारांतर से अकाल मृतकों का स्मरण दिलाते हैं।

मैंने मोरंग जनपद (पूर्वी नेपाल तराई) में मृतकों के समाधि स्थलों पर पिण्ड बनाने, उन्हें पूजने और बलि भोग अर्पित करते हुए आदिवासियों को देखा है। इन्हें जनपद के धामि (ओझा-गुनी) तांत्रिक विधि से पूजते हैं। यह जनजातियों में मृतकों की अनुष्ठानिक पूजा है। मांगलिक अनुष्ठानों से पूर्व इन्हें मांगल्य की कामना से पूजते हैं। मिथिलांचल की अन्य जातियों में भी अन्त्येष्टि क्रिया के बाद अस्थि संचय के दिन शेष अस्थियों को समेटकर गंगा में प्रवाहित करने का विधान लोक प्रचलित है। चिता की भूमि को निर्मल जल से प्रक्षारित कर एक पिण्ड की संरचना की जाती है और उस पर तुलसी का पौधा लगा दिया जाता है। इसे वैशाख प्रभाव कहा जा सकता है। वैसे समाधि स्थलों पर वृक्ष लगाने की परम्परा प्राचीन है। बौद्ध साहित्य में प्रत्येक चैत्य (समाधि स्थल) में एक वृक्ष विशेष के होने का उल्लेख मिलता है। चैत्यों में यक्ष की पूजा बुद्ध के जीवन काल में लोक प्रचलित थी। वैशाली में चैत्यों की भरमार थी- सारंद चैत्य, बहुप्रतक चैत्य, चापाल चैत्य आदि। कालांतर में ये चैत्य पूजनीय देव स्थल में परिणत हो गये। आज न तो चैत्य हैं, न चैत्य वृक्ष हैं और न तो चैत्यों में पूजित यक्ष हैं, लेकिन उनकी परम्पराएँ बरहम थान के रूप में अवशिष्ट हैं। ब्रह्म (बरहम) की तरह यक्षों के भी अलग-अलग नाम हैं, उसी परम्परा में वाराणसी क्षेत्र में लोक पूजित 'वीर' है- लाडुश वीर आदि। दूसरे शब्दों में मृत पराक्रमी पुरुष प्रमुख यक्ष, वीर, ब्रह्म आदि के रूप में आज भी लोक पूजित हैं, अर्थात् पुरुषों (मृत पूर्व पुरुष) की पूजा पारम्परिक है जो किसी न किसी प्रकार हमें मृत से सीधा जोड़ते है।

मैंने थारू लोकगीत (विराटनगर, नेपाल 1968 ई.) में थारुओं के संस्कार गीतों को तीन मुख्य संस्कारों पर केन्द्रित किया है- सोहर (जन्म), मंगल (विवाह) और निर्गुण (मृत्यु)। तदनुसार लोक का सम्पूर्ण जीवन किसी न किसी धर्म से अनुशासित है। मनुष्य के जीवन को आदर्श और सफल बनाने के लिये धर्म ने विविध संस्कारों का विधान किया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक लोक का सम्पूर्ण जीवन संस्कारमय होता है और प्रत्येक संस्कार गीतमय होते हैं, चाहे वह जन्म का सोहर हो, विवाह का मंगल हो अथवा मृत्यु का 'निर्गुण' हो। सोहर गीतों में संयोग शृँगार की सहानुभूति एवं पुत्र जन्म का उछाह अभिव्यंजित हुआ है। मंगल गीतों में विवाह की मांगलिक अभिव्यक्ति एवं निर्गुण गीतों में काया की क्षणभंगुरता, संसार का मिथ्यापन, जीव की असहायावस्था और मृत्यु की अनिवार्यता वर्णित हुई है। संसार की प्राय: सभ्य-असभ्य जातियों में जीवन के इस अंतिम संस्कार को किसी न किसी रूप में सम्पादित किया जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों को समदाओन (मिथिलांचल) मरखी, मरसिया, (मुस्लिम), मरनी, निर्गुण (थरूहट) कीर्तन आदि कहते हैं। इसने निर्गुणियाँ संतों को विशेष प्रभावित किया है।

थारू लोकगीत के एक निर्गुण (मृत्यु परक) का भाव इस प्रकार है- यमलोक में सभा बैठी, मृतक के सुकृत्य-कुकृत्य पर विचार चल रहा है। चारों ओर यम मंडरा रहे हैं। वे आकर मृतक का प्राण हरण कर चले जायेंगे। कुल-परिजन के लोगों को छोड़कर (बड़े अरमान से चंदन वृक्ष को घर के आँगन में लगाया था।) उनके चले जाने से इस दु:ख भरी नदी को कैसे पार कर पाऊँगी। गीत के मध्य भाग में अन्त्येष्टि क्रिया वर्णित है-

*चानन काटी अछिया जोरल,*
*उपरी में कपड़ा ओढ़ावला*
*हंसवा पूछय इसे सरवर*
*कोय हलकप आंगण जराय।।*
*चंदन की लकिड़यों से चिता बनायी।*
*शव के ऊपर कफन ओढ़ाया गया।*
*प्राण हंस ने सरोवर से बात की और अग्नि संस्कार हो गया।*

दूसरे निर्गुण गीत में मानव देह को पाँच तत्त्वों का पिंजड़ा कहा गया है। इसमें दस द्वार (ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ) हैं। इस पिंजर टूटने में कोई देरी नहीं। प्राण तो बिना पंख का पंछी है, वह तो उड़कर आकाश में चला जायेगा। अंगिका लोकगीत के अनुसार बड़े यत्न से प्राण (तत्त्व) को पाला -पोसा था। वही आज आकाश (शून्य) में चला गया। अब इस निर्जीव काया को बाँस की डोली पर सुलाकर श्मशान ले जाने की तैयारी हो रही है-

*बड़ी रे जतन सांये सुगन एक पोस लौं,*
*सेहो सुगना उड़लै अकास।*
*कांचहि बांस केर डोलिया बनलियै*
*ओही पर काया के हे सुताय।*

बड़े यत्न से सुगना को पोसा, वह उड़कर आकाश लग गया। कच्चे बाँस की डोली पर मृत देह को सुला दिया गया।

अंगिका निर्गुण गीत की ही भावाभिव्यक्ति 'बज्जिका संस्कार गीत' के 'मरनी' (मृत्युपरक गीत) में हुई है। मरनी गीत मृत्यु के तीन दिन बाद 'तिननेहान' (तीसरे दिन का स्नान) पर गाया जाता है। जबकि 'सतनेहान' (मृत्यु के सातवें दिन का स्नान) के मौके पर गाने का विधान है। नारी के लिये पुरुष (पति) सर्वस्व होता है। अब उसकी शेष जिंदगी भार बन गयी है। बज्जिका के मरनी गीतों में कहा गया है कि विधि ने हंसों की जोड़ी को बिछुड़ा दिया। राग-सूत्र खंडित हो गया। माँग का सिंदूर धो दिया गया और हाथ की चूड़ियाँ फोड़ दी गयीं। विडम्बना यह है कि ऐसे निर्गुण, मारवी या मरनी गीतों में पुरुष प्राधान्य के कारण विधवा नारी की दशा ही वर्णित हुई है, जबकि नारी विमुक्त की स्थिति में ऐसे गीत ही नहीं मिलते।

भोजपुरी के निर्गुण गीतों (मृत्युपरक) में करुण और शांत रस की प्रधानता है। इस पर कबीर पंथी निर्गुण की छाया परिव्याप्त है। मिथिलांचल में शव यात्रा के पूर्वार्द्ध में 'समदाउन' गीत गाये जाते हैं। समदाउन गीतों में बेटी की विदाई की करुणा और शव यात्रा से पूर्व मृत पार्थिव शरीर की समान यात्रा की करुणा आच्छादित है। इस प्रकार उत्तर बिहार की ग्रियर्सन द्वारा कथित बिहारी भाषाओं मैथिली, भोजपुरी, मगही, थारू (मघेसी) आदि भाषायी लोकगीतों में मरण गीतों की करुणा मन-प्राण को उद्वेलित कर यह जानने को मजबूर करती है कि मनुष्य की यह देह कच्ची मिट्टी का बर्तन है, जो कभी भी ठोकर लगने से फूट सकता है। मनुष्य की यह काया कागज का पन्ना है, जो जलाधान

से कभी भी गल सकता है, जीवात्मा तो पिंजड़े में बंद पक्षी है, वह कभी भी आकाश में उड़ सकता है। हमारे जनपदीय गीतकारों की इस क्षणभंगुरता को निर्गुणवादी संतकवियों ने अधिक परिष्कृत रूप से अभिव्यंजित किया है।

बिहार के भाषायी जनपदों में लोक प्रचलित मृत्यु परक लोकगीतों में समान रूप से जीवन की नश्वरता, काया की क्षणभंगुरता, जीवों की असहायावस्था, यमलोक की संरचना, जीवों के कृत्यों पर विचार, स्वर्ग और नरक भोग की कल्पना, मोक्ष अथवा जीवन मुक्ति के उपाय, आत्मा-परमात्मा के बीच ठगिनी माया का लोक, मुक्ति के लिये गुरु का मार्गदर्शन आदि वर्णित है। जबकि अन्त्येष्टि कार्यों का अपना लौकिक विधान है, जिसे जातीय प्रधान अथवा पुरोहित सम्पादित करते हैं। गाँव से बाहर किसी नदी या जलाशय के किनारे अन्त्येष्टि संस्कार का विधान है। चार व्यक्तियों के कंधों पर शवयात्रा श्मशान तक गाजे-बाजे के साथ होती है। जमीन सुखाकर चिता बनायी जाती है। उस पर मृतक के शव को स्नान कराकर नये वस्त्र से लपेटकर चिता पर रखा जाता है। कुल परिजन में पुत्र ही प्रायः शव को मुखाग्नि देने का अधिकारी होता है। श्मशान से लौटकर मृतक के घर पर मसान जाने वाले परिजनों लोह, पाथर, आग और पानी का स्पर्श कर अपने घरों को लौटते हैं। मृतक के घर घण्ट रंगा जाता है, मुखाग्नि देने वाले को कर्त्ता कहा जाता है, वह भूतल पर सोता है, नैतिक जीवन यापन करता है। उसके पास हमेशा एक लौह अस्त्र (प्रायः चाकू) रखने का रिवाज है। तीसरे दिन अस्थियाँ समेटकर उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता है। श्राद्ध अंतिम विधान है, जिसमें सामूहिक भोज देने का विधान है। यह सामाजिक सहभागिता का उदारहण है, जो गाँवों में आज भी बचा हुआ है। इसके शास्त्रीय और लौकिक दोनों कर्मकण्ड बने हैं, जिसका उद्देश्य है जीवन मुक्ति या मोक्ष। अतः अन्त्येष्टि का कर्मकाण्ड जीवन के सत्य की आँखें खोलने वाला विधान है।

# बज्जिका गीतों में अन्त्येष्टि संस्कार

डॉ. ब्रजनन्दन वर्मा

इस संसार में जो भी जन्म लेता है, उसे एक न एक दिन जाना ही पड़ता है। इसे हम मृत्यु की संज्ञा देते हैं। मृत्यु के बाद जो कार्य किया जाता है, उसे अंतिम संस्कार या अन्त्येष्टि संस्कार कहते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि आदमी कपड़े की तरह शरीर का त्याग कर फिर नया शरीर धारण कर लेता है। यह सब उस समय होता है, जब आपकी मृत्यु हो जाती है। आत्मा तो अमर है, उसकी मृत्यु कभी भी नहीं होती। मृत्यु के बाद लोग अपने-अपने रीति-रिवाज के अनुसार श्राद्ध कर्म करते हैं। कोई आर्य समाज विधि द्वारा करता है तो कोई गायत्री विधि से अंतिम संस्कार करता है। कुछ लोग पुरानी परम्परा के अनुसार मासिक या तेरह श्राद्ध कर्म करते हैं। तेरह दिन में जो काम होता है, उसमें दाह संस्कार होने के तीन दिनों बाद तीसरा, दस दिनों पर नौकेश (बाल मुण्डन), ग्यारह दिनों पर एकादश और बारह दिनों पर द्वादशा कार्य पंडितों द्वारा सम्पादित होता है। जिस घर में मासिक कार्य होता है, उस घर में एक महीने के अन्दर सब कार्य सम्पन्न हो जाते हैं।

बज्जिकांचल में मरणोपरांत कुछ जगहों पर गीत गाने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इन गीतों में सांसारिक मोह-माया और संवेदना के विभिन्न भाव देखने को मिलते हैं। इन्हीं भावों को समेटे हुए कुछ गीत सन्दर्भ के अनुसार दिये जा रहे हैं। मृत्यु के बाद शरीर यहीं रह जाता है और प्राण निकलकर चले जाते हैं, इसी भाव को सम्बोधित करता हुआ यह गीत देखें-

*एक दिन सुगना उर गेलई।*
*हाड़-मास सभ छोर के।।*
*सब कुछ इहे पर रह गेलई।*
*चल गेलई सभ छोर के।।*
*घर में बइठल हए झमाएल।*
*रोए रतिआ भोर के।।*

*नऽ किच्छिओ साथे ले गेलई।*
*माइ रोए युकी फोर के।।*
*आग लगा के ई देहिआ के।*
*जोरे ओकरा खोर के।।*
*विधना के बतिआ नऽ मिटत।*
*उर गेलई नाता तोर के।।*
*काका-काकी बाबू-भइआ।*
*सब से रिस्ता तोर के।।*
*करनी ओकर साथे गेलई।*
*तोलई धन -दौलत छोर के।।*

अर्थात् एक न एक दिन प्राण इस शरीर को छोड़कर चला जाता है। हाड़-माँस का बना यह शरीर यहीं पर रह जाता है। मनुष्य स्वयं चला जाता है। घर के सभी लोग उदास बैठे रहते हैं। मरने वाला कुछ भी अपने साथ नहीं ले जाता। माँ जोर-जोर से विलाप करती है। शरीर में आग लगाकर उसका दाह संस्कार कर दिया जाता है। कुछ लोग तो मिट्टी के अंदर दफन कर देते हैं। विधि का जो विधान है, वह कभी बदल नहीं सकता है। काका-काकी, पिता और भाई आदि सब लोगों से रिश्ता तोड़कर चले जाते हैं। केवल उसकी करनी ही उसके साथ जाती है। सब धन-दौलत यहीं पर रह जाता है।

शरीर से प्राण निकल जाने के बाद शरीर का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। घर के लोग मृत शरीर को पकड़-पकड़ कर खूब रोते हैं। इस भाव को देखें इस गीत में-

*बरा रे जतन से देहिआ के पोसली।*
*दूध भात मिसरी खिआई हो रामा।*
*देहिआ के छोरी उर गेलई हो रामा।*
*घरही में पिजरा खाली लोटाएल।*
*केम्हा ई हंसा चली गेलई हो रामा।*
*देहिआ में कोनो ने हलचल बुलाए।*
*माई-बहिन रोए पुकीफार हो रामा।*
*मेहरी रोए छाती पीट हो रामा।*

अर्थात् बड़े ही जतन से लोग शरीर का भरण-पोषण करते हैं। दूध-भात और मिश्री भी खिलाते हैं। फिर भी शरीर को छोड़कर आत्मा चली गई। शरीर रूपी पिंजरा घर में ही रह जाता है। आत्मा कहाँ जाती है? किसी को कुछ पता नहीं चलता। शरीर में आत्मा के निकल जाने के बाद कोई हलचल नहीं रहती। माँ-बहन सभी रोते हैं, पत्नी छाती पीट-पीट कर रोती है।

पति के मरते ही पत्नी के हाथ की चूड़ियाँ तोड़ दी जाती हैं, उसकी मांग का सिन्दूर धो दिया जाता है। और उसे सादे लिवास में जीवन-यापन करना पड़ता है। इस भाव को देखें इस गीत में-

*बिधना के लिखल सभ भेलई रे दइआ।*
*अपने महलिआ सुन भेलई रे दइआ।।*
*माथा के सोहाग सऽ मिट गेलई रे दइआ।*
*बाँह के लहटिआ सऽ तुर देलई रे दइआ।।*
*हमरो ई संइआ कहाँ गेलई रे दइआ।*
*तोरी के सनेहिआ बिसारी के नेहिआ रे दइआ।*
*छन ही घेर लेलई बिपतिआ रे दइआ।*

*कइसे के कटतई जीनगिआ रे दइआ।*

परमात्मा का लिखा ही सबके जीवन में होता है। मृत्यु के बाद बड़े-बड़े महल सभी सूने पड़ जाते हैं। माथे का सुहाग सिन्दूर भी मिटा दिया जाता है। बाँह के लहटी सब तोड़ दी जाती है। हमारा यह पति कहाँ चला गया? मुझसे सभी स्नेह तोड़कर और नेह को भूलकर क्षणभर में ही मेरे कपाल पर विपत्तियाँ दे दी, किस प्रकार मेरा यह जीवन कटेगा।

मानव जीवन के अन्त में स्थिति बड़ी ही दर्दनाक होती है, उस समय जब किसी का बेटा मर जाता है तो उसकी माँ की क्या अभिव्यक्ति होती है? देखें इन गीतों में-

*कहाँ चली गेलई हम्मर बेटा हो रामा।*
*उहो रहई आँख के पुतलिआ हो रामा।*
*एके गो रहई घर के कुल दीपक।*
*उहो आई गेलई बुझाई हो राम।*
*केकरा देखी के सबूर हम कबई।*
*कइसे के कटबई समइआ हो राम।*
*कइसे पुतोहिआ के मुँह देखे जबई।*
*केकरा के देबई सिर सेनुर हो राम।*
*केकरा के देखी के मन अगरतई।*
*कइसे के बन्हबई धीर हो राम।।*

माँ कहती है- हमारा बेटा कहाँ चला गया । वही मेरी आँख की एक पुतली था। वही मेरे घर का एक ही कुलदीपक था, जो आज बुझ गया। किसे देखकर हम सब्र करेंगे। किस प्रकार हमारा समय कटेगा। किस प्रकार हम पोतों का मुँह देखेंगे। किसकी मांग में मैं सिन्दूर लगाऊँगी। किसे देखकर मेरा मन प्रसन्न होगा। हम दिल को सब्र बँधा पायेंगे। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। इस प्रकार बज्जिकांचल के क्षेत्रों में महिलाएँ विलाप करती और गीत गाती हैं।

# छत्तीसगढ़ी मृतक संस्कार

राम कुमार वर्मा

मनुष्यों के समूह से परिवार और क्रमशः परिवारों के समूह से जाति-समुदाय और ग्रामों का निर्माण होता है। ये आपसी सहयोग एवं परस्पर स्नेह से सम्बद्ध होते हैं। रक्त से सम्बन्धित होने के कारण इनका सम्बन्ध प्रारम्भ से ही प्रगाढ़ होता है। बाद में वैवाहिक व अन्य तरह के सम्बन्धों से भी आबद्ध होते जाते हैं, जो मानवीय सम्बन्धों में निरंतर प्रगाढ़ता का भाव पैदा करते हैं। इसमें संस्कारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में उल्लेखित सोलह संस्कारों में अंतिम अंत्येष्टि के रूप में प्रचलित हैं। इन संस्कारों का पालन आज भी बड़ी श्रद्धा और उत्साह के साथ किया जाता है। अन्त्येष्टि भले ही दुःख भरा संस्कार है, पर इस परम्परा को भी भलीभाँति पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है।

प्राचीन काल से अलग-अलग क्षेत्रों में प्रचलित अंतिम संस्कार को छत्तीसगढ़ में बढ़ते भौतिकवाद के बाद भी काफी संवेदना के साथ पूर्ण किया जाता है। हालाँकि शहरी क्षेत्रों में थोड़ी उदासीनता का समावेश स्थितियों के अनुरूप हो रहा है, पर ग्रामीण अंचलों में आज भी बड़ा महत्त्व दिया जाता है। यहाँ मृतक संस्कार को कई नामों से सम्बोधित किया जाता है। कई क्षेत्रों में 'अंत्येष्टि', अंतिम संस्कार और स्थानीय बोली-भाषा में 'मटिया', 'काठी' 'काठी-माटी', 'मिट्टी का काम' आदि भी कहा जाता है। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है कि यह सोलहों संस्कार में अंतिम है। अतः इसमें बहुत गंभीरतापूर्वक रस्मों व लोक मान्यताओं को पूर्ण करते हुए सम्पन्न करने का प्रयास किया जाता है। ऐसे समय में उपस्थित प्रौढ़ व बुजुर्गजन एक-एक बात को याद कर पूर्ण करने की कोशिश करते हैं। तब यह बात निश्चित रूप से स्पष्ट होती है कि चूँकि यह संस्कार उस व्यक्ति के प्रति अंतिम है, अतः किसी भी तरह से चूक न हो। इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है। वैसे तो हमारे देश के अनेक क्षेत्रों और भौगोलिक, धार्मिक, पौराणिक प्रसंगों के अनुरूप मृतक संस्कार में भिन्नता का समावेश स्वाभाविक है। मूल भावनाएँ और मान्यताओं में काफी निकटता भी है।

छत्तीसगढ़ में भी मृतक संस्कार को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। सच बात यह है कि इसे लोगों द्वारा पूर्णत: अनुष्ठान का रूप दे दिया जाता है। भले ही मन में पीड़ा, स्वर्गवासी के न रहने का दु:ख, मृतक की अंतिम स्मृति मन में रहती है- पर संस्कार को पूर्ण करने का प्रयास इसके महत्त्व को स्पष्ट करता है। आज भी लोग अपने पुरखों द्वारा प्रचलित किए गए मृतक संस्कार के विभिन्न तरीकों, चरणों व मान्यताओं को बिना किसी हिचक व तर्क-वितर्क किए मानते और अपनाते चले आ रहे हैं, जो इसकी महत्ता को प्रतिपादित करने के साथ ही उसकी निरंतर स्वीकारता भी बढ़ाते जा रहे हैं। इनमें लोक मान्यता के तथ्य तो शामिल हैं ही, पर विज्ञान-मनोविज्ञान व प्रादेशिकता की स्पष्ट छाप है। यही कारण है कि लोग इसे आज भी महत्त्व देते हैं।

**महाप्रसाद**

जब किसी व्यक्ति द्वारा ऊर्ध्व श्वांस या यह जान लिया जाता है कि अब यह स्वर्ग सिधारने ही वाला है। तब उसे गंगा जल का पान अवश्य कराया जाता है। एक इसमें औषधीय गुण विद्मान होता है, दूसरा मन में पवित्रता का भाव आता है। साथ में तुलसी की पत्तियाँ भी मुँह में डाल दी जाती हैं। भगवान जगन्नाथ जी के भोग की खिचड़ी का सूखा चावल जिसे 'महाप्रसाद' कहा जाता है- इसके दाने भी गंगाजल के साथ ही मुँह में डाला जाता है। छत्तीसगढ़ में यह लोक मान्यता है कि व्यक्ति अपने जीवन में भगवान जगन्नाथ जी का कम से कम तीन बार दर्शन करे। इस तरह यदि मरणासन्न व्यक्ति जगन्नाथपुरी तक यात्रा किसी कारण से नहीं कर पाया है, तो भी उसे पुण्य का लाभ मिल सके। यही कारण है कि जब पुरी जाते हैं, तब 'महाप्रसाद' काफी मात्रा में लाते हैं, जिसे अंतिम समय में खिलाना नहीं भूलते। किसी दुर्घटना या अचानक मौत हो जाने के बाद भी लोग अपने संस्कारों का पालन करते हुए मृतक के मुँह को खोलकर 'गंगा जल-महाप्रसाद' का पान अवश्य कराते हैं, ताकि मृतक को पुण्य का लाभ मिले।

**खाट उतारना**

अंतिम क्षणों में जब यह महसूस कर लिया जाता है कि व्यक्ति कुछ ही क्षणों में स्वर्ग सिधारने वाला है, तब लोग बड़े पवित्र भाव से धरती माता को मानव देह समर्पित करते हुए, जमीन पर चादर या गद्दा बिछाकर सुला देते हैं। इसे 'खाट उतारना' या 'भुइया उतारना' कहा जाता है। तब यह समझ लिया जाता है कि अब अंतिम समय करीब है। ऐसे में खाट पर सुलाए रखना अच्छा नहीं माना जाता। झटपट जमीन पर सुलाया जाता है।

**पूँछ पकड़ना**

गाय को माता की संज्ञा देकर अनेक संस्कारों में शामिल किया गया है। मृतक संस्कार में अंतिम सांस ले रहे या अचानक मौत को प्राप्त व्यक्ति को भी गाय या बछिया की पूँछ को पकड़ाया जाता है। इसके पीछे मूल भावना यह होती है कि वैतरिणी नदी से यही पार कराएगी। यह सोचकर भी लोगों द्वारा गाय-बछड़ा पाला जाता है। बाद में इसे किसी पात्र को दान कर दिया जाता है।

**अन्न-धन दान**

अंतिम साँसें लेते-लेते या पहिले से ही व्यक्ति द्वारा अनाज, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद का कुछ भाग अपने परिजनों, ग्राम के विद्यालय, मंदिर या भाँजे-भाँजियों को दान किया जाता है। पुण्य प्राप्ति की कामना से यह आवश्यक माना जाता है। किसी कारणवश या एकाएक मौत की स्थिति में घर वालों द्वारा भी बाद में दान कर मृतक की पुण्य प्राप्ति में सहयोग किया जाता है। सम्भवत: प्राण निकलने के पूर्व इस तरह का दान हो जाए तो अच्छा माना जाता है, नहीं हो पाया तो उनकी संतानों द्वारा माता या पिता यानी दिवंगत की इच्छा के अनुरूप दान कर स्वर्गवासी की आत्मा की शांति की कामना की जाती है।

**मृतक को स्नान**

शवयात्रा के पूर्व मृतक को घर में स्नान कराया जाता है। किसी कारण से स्नान सम्भव नहीं हो तो गीले कपड़े से शरीर को पोंछ लिया जाता है। यात्रा हमेशा शुभ या जीत कर लौटने का प्रतीक है। पुनर्जन्म की मूल भारतीय मान्यता है। इसी भाव से स्नान कराने तथा नये कपड़ों के साथ अंतिम विदा देने की हमारी परम्परा है। यदि मृतक सुहागिन हुई तो उसका सोलह श्रृँगार किया जाता है। चिता पर लिटाते समय उसके श्रृँगार उतारे जाते हैं।

**छापा लगाना**

मृतक को स्नान कराने के बाद हल्दी के घोल, चंदन, गुलाल आदि से हाथ या मुट्ठी आदि का निशान या छापा पीठ,

भुजा, भुजा के पीछे, जाँघ आदि पर लगाया जाता है। इसे परिजनों द्वारा याद रखा जाता है, ताकि जब घर में संतानोत्पति होगी, तब यह निशान बच्चे के शरीर पर मिलेगा, तब यह समझ लिया जाता है कि पुरखे ने घर में फिर से जन्म ले लिया है। ऐसा बहुतों पर आजमाया गया है। बहुत लोगों के साथ यह मिथकीय घटना सत्य साबित हुई है। साथ ही कुछ लोग अपने पुरखों के प्रति विशेष आस्था रखने के भाव से मृतक के पैरों का निशान आलता, गुलाल, चंदन, हल्दी, माहुर से कागज, ताड़पत्र, भोजपत्र पर छापे की तरह उतार लेते हैं। इसे पूजा स्थल पर रख पुरखे की तरह पुरुषार्थ, अनुशासित व यशस्वी जीवन जीने के प्रति संकल्पित होते हैं।

**माची तैयार करना**

शव को रखने के लिए हरे बाँस या सूखे के दो बड़े डण्डे लगभग 8-9 फिट लम्बा व बीच-बीच में सहारे के लिए 3-4 फिट छोटी डण्डियाँ, काशी या पटसन की रस्सी से सीढ़ीनुमा तैयार की जाती है। मुख दर्शन के बाद माची पर शव को रखा जाता है। नाते-रिश्तेदार श्रद्धा भाव से कफन-पिताम्बरी शव पर ओढ़ाकर अंतिम विदा देते हैं। कई बार व्यक्ति खाट पर अंतिम सांस लेते हैं, तब उसी खाट को उल्टा रखकर माची की तरह उपयोग कर शव रखकर श्मशान घाट ले जाया जाता है। उसे या तो जला देते हैं या फेंक देते हैं। राहगीर और बच्चे डर न जाएँ। इस भय से इस खाट को नष्ट कर दिया जाता है।

**चौखड़ी चौक**

घर की महिलाएँ विशेष रूप से मृतक की बहन या बुआ आँगन के एक कोने को गोबर से लिपाई करने धान-चावल या गेहूँ-चावल के आटे का उपयोग कर चौखड़ी आकार जैसाकि शव की माची बनायी जाती है- उसी तरह का रेखांकन करती है। यह इस बात का भी प्रतीक होता है कि मृतक अगले जन्म में भी इसी घर-परिवार में पैदा हो। साथ ही धन-धान्य से परिपूर्ण हो यानी ऐश्वर्यवान हो। इसका सांकेतिक आकार खेतों की तरह होता है। चूँकि छत्तीसगढ़ कृषि-प्रधान प्रदेश है। ऐसे में मृतक संस्कार में भी कृषि-संस्कृति का सहज समावेश होता है। इसके पीछे यह कामना होती है कि कम से कम इतना पुरुषार्थ लेकर शिशु का जन्म हो कि वह अपना तथा परिजनों का भरण-पोषण कर सके।

**कफन ओढ़ाना**

मृतक को स्नान कराने के बाद घर वाले नया सफेद कपड़ा कफन के रूप में पहनाते हैं। फिर अन्य परिजन, घनिष्ट मित्र भी कफन-पिताम्बरी ओढ़ाते हैं। मृत्यु को अंतिम सच मानते हुए, सफेद हो सके तो खादी का कपड़ा कफन के रूप में उपयोग करते हैं। अब लोग फूल, गुलाल, चंदन लगाकर भी अपनी श्रद्धांजलि देते हैं।

**शवयात्रा**

शव का सिर सामने की ओर रखा जाता है। चिता को अग्नि देने के लिए मिट्टी के छोटे व काले रंग के पात्र में अग्नि और कंडे रखे जाते हैं। वह सबके आगे चलता है। इसके बाद शव उठाने वाले, इसके पीछे एक व्यक्ति बाँस की टोकरी में धान, सिक्के, लाई, गुलाल और फूलों को डालकर शव के ऊपर छिड़कता है। साथ ही 'राम नाम सत्य है बाकी सब गत्य है' बोलता है। शेष लोग इस को दोहराते हैं। ऐसा श्मशान घाट पहुँचने तक किया जाता है। शवयात्रा गुजरते समय लोग बीच में रास्ता नहीं काटते, सम्मान स्वरूप शवयात्रा की पूर्णता के लिए रास्ता निर्वाध रखा जाता है। गली से गुजरते समय लोग किनारों पर खड़े हो जाते हैं। छोटे बच्चे डर न जायें, इसलिए उन्हें घर के अन्दर छिपा लिया जाता है। मृतक के परिवारजनों के साथ ही आसपास, गाँव के लोग व रिश्तेदार काफी संख्या में शवयात्रा में शामिल होते हैं। भावाँजलि मृतक के प्रति व्यक्त करते हैं। इसके लिए किसी को बुलाना नहीं पड़ता। लोग स्वयं किसी की मृत्यु की खबर सुनकर आते और शवयात्रा में शामिल होते हैं।

**चिता रचना**

निर्धारित श्मशान घाट पर चिता रची जाती है। शवयात्रा की समाप्ति के बाद लोग 336 कण्डे जो वर्ष के दिनों के प्रतीक रूप में उपयोग कर चिता बनाते हैं। साथ ही 6-7 फिट लम्बी और 3-4 फिट की छोटी लकड़ियाँ क्रमशः आड़ी व क्षैतिज जमाते जाते हैं। इसमें आम, बेर, पीपल, बरगद, चंदन की लकड़ियाँ भी डाली जाती हैं। लकड़ियाँ रखने के पूर्व जमीन को गोबर से लीपकर धान और सिक्के छिड़कते हैं, जो मृतक के लिए जमीन खरीदने का प्रतीक है। कोशिश यह की जाती है कि यदि कोई पुरुष मृतक है और यदि उसकी पत्नी पहले मृत्यु को प्राप्त हो

चुकी है, तब उसी स्थान के आसपास उसे भी जलाने का प्रयास किया जाता है। इसके पीछे जन्म-जन्मांतर के सम्बन्धों का भाव मन में होता है। ज्यादातर लोग चिता पर दाग देकर मृतक संस्कार पूर्ण करते हैं।

### मुँह दाग देना

चिता पर शव को रखने के बाद मृतक का बड़ा पुत्र पिता को मुखाग्नि देता है। उसके न रहने पर छोटा पुत्र या भाई, आजकल बेटी व बहनें भी आगे आ रही हैं। तालाब या नदी में स्नान करके गीले नए कपड़ों के साथ चिता का तीन फेरा घड़ी की दिशा में उल्टा मुँह करके लगाता है, ताकि मृतक के प्रति उसके मन में ज्यादा मोह न रह जाए।

### कपाल क्रिया

चिता में रखे शव के पूरी तरह से जल जाने के उपरांत मस्तिष्क के बिखरने के पहले मुखाग्नि देने वाले के द्वारा लम्बे बाँस के एक कोने पर कटोरी या गिलास फँसा कर उसमें शांति की कामना से घी डालकर, मृतक के मस्तक के पास अर्पित की जाती है। इसे कपाल क्रिया कहा जाता है। शेष उपस्थित जन पाँच-पाँच कण्डे या उसके टुकड़ों को चिता पर अर्पित कर अंतिम रूप से विदा करते हैं।

### माटी देना

छत्तीसगढ़ में कुछ जाति-समुदाय द्वारा मृतक को चिता में जलाने के साथ ही दफनाने का भी प्रचलन है। इसे दफनाना या माटी देना कहते हैं। छत्तीसगढ़ी संस्कृति में कुछ पंथ-सम्प्रदायों का भी गहरा प्रभाव हैं। जैसे कबीर पंथ, सतनाम यानी सतनामी पंथ, नाथ पंथ, वैष्णव सम्प्रदाय आदि। इनके द्वारा मृतकों को चिता में जलाने की बजाय मिट्टी में दफन कर दिया जाता है। इनमें संस्कार की अन्य प्रक्रियाओं में थोड़ी सी भिन्नता होती है। जमीन को 7-8 फिट लम्बा, 4-5 फिट चौड़ा और लगभग 4-5 फिट गहरा खोदा जाता है। नीचे के हिस्से में धान-सिक्के आदि छिड़ककर जमीन खरीद ली जाती है। फिर शव को धीरे से भीतर लिटाया जाता है, ऊपर से भी चारों दिशाओं से मिट्टी के लौंदे बनाकर पाट दिया जाता है। ऊपरी भाग को थोड़ी ऊँची लगभग 6 से 12 इंच तक मोटा चबूतरे की तरह बना दिया जाता है। इस पर दशगात्र के दिन पुताई कर फूल अर्पित कर धूप-दीप प्रज्ज्वलित कर दिया जाता है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ अपने पुरखों को याद रख सकें। समय-समय पर जैसे दीपावली, मृतक के जन्म एवम् दिवस पर दीपक जलाकर श्रद्धा-सुमन अर्पित कर भावाँजलि भी प्रस्तुत करते हैं। प्राय: परिजनों के दफन स्थल पर ही अन्य मृतक को भी दफन करने की इच्छा होती है, किन्तु स्थान न रहने पर अन्य स्थल पर मृतक को दफन कर दिया जाता है।

### घाट बनाना

चिता में जलाने या शव को दफन कर देने के बाद सभी शामिल लोग तालाब या नदी के किनारे पर एकत्र होकर बैठ जाते हैं। कुछ लोग दूब के पौधों को जमीन में गाड़कर उसी के पास मृतक के नाम से दातून, साबुन आदि स्नान की सामग्री रख देते हैं। फिर क्रमश: गोत्रज व अन्य सभी स्नान करके गीले कपड़ों के साथ घाट में गड़े दूब को जल सिंचन कर पानी देने की प्रक्रिया पूर्ण करते हैं। इस तरह एक दिन घाट बन जाने के बाद प्रतिदिन इसी प्रकार आकर स्नान करते व पहले दिन की तरह ही मृतक को पानी देते हैं। इस संस्कार को पूर्ण कर लेने पर घाट बना लिया जाता है। पहले से दसवें दिन तक महिलाएँ भी स्नान करके आती हैं। अत: उनके लिए भी पृथक घाट बनाकर वही उपक्रम पूर्ण किया जाता है। स्नान के बाद अपनी अंजुली में पानी लेकर तिल-जौ के साथ जल अर्पित किया जाता है। ऐसा पाँच बार किया जाता है, जो पाँच ईश्वर, पंचभूत एवं पाँच तत्त्व का प्रतीक होता है।

### चाउर देना

पहले दिन नहाकर आने के बाद गोत्रजों को छोड़कर दूसरे लोग अपने-अपने घरों से गीले कपड़े पहने हुए ही थाली में चावल लाकर पीड़ित परिवार को देते हैं। फिर घर की बहन, बुआ इसी चावल और जरूरत होने पर घर से चावल मिलाकर खिचड़ी जैसा भोजन पकाती हैं। इसे परिवार जनों के साथ गोत्रज महिला-पुरुष एक साथ ही बैठकर खाते हैं। पत्तल पर खिचड़ी एक ही बार परोसी जाती है। इसके साथ किसी तरह की सब्जी नहीं परोसी जाती। केवल दही ही दिया जाता है। अन्य लोगों के लिए चावल-दाल, सब्जी दूसरे घर से बनवाकर लाया जाता है। इसे 'गोलहत्थी खाना' कहा जाता है। सभी एक साथ आँगन में

गोले में बैठकर खिचड़ी खाते हैं। शायद यही कारण है कि इसे 'गोलहत्थी' कहा गया हो? इसके पीछे पुरखों की सोच व्यक्त होती है कि विपत्ति के समय सहयोग करना चाहिए। खाने के पूर्व मृतक के नाम से पहले दो दोने में खिचड़ी व भोजन सामग्री घर के दरवाजे पर रखकर जल अर्पित किया जाता है। ऐसी लोक मान्यता है कि इसे मृतक स्वर्ग में प्राप्त करता है। पहले दिन की खिचड़ी के बाद शेष दिनों में सामान्य भोजन बनाया जाता है। इसमें भी केवल गोत्रज व निकटस्थ लोग ही भोजन करते हैं।

**फूल चुनना**

मृत्यु के तीसरे दिन तक चिता की अग्नि लगभग ठण्डी को जाती है। नहावन के पूर्व परिजन श्मशान चिता के पास आते हैं तथा मृतक के सभी प्रमुख अंगों की हड्डियों को चुनकर काँसे की थाली में रखकर तालाब किनारे लगे पीपल के पेड़ पर काले रंग के छोटे मटके में रखते हैं। पेड़ की जड़ों के बीच लगभग एक से दो फिट खोदकर मटके को गाड़ दिया जाता है। इसे फूल चुनना कहा जाता है। साथ ही इसके ऊपर एक बड़ा सा पत्थर रखा जाता है, ताकि कोई खोद कर न ले जाए। इसी के ठीक ऊपर दो छोटे मटके रस्सी के सहारे टाँगे जाते हैं, जिसमें से एक में दीपक तथा दूसरे में पानी भरा जाता है। वह पानी धीरे-धीरे अस्थियों को ऊपर से सींचता रहता है। यानी उस जगह को नम रखता है। दूसरे मटके में चारों दिशाओं में छिद्र रहता है, इसमें दीपक रखा जाता है। इसमें रोज शाम को नाई के साथ मृतक को दाग देने वाला जाता है और दीपक जलाकर आता है। प्रतिदिन नहाते समय पर्याप्त मात्रा में पानी सींचता है। दसवें दिन तक 366 लोटे पानी सींचना होता है।

**गंगा जाना**

सातवें दिन नहावन के साथ ही पीपल पेड़ के नीचे गड़ायी गयी अस्थियों को निकाल कर काँसे की थाली में कपड़ा ढँक कर घर लाते हैं। इस पर फूल आदि चढ़ाकर श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। थोड़ा चाँदी-सोना या महंगे तार का टुकड़ा डालकर कपड़े की थैली सीकर अस्थियों को माला का आकार देते हैं। फिर किसी अन्य संतान भाई-भाँजा या कई बार स्वयं पति या पत्नी भी अस्थि विसर्जन के लिए पवित्र नदियों आदि पर जाते हैं। इसे गंगा जाना कहा जाता है।

**दीया देना**

किसी कारणवश पीड़ित परिवार यदि अस्थियों को तेरहवें दिन तक गंगा जी में विसर्जित नहीं कर पाते हैं तो गौशाला या घर के अंतिम छोर पर किसी स्थान में दीवार को खोद कर छोटे आले के भीतर मिट्टी के पोरे में अस्थियों को भर कर रख दिया जाता है। वर्ष भर या जब तक विसर्जित नहीं किया जाता, तब तक प्रतिदिन संध्या के समय दीपक अवश्य जलाया जाता है। इस तरह यह वर्ष भर सेवा करने का प्रतीक है। फिर व्यवस्था हो जाने या समय प्रतिकूल होने पर गंगा जी में स्नान कर विसर्जित कर दिया जाता है। कभी-कभी कुछ ग्रामीण एक साथ जाने की इच्छा से भी अस्थियों को सुरक्षित रखते हैं। बाद में एक साथ यात्रा कर अस्थि विसर्जन करने जाते हैं, ताकि यात्रा के दौरान उन्हें कोई कठिनाई न हो।

**दशगात्र**

मृत्यु के दसवें दिन दशगात्र होता है। यह मृतक संस्कार का एक तरह से दूसरा बड़ा महत्त्व का दिवस होता है। मृतक के गोत्रजों, परिजनों व ईष्ट-मित्रों को निमंत्रित किया जाता है। दोपहर तक घर या तालाब पर एकत्र होते हैं। यदि मृतक पुरुष हुआ तो उसकी विधवा स्त्री की चूड़ियाँ उतारी जाती हैं। दूर-दराज के नाते-रिश्तेदार इस दिन एकत्र होकर मृतक की आत्मा की शांति हेतु पीड़ित परिजनों का मनोबल बढ़ाने का प्रयास करते हैं। किसी युवती या अधेड़ महिला के पति स्वर्गवासी हो जाने पर और ज्यादा दु:ख की बात होती है, क्योंकि सामाजिक एवं वैयक्तिक मर्यादा के अनुरूप महिला के विधवा होने पर भावी जीवन में अनेक तरह की मुसीबतें सामने आती हैं। इस दु:ख को बाँटने की दृष्टि से महिलाएँ काफी संख्या में दशगात्र के दिन उपस्थित होती हैं। भले ही वर्तमान में बढ़ते भौतिकवाद का प्रभाव हमारे ऐसे उत्कृष्ट संस्कारों पर पड़ा है, पर आज भी लोगों के मन में संवेदना बाकी है। ऐसे संकट के समय नाते-रिश्तेदारी के लोग उपस्थित होकर पीड़ित परिजनों को संभवत: आर्थिक, मानसिक रूप से संबल प्रदान करते हैं।

**मुंडन कराना**

दशगात्र के दिन सभी गोत्रज अपने सिर के बाल उतरवाते हैं। केवल मृतक से नाते में बड़े बाल नहीं उतरवाते। यह कार्य

नदी या तालाब के किनारे सम्पन्न होता है। महिला वर्ग ऐसा नहीं करातीं। इसके पीछे सूतक के दौरान अशुद्धियों से निपटारा हो पाना तथा मृतक को सभी कुछ समर्पित कर देने का भाव इस उपक्रम में होता है। यह कार्य नाई सम्पन्न करता है।

### दशगात्र नहावन

ऐसे तो दस दिनों तक नहावन होता है, पर दसवें दिन के नहावन को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पहले महिलाएँ स्नान कर मृतक को तिलांजलि देती हैं। जब वे घर वापस हो जाती हैं, कपड़े बदल लेती हैं, तब पुरुष वर्ग स्नान कर घर जाते हैं। वहाँ सभी की उपस्थिति में मृतक को दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि दी जाती है। नहावन से लौटते समय कतारबद्ध होकर लोग आते हैं। साथ ही मृतक का मोह पूरी तरह छोड़ने की भावना से एक कंकड़ या लकड़ी का टुकड़ा कतार के पहले व्यक्ति से लेकर अंतिम व्यक्ति तक पीछे की ओर बढ़ाते जाते हैं। अंत वाला व्यक्ति पीछे फेंक देता है। उसे पलट कर नहीं देखा जाता। कतार में गोत्र के सबसे वयोवृद्ध सामने होते हैं। शेष नाते में छोटे क्रम में चलते हैं। इस तरह नहावन में अनुशासन व मर्यादा का पूर्णत: ध्यान रखा जाता है। इसी समय घर का मुखिया उपस्थितों को 'कपड़े बदलकर भोजन के लिए आने' का निमंत्रण देता है।

### चूड़ी उतारना

यदि किसी सुहागिन का पति दिवंगत हो गया हो, तब वह महिला विधवा हो जाती है। ऐसे में दशगात्र के नहावन के दिन ही स्नान से पहले समाज की प्रमुख या प्रौढ़ महिलाओं-परिजनों की उपस्थिति में नाई के सहयोग से उसकी कलाइयों से चूड़ियाँ उतार ली जाती हैं। उसकी माँग पोंछ दी जाती है तथा उसके सारे सुहाग श्रृँगारित गहने उतार लिए जाते हैं। स्नान के बाद उसे सफेद वस्त्र पहनाया जाता है। अन्य उपस्थित परिजन भी उसे नयी साड़ी भेंट स्वरूप प्रदान करते हैं। यह पूर्णत: उस विधवा महिला के समुदाय की संवेदना का प्रतीक है।

### मृतक भोज

दशगात्र के दिन विशेष प्रकार का भोजन उपस्थितों को कराया जाता है। पहले यह भोजन तेरहवें दिन कराया जाता था, पर अब समय व व्यस्तताओं के चलते दसवें दिन में ही मृतक भोज कराया जाता है। पहले भोजन में चावल-दाल, सब्जी व पकवान के रूप में पूड़ियाँ, दही-बड़ा, शक्कर-गुड़ और घी अवश्य दिया जाता था। अब चलन के अनुसार खीर, लड्डू, बालूशाही, गुलाब जामुन व अन्य पकवान भी दिए जाते हैं। अपनी स्थिति के अनुसार लोग भोज की व्यवस्था करते हैं। पहले तो खाने-पकाने, पकवान बनाने तथा परसने में परिजनों का सक्रिय सहयोग मिलता था, पर अब सभी सुविधावाद की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। समय का अभाव बताकर सारा कार्य पैसों से कराया जा रहा है। पर मृतक संस्कार के तथ्यों को किसी तरह से जीवित रखा जा रहा है।

### गंगा परघनी

मृतक भोज के सम्पन्न होते ही गंगा से लौटे परिजनों को ससम्मान घर तक गाजे-बाजे के साथ लाते हैं। इसे गंगा परघनी कहा जाता है। अस्थि विसर्जन कर लौटे लोग सीधे घर में प्रवेश नहीं करते, यदि वे दशगात्र के दिन ग्राम तक संध्या के पहले आ चुके हैं, तब वे किसी मंदिर, किसी के बरामदे, चौक-चौपाल पर ठहर जाते हैं। तब भोज के बाद लोग उन्हें परघाने जाते हैं। वहाँ गंगा जल के पात्र पर रुपये-पैसे, नारियल भेंट कर माता का सम्मान करते हैं। वहीं परिजनों के कंधे पर नए कपड़े भेंट कर सकुशल वापसी के लिए बधाई देते हैं। घर पहुँच जाने पर वहाँ आँगन में डण्डा चौक पूरकर पटे के ऊपर परिजन खड़े होते हैं, गंगा जल का पात्र व पूजा सामग्रियों की झपली को पकड़े रहते हैं। घर के सभी सदस्य अस्थि विसर्जन कर लौटने की शुभ कामना के रूप में नारियल, रूपये व कपड़े भेंट करते हैं।

### भैरों पूजन

समय रहते यदि सूर्यास्त नहीं हुआ है तो दशगात्र के दिन ही गंगा जी से लौटने पर भैरों पूजन कर लिया जाता है, नहीं तो दूसरी पूजा सम्पन्न की जाती है। गंगा जी से लाए गए जल व परिजनों को भेंट की जाने वाली सामग्रियों का ब्राह्मण द्वारा पूजन कराया जाता है। उसकी भेंट की सामग्रियाँ चूड़ी, माला, कंगन, अंगूठी, चंदन, गंगा बारन, गंगा जल आदि वितरित किया जाता है। प्रसाद का वितरण भी किया जाता है। परिजनों द्वारा पंडित को यथाशक्ति दान-दक्षिणा दी जाती है।

### पगबंधी

दशगात्र की रात्रि को ही भोजन के पूर्व मृतक यदि घर का

मुखिया हुआ तो पगबंधी यानी पगड़ी रस्म की जाती है। यदि घर में मुखिया नहीं है तो पगबंधी नहीं भी की जाती। इसमें मृतक के बाद घर का कामकाज जिम्मेदारी के साथ पूर्ण करने की दृष्टि से ज्येष्ठ पुत्र या भाई को आँगन में सबके समक्ष बैठाया जाता है। ग्राम के बुजुर्ग और पंडित की उपस्थिति में उसे घर का मुखिया चुना जाता है। मृतक की विधवा, बहन, बुआ और अन्य लोगों को भी बोलने का अवसर दिया जाता है। जमीन जायदाद की जानकारी व मृतक की इच्छा के अनुरूप दान देने आदि के बारे में स्पष्ट चर्चा की जाती है। सभी प्रकार से संतुष्ट हो जाने पर ही चुने गए मुखिया के सिर पर धोती को पगड़ी के रूप में लपेटा जाता है। इसके बाद शेष परिजनों द्वारा एक के ऊपर एक पगड़ी लपेटी जाती है। अर्थात् सभी उसे मुखिया स्वीकार कर लेते हैं। इसके बाद वह मुखिया सबके सामने खड़े होकर अपने परिजनों की हर प्रकार सुरक्षा, लालन-पालन व भविष्य निर्माण का संकल्प लेता है। इसके पश्चात् रात्रि का भोजन होता है।

## पिण्ड पराना

वैसे तो दशगात्र के दिन अस्थि विसर्जन के साथ ही पवित्र नदी या संगम (प्रयाग) में पिण्ड दान किया जाता है, पर अधिकांश लोग अपनी संतुष्टि की दृष्टि से ग्राम में कटहा मलई जो पिण्डदान का संस्कार पूर्ण कराते हैं, उनके द्वारा तालाब किनारे गंगा स्वरूपी जल के समक्ष पिण्डदान करना अच्छा मानते हैं। इसके सारे रस्म तालाब किनारे ही सम्पन्न किए जाते हैं। कटहा मलई को यथाशक्ति भेंट व दान-दक्षिणा परिजनों द्वारा दिया जाता है। पिण्डदान पूजन सामग्रियों के साथ ही मृतक द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सामग्रियाँ खाट, गद्दा, तकिया, छतरी, जूता, कपड़ा, बर्तन सहित अन्य सामग्रियाँ अनाज आदि भेंट कर विदा की जाती है। इसके पीछे मान्यता यह है कि स्वर्ग में मृतक को ये सभी सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। उसे किसी तरह की तकलीफ नहीं होती।

## बरसी

मृत्यु के एक वर्ष बाद मृतक की बरसी यानी वार्षिकी मनायी जाती है। इस दिन भी परिजनों, ईष्ट मित्रों व नाते-रिश्तेदारों को निमंत्रण दिया जाता है। पंडित को बुलाकर गौरी-गणेश का पूजन कराया जाता है। उन्हें दान-दक्षिणा देने के साथ ही परिजनों को भोजन कराया जाता है, तब जाकर मृतक संस्कार की पूर्णता होती है।

'मृत्यु' सत्य व अवश्यम्भावी है, आकस्मिक है- पर संस्कार बड़ा तथ्यात्मक, वैज्ञानिकता, मानवता, संवेदना व मनोविज्ञान से परिपूर्ण है। साथ ही मनुष्य के जीवन का अंतिम संस्कार होने के कारण भी इसका स्वरूप बड़ा व्यापक व भावपूर्ण है। इसलिए हमारे पुरखों ने इसे पुनर्जन्म की मान्यताओं के साथ जोड़कर महत्त्वपूर्ण बनाया है। यह बात भी स्मरणीय है कि जिस दादा-दादी, माता-पिता, चाचा-चाची या अन्य रिश्तेदारों ने हमें जीवन, पोषण व संरक्षण देकर बच्चे से बड़ा किया। समुदाय में सम्मान पाने योग्य बनाया, उनके प्रति आभार व कृतज्ञता प्रकट करने के अवसर पर सक्रियता न दिखाना अनुचित होगा। हमारी संस्कृति इसे स्वीकार नहीं करती है। यही कारण है कि मृत्यु के संस्कार को भी भले हमारा मन दु:खी होता है, पर परिजनों-मित्रों, रिश्तेदारों, ग्रामवासियों के सहयोग से संकट की उन घड़ियों में भी मृतक के प्रति पूर्ण समर्पण व श्रद्धाभाव व्यक्त करते हैं।

**संदर्भ**


1. शर्मा, डॉ. टी.डी., 2004-2005, छत्तीसगढ़ के पर्यटन-बिलासपुर (छत्तीसगढ़)
2. त्रिपाठी डॉ. गंगाचरण, 1985, हिन्दी भाषा और व्याकरण का व्यावहारिक ज्ञान-वीणा प्रकाशन मंदिर, नौबस्ता, आगरा-2 (उत्तरप्रदेश) पृष्ठ 89 से 94 तक
3. वर्मा डॉ. भगवान सिंह, सुल्लेर डॉ. एस. के, प्राचीन भारत का इतिहास एवं आधुनिक पाश्चात्य इतिहास की मुख्य धाराएँ-हिन्दी ग्रंथ अकादमी-भोपाल
4. सिन्हा प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, 1963, भारतीय दर्शन की रूपरेखा- मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, दिल्ली
5. बजाज मुकेश माहेश्वरी, सम्पूर्ण छत्तीसगढ़, 2003, वंदना प्रकाशन, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)
6. शर्मा डॉ. रामगोपाल, 2003, छत्तीसगढ़ दर्पण श्रीमती विद्या शर्मा, प्रियदर्शनी नगर, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)
7. यदु डॉ. मन्नूलाल, 2002, छत्तीसगढ़ की संस्कृति गंगा, छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान, रायपुर (छत्तीसगढ़)
8. खेमका राधेश्याम, 1988, कल्याण, शिक्षाँक, गीता प्रेस, गोरखपुर (उत्तरप्रदेश)
9. अग्रवाल डॉ. अनसूया, 2003, छत्तीसगढ़ के व्रत- त्योहार अऊ कथा-कहानी, शताक्षी प्रकाशन, रायपुर (छत्तीसगढ़)
10. आचार्य डॉ. संतोष, 2005, भारतीय दर्शन कोश, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, (राजस्थान)
11. मिश्र डॉ. रतन लाल, भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्य, मंडावानगर, झुंझुनू, (राजस्थान)
12. गुप्त प्यारेलाल, 1972, प्राचीन छत्तीसगढ़, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
13. तिवारी डॉ. विनय कुमार 2001, छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, गिरगाँव, मुम्बई
14. श्रीनिवास एम.एन., 2001 भारत के गाँव, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
15. पाण्डे शंकर, 2006, इतिहास के आइने में छत्तीसगढ़

# हिमाचल में अन्त्येष्टि संस्कार

डॉ. मनोरमा शर्मा

भारतीय संस्कृति में विभिन्न संस्कारों का अत्याधिक महत्त्व है। संस्कारों का हमारे व्यावहारिक कार्यकलापों में विशेष स्थान है तथा इन्हें अपरिहार्य समझा जाता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त हमारे जीवन में कोई न कोई संस्कार सम्पन्न होते रहते हैं। भारतीय संस्कृति में षोडश संस्कारों का विधान माना गया है। इन संस्कारों की उपादेयता, अनुष्ठान प्रक्रिया एवम् महत्त्व हमारे सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग है। विभिन्न संस्कारों पर विशिष्ट गीत गाने की परम्परा दृष्टिगत होती है। संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों का इतना महत्त्व है कि कोई भी संस्कार इन गीतों के बिना पूर्ण नहीं माना जाता। आधुनिक परिवेश में इन सोलह संस्कारों में से कुछ प्रमुख संस्कार ही मनाए जाते हैं और उन अवसरों पर विशिष्ट गीत गाए जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश में किन्नौर, लाहुल- स्पीति तथा चम्बा जिले के भरमौर और पांगी जनजातीय क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र वर्ष के आठ महीने बर्फ से ढँके रहते हैं। यद्यपि हिमाचल प्रदेश के प्रायः सभी क्षेत्रों में संस्कार गीतों का बाहुल्य है, तथापि जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न संस्कारों की अनुष्ठानिक प्रक्रिया भिन्न है। स्थानीय बोली की भिन्नता के कारण भी संस्कार गीत भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु मुख्य भाव वही रहता है। षोडश संस्कारों में अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि है। यह संस्कार विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में अवश्य सम्पन्न किया जाता है। हिन्दू धर्म में इहलोक की अपेक्षा परलोक का अधिक महत्त्व माना जाता है। इसी कारण मृत व्यक्ति के अन्त्येष्टि संस्कार का भी यहाँ अत्याधिक धार्मिक महत्त्व है। जिस प्रकार विभिन्न संस्कारों पर गाए जाने वाले गीत उस संस्कार विशेष के अभिन्न अंग हैं, उसी प्रकार अन्त्येष्टि संस्कार पर शोक प्रकट करने हेतु शोक-गीत भी इस अंतिम संस्कार के अंग हैं। शोक-गीतों में मृत्यु के शोक को प्रकट करने का साधन है। रामायण तथा महाभारत महाकाव्यों में भी मृत्यु के शोक को गीतों द्वारा प्रकट करने का

वर्णन मिलता है। शोक-गीतों में पाप-पुण्य फल, कर्म का महत्त्व, यमराज दरबार का वर्णन, परिवारजनों के दु:ख-पीड़ा तथा चिंताओं आदि का वर्णन मिलता है। मृतक के गुणों का बखान करते हुए स्त्रियाँ इन गीतों को गाती रहती हैं। शोकपूर्ण वातावरण में गाए जाने वाले इन गीतों में संगीतात्मकता का तो अभाव होता है, परन्तु गायन में कुछ लयात्मकता होती है। ऐसे गीत किसी वृद्ध महिला अथवा पुरुष की मृत्यु पर ही गाए जाते हैं। असामयिक मृत्यु पर इन गीतों को नहीं गाया जाता।

### लाहुल -स्पीति में अन्त्येष्टि संस्कार

लाहुल जनजातीय क्षेत्र में मृत शरीर को जलाकर, राख को पास की नदी में विसर्जित कर देते हैं या राख से मृत पुरुष का पुतला बनाकर अपने खानदान के छौरतन (स्तूप) में रख देते हैं। पट्टन (लाहुल की एक घाटी) में स्मारक के तौर पर पत्थर रास्ते पर रखा जाता है। ऐसे पत्थर यात्रियों के ठहरने की मढ़ियों में भी रखा जाता है। इस पत्थर पर कुछ आकृतियाँ खुदी रहती हैं। कनैत (जाति विशेष) या उच्च जाति के मृतकों का शरीर लामा के आने से पहले नहीं छुआ जाता। लामा आकर मृतक की चोटी हिलाकर कुछ मंत्र पढ़ता है। इस प्रकार मृतक के प्राण अब पूरी तरह से निकल गए हैं, समझा जाता है। इसके लिए लामा को धन राशि दी जाती है। अधिक से अधिक समय तक मुर्दे को रखकर जलाने के बाद राख को चंद्रा और भागा नदियों के संगम स्थल तांदी में प्रवाहित करते हैं। गरीब लोग मृत शरीर को जलाने के लिए हर घर से लकड़ी माँग कर लाते हैं। धनी लोग मृतक को तुरन्त नहला कर रेशम के कपड़े पास के गोम्पा से लाकर पहनाते हैं और उसे लोहे की तिपाई पर आसन मार कर बिठा देते हैं। उसके सामने रात-दिन दीपक जलाया जाता है और लामा धर्म पुस्तक पढ़ते हैं। अंत में गोम्पा से लाए गए कपड़ों को हटा कर मृतक पुरुष को अच्छे कपड़े पहना दिए जाते हैं। अर्थी के साथ गरा (जाति विशेष) लोग बाजा बजाते चलते हैं तथा लामा और अन्य गृहस्थ लोग जुलूस में शामिल होते हैं। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर अर्थी को रख दिया जाता है। गरा तथा अर्थी को कंधा देने वाले उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। श्मशान भूमि में पहुँचकर लामा मंत्र पढ़कर चिता में घी डालता है, फिर अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी जाती है। अगले दिन फिर गाजे-बाजे के साथ लोग श्मशान भूमि जाते हैं। अर्थी को कंधा देने वाले चार आदमी हड्डियाँ जमा कर लामा को देते हैं, जो एक थैले में डाल देता है।

मृतक यदि स्त्री है तो उस मृतक की शक्ल बनाकर सारे जेवरों के साथ मंदिर में रखते हैं। मृतक स्त्री के घर में चार से सात दिन सुबह से शाम तक लामा धर्म ग्रंथ पढ़ते हैं। पाठ समाप्त होने के बाद लामा के बताए हुए शुभ दिन पुतले को एक टट्टू पर चढ़ाया जाता है, फिर बाजे के साथ छोटा सा जुलूस चलता है। एक आदमी उसके ऊपर छाता लगाता है। जुलूस तांदी में चन्द्रभागा के संगम स्थल पर पहुँचता है। वहाँ लामा मंत्र पढ़ते हुए मुठ्ठी-मुठ्ठी करके राख और हड्डियों को नदी में प्रवाहित करता है। मृत्यु के 48 वें दिन लोग पुण्य दान करते हैं। इसके उपरांत चावल या सत्तू का पिण्ड हरेक पड़ोसी के घर भेजा जाता है। गेहूँ की रोटी खाई जाती है और छड़ (लाहुल की देशी शराब) पी जाती है। त्रिलोकनाथ की पूजा इस समय अवश्य की जाती है। गरीब लोग पिण्डदान सरसों के तेल में पकी दो पूड़ियों से करते हैं और गोम्पा को कुछ राशि दान में दी जाती है। जैसे ही समय मिलता है, धनी लोग 16 सेर घी लेकर त्रिलोकनाथ के मंदिर उदयपुर में चढ़ाने जाते हैं। गरीब लोग कुछ कम घी लेकर जाते हैं। त्रिलोकनाथ की पूजा करना ऐसे अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति अपना विशेष कर्त्तव्य समझता है और यथासम्भव किसी की मृत्यु के उपरान्त इसे सम्पन्न किया जाता है।

शिपी (जाति विशेष) लोग अपने मृतक का संस्कार स्वयं करते हैं। शिपी शव को घर से बाहर रखकर उसके चारों ओर दूध छिड़कता है। फिर एक भेड़ के बच्चे को लेकर तीन बार उसके चारों तरफ घुमाता है, पहले बाएँ से दाएँ और फिर दाएँ से बाएँ। जब तक लाश जला नहीं दी जाती, तब तक बाजा बजता रहता है। लाश को लाल या सफेद कपड़े से ढांककर अर्थी पर रखकर पास की नदी के किनारे ले जाकर जलाया जाता है। गरा जाति के लोग मृतक का अंतिम संस्कार करने के लिए शिपी को बुलाते हैं, परन्तु अब गरा भी लामा को बुलाने लगे हैं। लामा द्वारा ये संस्कार शांतिपूर्ण ढंग से किए जाते हैं।

### किन्नौर में अन्त्येष्टि संस्कार

किन्नोर जनजातीय क्षेत्र बौद्ध धर्मावलम्बी है। नौवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के बौद्ध दर्शन के प्रख्यात आचार्य पद्मसंभव

ने लद्दाख, तिब्बत, अरुणाचल प्रदेश, नेपाल, भूटान तथा सम्पूर्ण हिमाचल क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। हिमालय के दुर्गम क्षेत्रों में लाहुल-स्पीति, किन्नौर तथा लद्दाख की यात्राएँ की। पद्मसम्भव ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। उनकी एक प्रसिद्ध रचना 'बर-दो थोए डोल' है। यह पुस्तक भोटी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी में 'द तिब्बतियन बुक ऑफ द डैड' नाम से प्रकाशित हो चुकी है। इस कृति में बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए व्यक्ति की मृत्यु से लेकर अगले जन्म तक की अवधि में भटक रहे मानव जीवन के चित्त को एक अत्यन्त कल्याणकारी एवं धार्मिक उपदेश दिए गये हैं। किसी की मृत्यु के समय इस ग्रंथ का वाचन अनिवार्य रूप से किया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन उपदेशों को सुनने मात्र से ही मुक्ति मिलती है।

अन्त्येष्टि संस्कार के क्रिया-कर्म को स्थानीय बोली में 'छण्टयामो' कहा जाता है। इस अवसर पर गाँव वालों को सहभोज पर आमंत्रित किया जाता है। किन्नौर में चाहे कोई शुभ अवसर हो अथवा शोकपूर्ण वातावरण हो-नृत्य और गीत ऐसे आयोजनों पर आवश्यक रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। मृत्यु के अवसर पर भी नृत्यों का आयोजन होता है। शोक-गीत को 'छण्टयामिक गीतङ्' कहा जाता है। इस आयोजन में पहला शोक गीत 'छण्टयामो गीतङ्' मृतक के परिवार वालों के शोक में सम्मिलित होने के लिए गाया जाता है, उसके उपरान्त रात के समय नृत्य का आयोजन किया जाता है। नृत्य की संगति के लिए अन्य कोई भी गीत गाया जा सकता है। किन्नौर के शोक-गीतों में प्रायः यमराज से प्रार्थना होती है कि 'वह अब अपने घर का दरवाजा बंद कर ले, ताकि अन्य किसी को वहाँ अब बुलाया न जा सके।' ऐसे गीतों से मृतक के परिवार के प्रति सहानुभूति तथा इनमें प्रयुक्त सांत्वना भरे शब्दों से शोकपूर्ण वातावरण में कुछ स्थिरता आ जाती है। एक 'छण्टयामिक गीतङ्' इस प्रकार है-

*रोन्चो तोइङ् खोलगे दवारे,*
*रोन्चो तोइङ् पाशिङ् पा रागा,*
*रोन्चो तोइङ् गोरा गोराशिरा*
*दायङ् था गिने झोनराजाऊङ् चिट्टथीङ्*
*किथा चाकाराईङ् देनाचि जेसकिया*
*ये बीटेदो फाने जोङंङ माया*
*फाने जुग ऐरा शू किरापेनाम्या*
*किथा चालारायेणङ् देन की केसकी*
*फिराने शुरे खाने गोइङ्*

अर्थात् -

घर के फाटक और दरवाजे सुन रहे हैं
लकड़ी के चार लट्ठे और चार पत्थर भी सुन रहे हैं
पूरा घर सुन रहा है
नदी भी शांत है और मृत्यु का शोक मना रही है
तुम सोचो मत, मेरे घर में यह घटना हुई है
पहले भी ऐसी घटनाएँ होती रही हैं
जब वर्षों पूर्व सैंकड़ों देवताओं का अवतरण हुआ था
ऐसी घटनाएँ तब भी हुई थीं
सोचो मत, इस मृत्यु के शैतान (भूत) को दूर भगा दो।

**अन्य शोक-गीत**

चम्बा जिले के जनजातीय क्षेत्र भरमौर में मुख्यतः गद्दी जनजाति का निवास है। अधिक सर्दी होने के कारण इस क्षेत्र से गद्दी अपनी भेड़-बकरियों को लेकर मैदानी इलाकों में चले जाते हैं। मुख्य रूप से कांगड़ा घाटी में गद्दी समुदाय के लोगों का अस्थायी निवास होता है। इस समुदाय के लोग हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं और शिव इनके अधिष्ठाता देवता हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार ये समुदाय सभी रीति-रिवाजों का पालन करते हैं और यथा सम्भव सभी संस्कार भी सम्पन्न करते हैं। किसी वयोवृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर अन्त्येष्टि संस्कार भी सम्पन्न किया जाता है। ऐसे शोकपूर्ण वातावरण में शोक गीत भी गाए जाते हैं। स्थानीय बोली में इन्हें 'अल्हैणियां' कहा जाता है। कांगड़ा क्षेत्र के जनजातीय समुदायों के 'अल्हेणियां' गीत इस प्रकार हैं-

*छड्डी गया नातियां गोतेयां*
*खबर दित्ती तरखाणे जो*
*चन्तण दरखत कटाया*
*तिस्सिदा सन्दूक बणाया*
*धर्मी ओहदे विच पाया*
*नूहां दिंदियां फेरियां*
*फिरी शंखा दी घमघोर होई*

*धूप्पा दी घमघोर होई*

अर्थात् –

तू सभी सम्बन्धियों को छोड़कर चला गया
बढ़ई को सूचना दी गई
चन्दन का पेड़ काटा गया
उसका सन्दूक बनाया गया
उस धार्मिक पुरुष को सन्दूक में डाला गया
बहुएँ अपना सम्मान व्यक्त करती हुई
उसे अंतिम प्रणाम करती हैं
शंख ध्वनि होने लगी
धूप अगरबत्ती की सुगंध चारों ओर फैल गई।

ऐसे ही एक अन्य गीत में मृतक के गुणों का बखान तथा परिवार जनों के दु:ख का वर्णन है–

*हाय हाय बाबला म्हारेया*
*धीयां करदी कहर बाबला*
*अन्दर बंगा दे ढेर*
*बाहर बंगा दे ढेर*
*शंख बजेया पंजमुखिया*
*जलबल गया शरीर*
*सुरगवास सुरगवास*
*हुण तां मिलगे तीरथ*
*या मिलगे हरिद्वार*

अर्थात् –

ओ हमारे पूज्य पिता!
ओ पिता! तुम्हारी बेटियों पर तो वज्रपात हो गया
अंदर टूटी हुई चूड़ियों के ढेर लग गए हैं
बाहर भी टूटी हुई चूड़ियों के ढेर लग गए हैं
पंचमुखी शंख बजने लगा है
शरीर जलकर भस्मसात हो गया है
तुम्हारा स्वर्गवास हो गया है
अब तो किसी तीर्थ स्थल पर मिलन होगा
या फिर हरिद्वार में मिलेंगे

अन्त्येष्टि संस्कार पर गाए जाने वाले शोक–गीतों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व तो है ही, साथ ही इसका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्त्व है। ऐसे गीतों से परिवार के संतप्त लोगों में कुछ स्थिरता आ जाती है। सांत्वना से भरे इन शब्दों का परिवार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही मृतक के सद्‌गुणों और परिवार में उनके अभाव की पूर्ति के लिए सम्बल प्राप्त होता है। जीवन के कार्यकलापों को पूर्ववत् सम्पन्न करने की शक्ति का अनुभव प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति में मनाए जाने वाले विभिन्न संस्कार जहाँ मानव जीवन में आत्म–विश्वास भरते हैं, वहीं सांस्कृतिक परिरक्षण के सहायक अंग है।

# भोजपुरी के मृत्यु गीत

डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी

मनुष्य के जीवन समापन के पश्चात् अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है, जो उसके जीवन का अंतिम संस्कार होता है। इस संस्कार की सम्पन्नता में यह भाव अन्तर्निहित है कि मृतात्मा परलोक में शांति –लाभ करेगा। मृतक के स्वर्गवासी होने के पश्चात् उसके पीछे बचे हुये सम्बन्धियों को यह सोचकर असह्य दु:ख होता है कि धरती से जाने वाला अब कभी भी वापस नहीं आयेगा। ऐसी परिस्थिति में मृतक के साथ सुख–दु:ख, हर्ष–विषाद के क्षणों का स्मरण कर मृत व्यक्ति के गुणों का स्मरण हो जाना स्वाभाविक है। इन विषाद के क्षणों में नारी कंठ से जो गीत फूट पड़ते है, उन्हें ही मृत्यु संस्कार के गीत कहते हैं।

मनुष्य के जन्म के साथ ही हमारी संस्कृति में विभिन्न प्रकार के संस्कार प्रारंभ होते है। ये संस्कार हमारी लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इन संस्कारों के समय जो विधि सम्पन्न की जाती है, उनमें गीतों का गायन भी किया जाता है। मृतक आत्मा की शांति के लिये अनेक प्रकार की रस्म भोजपुरी अंचल में सम्पन्न किये जाते हैं। इन रस्मों के सम्पन्न होने के समय तो गीत नहीं गाये जाते, लेकिन मृत्यु के उपरांत घर–परिवार का दसवां चीत्कार इतना कष्टपूर्ण होता है कि सुनने वाला द्रवित हो आँसू बहाने लगता है। महिलाओं के कंठ से प्रस्फुटित ये दारुण उद्गार गीतात्मक और लयबद्ध रूप से निकलते हैं। इन उद्‌गारों की लय में प्रस्तुति ही मृत्यु गीत की श्रेणी में आते हैं। इन लयबद्ध द्रवीभूत कर देने वाले गीतों में एक ओर मृत व्यक्ति के गुणों का बखान होता है, और दूसरी ओर मृतक के जाने के बाद उसके अभाव में उत्पन्न आर्थिक संकटों का भी उल्लेख रहता है।

मृत्यु संस्कार के समय गीत गाने की परम्परा लगभग देश के हर अंचल और हर जाति में पायी जाती है। ब्रज क्षेत्र में मथुरा के चतुर्वेदियों के परिवार में औरतों का विलाप कारुणिक तो होता ही है, लयबद्ध भी होता है। उन लयबद्ध रुदन में मृतक की प्रशंसा में

अनेक बातें याद कर-करके कही जाती हैं, ब्रज क्षेत्र के मृत्यु गीत का एक उदाहरण -

*काए के कारन जौ बए*
*और काहे को हरे-हरे बाँस*
*हरि रे किसन कैसे तिरयऔ।*
*लाला धरम को कारन जौ बए*
*मरन के काजे हरे-हरे बाँस*

उड़िया लोक साहित्य में भी मृत्युगीतों की एक सशक्त परम्परा प्रचलित है, जिसमें सामूहिक गीतात्मक विलाप बड़े ही करुणा के साथ व्यक्त होता है। गढ़वाल और कुमायूँ अंचल में भी स्वजन के निधन पर कारुणिक विलाप के साथ गीतों की परम्परा है। मृत्यु पर गाये जाने वाले गीतों की परम्परा अपने देश के अलावा अन्य देशों में भी है। यूरोप के अनेक देशों में इस प्रकार की प्रथा है। आयरलैण्ड में इस प्रकार के मृत्युगीतों को कीन्स (keens) कहा जाता है। दक्षिण इटली के निवासी जो गीब्रा भाषा बोलते हैं, मृत्यु गीतों के लिये एक विशेष छन्द का प्रयोग करते हैं। रोने वाली स्त्री (Pullic Wailm) कहलाती है।

भोजपुरी अंचल अपनी लोक संस्कृति की रक्षा के लिये पुराकाल से ही प्रसिद्ध है। इसीलिये किसी व्यक्ति के निधन पर उसके घर की औरतों द्वारा जो भी लोकाचार और कर्मकाण्ड सम्पन्न होते हैं, उसमें उन औरतों की वेदना गीत के रूप में फूट ही पड़ती है। यह वेदना अत्यंत ही कारुणिक और पीड़ादायक होती है। यह लयबद्ध गीत प्राय: मृतक के गुणों और उसके अभाव से उत्पन्न परिस्थितियों की संकल्पना से आपूरित रहता है। एक उदाहरण-

*के मोरा नइया के पार लगइहे ए राम,*
*अब कइसे दिनवाँ काटवि ए राम,*
*जतना अरामवा हमरा के दिहलें*
*अब कवा दुरदसवा होई ए राम।*

इसी प्रकार का भोजपुरी अंचल में प्रचलित एक अन्य गीत है, जिसमें कोई व्यक्ति शिकार करने के समय अपने बहनोई को मार डालता है। एक दिन विधवा बनी औरत का भाई अपनी बहिन से भेंट करने के लिये आता है। इस पर बहन विलाप करते हुये कहती है -

*को मोर छइहैं भइया राँड का मड़इया*
*कोन बितइहै दिन रतियां हो राम*

ठीक इसी प्रकार का भाव जायसी कवि के 'पद्मावत' में भी आया है, जब रत्नसेन की वियोग व्यथा में रोती हुई तारामती अपनी पीड़ा व्यक्त करती है-

*पुष्प नरवत सिर ऊपर आवा,*
*हौ बिनु नाह मदिर वो छावा।।*

मृत व्यक्ति की पत्नी एक ओर छाती पीटकर विलाप करती है, वहीं पति के अभाव में अपनी दुर्गति सोचकर काँप उठती है, तभी तो वह अपनी पीड़ा को इस गीत के रूप में व्यक्त करती है-

*आजु त गवनवाँ भइवें, काल्हू स्वामी मरी गइलें*
*आही मोरे रामा, कवन गतिया होई एक रामा*
*हरि के वियोगवा, अब ना जिमबि हो राम*
*कटली में नरखर, बन्हली बैवनवाँ आही मोरे रामा*
*ताहि पर हरि जी के सुहवले हो राम।*

भोजपुरी क्षेत्र में विधवाओं की स्थिति बड़ी ही कारुणिक होती है। दुबारा शादी की बात तो दूर, विधवा के लिये परिवार में जीवन की बहुत-सी सुविधायें भी वर्जित हो जाती है। उसकी पूरी जिन्दगी को एक श्राप बना दिया जाता है। परिवार के सदस्य ही जब उससे सहानुभूति नहीं रखते, तो समाज कहाँ से सम्मान करेगा? उसके भाई-बन्धु उसका अनेक प्रकार से शोषण का प्रयास करते हैं। कोई उसकी इज्जत का दुश्मन है तो कोई उसका हिस्सा लेने को आतुर है। पति के अभाव में उसकी स्थिति अत्यंत कष्टपूर्ण हो जाती है। विधवा की मर्मव्यथा से सम्बन्धित एक करुण गीत देखिये-

*सिर मोरा रोवेला सोनूर बिन*
*नयना काजर बिनु ऐ राम*
*अरे मोर गोदिया रोवेला बालक बिनु*
*सेजिया कन्हईया बिनु ऐ राम*
*केकरे गोहनवाँ लागऊं ऐ राम।*

इसी लय में एक और गीत देखें, जिसमें एक बाल विधवा

को उसके ससुराल के अनेक लोग अपने ढंग से सान्त्वना दे रहे हैं, तथा उसे पुनः सामान्य जिन्दगी जीने की सीख दे रहे हैं। परिवार के लोगों को विधवा कैसे जवाब दे रही है, उस भाव को इस शोक गीत में देखें–

*कन्हैया विरोगिन करि गये हमको।*
*खंमा की ओट ससुर समझावे,*
*अरे बहुवरि नाहीं तुम बिटिया हमारि*
*का समुझावौ ससुर तुम हमको,*
*ओ हरी–हरी चुरिया दुलम भई हमको*
*घूँघट ओट जेठ समुझावै,*
*अरे भयहु नाही तुम बिटिया हमारि*
*का समुझावौ जेठ तुम हमको,*
*अरे मोतिन माँग दुलम भई हमको*
*गोदिन बैठि देवर समझावै*
*अरे भौजी नहीं तुम मातु हमार*
*का समुझावौ देवर तुम हमको*
*अरे फूलन सेज दुलम भई हमको।*

यहाँ विधवा का विलाप में जवाब देना, कितना कारुणिक और हृदय विदारक लग रहा है। भोजपुरी अंचल में मृत्यु पर रचे गये गीतों का सर्वश्रेष्ठ एवं भावपूर्ण उदाहरण बिसराम के विरहों में उपलब्ध होता है। बिसराम आजमगढ़ के निवासी थे। विरहा लोकगीत के वे श्रेष्ठ गायक माने जाते हैं। उनकी पत्नी उस समय कालकवलित हो गई, जब बिसराम की अवस्था महज बीस वर्ष की थी। पत्नी वियोग में बीस वर्ष बिसराम ने बीस युगों की तरह झेला। उस भावावेग में बिसराम एकान्तमुखी हो गये और श्मशान घाट पर जहाँ उनकी पत्नी की चिता जलाई गई थी, एक–एक दर्द से भरा हुआ विरह गीत रचने लगे। यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि भोजपुरी अंचल में जहाँ लगभग सभी मृत्यु गीत या शोकगीत नारी हृदय द्वारा रचे गये हैं, वहाँ बिसराम द्वारा रचित करुणा रस से लबालब भरे विरही पुरुष हृदय के कारण विगलित कष्ट को व्यंजित करते हैं। बिसराम ने इन विरह गीतों के माध्यम से मृत्यु गीत का जो नमूना प्रस्तुत किया है, वह सम्पूर्ण भोजपुरी साहित्य की एक अनुपम धरोहर है। नीचे लिखे गये विरहा गीत में बिसराम ने भावोवेश के क्षणों में अपनी मर्मांतक पीड़ा को व्यक्त करते हुये कहा है कि मेरे गाँव वाले मुझे गाली देते हैं कि मैं पत्नी के वशीभूत हूँ। लोग व्यंग्य करते हुये कहते हैं कि अनेक पुरुषों की स्त्रियाँ मरती हैं। परन्तु कोई इस प्रकार अपना शरीर नष्ट नहीं करता। युवक ताना मारते हैं कि संसार में स्त्रियाँ तो मरा करती हैं, परन्तु इस प्रकार किसी के पति पागल नहीं होते। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी की अकेली पत्नी मरी है। यह पत्नी के मरते ही कायर होकर अपनी हिम्मत हार गया है। पिता जी कहते हैं कि मैं तुम्हारा दूसरा विवाह करा दूँगा, पर वे नहीं जानते कि मेरी प्रिया की छबि मेरे मन में कितनी गहराई तक बसी हुई है। भाई–भाभी तथा गाँव वाले सभी उसी तरह की बोली बोलकर मुझे दुत्कार रहे हैं। मेरे दिल में जो आग लगी हुई है, उसकी व्यथा को अन्य लोग क्या जाने–

*मोके तू विपतिया सतावे मोरे दैया*
*राडुआँ कहें कि मेहर बस हउ ए सार*
*बुढ़वा त कहें हमरो मरल बा मेहरिया*
*कबहूं नाहीं तोरली आपन अइसे सरीरिया*
*कहवे जवनका मेहरी मरै बहुत जग में*
*उनकर मरदवा नाहीं रोवे अइसे मग में*
*इन्ही क सीता जनूँ मरल बाहीं जग में*
*ई त रोवे नित रोजवा जार– बेजार*
*पिता जी कहें बेटा करबैं बियहवा इसर*
*काहें होला ओम्ये लवलीन*
*इतनी त बतिया नाहीं जनतें मोरे दादा*
*उनके सुरतिया मनवो में हवे आसीन।*

निःसंदेह बिसराम द्वारा लिखे गये ये गीत सम्पूर्ण भोजपुरी साहित्य में शोकगीत के विरल उदाहरण हैं।

भोजपुरी अंचल में अन्त्येष्टि संस्कार की सामान्य बातें भी बड़े ही विधि–विधान से सम्पन्न होती हैं, जैसे दाह –संस्कार, घँट–टांगना, दूध सतनंहरवना, दसकर्म, ब्रह्मभोज तथा बरखी इत्यादि। इन सबके होने के उपरान्त ही यह संस्कार पूर्ण होता है। लेकिन ध्यान देने की बात है कि इन संस्कारों के समय किसी प्रकार का कोई गीत नहीं गाया जाता है। केवल मृत्यु के अवसर पर ही घरों में औरतों द्वारा शोक गीतों के माध्यम से अपने भारी मन को हल्का करने के उपक्रम किये जाते हैं। इसके विपरीत अगर घर में किसी वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु होती है, तो उस व्यक्ति

की शवयात्रा गाजे-बाजे के साथ होती है। उस अवसर पर शोकगीत नहीं गाये जाते। इस प्रकार के वृद्ध व्यक्ति की शवयात्रा में 'राम नाम सत्य है सबकी यही गति है' का ही समवेत स्वर में उच्चारण होता रहता है।

इसी प्रकार मुहर्रम के अवसर पर भी मुस्लिम औरतों द्वारा मर्सिया के समान शोक गीत गाये जाते हैं। कुछ मुहर्रम के गीतों में हसन-हुसैनी की लड़ाई में माँग में सिंदूर मिटने की दर्द की भी अभिव्यक्ति मिली है। आज के तथाकथित पढ़े-लिखे सांप्रदायिक लोगों को यह बात अजीब लग सकती है।

नि:संदेह लोकगीत हमारी लोकसंस्कृति के प्राचीनतम दस्तावेज हैं। जनता की व्यथा, रुचि और कल्पना को अभिव्यक्त करने का सबसे पुराना माध्यम लोकगीत ही रहे हैं। नारी हृदय की वेदना के क्षणों में उसके दु:ख-दर्द को भुलाने में लोकगीत ही सहायक की भूमिका में रहे हैं। आज भी दु:खों को झेलता गाँव का बहुसंख्यक समाज अपनी व्यथा को लोकगीतों के माध्यम से ही व्यक्त करता है, भले ही उसकी अभिव्यक्ति का ढंग अपने क्षेत्र की बोली के अनुसार अलग-अलग क्यों न हो।

# मृत्यु का संस्कार

मायापति मिश्र

शरीर एवं वस्तु की शुद्धि के लिए उनके विकास के साथ समय-समय पर जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें संस्कार कहते हैं। संस्कार से किसी भी वस्तु का उत्कर्ष हो जाता है। मानव जीवन में शरीर के उत्कर्ष एवं शुद्धि के लिए शास्त्रों में संस्कारों की बात की गयी है। मनु ने बारह संस्कार बताये हैं, जबकि न्याय दर्शन के व्याख्याकार गौतम ने संस्कारों की कुल संख्या चौबीस बतायी है। परन्तु लोक जीवन में प्रचलित संस्कारों की संख्या सोलह है। शरीर के ये सोलह संस्कार जीवन के विभिन्न पड़ावों पर सम्पन्न किये जाते है इन सोलह संस्कारों में बहुत से संस्कारों का परिपालन अप्रासंगिक हो गया है। परन्तु नामकरण, विवाह एवं अन्त्येष्टि को अभी भी भारतीय मानस में अनिवार्यता का दर्जा प्राप्त है। अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि मनुष्य की विदाई का संस्कार है, अतः इसे बड़े ही कर्मकाण्ड के साथ परिजनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसके सम्पन्न होने के साथ ही मनुष्य के जीवन का अंतिम अध्याय पूर्ण हो जाता है।

मानव जीवन के अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि के विषय में 'बोधायन पितृमेघ सूत्र (3.1.4) में कहा गया है- 'जात संस्कारेणं लोकंभिजयति मृत संस्कारेणामुं लोकम्' अर्थात् जातक आदि संस्कारों से मनुष्य इस लोक को जीतता है, मृत संस्कार अन्त्येष्टि से परलोक को। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि मृत्योपरान्त अन्त्येष्टि संस्कार के निर्वहन का दायित्व परिजनों का है। अपने जीवन काल में जिस व्यक्ति ने परिजनों का जीवन सुधारा, उनका भरण-पोषण किया, मृत्योपरान्त उसके ऋण से मुक्ति पाने हेतु परिजनों को उसके परलोक को सुधारने हेतु अन्त्येष्टि कर्म करना पड़ता है।

*तस्मान्मातरं पितरमाचार्य पत्नीं पुत्रं शिष्यमन्तेवासिनं पितृव्यं मातुलं सगोत्रंसगोत्रं वा दायमुपयच्छेद्दहनं संस्कारेण संस्कुर्वन्ति।*

अर्थात् यदि मृत्यु हो जाये तो माता-पिता, आचार्य, पत्नी, पुत्र, शिष्य (अन्तेवासी), पितृव्य (चाचा), मातुल (मामा), सगोत्र, असगोत्र का दाय (दायित्व) ग्रहण करना चाहिए और संस्कार पूर्वक उसका दाह संस्कार करना चाहिए।

दाह संस्कार की अनिवार्यता को भगवान श्रीराम ने भी स्वीकार किया है। गिद्धराज जटायू को उसके इच्छित वरदान अखण्ड भक्ति और मोक्ष के धाम वैकुण्ठ को देने के पश्चात् भी भगवान श्रीराम ने स्वयं अपने हाथों से गिद्धराज जटायू की अंतिम क्रिया दाह संस्कार (अन्त्येष्टि) को सम्पन्न किया-

*अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।*
*तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्हीं राम।।*

लोक जीवन के अध्येता गोस्वामी जी जीव को ईश्वर का अंश एवं अविनाशी मानते हुए 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' भी जीव के देह से विलग होने पर ईश्वर (भगवान श्रीराम) के हाथों गिद्धाराज जटायू की अंतिम क्रिया लोक पद्धति से करवाते नजर आये। ईश्वर ही सत्य है और ईश्वर का अंश होने के कारण जीव भी सत्य है। अत: जीव की क्रिया-देह त्याग-मृत्यु भी सत्य है। इन तमाम सत्यों के बीच जीव द्वारा परित्यक्त शरीर जिसे लोक जीवन में मिट्टी की संज्ञा दी जाती है, उसे शव रूप में अन्त्येष्टि स्थल -'श्मशान' तक ले जाने के लिए चार परिजन कंधा देते हैं। कंधे पर बाँस की टिट्ठी (सीढ़ी) बनाकर शव ले जाने की प्रक्रिया को शव यात्रा और अंतिम यात्रा भी कहा जाता है। शव यात्रा के आगे-आगे परिजन (पुत्र) मिट्टी की हँडिया में कण्डे की आग लेकर चलता है, जिससे चिता को मुखाग्नि दी जाती है। शव यात्रा में सम्मिलित सहयात्री ढाँढस हेतु यह कहते-चलते हैं-

*राम नाम सत्य है।*
*सब की यही गत्य है।।*

वे इस बात का बोध कराते हैं कि राम नाम ईश्वर रूपी जीव सत्य है और उसके द्वारा देह का परित्याग मृत्यु सत्य है, शरीर तो मिथ्या है, मिट्टी है और प्रत्येक मानव शरीर की यही गति अथवा दशा होगी।

अवसाद के क्षणों में रामनाम रूपी सत्य ही लोक भावना बनकर शव यात्रियों एवं परिजनों को सम्बल प्रदान करता है। लोक जीवन में यह वही राम नाम शव यात्रा का साक्षी है, जो पक्षी के भी पार्थिव शरीर के अंतिम संस्कार का सहभागी बना था-

*तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्हीं राम।*

श्रीमद्भगवत गीता में मृत्यु को बार-बार 'प्रयाणकाल' से सम्बोधित किया गया है-

*प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नित्यात्मभि:।*

× × ×

*प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योग बलेन चैव।*

गीता पुनर्जन्म को मान्यता नहीं देती, इसलिए मृत शरीर के अन्त्येष्टि पर मौन है। फिर भी मरणासन्न मृत्युशैय्या पर पड़े भीष्म के मुख में अर्जुन द्वारा जल देने हेतु पृथ्वी में बाण मारकर पातालगंगा से जलधारा पैदा करके जल डालने की लोक रीति महाभारत में देखने को मिलती है। उपनिषदों में कठोपनिषद विशुद्ध रूप से आत्मा, जीव, शरीर, इन्द्रियों एवं मृत्यु के रहस्य पर सम्यक् चर्चा करता है। कठोपनिषद में नचिकेता मृत्यु के रहस्य को खोजता हुआ यमराज के पास तक जाता है। मृत्यु के अधिपति उसे इस रहस्य को बताने में बार-बार असमर्थता प्रकट करते हैं। परन्तु हठी नचिकेता के आगे वे हारकर रहस्य के इर्द-गिर्द बुने झीने परदे को उठाकर जीवात्मा को अमर बताते हुए मानव शरीर की अंतिम गति जीव से विलग होकर नश्वर हो जाना समझाते हैं। और यही बात लोक जीवन भी कहता है- (ईश अंशी आत्मा) रामनाम सत्य है, सबकी यही गत्य है।

अन्त्येष्टि के अलग-अलग विधान धर्म, पंथ एवं जातियों के हिसाब से प्रचलित हैं। पूर्व काल में शैवमतानुयायी 'शव' (मृत शरीर) को वैसे ही जीव-जन्तुओं को खाने हेतु छोड़ देते थे, बाद में जल में प्रवाहित करने की प्रथा का प्रारम्भ हुआ। पारसी शव को पशु-पक्षियों को खाने हेतु छोड़ते हैं। शैवों ने शव को पेड़ों पर लटका देने की प्रथा की भी शुरुआत की थी। बाद में शव को जमीन में गाड़ने की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। ईसाई एवं इस्लाम धर्मावलम्बी शव को जमीन में गड्ढा खोदकर गाड़ देते हैं, जिसे दफन करना कहा जाता है। हिन्दुओं में यज्ञ की प्रधानता होने के

कारण मृत शरीर भी यज्ञाग्नि द्वारा दग्ध होने लगा और दाह संस्कार की प्रधानता हो गयी (ये निरवाता, ये परोप्ता, ये दग्धा, ये चोद्विता-अथर्ववेद)। हिन्दुओं में शव का दाह संस्कार ही बहुप्रचलित है, यद्यपि किन्हीं-किन्हीं अवस्थाओं में अपवाद स्वरूप जल प्रवाह और समाधि की प्रथा भी अभी जीवित है। असामयिक अथवा असाधारण स्थिति में मृत व्यक्तियों के अन्त्येष्टि संस्कार में विशेष क्रियाएँ होती हैं। आहिताग्नि, अनाहिताग्नि, शिशु, गर्भिणी, नवप्रसूता, रजस्वला, परिव्राजक- संन्यासी-वानप्रस्थ, प्रवासी और पतीत के संस्कार (अन्त्येष्टि) भिन्न-भिन्न विधियों से होते हैं।

सम्पूर्ण अन्त्येष्टि संस्कार को निम्नालिखित खण्डों में बाँटा गया है-

1. मृत्यु के आगमन के पूर्व की क्रिया- क. सम्बन्धियों से अंतिम विदाई, ख. दान-पुण्य, ग. वैतरणी (गाय का दान), घ. मृत्यु की तैयारी, 2. प्राण दाह के विधि-विधान 3. अर्थी 4. शवोत्थान 5. शवयात्रा 6. अनुस्तरणी (राजगवी: श्मशान की गाय) 7. दाह की तैयारी 8. दाहयश 9. प्रत्यावर्तन (श्मशान से लौटना) 10. उदककर्म 11. शोकार्तों को सान्त्वना 12. अशौच (सामयिक छूत- अस्पृश्यता) सूतक 13. अस्थि संचयन 14. शांतिकर्म 15. श्मशान (अवशेष पर समाधि निर्माण) आजकल अवशेष का जल प्रवाह और उसके कुछ अंश का गंगा अथवा अन्य किसी पवित्र नदी में प्रवाह होता है। 16. पिण्डदान (मृत के प्रेत जीवन में उसके लिए भोजन दान) 17. क्षौर कर्म - सिर के बाल बनवाना 18. सपिण्डीकरण (पितृलोक में पितरों के साथ प्रेत को मिलाना) यह क्रिया बारहवें दिन तीन पक्ष के अंत में अथवा एक वर्ष के अंत में होती है। ऐसा विश्वास है कि प्रेत को पितृ लोक में पहुँचने में एक वर्ष लगता है।

---

**संदर्भ**


हिन्दू धर्म कोश, सम्पादक -राजबली पाण्डेय, पृष्ठ - 645, 636, 637
वृहत्त हिन्दी कोश, सं.-कालका प्रसाद, पृष्ठ- 1178
श्रीरामचरित मानस, अरण्य काण्ड, दो सं. 32
श्रीमदभगवद् गीता, अध्याय - 8 श्लोक सं. 02, 10

# कोरकू मृत्यु संस्कार

डॉ. धर्मेन्द्र पारे

कोरकू जनजाति में विश्वास है कि मृत्यु से व्यक्ति समाप्त नहीं होता, उसकी आत्मा रूप बदलती है। कोरकू यदि किसी से डरता है तो वह मृतक शरीर की आत्मा ही है। कोरकू परिवार में स्वभाविक मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति शीघ्र ही देव रूप धारण कर लेता है। इसीलिए कोरकुओं के खेत-खलिहानों की मेड़ों पर एक छोटी-सी झोपड़ीनुमा मढ़िया में 'आजा-बूढ़े' का स्थान बना होता है। कोरकू जनजाति में अंतिम संस्कार के लिए कोई भी सार्वजनिक स्थल नहीं होता। मृतक को उसके खेत -खलिहान में किसी मेड़ पर दफनाया जाता है। अब दाह संस्कार की प्रथा भी प्रारंभ हो चुकी है। जब परिवार में किसी बुजुर्ग का निधन हो जाता है, तब घर में किसी जगह को गाय के गोबर से लीपकर उस पर उसे लिटा दिया जाता है। शव को नहला-धुला कर स्वच्छ कर दिया जाता है। कुछ सालों पूर्व तक मृतक के शरीर पर कुछ निशान बनाने की प्रथा थी। ऐसा माना जाता है कि मृतक अगले जन्म में शरीर पर बने उन चिह्नों सहित जन्म लेगा। कोरकू जनजाति में मृतक के प्रति अद्भुत जिज्ञासा भाव होते हैं। वे यह जानने के लिए कि वह अगले जन्म में क्या बनेगा, इसलिये वह तरह-तरह के टोने-टोटके करता है।

मृतक को खटिया या बाँस की बनी सीढ़ी पर रखकर ले जाया जाता है। खेत-खलिहान में एक गड्ढा खोदकर उसमें अन्न और पैसे डालने के पश्चात् दक्षिण दिशा में सिर करके दफना दिया जाता है, फिर शामिल लोग वहाँ चिलम-तम्बाखू का सेवन करते हैं। सभी शवयात्री खासकर पीछे चलने वाले बेर की झाड़ी घसीटते हुए चलते हैं। कुछ लोग पीछे-पीछे कंकरी फेंकते हुए भी आते हैं। दरअसल कोरकुओं को यह भय बहुत गहरे में सताता है कि कहीं मृतक की आत्मा भटकते हुए उनके पीछे न आ जाये। बेर की झाड़ी से उनके पद्चिह्न मिट जायेंगे और मृतक की आत्मा उनका पीछा नहीं कर पायेगी। दफनाये गये स्थान पर सायंकाल घर के लोग दीपक जलाने जाते हैं। तीसरे दिन को तीजा कहा जाता है। इस दिन रिश्तेदारों सहित परिजन अंत्येष्टि स्थल पर जाकर पूजन कर भोज्य

सामग्री रखते हैं। मृत्यु के आठ-दस दिन बाद किसी सोमवार को 'पितर मिलौनी' कार्यक्रम होता है। इस दिन मृतक की स्मृति में सामाजिक भोज-मद्यपान होता है। यह आवश्यक नहीं कि पितर मिलौनी अगले सोमवार को ही सम्पन्न हो जाये। इसकी अवधि एक साल तक भी हो सकती है। इसके पीछे व्यक्ति की आर्थिक स्थिति कार्य करती है। यदि वह निर्धन है तो खर्च करने लायक राशि के इंतजाम के बाद ही यह अनुष्ठान पूरा होता है। इस दिन महिलाओं द्वारा जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'मिमलाव' कहा जाता है।

**सिडोली**

सिडोली कोरकू जनजाति का सर्वाधिक रोमांचक और अब समाज में समाप्तप्राय सी प्रथा के रूप में बचा मृतक संस्कार है। यह अनुष्ठान प्राय: पौष माह में किया जाता है। पौष का महीना कोरकू जनजाति में शुभ नहीं माना जाता। इस माह में मांगलिक कार्य स्थगित रहते हैं। वैसे कभी-कभी सिडोली वैशाख में भी होती है। संभवत: कोरकू जनजाति में सिडोली के समान दूसरा कोई रोचक, खर्चीला और विवादास्पद कार्यक्रम नहीं है। इस कार्यक्रम में जिस तरह की शिल्पगत खूबसूरती, अनुष्ठानिक पवित्रता और जीवन में निहित सघन और उद्दाम काम आवेगों की गीतात्मक अभिव्यक्ति के साथ आध्यात्मिक ऊँचाई की समझ देखने को मिलती है, वह इस जनजाति में दूसरी और कहीं प्रतीत नहीं होती। इस अनुष्ठान को हर परिवार में करने की सामर्थ्य नहीं होती। किसी गाँव में तो यह तीस-चालीस साल में किसी-किसी परिवार में एक आध बार हो पाता है। किसी गाँव के बुजुर्गों को तो याद ही नहीं कि उनके गाँव में कभी सिडोली का अनुष्ठान हुआ भी हो।

इसके विपरीत बैतूल जिले की भैंसदेही तहसील के एक गाँव बोरखेड़ी में श्री मानू वल्द बाबू और गाँव के भुमका श्री चन्नू वल्द झोले व श्री जुगरु वल्द दसरु के अनुसार उनके गाँव में हर घर में सिडोली होती है। किन्तु मुझे इस गाँव में सिडोली में गाड़े जाने वाले मृतक स्तंभ मुंडा इस तादाद में गड़े हुए नहीं मिले, फिर भी बोरखेड़ी के उक्त सज्जनों की बातों पर अविश्वास का मेरे पास कोई कारण नहीं है, क्योंकि मृतक स्तंभ के लिए यह कतई आवश्यक नहीं है कि वह उसी गाँव में गाड़ा जाये।

कोरकू जनजाति में कोई इस अनुष्ठान से परिचित नहीं हो, ऐसा नहीं है। इसके रीति-रिवाज और गीत से लगभग सभी लोग परिचित मिले। कुछ वृद्ध लोगों का कहना है कि यह तो किसी-किसी कुल की ही रीति है, सम्पूर्ण जाति की नहीं। ऐसी मान्यता ज्यादातर हरदा जिले की खिरकिया तहसील के गाँव घोंघड़ाघाट और टेमलावाड़ी में विदित हुई। इस कार्यक्रम की भव्यता का इसी से अनुमान लग सकता है कि यह चार दिन का समारोह होता है। इसमें विवाह से भी दुगुना खर्च आता है। हर चालीस-पचास गाँवों के बीच मुझे कहीं न कहीं मृतक स्तंभ गड़े हुए मिले हैं, साथ ही सिडोली सम्पन्न होने की कहानी भी ज्ञात हुई है।

सिडोली के विषय में मान्यता है कि जो भी व्यक्ति मरता है, उसकी आत्मा आस-पास ही भटकती रहती है, उसके मोक्ष के लिए आवश्यक है कि उसे समाधिस्थ कर दिया जाये। इसी मान्यता के चलते यह अनुष्ठान पूर्ण होता है, जिसमें एक साथ उद्दाम, काम गीतों की शृँगारिकता, अंतिम रूप से विछोह की करुणा और मोक्ष की शांति की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इस अनुष्ठान को पूरा करने के लिए आवश्यक नहीं कि व्यक्ति के मरने के तुरंत बाद ही किया जाये। यह एक साल, दो साल, दस साल या और भी ज्यादा बाद में कभी भी किया जा सकता है। इस अनुष्ठान में गाँव के अलावा सभी रिश्तेदारों को बुलाया जाता है। सिडोली के विषय में कहीं-कहीं ऐसी भी मान्यता है कि बिना बुलाये भी लोग इस अनुष्ठान में शामिल होते हैं। कार्यक्रम प्राय: सोमवार के दिन शुरू होता है। उस सुबह से ही घर की उजाल पूजा होती है, अर्थात् घर की साफ-सफाई और लिपाई-पुताई के बाद होने वाली देवों, कुल देवों की पूजा आदि। इस दिन सभी परिजन सिडोली आयोजित करने वाले व्यक्ति के घर आ जाते हैं। इसी दिन शाम को लगभग चार बजे सभी लोग नाचते-गाते नदी पर जाते हैं। वहाँ पर दोंगली नामक घास की जड़ तोड़ते हैं। मान्यता है कि इस जड़ से खून निकलता है। किन्हीं गाँवों में केकड़े के घर की मिट्टी भी लौटाने जाते हैं। इस बात का उत्तर कोरकू मानव जाति की उत्पत्ति सम्बन्धी उस कथा में मिलता है, जब मनुष्य को गढ़ने के लिए भगवान के कहने पर कौआ केकड़े के दर अर्थात् घर की मिट्टी उधार लेकर आया था। मनुष्य का जीवन इसी मिट्टी की उधारी का परिणाम है। इस कारण उधार ली गई इस मिट्टी को मरने के बाद लौटाना अनिवार्य होता है।

कोरकू ऐसा मानते हैं कि केकड़ा अजर-अमर होता है। उसी ने सबसे पहले मिट्टी का निर्माण किया था। यह भी माना जाता है कि केकड़े को भगवान ने आसमान से नीचे गिराया था। केकड़े की इस मिट्टी को जब लौटाने जाते हैं, तो मिट्टी लौटाने वाले व्यक्ति को दो-चार लोग पीछे से पकड़ कर रखते हैं, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि वहाँ पर आत्मा की शक्ति होती है, जो व्यक्ति को खींचकर पाताल ले जा सकती है। इसके बाद सागौन के वृक्ष को निमंत्रण देने जाते हैं। उस दिन भी एक बकरे की बलि दी जाती है। दूसरे दिन याने मंगलवार को सभी लोग उस सागौन की लकड़ी को काटने जाते हैं। लकड़ी काटते समय यह आवश्यक है कि लकड़ी नीचे नहीं गिरे, क्योंकि इसी लकड़ी का मुंडा बनाया जाता है। इसी दिन श्मशान घाट में एक बाँस रखा जाता है। इस बाँस से अगले दिन ढबली बनाई जाती है। इस ढबली में सात केंकड़े और सात चूजे रखे जाते हैं और दोंगले की जड़ रखी जाती है। दोंगले की जड़ को मृतक की हड्डी माना जाता है। यहाँ एक रोचक बात का उल्लेख करना चाहूँगा कि कोरकू जनजाति मुंडा जनजाति से ही उद्‌गमित मानी जाती है। मुंडा लोग भी अपने मुखिया को मुंडा कहते हैं। कोरकू जनजाति में भी सिडोली हर एक व्यक्ति के लिए नहीं की जाती, जो प्रमुख हो- जिसकी ख्याति रही हो- जो अर्थ सम्पन्न रहा हो, उसी की सिडोली होती है। बैतूल जिले में इस लकड़ी को घर न लाकर एक पटिए पर रखकर एक दो व्यक्ति को इस पर नक्काशी और आवश्यक अनुष्ठानिक आकृतियों को उकेरने के लिए गाँव के बाहर ही छोड़ दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इनका गाँव आना वर्जित होता है। सिडोली करने वाले के लिए परिवार द्वारा वहीं पर इन्हें भोजन पहुँचाया जाता है। किन्तु हरदा और खंडवा जिले में ऐसा नहीं है। उस लकड़ी को नाचते-गाते हुए घर ले आते हैं, जिसमें रात भर कोई व्यक्ति आकृतियाँ उकेरता है। इन आकृतियों में सबसे ऊपर चाँद-सूरज बनाया जाता है, फिर घोड़े पर बैठे माता-पिता बनाये जाते हैं। उसके बाद मूंगिया एवं मूंगनी एवं अन्य दिवंगत परिजन, फूल आदि उकेरे जाते हैं। माता-पिता के साथ अन्य परिजनों का उकेरना तो समझा जा सकता है, किन्तु मूंगिया एवं मूंगनी अर्थात् ओझा दंपत्ति मुंडा पर क्यों उकेरी जाती है? इस जिज्ञासा का समाधान मैंने कोरकू जनजाति के बुजुर्गों, पड़िहारों, भुमकाओं एवं स्वयं मूंगिया और मूंगनी से चाहा। उन सबका कहना है कि चूँकि ये मूंगिया और मूंगनी कोरकू जनजाति में चारण और भाट के रूप में मान्य है। ओझा लोग कोरकुओं के जन्म, विवाह, मृत्यु सभी अवसरों पर गायन और दान प्राप्त करने आते हैं। साथ ही कोरकू जनजाति में जो गुदना आकृतियाँ बनाई जाती हैं, वे ओझाओं के द्वारा ही बनाई जाती हैं। ये ओझा परिवार भी परिजन तुल्य हो जाते हैं। इस कारण मूंगिया-मूंगनी और उनका वाद्य यंत्र जिसे चिकारा कहा जाता है, को भी मुंडा पर उकेरा जाता है।

अगले दिन जिस व्यक्ति के घर में सिडोली आयोजित हो रही है, उसके घर धारणी देव के पास में सुबह-सुबह इस मुंडा की पूजा करते हैं। बैतूल जिले में इस मुंडा को पूजा के लिए नाचते हुए घर लाया जाता है, फिर मुंडा पर हल्दी लगाई जाती है। इस अवसर पर पहले से तैयार भात और बलि दिए गये बकरे के खून को ऐसा फेंका जाता है कि लोग उसे झेल सकें। इस भात को झेलने के लिए लोग झपट पड़ते हैं। इस झपटे हुए भात और खून को लोग अपने घर ले जाकर एक चिन्दी में बांधकर रख देते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे बरकत और सफलता मिलती है। मुंडा को घर लाने पर ऐसा माना जाता है कि पितृ आत्माएँ अंतिम बार घर आ रही हैं। इस दिन सुबह-सुबह ही सिडोली आयोजक पति-पत्नी एक दूसरे को चिढ़ाते हुए गीत की शुरुआत करते हैं। इनकी आवाज बाहर बैठे परिजन भी सुनते हैं और वे भी गीत-नृत्य शुरू कर देते हैं। आज गाये जाने वाले गीतों की विषयवस्तु उद्दाम काम आवेगों और काम अनुभव पर आधारित होती हैं। कोरकू जनजाति में अब इसी कारण सिडोली प्रथा को बुरा माना जाने लगा है। रोचक बात है कि इन कामपरक गीतों में ज्यादातर बातें नदी, मछली, पेड़, खेती, किसानी आदि के प्रतीकों के माध्यम से की जाती हैं। आज के दिन उम्र और अनुशासन का बंधन टूट सा जाता है। स्त्री-पुरुष दोनों काम अभिव्यक्ति के गीतों में पीछे नहीं रहना चाहते। इस सम्बन्ध में लोगों की मान्यता है कि इतनी सघन और उत्तेजक कामभाव की बातों के बावजूद उन लोगों में उत्तेजना नहीं उत्पन्न होती। इसके बाद लोग नाचते हुए आखाली देव स्थान तक जाते हैं। यहाँ पुनः एक बकरे की बलि दी जाती है। यहाँ बलि किए जाने वाले बकरों को कुल्हाड़ी या फरसे या बसूले से एक झटके से काटा जाता है। यहाँ छूरी का इस्तेमाल वर्जित होता है। इसके बाद सिडोली आयोजित करने वाला व्यक्ति सभी लोगों को विदा करता है। इसमें हर बाँसुरी

बजाने वाले को एक पाई और ढोल बजाने वाले को दो पाई अनाज दिया जाता है। अब अगले दिन अर्थात् बुधवार के दिन पड़िहार या भुमका मृतक की आत्मा से यह पता करते हैं कि उसको कहाँ स्थापित करें? विश्वास के अनुसार आत्मा आमतौर पर वह स्थान बताती है, जहाँ पर उसके पूर्वजों के भी मुंडे गाड़े गये हों। ऐसा भी माना जाता है कि वह स्थान उसके कुल देवता का स्थान होता है। बहरहाल बुधवार के दिन सभी परिजन उस बताये गये स्थान पर जाकर उस मृतक स्तंभ को जमीन में पूजा करके स्थापित कर देते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसके बाद आत्मा यहाँ पर स्थाई रूप से रहने लगती है। एक और रोचक बात यह है कि सिडोली यदि मृतक के पुत्र ने आयोजित की है तो सागौन की लकड़ी का मुंडा स्थापित किया जाता है। और यदि किसी का पुत्र नहीं है और पुत्री ने सिडोली आयोजित की है, तो मुंडा पत्थर का गाड़ा जाता है। इसका कारण इस विश्वास में निहित है कि माता-पिता से पुत्री का प्रेम पत्थर की तरह अटूट और दृढ़ होता है।

**मिमलाव**

*माय मे एकली जासेवो तू कोहे को एकली रे बेटा*
*उजला कपड़ा साथ चलिया आमा हांडी साथ चलियो*
*घर को पूसो रे साथ चलियो*

मृतक आत्मा कह रही है कि मैं अकेली जा रही हूँ। (किन्तु) तुम अकेली कैसे जा रही हो? तुम्हारे साथ उजला सफेद कपड़ा जा रहा है। कुम्हार की हंडी साथ जा रही है और घर का घास-फूस साथ जा रहा है।

टीप - कोरकू जाति में मृतक को दफनाने का रिवाज रहा है, किन्तु अब शव दाह भी होने लगा है।

*नाचो डी टेन हाजे डाई नाचो डी टेन हाजे*
*आमा कोन डो आमा किमिन हल्दी घाटो चोखा चावल मेंढा*
*बोकरा समाले जे ढाईद आमा बोको*
*आमा किमिन हल्दी घाटी चोखा*
*आमा रानी आमा कोन की हल्दी*

आओ भाई नाचो! आज खूब नाचो ! आज तुम्हारे लड़के-बहुओं ने हल्दी चावल लाये हैं। बकरा और भेड़ भी लाये हैं। यह सब तुम्हारे श्राद्ध (खर्च) के लिए रखा है।

*रावण सारी पूवन सारी सूमार घरी*
*गाड़ी लिए सूबाय डो रावण सारी*
*कोनी टामसो ढोगेमा डो रावण सारी*
*रावण सारी डो पूवन सारी कोनी*
*टामसो ढोगेमा डो रावण सारी*
*माया टामसो ढोगेमा डो रावण सारी*

(मृतक की पत्नी कह रही है) हे दिवंगत प्राण! आप जल्दी आओ! यहाँ बैठो ! हमने अपने सारे परिजनों को हिल-मिल कर बुलाया है। तुम पवन बनकर आओ। बिस्तर पर गादी बिछाई है, आप उस पर आकर बैठो। (प्राण की ओर से कहा जा रहा है) कि अब लड़कों का तुम तमाशा देखो ! इन्हें मैं भी देखूँगा ! मेरे प्राण जब तक (अदृश्य रूप में) रहेंगे, तब तक देखूँगा। अब तुम बहू का तमाशा देखो! उसे भी मैं अदृश्य रूप में देखूँगा !

टीप - कोरकू जाति में मृत्यु के दसवें दिन घर में एक स्थान को गोबर से लीपकर वहाँ चौक पूरा जाता है। उस पर एक गादी बिछाई जाती है और मृतक की वस्तुएँ तथा वस्त्र उस स्थान पर रखते हैं। इन वस्तुओं की पूजा होती है। उसी अवसर पर महिलाएँ यह गीत गाती हैं।

*ऐ बैना डो ऐ बैना चोज सांटी उनिड़ी उसरी डो आम सुबाये*
*ऐ डाई जा ऐ डाई इयां ऊनी केने केरसा जा डोडो मारे*
*ऐ बैना डो ऐ बैना टाला चिछरी डो आम सुबाये*
*इंज बागोन बागोन जा डाई इयां*
*ऊनी ऊँ ऐन्टेन हाकोज अगरा गोमढून मारे*
*बाकीमा हिगरा इयां डो बैना इंज बीसे बा रोगों जा डाई टेंगन*

ऐ बहन! बता, तुम किसलिए आँगन के बाहर बैठी हो? बहन ने कहा- भैया! ओ भैया!! मेरी भाभी तो पहले से ही तिरछी नज़र से देखती है। भाई ने कहा- ऐ बहन! तुम तो आ जाओ और बीच घर में बैठ जाओ। बहन ने कहा- मैं नहीं आऊँगी, कदापि नहीं आऊँगी। क्योंकि मैंने भाभी को भाभी कहकर पुकारा तो भी वह नहीं बोली। भाई ने कहा- नहीं डरना बहन! मैं तुम्हारा बाप के समान भाई खड़ा हूँ।

टीप : यह गीत भाभी की मृत्यु के बाद हुए तीजा कार्यक्रम में गाया गया है।

*मिया मुठी बाबा चावली धारना सुभान डोये जा*
*कोन - डोय जा फूल कन मखान जामे बेटा*
*मिया मोखा बाबा चावली धारना*
*सुभान रोपाय किमिन रोपाय*

पिता की मृत्यु के बाद परिजनों को कहा जा रहा है कि - एक मुट्ठी चोखे चावल (अक्षत) धारण बेली (जहाँ पूजन हो रहा है) पर छोड़ो (और धूप डालो)। जब फूल की भाँति कोमल शरीर था, तब वह हँसता था, अब मृत्यु के बाद तुम्हें रोना पड़ रहा है। एक हाथ (नाप) चावल छोड़ो! ओ बहू (पुत्रवधू)! तुम्हें रोना पड़ रहा है।

टीप : धारण कोरकू मकानों में उस बेली या खंभे को कहते हैं, जिसके सहारे पूरा मकान टिका होता है। घर के मुखिया की भूमिका भी यही होती है। उसी पर घर और परिजन आश्रित होते हैं।

*मुरलीखेड़ा हाटी कोरान सोना डहनी बोचोकेन डो बाई*
*बिडे डो बिडे बाई आमा लिजटेन परवा आडी हेजेवा बाई*
*बिडे डो बिडे बाई आमा लिजटेन परवा आडी सेनेवा डो बाई*
*इंज नी चौफार टेन मा बिडे वा डो आयोम*
*इयानी साथी लियेन बारह गाड़ा जानोम रेचा टीन्जकेन आबा*
*इंज नी चौफार टेन मा बिडे वा आबा*
*इयानी साथी लियेन बारा गाड़ा डेघा रेचा टीन्जकेन आबा*
*ईटा टेन्ज नी परवा आडी सेनेवा जा आबा*
*लिन्जटेन भी जरिया जाबू लोखेज बा जा आबा*
*इंज नी चौफार टेन मा बिडे वा जा आबा*
*इंज नीभुरू आधाना एन्टेन गिटीज केनजा आबा*

मृतक की आत्मा से कहा जा रहा है कि मुरलीखेड़ा के बाजार में रास्ते पर सोने की दूकान गिरी (आयी) है। हे नारी! तुम उठो, तुम्हारे ऊपर बाढ़ का पानी आ रहा है। मृतक की आत्मा कहती है कि मैं कैसे आ सकती हूँ? मैं तो हमेशा के लिए जा चुकी हूँ। माँ! मेरे ऊपर बारह गाड़ी काँटे लगे हैं। हे पिता! मेरे ऊपर बारह गाड़ी पत्थर रखे हुए हैं। मेरे ऊपर बाढ़ आ रही है, तो आने दो। मेरे ऊपर जल जामुन का पुराना पेड़ लहरा रहा है। बताओ, मैं कैसे उठ सकती हूँ? हे भैया! हे दादा! सब सोना भी मेरे साथ सो रहा है।

टीप : कोरकू जनजाति में मृतक के मंगल श्राद्ध के दिन जहाँ उसका अन्तिम संस्कार किया जाता है, उस स्थान पर जाकर मृतक को निमंत्रण दिया जाता है।

*घामू-घामू तीसो-तीसो एजेकेन जा आबा*
*मिया-मिलटो धारना सुभान सुभाये*
*घामू घामू तीसो-तीसो एजेकेन जा आबा*
*मिया मिलटो गाधी लियेन सुभाये*
*घामू-घामू तीसो-तीसो एजेकेन जा आबा*
*मिया मिलटो मिगरी चुटी सुभाये*
*घामू-घामू तीसो-तीसो एजेकेन जा आबा*
*मिया मिलटो भानी टालान सुभाये*
*भानी टालान चोजेमा सुभाये कौन जा*
*इंज सांटी किमीन भी को भागायेन*
*घरना सुभान चोजेमा सुभान कौन जा*
*इंज सांटी कौन भी को भागायेन*

मृतक के पुत्र और पुत्री कहते हैं कि हम भरी धूप में दादा आपको बुलाने आये हैं। दादा, आप आइये और एक पल घर में बैठिये। आप एक पल के लिए ही सही गादी पर बैठिये। दादा आप घर आइये और घर की मगरी के ऊपर बैठिये। बीच घर में आपके लिए थाली में भोग रखा है। मृतक आत्मा कहती है कि अब मैं क्या बैठूँ बेटा और क्या भोजन करूँ? मेरे लिये बहू भी रूठ गई है। अब मैं क्या करूँ? अर्थात् जब मैं जीवित था, तब तो बेटे-बहू ने मेरी सेवा नहीं की। अब आकर क्या करूँगा?

*डुबली खूटूबा आथाटेन ऊखू केन जा आबा*
*चुरूटेन भी डा डो भानी टेन भी जोम डो*
*सेने डो बाईआमा खूंजकोर केन डा बारेन ईडिये*
*भानी टेन भी जोम डो चुरूटेन भी डाडी*
*सेने डो बाई आमा खूंजकोर केन आटा बारेन ईडिये*
*खुला एन टेन हिगरायन बाना एन टेन हिगरायन*
*सेने डो बाई आमा खूंजकोर केन आटा बारेन ईडिये*

सास-बहू से कह रही है कि गोल-गोल पत्थर में जो छुपा हुआ है, वह सम्मानित वयोवृद्ध परिजन है। उनके लिए तुम कलश में जल और थाली में दलिया (थुली) लेकर जाओ। वह तुम्हारे ससुर हैं। बहू कहती है कि वहाँ शेर का डर लगता है। वहाँ जाने पर

रीछ का भय लगता है। इसलिए भोग (भोजन) पहुँचाना कठिन है। सास कहती है कि उन पत्थरों में कहीं तुम्हारे ससुर (सोये हुए) हैं। उन्हें भोजन पहुँचाओ।

*इयानी सिरभाव जेमा डो सागे*
*इयानी सिरभाव कोन किमीन सागे*
*इयानी सिरभाव कोनजई जामाय सागे*
*इयानी सिरभाव घाडा डेघा सागे*
*घाडा डेघा भागायन डो जेमा डो सागे*
*इयानी सिरभाव घाडा डोंगरीन सागे*
*घाडा डोंगरान भागायन डो जेमा डो सागे*
*इयानी सिरभाव भसोड़ कू डुबली सागे*
*भसोड़ कू डुबली भागायन डो जेमा डो सागे*
*इयानी सिरभाव नाड़ा टिकी सागे*
*नाड़ा टिकी भागायेन डो जेमा डो सागे*
*इयानी सिरभाव केकड़ा कू डोडान सागे*
*इयानी सिरभाव जेमा डो सागे*

मृतक आत्मा परिजनों से कहती है कि मेरा उद्धार कौन करेगा? बताओ मेरा श्राद्ध कौन करेगा? मेरे बेटे-बहू या लड़की-जवांई। कौन मेरे नाम का पत्थर लायेंगे? क्या मेरे नाम का पत्थर रूठ गया है? क्या मेरे उद्धार के लिए जंगल में पत्थर नहीं है? क्या जंगल के पत्थर रूठ गए हैं? जाओ, मेरे उद्धार के लिए बसोड़ के हाथ की बनी टोकरी लाओ। जाओ, मेरे श्राद्ध के लिए नाड़ा और टीकी लाओ। जाओ, मेरे श्राद्ध के लिए केकड़े लाओ, मेरे श्राद्ध के लिए दोंगला लाओ और मेरे नाम का चबूतरा बना दो।

टीप : सिडोली कार्यक्रम में यह अन्तिम गीत माना जाता है। इस गीत को फूलनाबूर भी कहा जाता है।

*नया घघरू डो माय नाया सुमारी*
*कौना जा खाधा लिजेटेन जूली डोने*
*आफूज डोने आम सेनेवा*
*किमीन जा खाधा लिजेटेन जूली डोने*
*आफूज डोने आम सेनेवा*
*कुलारा जा खाधा लिजेटेन जूली डोने*
*आफूज डोने आम सेनेवा*
*कुटूम्बा जा खाधा लिजेटेन जूली डोने*
*आफूज डोने आम सेनेवा*

मृतक से कहा जा रहा है कि आपके लिए नया घर बनाया जा रहा है। आज हम आपको याद कर रहे हैं। आप अपने बेटे के कंधे के ऊपर झूलते लहलहाते जा रहे हो। अब अपनी बहू और परिजनों के कंधों पर झूलते हुए जा रहे हो।

टीप : कोरकू जनजाति में व्यक्ति के अन्तिम संस्कार के तीन चरण हो सकते हैं। कोई-कोई व्यक्ति दूसरे चरण में मंड अर्थात् चबूतरा जिसे समाधि कहा जा सकता है- बनाता है। मृतक की याद में एक स्थान पर एक पत्थर और लकड़ी का एक स्तम्भ जिस पर चाँद-सूरज खुदे होते हैं, स्थापित किया जाता है। इस स्थान को कहीं-कहीं देवखला भी कहा जाता है। जब मंड स्थापित किया जाता है] तो उस स्थान तक परिजन नाचते-गाते जाते हैं।

*ढोटको उटू बबा जोम*
*डे जुड़ी म बकी मडी*

चावल की रोटी और गिलकी की सब्जी इन दोनों की जोड़ी बहुत अच्छी है। इन दोनों की सब्जी-रोटी लेकर लोग इस सिडोली में जा रहे हैं। कार्यक्रम आगे बढ़ रहा है।

*कुतली चूरगी मोरई जपय*
*कुतली चूरगी मोरई जपय हुई*
*डिजकेन को सासावा*

एक स्त्री बहुत सुन्दर आभूषण और चोली पहने हुए थी। वह मोरई (मयूर की तरह) रूपी थी। एक आदमी ने उसके साथ (दैहिक) सम्बन्ध बना लिए।

*सेले सुवान सोये लोके हुई*
*निला मिरचा बगीया चरय हुई*

घर के भीतर गीत और नृत्य चल रहा है। कोई बैठा है, कोई नाच रहा है। हरी मिर्च किसी को खिला दी है। वह चिल्ला रहा है!

*बदली टलन गदलीकेन हुई*
*लाबा जोबेन लचकेन हुई*

फसलों के बीच में युवतियाँ नाच रही हैं। वे गूलर के लाल-लाल फल खा रही हैं। जैसे फसल लहराती लचकती है, वैसे वे भी लहरा रही हैं।

*टेन अबो डिन को डान,*
*टेन अबो डिन को डान*
*टियां दिना टेनहैई को बान*
*टाड़ई पोयरा इनी को मोको*

सिडोली के त्योहार में ऐसा लगता है कि आज का दिन आखिरी दिन हो। जैसे इसके बाद त्योहार का कोई अवसर ही नहीं आएगा। इस मौके पर इसलिए लोग धूमधाम से नाचते गाते हैं।

*भोला-भोला को बात बनायो*
*ओर समदी कोये रोजेना आयो*
*गल्ला नापियो पाइ से नापियो खोटी में रखियो*
*पैसा गिनाया ताली में गिनायो पेटी में रखियो*
*भोला-भोला को बात बनायो भोला को सगाई जुड़ायो*
*ओ समदी कोये रासेना आयो*

एक आदमी बहुत सीधा-सादा था, किन्तु उसकी औरत झूठ बोलती थी। उसने भोले-भाले पति को बातों में बहला-फुसला लिया। वह उस भोले-भाले पति को रोज शराब पिलाती थी और फिर उसके घर समधी रोज आता था। वह पाई से कोठी में रखा अनाज नाप देती। ताले और पेटी में रखे पैसे गिन देती। वह उस भोले-भाले पति को खूब मूर्ख बनाती थी। उसके घर पुत्र या पुत्री का ससुर अर्थात् समधी रोज आता था।

*कुटकी जोम सकप-सकप*
*साना बाम्बू लकप-लकप*

कुटकी खाने में बहुत अच्छी लगती है। आदमी उसे मजे से हिलते-डुलते खाता है। पर वह भी डोकरे के कंठ में अटक गई और वह पानी-पानी चिल्ला पड़ा।

*अफई उफून मोनई तुरीया*
*लिजा टियानेन इनी को टड़ईया*
*पोलको टियायेन इनी को टड़ईया*
*बिगड़ी फड़ीयेन इनी को टड़ईया*
*जाम लज्जेन इनी को टड़ई*

तीन-चार-पाँच-छः साड़ियाँ फट गयीं। पोलके फट गये। चूड़ियाँ टूट गईं। इन सब चीजों को खरीदने के लिए वह रोने लगी। इन्हें खरीदने के लिए वह बाजार जाती है।

*इनी को दिन, झगड़ा वा*
*इनी को दिन, मपा वा*
*इनी को दिन, निपिड़ वा*
*इनी को दिन, टपन वा*

आज के दिन खूब झगड़ा होता है (क्योंकि आज ही पुराना हिसाब-किताब चुकाया जाता है)। आज ही के दिन सभी लोग मिलते हैं। आज ही के दिन लड़ाई-झगड़े मार-पीट होती है। आज ही के दिन प्रणय शुरू होता है। आज ही के दिन लड़के-लड़की भाग जाते हैं। आज ही के दिन लड़के अपने बाप को लड़की के घर भेजते हैं (रिश्ता तय करने के लिए)। आज ही के दिन भीड़-भाड़ बढ़ जाती है।

सिडोली के अवसर पर गाये जाने वाले गीत उद्याम काम आवेगों से भरे होते हैं। इन गीतों में कोरकुओं के रतिज अनुभव और नैसर्गिक ज्ञान की जानकारी बिखरी होती है। एक गीत में अपने प्रथम अनुभव के विषय में व्यक्ति बता रहा है-

*माका काचा गाठा*
*टड्या गांडी राटालाल हुई हुई*
*लोई-लोई कू गडगडाटेन लोईकू पड़े*
*टड्या गांडी लोईकू हुई हुई ..*

मक्का के भुट्टों से कच्ची थुली बनी है। युवती की योनी लाल-लाल हो चुकी है। जैसे नदी में मछलियाँ हो।

अपने प्रथम काम अनुभव की कठिनाई को अभिव्यक्त करते हुए कोरकू युवा कहता है कि -

*लोढ़-लोढ़ लोइकू*
*टड्या गांडी बोडा पड़ई हुई हुई*

जैसे नदी में मछली चढ़ती है, वैसे युवती की योनि में लिंग प्रवेश करता है। आशय यह कि मछली हमेशा धारा के विपरीत तैरती है जो कि बहुत कठिन होता है। प्रथम मैथुन भी इतना ही कठिन होता है।

जनजातीय जीवन में काम व्यवहार और भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाले इन सैकड़ों गीतों में सिडोली अनुष्ठान सम्पन्न होता है। इस प्रकार कोरकू जनजाति में संस्कारों सम्बन्धी तीन प्रकार के जन्म, मरण और वरण के गीत प्रमुखता से उनकी वाचिकता में उपलब्ध हैं। कोरकू जनजाति इस दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं।

उपर्युक्त तीनों संस्कारों के गीतों के विश्लेषण से कुछ बातें उभर कर सामने आती हैं। मसलन कोरकू जनजाति में लड़के और लड़कियों में कोई भेद नहीं था। पुत्री का जन्म भी उनमें हर्ष का विषय था। काल के प्रवाह में यह खुशी घटती गई, किन्तु वधू मूल्य प्रथा के कारण स्त्रियों की स्थिति अन्य समाजों की तुलना में अच्छी रही है। विवाह की प्रथाओं से यह भी पता चलता है कि कोरकू जनजाति में कभी बहुपति प्रथा भी रही होगी। मृत्यु गीतों में कोरकू जनजाति विशिष्ट रूप में सामने आती है। वह मृतक के प्रति गहरी जिज्ञासा से भरी रहती है। मृत्यु का दु:ख और भीतर तक समाया भय उसे उद्दाम काम भावना के गीतों के रूप में त्राण प्रदान करता है। इस जनजाति में काम गीत अपने यथार्थ अनुभवों और काम जिज्ञासा को सरल और निश्छल रूप में कहते हैं। इनकी विषयवस्तु और तादाद विस्तृत है जो पृथक से अध्ययन की आवश्यकता बताते हैं। यहाँ तो केवल बानगी दी जा सकी है।

# बैगाओं में मृत्यु संस्कार

डॉ. विजय चौरसिया

बैगा जनजाति के लोगों की त्वचा का रंग प्रायः गहरे काले से लेकर हल्का बादामी तक होता है। इनकी नाक चौड़ी तथा ओंठ मोटे एवं आँख औसतन कम गोल और काली होती है। बैगा पुरुष या महिलायें अपने बाल जीवन में एक ही बार जन्म के समय कटवाते हैं। बैगा पुरुष के बालों के जूड़े को बैगा झालर कहते हैं। जन्म से मृत्यु तक वे अपने बाल कभी नहीं कटवाते। इनके बाल लम्बे गहरे काले तथा घुँघराले होते हैं। ये बालों को जूड़े के रूप में बांधते हैं। सजे सँवरे बैगा युवक के बालों के जूड़े को देखकर कौए की आकृति उभरती है। महिलाओं के बाल गहरे काले और औसतन लम्बे होते हैं। महिलायें कभी भी अपने बालों में साबुन का प्रयोग नहीं करतीं। बैगा युवक-युवतियों की ऊँचाई मध्यम होती है। कमर क्षीण तथा ऊपर का हिस्सा चौड़ा एवं जाँघें तथा टांगे मजबूत होती हैं।

बैगा छोटा नागपुर की आदिम जनजाति भूईयाँ की मध्यप्रदेशीय शाखा है, जिसे भूमिया बैगा कहा जाने लगा। सर्वप्रथम बैगाओं ने ही छोटा नागपुर से छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया। वर्तमान में यह जनजाति मंडला, डिंडोरी, शहडोल, अनूपपुर, उमरिया, राजनांदगाँव, बिलासपुर, कवर्धा, सिवनी, छिंदवाड़ा एवं बालाघाट के दुर्गम वनों में निवास करती है। डिंडोरी एवं बिलासपुर जिले के बीच का भाग बैगा चक  कहलाता है।

बैगा जनजाति के लोग सदियों से वैद्य का कार्य करते आ रहे हैं। ये अभी भी इन जड़ी-बूटियों और तंत्र-मंत्र से अपना उपचार करते हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति पर उन्हें जरा भी विश्वास नहीं है। वे अपने उपचार के लिए आज भी डॉक्टर या किसी बाहरी व्यक्ति की सहायता नहीं लेते। बैगा जनजाति के लोग अपने वन परिसर में पाई जाने वाली जड़ी-बूटियों से जीवन भर चिकित्सा करते हैं, और लम्बी उमर तक जीवित रहते हैं।

बैगा जनजाति में किसी की मृत्यु हो जाने पर शव को दफनाने और जलाने दोनों प्रथाएँ प्रचलित हैं। फिर भी दफनाने की प्रथा प्राय: अपनायी जाती है। अधिक दिनों तक बीमार व्यक्ति की मृत्यु होने पर शव को जलाया जाता है। संक्रामक बीमारियों जैसे- हैजा, चेचक आदि से मरे व्यक्ति को ये लोग दफनाते हैं। बैगाओं का श्मशान घाट नदी या नाले के पार होता है। इनका विश्वास है कि भटकी आत्मा नदी को पार करके गाँव में नहीं आ सकती। मरने वाले की अंतिम साँस के समय आत्म तृप्ति के लिए सोने या चाँदी के रूपये के ऊपर दही रखकर उसके मुँह में रखते हैं। ऐसा इसलिये करते हैं कि अगले जन्म में वह व्यक्ति धन-धान्य से परिपूर्ण होगा। इसे सामरा प्रथा कहते हैं।

किसी भी घर में मृत्यु होने पर घर का मुखिया या अन्य कोई 'अमुक भाई बीत गईस जोश दईन' की सूचना पास पड़ोस तथा अन्य रिश्तेदारों में देता है। थोड़ी ही देर में पूरी बस्ती के लोग एकत्र हो जाते हैं। महिलायें उस व्यक्ति का नाम तथा अच्छाइयों का गुणगान करते हुए रोना शुरू कर देती हैं। मरते समय व्यक्ति को जमीन पर नहीं उतारते। बैगा शव को स्नान नहीं करवाते। शव के शरीर में तेल और हल्दी लगाई जाती है। सफेद कपड़े की नई लंगोटी पहनाई जाती है। पाँच या छह हाथ कोरा कपड़ा कफन के लिए लाते हैं। हल्दी पीसकर कफन पर छिड़कते हैं। कफन ओढ़ाने के बाद शव को खटिया से नीचे जमीन पर उतारते हैं, नीचे एक पुराना कपड़ा बिछाते हैं। खटिया को आँगन में निकालकर दरवाजे के सामने उल्टी करके बिछा देते हैं। शव को घर से बाहर निकालकर खटिया पर सुला दिया जाता है। मृतक के पैर घर की तरफ रखे जाते हैं। खटिया न होने पर बाँस की टिकरी (सीढ़ी) बनाई जाती है। मृतक के सिरहाने धनुष-बाण, कुल्हाड़ी, चिलम, बीड़ी आदि रखते हैं।

एक छोटे कपड़े में हल्दी की गाँठ, चावल और सामरा का रूपया भी रखते हैं। एक आदमी एक हाँडी में मड़िया, कुटकी एवं रमतिला के दाने, तेल और नमक रखता है। दूसरा आदमी एक कंडे में आग तथा एक पूला छिर्रा घास रखता है। एक दोना में पेज तथा बासा भात रखा जाता है। शव का सम्पूर्ण श्रृँगार होने पर श्मशान घाट की यात्रा शुरू होती है। यदि शव को जलाया जाना है तो लकड़ी की चिता बनाई जाती है। चिता की लकड़ी मरघट में एकत्र लोग इकट्ठा करते हैं। शव को लेकर चिता की तीन बार परिक्रमा करते हैं। शव को उत्तर की ओर पैर करके चिता पर लिटा दिया जाता है। शव से कफन और अन्य कपड़े खींच लिए जाते हैं। शव को चिता पर औंधा लिटाया जाता है। शव के ऊपर और लकड़ियाँ जमा दी जाती हैं। दाग पुत्र, पति या भाई देता है। परिवार का कोई नहीं होने पर पंच अग्नि देते हैं। शव में आग लगाने के पहले दाग देने वाला कफन चीरकर रख लेता है। मृतक के सिरहाने रखा सामान व हंडिया को एक वृक्ष के नीचे रख दिया जाता है। सामरा का रूपया चिता में डाल दिया जाता है।

बैगा दफनाने की क्रिया को मिट्टी देना कहते हैं। मरघट पहुँचने के बाद शव के लिए एक खंता (गड्ढा) खोदा जाता है। खंता पाँच-साढ़े पाँच फुट लम्बा और ढाई फुट चौड़ा होता है। खंता में सबसे पहले हल्दी-चावल डाला जाता है। इसके बाद महुआ की शराब छिड़कते हैं, शव के ऊपर से कफन व अन्य कपड़े निकाल लिए जाते हैं। घर का मुखिया या मृतक का पुत्र तीन मुट्ठी मिट्टी सिर से लेकर पैर तक डालता है। शव यात्रा में आए सभी लोग मुट्ठी से मिट्टी शव के ऊपर डालते हैं। इसके बाद खंता को मिट्टी से पूर देते हैं। मृतक के साथ रखी सारी सामग्री दफनाए गए शव के ऊपर रख देते हैं।

अग्नि संस्कार या मिट्टी संस्कार हो जाने के बाद सभी लोग नदी या नाले में स्नान के लिए जाते हैं। घर का मुखिया या मृतक का पुत्र साथ लाए कफन को गीला करके टपकाते चलता है। सभी लोग उसके पीछे कतारबद्ध होकर चलते हैं। कभी-कभी ज्यादा लोग होने के कारण कतार बहुत लम्बी हो जाती है, इस समय एक क्रिया की जाती है। एक सिक्का हाथ में लेकर पहला आदमी उस पर थूँककर अपने पीछे वाले को देता है। फिर यही क्रिया पीछे वाला करता है। अंतिम व्यक्ति उक्त सिक्के को पीछे की ओर फेंक देता है। यह प्रक्रिया घर पहुँचने तक पूर्ण हो जाती है। इनका मानना है कि इससे भूत-प्रेत गाँव में प्रवेश नहीं कर पाता।

मृतक के घर में एकत्र महिलाएँ मृतक को श्मशान घाट ले जाने के तुरंत बाद नदी या नाले पर स्नान के लिए चली जाती हैं। इस स्थान पर यदि मृतक पुरुष है, तो उसकी विधवा पत्नी अपनी चूड़ियों को उतारकर नदी में बहा देती है। विधवा चाहे तो क्रिया कर्म तक चूड़ियाँ पहन सकती है। पुरुषों के आने के पहले सभी बैगा महिलाएँ मृतक के घर पहुँच जाती हैं। आँगन में एक तुम्बी

में पानी भर कर रख दिया जाता है। इस तुम्बी का पानी लेकर सभी अपने हाथ धोती हैं और हाथों में तेल-हल्दी लगाती हैं। इसके बाद सभी अपने-अपने घर लौट जाती हैं।

पुरुषों के घर पहुँचने से पहले मृतक के रिश्तेदार आँवला की पत्ती और उसी की दातौन तोड़कर लाते हैं। उसे लाकर मृतक की विधवा को देते हैं। तुम्बी के पास आकर सभी हाथ-पैर धोते हैं। घर का मुखिया उसी तुम्बी के पानी से जमीन पर एक सीधी रेखा बनाता है। सभी लोग उसी रेखा के किनारे कतारबद्ध होकर घर की तरफ मुँह करके बैठ जाते हैं। इस रेखा को मरघट से लौटा कोई आदमी नहीं लाँघता। केवल घर के सदस्य और समधी घर में प्रवेश कर सकते हैं। नेतगार हल्दी-तेल मिलाकर सभी लोगों को देता है। सभी लोग हल्दी-तेल को हाथ-पैर में लगाते हैं। हल्दी-तेल लगाने के बाद नेतगार एक बोतल मद (महुआ की शराब) सभी में बाँटता है। उक्त शराब को सभी लोग हाथ पैर में लगाते हैं। शेष बची शराब नेतगार समधी के साथ आपस में बैठकर पीते हैं। चौंगी (बिड़ी) और तम्बाखू पी-खाकर सभी लोग अपने-अपने घर चले जाते हैं। कफन गीला करके लौटा पुत्र या घर का मुखिया सीधे घर में प्रवेश करता है।

मृतक के घर में भोजन की व्यवस्था मृतक के रिश्तेदार या गाँव के लोग करते हैं। प्रत्येक घर से सामर्थ्य अनुसार पेज, भात, रोटी बनाकर मृतक के घर लाया जाता है। तीन दिन बाद घर के मुखिया के साथ दो पुरुष और एक महिला को भोजन कराया जाता है। इसके बाद घर के अन्य लोग भोजन करते हैं। भोजन करने के पहले और बाद में दौरी में सबके हाथ धुलाए जाते हैं। यह कार्य नेतगार करता है। तीन दिन तक मृतक के परिवार में सूतक होता है। तीसरे दिन पूरे घर को लीपा-पोता जाता है। इस दिन मृतक के रिश्तेदार हल्दी और एक बोतल शराब लेकर मृतक के घर जाते हैं। यहीं सबका भोजन होता है।

तीन दिनों तक जिस स्थान पर मृतक ने अंतिम श्वास ली थी, उस जगह पर दाल-भात छिटककर भोजन कराया जाता है। तीसरे दिन श्मशान घाट में जाकर मृतक भोजन कराया जाता है। भोजन में मछली, केंकड़ा, एक बोतल मद (महुआ की शराब) के साथ मृत आत्मा को होमन दिया जाता है। होमन सरई वृक्ष की रार से दिया जाता है। मछली, केंकड़ा मृतक के अंतिम संस्कार वाले स्थान पर रख दिया जाता है। महुआ की मद (महुआ की शराब) से तर्पण करते हैं। शेष बची मद वहीं पर पंच लोग पी जाते हैं। घर आकर गाँव के सभी लोग मिलकर मद पीते हैं।

बैगाओं में नहावन (क्रिया कर्म) सामर्थ्यानुसार किया जाता है। नेतगार और गाँव के सयाने पहले सलाह करते हैं। इसे पंद्रह दिन, छः माह या एक वर्ष में कभी-भी संस्कार किया जाता है। घर का मुखिया यथास्थिति पंचों के आगे कबूल करता है और पंच लोग तिथि तय करते हैं। इसी माँदी (पंचों की बैठक) में मुकद्दम घर के मुखिया को यह सलाह देता है कि नहावन (क्रिया कर्म) संस्कार के लिए एक बोरा महुआ खरीदो। पंचों की आज्ञा मानकर घर मालिक यह व्यवस्था करता है। टोला भर में दो-दो, चार-चार किलो महुआ बाँट दिया जाता है, जिससे मद (महुआ की शराब) बनाई जाती है। गाँव के युवाओं को पतरी बनाने के लिए कहा जाता है। जंगल से महलोन के पत्ते तोड़कर लाने और उससे पत्तल बनाने की क्रिया को पतरी खिलना कहते हैं। इसके लिए हर कोई सहायता करता है।

मृतक के नहावन (क्रिया कर्म) संस्कार में किसी भी प्रकार के गीत नहीं गाये जाते हैं। लेकिन इस अवसर पर नगाड़ा बजाना अनिवार्य है। पंचों की इसी बैठक में नगाड़ा वाले को भी आमंत्रित किया जाता है। नगाड़े वाला गाँव में प्रवेश करते ही नगाड़ा बजाने लगता है। नगाड़े के बजते ही लोग समझ जाते हैं कि गाँव में कहीं न कहीं नहावन (क्रिया कर्म) संस्कार होने जा रहा है। बैगा जनजाति में नहावन संस्कार तीन प्रकार से किया जाता है- मादी नहावन, मैली नहावन और उजरी नहावन।

मादी नहावन संस्कार में सभी गाँव वालों और नाते-रिश्तेदारों को न्यौता दिया जाता है। संस्कार के दिन प्रातःकाल घर की राख, कचरा और बर्तनों में रखे पानी को निकालकर गाँव के बाहर फेंक दिया जाता है। घर के चारों कोने लीपे-पोते जाते हैं। घर मालिक दो बोतल मद (महुआ की शराब) निकालता है। कुछ मद में हल्दी-तेल मिलाकर घर में छींट दिया जाता है। इससे घर पवित्र हो जाता है। शेष मद घर के सयाने आँगन में बैठकर पीते हैं। नगाड़ा बजता रहता है। इसके बाद घर का लड़का आठ बोतल मद निकालता है। दो बोतल मद सयानिन और घर की औरतों को दी जाती है। जो नदी पर स्नान के लिए जाती हैं। पुरुष मद की बोतल एक मुर्गी और चावल लेकर श्मशान भूमि में जाते हैं। श्मशान में जाकर चिता या कब्र के आस-पास सभी लोग बैठ

जाते हैं। चिता या कब्र के चारों कोने पर चार पत्थर रख दिए जाते हैं। राख एकत्र कर सभी लोग अपनी-अपनी मद से तर्पण करते हैं। नगाड़ा बजता रहता है। नगाड़ा वादक को गाँव वाले नेग देते हैं। कब्र हुई तो मद को मिट्टी में सींचते हैं। जिस स्थान पर मृतक का अंतिम संस्कार होता है। उस स्थान के आस-पास कुछ चावल के दाने फैला देते हैं और उसे मुर्गी को चुगाते हैं। अगर मुर्गी दाने चुग ले तो समझिए तर्पण लग गया । इसके बाद सभी लोग थोड़ा-थोड़ा-सा चावल हाथ में ले लेते हैं और मद पीना शुरू कर देते हैं। ऐसा मृतक की आत्मा की तृप्ति के लिए करते हैं।

मरघट से सभी लोग नदी आते हैं। आँवला की शाखाओं से दातून करते हैं, घाट पर मृतक का लड़का और उसके परिवार के लोग दाढ़ी और मूँछ मुंडवाते हैं। सिर के बाल सामने की ओर मुंडवाते है, पूरे बाल नहीं मुंडवाते। चिता की राख को नदी में प्रवाहित कर देते हैं। सबसे बड़ा लड़का या घर का मुखिया नहाता है, इसके बाद सभी लोग नहाते हैं। नहाने के बाद बची हुई मद का दौर घाट पर ही चलता है। घर लौटते समय सिक्के में थूँककर पीछे की तरफ बिना देखे फेंकते हैं। घर पहुँचकर तुम्बी के पानी से हाथ-पैर धोते हैं। घर मालिक चार बोतल मद निकालता है। उसे उठयार-सठियार मद कहते हैं। सयानों के लिए चार बोतल मद अलग से दी जाती है। इसके बाद सभी गाँव वाले छककर मद पीते हैं। घर की महिलाएँ भी स्नान करने जाती हैं। वहाँ पर विधवा को गुंदला के वृक्ष की दातौन करने को दी जाती है। दातौन करने के बाद महलाइन के पत्तों में हल्दी और चावल रखकर उसे दिया जाता है। पत्तों में छिन्द की बनी एक मुंदरी (अंगूठी) रखी रहती है। पत्ते के पास ही विधवा बैठती है और गाँव की अन्य महिलाएँ उस पर पानी के थपेड़े मारती हैं। पानी के थपेड़े में कोई जीव-जन्तु आ गया तो समझ लो मृतक को स्त्री से अत्याधिक प्यार था। पत्तों को वहीं पानी में विसर्जित कर दिया जाता है। इसका अर्थ है- मृतक से विधवा का अब कोई सम्बन्ध नहीं है।

सभी लोग मृतक के घर वापस आ जाते हैं। घर में खाना बनता है। खाना बन जाने के बाद महलोन के दोना में भात, मद और पानी रखकर गाँव के बाहर जाकर मृतक को अंतिम भोज दिया जाता है। वहाँ से लौटने पर नेतगारि मद लेकर घर के अंदर जाते हैं। मृतक का लड़का भी पंचों को अपनी बोतल से मद देता है। सभी पंच दौरी में हाथ धोते हैं और एक-एक कौर लड़के को खिलाते हैं। इसके बाद सभी लोग मृत्यु भोज करते हैं। इसे मैली मांदी कहते हैं।

उजरी मांदी में प्रायः प्रत्येक घर से एक-एक कूड़ा अनाज तथा एक-एक बोतल मद लिया जाता है। यह मदद गाँव द्वारा सामूहिक रूप से होती है। इसे अलग रखा जाता है। इसे थनवई रखता है। मेहमानी के रूप में आया हुआ अनाज घर मालिक को लौटाना नहीं पड़ता। परंतु सहायता के रूप में लिए हुए अनाज को घर मालिक को लौटाना पड़ता है। इसका हिसाब अलग से रखा जाता है। यदि मृतक पुरुष है तो उसकी विधवा को देवर के नाम की तरकी पहनाते हैं। जेवर और नए गहने पहनाते हैं। घर के सदस्य भी नए कपड़े और गहने पहनाते हैं। पहनने के बाद विधवा व परिवार के अन्य लोग घर से बाहर निकलते हैं। सबके पैर पड़ते हैं। पंच आशीर्वाद देते हैं। नगाड़ा बजता रहता है। इसी अवसर पर नगाड़ा वादक को पाँच-छः कुड़ा धान नेग में दिया जाता है तथा तय की हुई नकद राशि भी दी जाती है। आजकल नगाड़े को पाँच सौ से एक हजार रुपये तक देना पड़ता है। नगाड़े की थाप और थाली की टनकार के साथ सभी बैगा-बैगिन नाचते हैं। रात्रि में भोजन करके सभी लोग अपने-अपने घर वापस लौट जाते हैं। घर का मुखिया बहन और बहनोई को अपने घर लौटते समय गाय, बछिया,कपड़े आदि मृतक के नाम से दान-पुण्य में देते हैं। इस अवसर पहुनाई में आई मद को घर के सभी सदस्य मिलकर पीते हैं।

नवजात शिशु के मरने पर उसे घर में ही गाड़ दिया जाता है। उसके कब्र के ऊपर दो माह तक अग्नि जलाते हैं। बैगा समाज में धर्म के प्रति कोई स्पष्ट धारणा नहीं है। बैगा किस धर्म को मानते हैं। इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बैगा आस्तिक जरूर हैं, वे ईश्वर के बारे में कुछ नहीं जानते। नागा उनका आदिम पुरुष है। दैवीय शक्तियों में आस्था रखते हैं। बैगाओं के कोई धार्मिक सिद्धांत नहीं हैं। लेकिन स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म को मानते हैं। इसलिए सन् 1931 की जनगणना में बैगाओं को एनिमिस्ट लिखा गया था और 1941 की जनगणना में बैगाओं ने अपने को हिन्दू घोषित किया। बैगा एक आदिम समूह है, आदिमपन ही उनका धर्म है। बैगाओं में कई लोक विश्वास हैं। ये लोक विश्वास बैगाओं को नियमों से बाँधते हैं। और एक निश्चित चरित्र देते हैं।

# जनजातियों में मृत्यु संस्कार

डॉ. निशा जैन

संस्कार मानव जीवन के ऐसे प्रतिमान हैं, जिनसे मानव समुदाय की समस्त सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियाँ स्पष्ट होती हैं। मानव जीवन के ये आवश्यक प्रतिमान समाज और समुदाय में अपनी स्थितियों व धारणाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। ये संस्कार व्यक्ति के इहलोक तथा परलोक सुधारने के तथा धार्मिक विश्वास के प्रतीक हैं। जन्म से मृत्युपर्यन्त व्यक्ति धर्म से प्रभावित व आकर्षित रहता है तथा धर्म का प्रत्यक्ष सम्बन्ध परिशुद्धता या पवित्रता से माना जाता है। डॉ. राजबली पाण्डे ने लिखा है कि- 'संस्कार का आशय शुद्धी की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक परिष्कार के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों से है, जिसमें वह (व्यक्ति) समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके।

संस्कार एक धार्मिक कृत्य है, जो विधि-विधानों द्वारा संपन्न किया जाता है। संस्कारों के माध्यम से शुद्धी की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों से है। व्यक्ति के जीवन में प्रत्येक विशेष अवसर को संस्कार से जोड़कर कुछ विशिष्ट कार्य विधि को महत्त्व दिया जाता है। मनुस्मृति तथा गृह्य सूत्रों में प्रमुख दस संस्कारों को मान्यता दी गई है। इन्हीं को सम्पन्न करना पर्याप्त माना गया है। जन्म के पूर्व तीन संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। अन्त्येष्टि संस्कार मृत्युपरांत व्यक्ति के स्वजनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य मृतक व्यक्ति की आत्मा को शांति प्रदान करके उसका परलोक सुधारने का है।

लोक समाजों की तरह जनजातियों में भी संस्कारों का बहुत महत्त्व है। भारत में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। जनजातियों की अपनी भिन्न परम्पराएँ, मान्यतायें, संस्कार एवं जीवन पद्धति होती है। इसी दृष्टि से जनजातीय समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं का उल्लेख किया जाता है।

**गोण्ड** – गोण्ड जनजाति मध्यप्रदेश की ही नहीं, बल्कि भारत की सबसे बड़ी जनजाति है। गोण्ड समाज अपने रीति-रिवाज एवं परम्पराओं से बँधा हुआ है । इस तरह गोंड समाज जन्म से लेकर मृत्यु तक कई परम्पराओं एवं संस्कारों का निर्वहन करता है। गोण्ड पुनर्जन्म को स्पष्ट रूप से नहीं मानते। मरने के बाद अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा, इस बात पर गोण्ड कभी विश्वास नहीं करते। इसीलिये स्वर्ग एवं नर्क की अवधारणायें भी गोण्डों में बहुत क्षीण हैं। गोण्ड जनजाति उन आत्माओं को देव-पितरों में नहीं मिलाती, जिनकी मृत्यु किसी दुर्घटना में होती है। जहाँ तक मृत्यु संस्कार की बात है तो गोण्ड समाज में अग्नि दाह एवं दफनानें की प्रथा है। स्वाभाविक मौत से मरे व्यक्ति का अग्निदाह किया जाता है और प्लैग, हैजा, सर्पदंश आदि के प्रभाव से होने वाली मृत्यु से मृतक को दफनाते हैं। छोटे बच्चों को भी दफनाया जाता है। मृतक का दाह संस्कार करने के बाद मृतक की पत्नी आगे-आगे चलती है। पीछे कतारबद्ध अन्य महिलायें चलती हैं। जलाशय के तट पर मृतक की पत्नी की चूड़ियाँ फोड़ी जाती हैं। सबसे पहले वही स्नान करती है। तत्पश्चात् अन्य लोग स्नान करके घर लौटते हैं। अग्नि देने वाला व्यक्ति तीन दिन तक अछूत माना जाता है। तीन दिन खारी उठने के बाद वह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। मृतक की बिनी हुई हड्डियों की पोटली को किसी पेड़ पर लटका दिया जाता है। मृत्यु संस्कार में दशमानी या दशामन की प्रथा गोण्डों की महत्त्वपूर्ण क्रिया कर्म है। इस दिन महिलाएँ घर लीप-पोत कर शुद्ध करती हैं। आँगन में मंडल बनाते हैं। मंडल में रात-रात भर नाच-गाना होता है। गोत्र एवं परिवार के लोग सिर, दाढ़ी एवं मूँछ मुड़वाते हैं। इसके बाद पुरुष एवं महिलाएँ नदी के घाट पर स्नान करने जाते हैं । दशामन में गंगा पूजा, पत्र बँधी और मृतक भोज अवश्य होता है। भोजन के बाद रातभर गाना-बजाना और नृत्य चलता है। दशामन में विधवा स्त्री के देवर के नाम से चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं। नियम के अनुसार देवर का प्रथम अधिकार भाभी पर होता है। यदि सगा देवर नहीं है तो पंच लोग किसी अन्य व्यक्ति के नाम से चूड़ी पहना देते हैं। नाम की चूड़ी पहनने के बाद उस पुरुष की पत्नी बनकर रहना या न रहना विधवा की इच्छा पर निर्भर करता है।

**भील** – भील जनजाति मध्यप्रदेश की गोण्ड जनजाति के बाद दूसरी सबसे बड़ी जनजाति है। भील जनजाति के अपने विशिष्ट रीति-रिवाज हैं, इस समाज में संस्कार औपचारिक मात्र नहीं हैं, बल्कि भीलों के जीवन की वास्तविकता के धरातल पर सही मायने में एक पद्धति एवं कला हैं। इस संस्कार पद्धति के अंतर्गत मृत्यु संस्कार सम्पन्न करने में भीलों में मृत शरीर को जलाने एवं दफनाने दोनों ही प्रथाओं का प्रचलन है, जिनकी मृत्यु बीमारी से होती है तथा जिनके कोई सगा-सम्बन्धी नहीं होता, उनके मृत शरीर को गाड़ा जाता है, जबकि शेष अन्य का दाह संस्कार किया जाता है। मृतक को उसके परिवार एवं रिश्तेदार श्मशान घाट पर ले जाते हैं, उसे स्नान कराकर नवीन वस्त्र धारण करवाया जाता है। तत्पश्चात् चिता पर दक्षिण की ओर पैर करके लिटाया जाता है। मृतक के मुँह में दारू की धार, राबड़ी व पानी देते हैं। तत्पश्चात् मृतक का पुत्र अथवा कोई सगा तीन या पाँच परिक्रमा कर अग्नि प्रज्ज्वलित करता है। दाह क्रिया के बाद सभी लोग किसी जलाशय में स्नान करके मृतक के घर लौट आते हैं। भीलों के तीसरे दिन दीया करते हैं, जिसमें सभी को भोजन कराते हैं। सम्पन्न लोगों में बारहवाँ करने की भी प्रथा है।

**भारिया**– अविभाजित मध्यप्रदेश और वर्तमान छत्तीसगढ़ का बस्तर आदिवासी बहुल जिला है। भारिया जनजाति संपूर्ण दक्षिण बस्तर के भू-भाग में फैली हुई है। भारिया समाज के व्यक्ति जन्म, विवाह व मृत्यु संस्कारों का आयोजन करते हैं। ये संस्कार उनकी निजी पहचान तथा अभिव्यक्ति होती हैं। इन्हीं के सहारे व्यक्ति सामान्य सामूहिक प्रक्रियाओं, अनुष्ठानों या रीति-रिवाजों व मान्यताओं की सीमा में आता है। भारिया जनजाति भी अपनी परम्परानुसार इन संस्कारों को करते हैं। भारिया समाज में सभी आयु वर्ग के मृतक संस्कार समान रूप से किये जाते हैं। सभी आयु वर्ग के शव को जलाने का रिवाज है। कुछ विशेष परिस्थितियों में शव को जलाने की जगह दफनाया जाता है। इसके अलावा गर्भवती स्त्री व गुनिया का दाह संस्कार नहीं किया जाता। शेष सभी तरह की मृत्यु में जलाया जाता है।

किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके घर के लोग सभी रिश्तेदारों को सूचना देते हैं। गाँव का महरा अपनी ढोल लेकर पहुँच जाता है। आस-पास के स्त्री-पुरुष भी पहुँच जाते हैं। शव को एक कमरे में जमीन पर पूर्व दिशा की ओर मुँह रखकर लिटा देते हैं और 'आना गुण्डा' को सूचना दी जाती है। मृतक के आस-पास कुछ लोग शव को उठाने के लिये तैयार रहते हैं। घर के बाहर बैठा महरा लगातार ढोल बजाता रहता है। मृत्यु के चौबीस घण्टे

बाद मृतक के रिश्तेदार मृतक के घर पहुँचते हैं। कभी-कभी तो शव दो या तीन दिन घर के भीतर रखा जाता है। इससे यह निश्चित किया जाता है कि सभी रिश्तेदार पहुँचे। रिश्तेदारों व आना गुण्डा के आने तक कोई तरीका नहीं है कि शव का दाह संस्कार किया जाये। मृतक व्यक्ति के रिश्तेदार नई या पुरानी साड़ी या कपड़े का एक टुकड़ा लेकर आते हैं, उसे शव के ऊपर चढ़ाते हैं। सभी रिश्तेदारों के आने के पश्चात् आना गुण्डा शव के दाहिने हाथ की चार उंगलियों में (अँगूठा छोड़कर) सूत लपेटता है। शव को बाँस के बनाये खारीनुमा घर पर लिटाकर घर से बाहर निकाला जाता है।

श्मशान घाट शव ले जाते समय महरा आगे ढोल बजाता हुआ चलता है, उसके बाद अर्थी फिर आना गुण्डा उसके पीछे पूरा समुदाय चलता है। शव जलाने के बाद नदी नाले में मुँह-हाथ धोते हैं, फिर घर आ जाते है। घर आने पर पुनः हाथ मुँह धोया जाता है, तेल लगाया जाता है। मृतक परिवार के तरफ से सभी को सल्फी वितरित की जाती है। व्यक्ति के मृत्यु की समय से लेकर उसे जलाकर आने के बीच गाँव की महिलाओं द्वारा चावल-दाल की कढ़ाही की जाती है, यह रिश्तेदारों के भोजन के काम आता है। उसी दिन या उसके दूसरे दिन सुबह सुअर और मुर्गियों की बलि दी जाती है, जिसका मांस भोजन के समय परोसा जाता है। दूसरे दिन सुबह आना गुण्डा श्मशान घाट पर परिवार के किसी सदस्य के साथ जाता है, वहाँ पर मुर्गी की बलि दी जाती है और एक अण्डा फोड़ता है साथ में सल्फी की कुछ बूंदे उस स्थान पर छोड़ता है। इस कार्य से मृतक की आत्मा संतुष्ट होती है और वह रूष्ट नहीं होती है।

**कुचबंदियाँ**- कुचबंदिया समाज एक घुमक्कड़ जाति है, जो अस्थायी रूप से निवास करते हैं। संस्कार तो समुदाय में आवश्यक ही माने जाते हैं। कुचबंदिया में बहुत कम संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। जो संस्कार हैं उसमें पुरुषों के समान स्त्रियों को भी महत्त्व दिया जाता है। कुचबंदिया समुदाय में जन्म की तरह मृत्यु भी भगवान का आशीर्वाद मानी जाती है। मृतक कुचबंदिया के शरीर को बाहरी जाति का व्यक्ति स्पर्श नहीं कर सकता और न ही अंतिम संस्कार कर सकता है। कुचबंदिया समुदाय में स्त्री व पुरुष की अन्त्येष्टि संस्कार में कोई भी अंतर नहीं होता है। मृतक व्यक्ति को श्मशान ले जाने से पूर्व दरवाजे पर सीधा लिटा दिया जाता है। उसके हाथों व पैरों में डोरी बाँध दी जाती है। इन लोगों में यह विश्वास है कि डोरी बाँधने से हाथ-पैर सीधे रहते हैं, अतः आगे की यात्रा में व्यक्ति की सुविधा रहती है। मृतक व्यक्ति के मुख में शराब डालने के बाद एकत्र व्यक्ति शराब पीते हैं। मृतक व्यक्ति को उसका सबसे बड़ा पुत्र या पुत्र के न होने की अवस्था में उसके निकट सम्बन्धी अन्य व्यक्तियों की सहायता से श्मशान ले जाते हैं। श्मशान ले जाते समय स्त्रियाँ भी साथ रहती हैं। खताबिया व भैंस गोत्र के अतिरिक्त सभी इस अंतिम संस्कार को जला कर करते हैं। उनका विश्वास है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा भटकती नहीं है। परंतु भैंस व खताबिया गोत्रों में अंतिम संस्कार दफना कर ही करते हैं, जिसे मिट्टी देना कहते हैं। श्मशान से लौटने के बाद विधवा स्त्री के सिर के बाल व चूड़ियाँ काट दी जाती हैं। श्मशान जाने वाले व्यक्ति स्नान करते हैं व फिर से शराब पीते हैं। इस दिन औरतें गकड़ियाँ बनाती हैं, जिन्हें टिकिया कहते हैं। तीसरे दिन खारी उठाई जाती है, जिसे तीसरा कहते हैं। मरने के सातवें दिन सम्पूर्ण समुदाय को भोजन दिया जाता है। इसको 'पानी चाल चढ़' कहते हैं। इसका दिन निश्चित नहीं रहता। अपनी सामर्थ्य के अनुसार इसको व्यक्ति सातवें दिन या इसके बाद कभी भी कर सकता है। कुचबंदिया समुदाय में मृतक को जलाने व दफनाते समय मृतक का सिर दक्षिण दिशा की तरफ करते हैं तथा मृतक के मुँह में घी और गुड़ रखते हैं। इस दिन मृतक के घर रोटी पहुँचाई जाती है। मृतक का सातवाँ न करने पर सम्बन्धित परिवार को पंचायत के माध्यम से जाति बहिष्कृत किया जाता है।

**कबूतरा** - कबूतरा जाति बुन्देलखण्ड की एक घुमक्कड़ जाति है। कबूतरा समाज में रीति-रिवाजों, मृत्यु संस्कार के अंतर्गत मृत शरीर पर धान फूल डालकर नया कपड़ा ओढ़ा देते हैं। परिवार के प्रत्येक सदस्य से मृत देह का स्पर्श करवाते हैं। सारे रिश्तेदार, मेल-जोल वाले एकत्रित होते हैं। बस्ती के सारे लोग शोक मनाते हैं। दाह संस्कार के लिये कुँवारी लड़की से देवी का चबूतरा लिपवाते हैं, अगरबत्ती-मोमबत्ती जलाई जाती है। देवताओं की मढ़िया बनाने के लिये कोरा कपड़ा थोड़ा ऊपर उठाकर लाया जाता है। तब बारी-बारी से लोग आते हैं, उन्हें कांति (बलि का बकरा काटने वाला चाकू) पकड़ाई जाती है। वे देवी के चबूतरे पर कट्टस (+) का निशान बनाते हैं। पवित्र मंत्र की तरह शब्द बोलते हैं- 'कौल जंगलिया का मरण नहीं हुआ, कबूतरा कभी मरता नहीं। रानी पग्गिनी की संतान कभी खत्म नहीं होती। कुनबी मरकर भी नहीं मरते। जंगलिया की चिता नहीं जलती। दिलों में आग जल रही

है।' दु:खी बस्ती की सभी महिलायें सिसक-सिसक कर मिलकर गीत गाती हैं-

*आजो ता जाजो तो रे पन फुरो मत जातो रे,*
*घोड़ो-घोड़ो घूमती मोर आवर्तीं /फुलबाड़ी केवड़ा,*
*आवर्तीं-आवर्तीं हमीर दे, वीर दे ।*

हे वीर देवता! आओ हम बड़े कष्ट में हैं। आओ हमीर देव हमारे दु:ख दूर करो।

सती प्रथा का प्रचलन पूर्व में था। मरने वाले की चिता बनाकर उसे जलाया जाता है, उसकी चिता को आग उस परिवार का लड़का देता है।

**कोरकू** - कोरकू मध्यप्रदेश की एक प्रमुख जनजाति है, जो सतपुड़ा के वन अंचल में निवास करती है। कोरकू जनजाति में अनेक रीति-रिवाज तथा संस्कारों को संपादित किया जाता है। मृत्यु संस्कार के अंतर्गत मृतक को जलाया जाता है, किन्तु अपवाद की स्थिति में कुछ लोग दफनाते भी हैं। दफनाते समय मृतक का शरीर वस्त्र रहित तथा सिर दक्षिण की ओर किया जाता है। दफनाने के पहले कब्र की भूमि का मूल्य रुपये में दिया जाता है तथा मृत आत्मा की शांति के लिये मदिरा, दूध, तंबाकू, खिचड़ी, हल्दी आदि को रखा जाता है। सबसे पहले मृतक का पुत्र या निकट रिश्तेदार एक मुठ्ठी मिट्टी गड्ढे में डालता है। शव ले जाने के बाद घर की स्त्रियाँ घर की साफ-सफाई करती हैं। घर के दरवाजे पर जलता कण्डा रखा जाता है।

मृतक परिवार की सुविधा के अनुसार किसी भी सोमवार को मृत्यु भोज दिया जाता है। मृत्यु भोज को कोरकू 'तीजा' कहते हैं। इसमें मृतक के परिजन और रिश्तेदार सम्मिलित होते हैं। तीजा में जो कोरकू आते हैं, अपने साथ एक पाव अनाज और मिर्ची अवश्य लाते हैं। मृतक के परिवार को अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार सहायता करते हैं।

मृत्यु भोज के दूसरे दिन मृतक की समाधि पर एक लकड़ी का स्तंभ गाड़ा जाता है, जिसे मुण्डा या माण्डों के नाम से जाना जाता है। कोरकू जनजाति के सुतार उपवर्ग के व्यक्ति माण्डों बनाते हैं। सागौन की लकड़ी न मिलने पर माण्डों पत्थर का भी बनाया जाता है। इस स्तंभ पर वह सब अंकित किया जाता है, जो मृत व्यक्ति को प्रिय था। माण्डों के नीचे मनुष्य की आकृति बनाई जाती है, दूसरी घुड़सवार की होती है। माण्डों कोरकू जनजाति की कला का एक नमूना है। कोरकू जनजाति में सिडोली प्रथा है, जिसमें जो व्यक्ति मर जाता है, वह कुछ दिनों बाद देवताओं और पितरों में सम्मिलित हो जाता है। मृत व्यक्ति को देवताओं और पितरों में सम्मिलित होने के लिये किये गये कार्य को ही सिडोली के नाम से जाना जाता है। इस दिन आस-पास के सभी कोरकुओं को आमंत्रण दिया जाता है। बाल-वृद्ध सभी इस आमंत्रण में सम्मिलित होते हैं। इसमें सम्मिलित सभी व्यक्ति शराब पीते हैं तथा रात्रि में सहभोज करते हैं। पूर्वजों की स्मृति में वृद्ध महिलायें गीत गाती हैं।

कोरकू जनजाति में मृत्युगीत की भी प्रथा है। इस मृत्युगीत में मृतक व्यक्ति से सम्बन्धित स्मृतियों को तथा उसकी प्रिय वस्तुओं को याद किया जाता है। मृत्यु गीतों को गाथा गीत फुलगजनी अथवा सिडोली गीत कहा जाता है। गीतों का स्वर करुणामय होता है। मृत्यु गीतों में घरेलू वस्तुओं के प्रतीक कई दार्शनिक अर्थ खोलते हैं। मृत्यु गीतों में वाद्य यंत्रों का उपयोग नहीं होता है। स्थान व क्षेत्र भेद के अनुसार मृत्यु गीतों को कोरकू बोली में फुलगजनी गाथा, दशा या सिडोली सिरिन्ज कहते हैं।

*ए माय डो, ए माय डो*
*इया आवा इगान ओलेन हिंगान बांग जैंगे मायमा रें ।*
*ए बेटा! ए बेटा आमा बाबा सवा मोका*
*धरती दालान डकूएन जा बेटा मा रे*
*ए माय डो, ए माय डो इया बाबा आण्डा*
*गागांर घाले माडो माय मा रे ए बेटा, ए बेटा*
*आमा बाबा नी आण्डा गागांर*
*उटा घराण टाला गाड़ा टिन्ज के बेटा ना रे*
*ए माय डो, ए माय डो*
*इया बाबा नी डोबाकेन, घाले माडो माय मा रे*
*ए बेटा, ए बेटा*
*आमा बाबा नी डोबाकेन ,*
*खूटा टालान टोलकेन जा बेटा मा रे*

हे माँ! पिता कहाँ गये हैं, कहीं दिखाई नहीं देते। हे बेटा! तुम्हारे पिताजी जमीन में सवा हाथ नीचे गड़े हैं। हे माँ! पिताजी का धन वाला हण्डा कहाँ है। हे बेटा! धन वाला हण्डा घर में बीच वाले खम्भे के नीचे गड़ा है। हे माँ! पिताजी के बैल कहाँ हैं। हे

बेटा! बैल गोहाल में खूँटे से बँधे हैं।

*नाचो ली टेन हाजे गई*
*नाचो ली टेन हाजे मा रे*
*आमा कोन डी आमा किमिन*
*जोन्दरा घाटो चौका चाडल समाके जा ढाई*
*आमा कोन डी आमा किमिन*
*गूँ सोकड़ा मेढ़ा बकरा सभा के जा गई*
*नाचो ली टेन हाजे गई*
*नाचो ली टेन हाजे मा रे*

इस मृत्यु गीत में पूर्वजों को आमंत्रण दिया गया है। हँसी-खुशी से आओ भाई, तुम्हारे बहू-बेटा ने तुम्हारे लिये जुआर का आटा (दलिया) और चावल बनाया है। तुम्हारे बहू-बेटा ने तुम्हारे लिये रोटी और बकरे का मांस बनाया है। ऐ भाई! आओ, हँसी-खुशी से आओ भाई।

*बगी रे रे ना डो, बागी रे रे ना*
*मय देवत राम गया मेरान, गाड़ा घाटोन डो*
*बगी रे रे ना*
*जाम्बू सिन्ज एन जे इटान*
*माय इयां रवां रागो उरा अरूकेन*
*बगी रे रे ना डो, बागी रे रे ना*

हे भाई! मेरी माँ दुश्मन के समान मुझे छोड़ कर चली गई। हे भाई! मेरी माँ की आत्मा डेढ़तलाई गाँव के पास एक नदी किनारे जामुन वृक्ष के नीचे घर बनाकर रह रही है।

**उराँव** - यह छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजाति है। छत्तीसगढ़ का समस्त उराँव क्षेत्र पर्वतों की मनोरम घाटियों तथा हरे-भरे साल वनों में बसा हुआ है। उराँव जनजाति में अनेक रीति-रिवाज प्रचलित हैं तथा वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी बने रहते हैं। उराँव जनजाति के लोग जन्म से लेकर मृत्यु तक कई प्रकार की रस्मों द्वारा कार्य करते हैं। उराँव जनजाति में मृत्यु होने पर मृतक को दफनाते हैं। घर से संपन्न उराँव मृतक को जलाते हैं। मृत्यु के तीन दिन बाद रिश्तेदारों को बुलाया जाता है तथा 'तीही नाहवन' की रस्म पूरी की जाती है। इसी दिन से मृतक के घर एवं परिवार को शुद्ध माना जाता है। तीन महीने के बाद गमी मनाई जाती है, जिसमें गाँव तथा परिवार के लोगों को भोज दिया जाता है।

**कँवर**- कँवर छत्तीसगढ़ की एक प्रमुख जनजाति है। बिलासपुर संभाग में कँवर जनजाति की संख्या सबसे अधिक है। कँवर समाज युगों से चले आ रहे रीति-रिवाज व परंपराओं से बेहद लगाव रखते हैं तथा इससे अलग नहीं होना चाहते। ये जन्म-मृत्यु तक अनेक परंपराओं का निर्वाह करते हैं। कँवर जनजाति में मृतक व्यक्ति को जलाने की प्रथा है। कभी-कभी शव को दफना भी देते हैं। तीसरे दिन तीज नहाने की रस्म पूरी की जाती है। इस दिन परिवार-रिश्तेदार व बिरादरी के लोग बाल-दाढ़ी व नाखून कटवाते हैं। घर की साफ-सफाई की जाती है। दसवें दिन पुरुषों का एवं नवें दिन स्त्री मृतक का दाह कर्म किया जाता है। बच्चे की मृत्यु होने पर उसे जमीन में गाड़ देते हैं और पाँचवे दिन ही भोज कर देते हैं।

इस प्रकार अलग-अलग विभिन्न जनजातियों में विभिन्न प्रकार के संस्कार पाये जाते हैं। सभी जनजातियों में जन्म, विवाह, मृत्यु संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं, पर उनकी विधि-अनुष्ठानों में अवश्य अंतर होता है। ये संस्कार उनकी निजी पहचान तथा अभिव्यक्ति होती है। इन्हीं के सहारे व्यक्ति सामूहिक प्रक्रियाओं-अनुष्ठानों या रीति-रिवाजों और मान्यताओं की सीमा में आता है।

**संदर्भ**


1. आदिवासी अस्मिता और विकास - डॉ. हीरालाल शुक्ल, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
2. आदिवासी विकास एक सैद्धांतिक विवेचना - डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
3. जनजातीय समाज का समाजशास्त्र - धर्मवीर महाजन, विवेक प्रकाशन, दिल्ली
4. मध्यप्रदेश की जनजातियाँ - डॉ. शिवकुमार तिवारी, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
5. पत्रिका चौमासा, अंक - 26, आदिवासी लोककला परिषद्, भोपाल

# झारखण्ड की जनजातियों में मृत्यु संस्कार

डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा

झारखण्ड का भू-भाग भौगोलिक दृष्टि से करोड़ों वर्ष पुराना है। झारखण्ड के संदर्भ में कई विद्वानों एवं मानव वैज्ञानिकों के अनुसार यहाँ प्रागैतिहासिक काल के मेधावी मानव 'होमोसेपियन' का भी निवास स्थल था, जिसके प्रमाण मंगोलिनिक काल से सम्बन्धित पुरातात्त्विक अवशेषों में मिलता है। यहाँ पर असुर जनजातियों का आगमन सर्वप्रथम हुआ था, जो धातु-कला एवं वास्तु-कला के विशेषज्ञ और ताम्र एवं लौह धातु के अन्वेषक थे। उसके बाद इस वन्य प्रदेश में काल क्रमानुसार मुण्डा, हो, उराँव, खड़िया, खरवार, सबर, संथाल, सौरिया, पहाड़िया आदि जनजातियों का आगमन हुआ। अधिकांश जनजातियाँ ईसा पूर्व 3000 वर्ष के बाद सिन्धु घाटी से विस्थापित और उन्नायक थीं। सम्प्रति झारखण्ड में 31 जनजातियाँ निवास करती हैं। इनमें संथाल, मुण्डा, हो, उराँव, खड़िया, खरवार आदि बहुसंख्यक जनजातियाँ है, जो सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से अधिक विकसित हैं। यहाँ असुर, बिरहोर, कोरवा, बिरजिया, सबर, पहाड़िया आदि नौ अल्पसंख्यक आदिम जनजातियाँ हैं, जो अभी आदिम लोक संस्कृति और जीवन पद्धति से जुड़ी हुई हैं।

सामाजिक दृष्टि से यहाँ की जनजातियाँ सामुदायिक एवं सामूहिक जीवन पद्धति के अनुरूप अपने समाज द्वारा स्थापित पारम्परिक नियमों, मान्यताओं, लोक विश्वास एवं पारम्परिक पंचायत व्यवस्था (पीड़, पहड़ा, प्रधानी आदि) के अंतर्गत जीवन यापन करती हैं। धार्मिक दृष्टि से यहाँ की जनजातियाँ जीववादी धर्म (एनिमिस्टिक रिलिजन) को मानती हैं। उनके धर्म के संदर्भ में डॉ. रामदयाल मुण्डा ने अपनी पुस्तक 'आदि धरम' में इसे आदि धर्म माना है। उन्होंने इसे प्रकारान्तर से एनिमिज्म, प्रिमिटिमिज्म, एबोरिजनलरेलिन, सरनाइज्म, बोंगाइज्म आदि नामों से विहित किया है। उन्होंने जनजातीय धर्म के तीन पक्ष प्रस्तुत किये हैं- दर्शन सिद्धांत पक्ष, अनुष्ठान या कर्मकाण्ड पक्ष और व्यवस्था अथवा संगठन पक्ष।

ये तीनों आपस में संयुक्त हैं और एक दूसरे के पूरक हैं। जनजाति का सम्पूर्ण जीवन चक्र-जन्म से लेकर मृत्यु तक एवं उसके पारलौकिक जीवन को संचालित और नियंत्रित करता है। जनजातीय धर्म के साथ जादू भी जुड़ा हुआ है। श्री मुण्डा के अनुसार जनजातीय समुदाय के धर्म की जिज्ञासा के मूल में निम्नांकित तत्त्व जुड़े हुए हैं-

1. परमेश्वर (सिंगबोंगा), जहेरएरा (देवी माँ) और रोआ (पूर्वज एवं अन्य प्रेत)।
2. मनुष्य के अमरत्व में दृढ़ विश्वास और मृतक की आत्मा की छाया रूप में घर वापसी का अनुष्ठान।
3. आदि धरम व्यवस्था में मनुष्य पाप-पुण्य और स्वर्ग-नरक की अवधारणा से अपेक्षाकृत कम ग्रसित है।
4. बिना किसी मध्यस्थता (पंडित, मौलवी आदि) के है। आदिवासी के सभी अनुष्ठान न्यूनतम कर्मकाण्ड के साथ सम्पन्न होते हैं।
5. सृष्टि के अन्य अवदानों (सजीव-निर्जीव) के साथ समानता और पारस्परिक सम्मान-बोध के आधार पर सहअस्तित्व में विश्वास।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जनजातीय समाज में गर्भधारण से लेकर शिशु के जन्म, शैशवावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु होने तक का सम्पूर्ण जीवन चक्र विभिन्न पारम्परिक अनुष्ठानों से जुड़ा हुआ है। आत्मा के अमरत्व और पुनर्जन्म पर उनका अटल विश्वास है। उनका यह लोक विश्वास है कि मानव शरीर में आत्मा के दो भाग हैं। जब मनुष्य सोता है तो उनकी आत्मा का एक भाग या अंश शरीर से बाहर भ्रमण करता है, जिसके कारण मनुष्य स्वप्न देखता है, जबकि दूसरा मुख्य अंश मनुष्य को जीवित रखता है। मृत्यु के समय दोनों आत्माएँ एक साथ मृतक के शरीर का त्याग कर देती हैं। परन्तु वे आत्माएँ अपने परिवार में आती-जाती रहती हैं। प्राय: प्रत्येक घर में पूर्वज या पितरों के लिए एक पवित्र पूजा स्थल (अडिंग) रहता है, जहाँ महिलाएँ स्नान कर भोजन बनाती हैं।

उनका यह भी मानना है कि उनके पूर्वजों की आत्मा उनके परिवार के किसी नवजात शिशु के रूप में पुन: जन्म लेगी। अत: शिशु के जन्म के बाद नामकरण संस्कार के समय शगुन निकालकर यह सुनिश्चित किया जाता है कि किस आत्मा का पुनर्जन्म हुआ है और उसी आधार पर एक शिशु का नाम उसके दादा या आजा (पितामह) के नाम पर रखा जाता है। यह हर जनजातीय परिवार में देखा जाता है कि परिवार का पूर्वज (दादा) मंगल तिरकी था, तो उसके पौत्र (पोता) का नाम भी मंगल तिरकी है। इस प्रकार आत्मा के अमरत्व के साथ-साथ पुनर्जन्म के लोक विश्वास को भी मान्यता मिल जाती है।

जनजातीय समुदाय से सम्बन्धित अनेक मिथकों/ धर्मगाथा में यह उल्लेख मिलता है कि यदि कोई व्यक्ति असमय मरता है या मार दिया जाता है तो उसके शरीर के किसी भाग के (अंग, हड्डी आदि) उपलब्ध रहने पर सिंगबोंगा की आराधना से या धरती माता की कृपा से उसका पुनर्जन्म हो जाता है। हो, मुण्डा, उरांव आदि की अनेक लोक कथाओं (मिथकों) में इसका उल्लेख मिल सकता है। इसके साथ ही मृत्योपरान्त परकाया प्रवेश के उदाहरण मिलते हैं। इसी लोक परम्परा के आधार पर अधिकांश आदिवासी अपने मृतक व्यक्ति को कब्र में दफनाते हैं। अगर मृतक को जलाया भी जाता है, तो उसके अस्थि अवशेष को जमीन में गाड़ दिया जाता है, जिसे जडतोपा कहते हैं।

डॉ. रामदयाल मुण्डा ने अपनी पुस्तक 'आदि धरम' में 'गोनाए परिमिन बोंगा' (मृत्यु संस्कार) अध्याय में मुण्डा जनजाति को केन्द्र में रखकर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। डॉ. मुण्डा के अनुसार प्राण (सांस) विहीनता ही जीवन्तता का अंत माना जाता है। किन्तु मनुष्य की आत्मा अमर होती है। आत्मा के कालातीत अस्तित्व में मृत्यु ऐसा बिन्दु होता है, जिसके बाद व्यक्ति का भौतिक शरीर स्थूल रूप में समाप्त हो जाता है। किन्तु वह सूक्ष्माति-सूक्ष्म अदृश्य रूप में विद्यमान रहता है। हम उसे नहीं देख सकते, परन्तु वह हमें देख सकता है। आदिवासियों के सच्चाई और ईमानदारी पूर्वक व्यवहार के पीछे यही विश्वास काम करता है कि हमारे पूर्वज हमें देख रहे हैं। ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए, जिससे उन्हें असंतोष या दु:ख हो।

जब मृतक के निकटतम सम्बन्धी आ जाते हैं, तब मृत्यु संस्कार की तैयारी की जाती है। ये तैयारियाँ विवाह संस्कार की तैयारियों जैसी होती हैं। मृतक के शरीर पर हल्दी-तेल लगाया जाता है और उसे नया कपड़ा (कफन) पहनाया जाता है। उस

पर फूल भी अर्पित किया जाते है। जिस समय घर में मृतक संस्कार किये जाते हैं, उसी समय 'हड़गड़ी या समना स्थल पर मृतक का अस्थायी घर (सात फीट लम्बा, तीन फीट चौड़ा और पाँच फीट गहरा उत्तर-दक्षिण कोण कर तैयार किया जाता है।)' से मृतक को ले जाने के पूर्व कुछ अनाज उससे स्पर्श कराये जाते हैं, जो इस बात का प्रतीक हैं कि मृतक धन-धान्य को अपने पीछे छोड़कर जा रहा है।

अर्थी पर उसकी अंतिम शोक यात्रा वाद्य संगीत के साथ निकलती है। समना या कब्र स्थान पर पहुँचने के बाद मृतक के घर (कब्र) की परिक्रमा बायें से दायें तीन बार करायी जाती है और तब मृतक की अर्थी को उत्तर -दक्षिण दिशा में (सिर को दक्षिण में) रखा जाता है। इसके बाद मृतक को कब्र में रखा जाता है। जहाँ उसका पुत्र या परिवार का अन्य कोई सदस्य उसके व्यवहार की वस्तुओं को कब्र में रखने के बाद आग, पानी और मिट्टी देता है। बाद में सभी लोग बारी-बारी से मिट्टी डालकर कब्र की ऊँचाई तक भर देते हैं। मृतक के सिर की ओर फूलवृक्ष की एक शाखा गाड़ देने की परम्परा है। इसके बाद निकट के नदी या तालाब में सभी स्नान कर या हाथ धोकर आते हैं। मृतक के दाह संस्कार को विवाह के संस्कार के प्रतीक रूप में सम्पन्न किया जाता है, जिसमें मिट्टी का मिट्टी से, आग का आग से, पानी का पानी से और हवा का हवा से मिलन का अनुष्ठान सम्पन्न होता है। इसके बाद मृतक की छाया की घर वापसी का अनुष्ठान होता है, क्योंकि मरने के बाद आदिवासी स्वर्ग या नरक नहीं जाता, वरन् अपने पूर्वजों के साथ घर में वापस आता है। उसी स्मृति को बनाए रखने के लिए लोग बच्चों का नामकरण उसके नाम से करते हैं। इसलिए इसे पुनर्जन्म भी माना जा सकता है।

मृत्यु के दसवें दिन परिवार के पुरुष अपना सिर मुड़वाकर नदी आदि में स्नान कर पवित्र होते हैं और घर आने पर उनका स्वागत पैर धोकर किया जाता है। इसके बाद 'छाया वापसी' का विधान सम्पन्न किया जाता है। गाँव के बाहर चौराहे पर तेन्दु का एक कूंबा बना देते हैं, जो मृतक का घर माना जाता है। उसके बाद कूंबे में आग लगा दी जाती है। उसका निकट सम्बन्धी मृतक का नाम लेकर कहता है- 'तुम्हारा घर जल रहा है, चलो निकल भागो' इसके बाद घर वापस आकर पूर्वजों के स्थल (अडिंग) पर दीया जलाया जाता है और पूर्व में फैलायी गई राख का परीक्षण कर घोषणा की जाती है कि मृतक वापस आ गया है।

मृतक की आत्मा को पूर्वजों में सम्मिलित कराने का अनुष्ठान शुरू होता है। इस अवसर पर घर के आँगन में मृतक का पुत्र/ भतीजा मुख्य श्राद्धकर्म के रूप में पूरब की ओर मुँह करके बैठता है। गाँव का पाहन, बैगा, बुजुर्ग आदि उनकी दाहिनी तरफ उत्तर की ओर मुँह करके बैठते हैं। पाहन/ बैगा सफेद, लाल और काली मिट्टी से एक चौहा (अरिपन) बनाता है, जो सृष्टि, पृथ्वी और चारों दिशाओं का प्रतीक होती है। इस अवसर पर प्रसाद के रूप में धुवन, सिन्दूर, गुलैची फल, गुड़ से पका हुआ चावल आदि के साथ चावल को डिभंग (हंड़िया) अर्पित किया जाता है। पाहन मंत्र पाठ करता है, जिसका उदाहरण निम्न प्रकार है-

*सिंगबोंगा आर ओते एंगा गोआरि के किन*
*तायोमते हासा, दा गेल आर होमोते*
*बाइलेन बांगाडः जान होडो को होरा केन*
*बुरु बोंगा, इकिर बोंगा इकिर*
*बोंगा इकर एका:आ आकों आ: नुतुमते मिमियाद*
*लेटे माण्डि डुमाडः होड़ो मों: नागेन तेआएकाना।*

परमेश्वर और धरती माता की गुहार करने के बाद मिट्टी, पानी, आग और हवा से बने व्यक्ति की रक्षा करने वाले पहाड़ी देवता, जलदेवता, अग्नि देवता और वायु देवता को आमंत्रित करते हैं। उनके नाम से दान निमित्त एक-एक पिण्ड बना लेते हैं। इसके बाद आमंत्रित देवता एवं देवियों के लिए मंत्र पढ़कर उन्हें प्रसाद अर्पित कर उन्हें संतुष्ट करते हैं, उनको जोहार करते हैं।

इस अनुष्ठान का मूल उद्देश्य मृतक की आत्मा को परमेश्वर एवं उनके सहयोगी देवताओं के साक्ष्य में तथा कुटुम्ब- बन्धुओं की उपस्थिति में परिवार के पूर्वजों में सम्मान पूर्वक शामिल करना है। इसके पश्चात् श्राद्ध का भोज सम्पन्न होता है।

श्री भीखू तिरकी ने अपनी पुस्तक 'उराँव सरना (धर्म एवं संस्कृति)' में मृतक संस्कार सम्बन्धी विधि-विधान का वर्णन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार उराँव में मृतक को कब्र में दफनाने और चिताग्नि का भी प्रावधान है। श्मशान या मसना का निर्धारण कई स्थानों पर गोत्र के अनुसार होता है। मसना में शव को दफनाने की विधि मुण्डा आदि जनजातियों की तरह ही

सम्पन्न किया जाता है। परन्तु शव को जलाने के लिए आम की लकड़ी से चिता तैयार करते हैं। आग देने वाला सबसे बड़ा लड़का या अन्य रिश्तेदार सिर के बालों एवं दाढ़ी को मुड़ा कर कफन के कपड़े को स्नान कर धारण करता है। सभी लोग चिता में बायें हाथ से तीन बार लकड़ी देते हैं, जो अंतिम विदाई का प्रतीक है।

चिता बुझने के बाद बची हुए हड्डी को चुनकर उसके साथ चावल, उरद, बेंगूर, लोहबान और अन्य आवश्यक चीजें मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखा जाता है, जिसे पाहन दल-दल जमीन में गाड़ देता है। इसके संदर्भ में हड़बोरा नामक त्योहार अगहन-पौष और माघ में अलग-अलग तिथियों को विभिन्न गाँवों में मनाया जाता है, जिसे कुड़ुख में 'कोहाबेंजा' कहते हैं। यह समारोह शादी के समान ही ढोल-बाजा, नाच-गान के साथ मनाया जाता है। इस अवसर पर हड़बोरा स्थल पर जाकर छः पत्तलों में दाल-भात रख देते हैं। औरतें यह गीत गाती हैं-

*पचवा आलोरा हुदि इन्ना हड़बोरा गाहि*
*निभाबरगों दाली मंडी चिआः अलदम।*
*होरमर खटर के दरा ओंनके गोखाके*
*अरा एमन निके-सुखे उइके।*

हे पूर्वज गण! आज हम लोग हड़बोरा त्योहार के शुभ अवसर पर आप लोगों को दाल-भात दे रहे हैं। आप सभी इसे बाँटकर खा लेंगे और हम लोगों को सुख-शांति से रखेंगे। हम लोगों को कोई दुःख-तकलीफ न हो, आपसे यही प्रार्थना है।

हड़बोरा त्योहार के दो दिन बाद मृतक के परिवार के लोग एकत्रित होते हैं। पाहन लौकी के तुम्बड़ी में पानी लाकर मंत्र पाठ कर सभी पर छिड़कता है और यह शुद्धिकरण का संस्कार (पद्दा कमना) अर्थात् गाँव का शुद्धिकरण कहलाता है।

मृतक की यादगारी में श्मशान या हड़बोरा स्थान पर एक पत्थर गाड़ने का विधान है, जिसे पुरवली गाड़ना कहते हैं। यह पत्थर आठ-दस फीट लम्बा और दो-तीन फीट चौड़ा होता है। इस पर मृतक का नाम, मृत्यु की तिथि आदि खोदकर अंकित की जाती है। इसके नीचे मृतक द्वारा व्यवहृत कुछ समान और कुछ अन्न भी गाड़ दिया जाता है।

उराँव में असामजिक मृत्यु को अशुभ माना जाता है, इनके लिए (मृतक के लिए) अलग-अलग संस्कार किया जाता है-

1. बच्चे या शिशु की मृत्यु पर गाड़ा जाता है, जिसे खदमसड़ान कहते हैं। इनकी परछाई को भी घर में आमंत्रित नहीं करते हैं।
2. गर्भवती, दूध पिलाने वाली स्त्री की मृत्यु होने पर उन्हें गाँव के मसना में न गाड़कर गाँव की सीमा पर दफनाया जाता है। गाड़ने के पहले उनके हाथ-पैर तोड़ दिये जाते हैं। शव को पेट के बल गाड़ते हैं, परन्तु अब इस क्रूर विधि में परिवर्तन हो रहा है। ऐसी औरतों की मृत्यु से चुड़ैल बनकर गाँव की महिलाओं को नुकसान पहुँचाने का भय बना रहता है।
3. दुर्घटना में मारे जाने वाले मृतक को मसना में गाड़ा जाता है और श्राद्ध आदि सम्पन्न किया जाता है।

बिरहोर आदिम जनजाति के लोग मृतक को जलाते भी हैं और कब्र में गाड़ते भी हैं। जलाने पर झरना या नदी किनारे हड्डियों को गाड़कर पत्थर रख देते हैं। बिरहोरों का लोक विश्वास है कि जीवन भर वह जिन अतिप्राकृतिक शक्तियों और प्रेतों से अपनी सुरक्षा करता रहता है और उनकी पूजा-पाठ कर उन्हें संतुष्ट करता है। मरने पर वह स्वयं पूज्य बन जाता है। अतः बिरहोर मृत्यु से डरते नहीं हैं। उनके अनुसार मारपीट या दुर्घटना में मारे जाने पर वह मृतक दुष्ट प्रेतात्मा बन जाता है। वे ऐसी मृत्यु से बने भूतों से डरते हैं और उन्हें अपने टंडा (गाँव) से दूर रखते है।

1. बघुट (प्रेत) - बाघ द्वारा मारा गया।
2. पासल मुआ- किसी तेज हथियार से मारा गया।
3. डुबल मुआ - पानी में डूबकर मरने वाला।
4. लठकल या फाँसी मुआ- फाँसी लगाकर मरने वाला।

असुर जनजाति में मृत्यु पर्यन्त सत्कर्म या पाप कर्म करने वाले की आत्मा को मरने के बाद क्रमशः शांति मिलती है या वह आत्मा भटकती रहती है। इसकी चर्चा डॉ. पी.सी. उराँव ने 'बिहार के असुर' शीर्षक पुस्तक में की गई है। सत्कर्म करने वाले का पुनर्जन्म मानव के रूप में होता है। मृतक के कमरे में राख रखकर मृत्यु के कारणों का पता उस पर पाये जाने वाले पशु

आदि के पदचिन्हों से लगाया जाता है। असुर आत्मा की छाया को घर के एक स्थान पर स्थापित किया जाता है। परन्तु पूर्वजों को किसी तरह का खाना देने की परम्परा नहीं है। इनमें भी गर्भवती, साँप काटने या जलने आदि से मृत्यु होने पर उनकी छाया का आवाहन नहीं किया जाता है।

प्रख्यात मानवशास्त्री डॉ. एल.पी. विद्यार्थी ने अपनी पुस्तक 'बिहार के आदिवासी' में संथाल जनजाति के मृत्यु सम्बन्धी संस्कारों को प्रस्तुत किया है। संथालों में मृतात्मा की अन्त्येष्टि की प्रमुख प्रथाएँ क्रमशः शव संस्कार, तेल नहान, अस्थि प्रवाह एवं भाण्डान (श्राद्ध) है। मृतक को श्मशान ले जाते समय उनके निजी सामानों थाली, कटोरी, धनुष-बाण, लाठी, कपड़े आदि भी उसे सौंप दी जाती है। गाँव के छोर पर मृतक को स्त्रियों द्वारा तेल-हल्दी लगा दिया जाता है। मृतक को जलाने या गाड़ने के पूर्व उसका बड़ा लड़का उसके मुँह में आग डालता है, जिसे आगमुक कहते हैं। शव को चिता पर रखने के बाद सभी पट्टीदार उस पर लकड़ी देते हैं। शवदाह के बाद उसके अवशेषों को नदी में या तालाब में प्रवाहित कर दिया जाता है। मृत्यु के पाँचवें दिन तेल नहान होता है। इसमें बाल बनवाकर घाट में स्नान करने जाते हैं। घाट पर पितर और मरइ बुरू के लिए पत्ते पर थोड़ी मिट्टी और तेल डालकर दातुन रखकर मृतक का कर्त्ता तीनों पत्तों को बायें हाथ से स्पर्श कर निवेदन करता है-'आज तुम्हारा तेल नहान के नाम पर नहा-धो रहे हैं। पितर तुम भी नहा-धो लो और मृतात्मा को अपने साथ कर लो।' संध्या समय श्राद्ध का भोज होता है। संथाल अस्थि विसर्जन अधिकतर दामोदर नदी (माई) में करना पसन्द करते हैं।

संथालों में मृतात्मा के स्वर्ग-नरक जाने की परम्परा बंगाल की संस्कृति से मिली है। बंगाल के जादोपटिया चित्रकला के जादो कलाकार कपड़े पर यमराज के राज्य में मृतात्मा को कर्म के आधार पर दिये जाने वाले पुरस्कार एवं दण्ड-विधान का चित्र बनाकर संथाल के घर जाकर उनके मृतक के सन्दर्भ में जानकारी लेते हैं और जादोपटिया में अंकित यमराज से सम्बन्धित चित्र दिखलाते हैं। इस अवसर पर संथाल रोते हैं और जादो चित्रकार को अन्न या पैसा, दक्षिणा के रूप में देकर विदा करते हैं।

झारखण्ड की अन्य जनजातियों में भी मृतक के संस्कार आदि से सम्बन्धित परम्परा में काफी समानता है। आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म का लोक विश्वास और पितर-प्रेतों की पूजा का विधान प्रायः जनजातियों में प्रचलित हैं।

# कुमाउनी जनजातियों के मृतक संस्कार

डॉ. शेखर चन्द्र जोशी

कुमाऊँ में भोटिया, शौका, रं, वनरावत, बुक्सा, थारू आदि जनजातियाँ निवास करती हैं। इनके संस्कार, रीति-रिवाज अपने आपमें अलग होते हुए भी कुमाऊँ की संस्कृति के आस-पास होते हैं। कहीं-कहीं इनमें तिब्बत, चीन, नेपाल, भूटान एवम् राजस्थान आदि का प्रभाव भी दिखाई देता है। जहाँ से कभी इनके पूर्वज सैकड़ों वर्ष पूर्व आये होंगे। जैसाकि वे भी मानते हैं। वनरावत जनजाति इन सबमें अपवाद है। इस आलेख में मुख्य रूप से शौका व भोटिया जनजाति के मृतक संस्कारों का वर्णन किया जा रहा है।

धारचूला के पूरंग गाँव निवासी थिनले (भोटिया) जिनके पूर्वज यहाँ कभी तिब्बत से आये थे, जो वर्तमान में अल्मोड़ा निवासी हैं, ने बताया कि गुरुजी से पूछा जाता है कि मृतक शव को कब व किस मुहूर्त में जलाना है, जिसे 'टाक्छी' कहा जाता है। मृतक शरीर को 'रो' कहा जाता है। गुरुजी को गेन (लामा) कहा जाता है। गुरुजी द्वारा अधिकतम तीन दिन का समय देने की प्रथा है। मुहूर्त को 'श्याक' कहा जाता है। शव के पास जलाने के लिये एक विशेष प्रकार की धूप 'प्यो' का प्रयोग किया जाता है, जो बाजार में बनी बनाई मिल जाती है अथवा जो खुद भी बनाई जाती है, जिसमें देवदार के पत्तों को 'सांगफोर' (छोटी अंगीठी) में जलाया जाता है। 'रो' के ऊपर सफेद रंग का वस्त्र (खाता) ओढ़ाया जाता है। व्यक्ति विशेष जिसे अधिक इज्जत दी जाती है, उसे 'फूगंपो' कहा जाता है। फूगंपो के साथ बच्चों को छोड़कर जो भी उसमें शामिल होना चाहे तो 'रोकांक' (श्मशान घाट) तक जा सकता है। शव यात्रा में सम्मिलित होने वाले लोगों को 'कटेर' कहा जाता है। कटेरिये अपना सिर नंगा रखते हैं। श्मशान घाट में जलाने के पश्चात् मृत आत्मा हेतु 'शेगु' किया जाता है जो कि 49 दिन का होता है। इस अवधि में एक सौ आठ दिये प्रतिदिन जलाये रहते हैं। कहीं-कहीं यह शेगु सैंतालिस दिन का भी होता है और कुछ परिवारों में इसे दस दिन, तेरह दिन तक ही मनाया जाता है। गुरुजी द्वारा पूजा पहले दिन तथा शेगु वाले अंतिम दिन की जाती है। शेगु के पश्चात् परिवार में 'लोम्चुये' की प्रक्रिया मनायी जाती है, जिसमें पूजा के साथ प्रसाद के रूप में खाना खिलाया

जाता है। जो भुने हुए / सुखाये गेहूँ को पीसकर जिसमें मक्खन, गुड़/चीनी मिलाकर बनाया जाता है।

मुनस्यारी मदकोट क्षेत्र के ग्राम पातूं रालम निवासी सचिन दरियाल जिनका परिवार वर्तमान में हल्द्वानी में निवास करता है, द्वारा बताया गया कि रं जनजाति में मृतक संस्कार सम्पन्न करने में महिलाओं का विशेष योगदान होता है। मृतक की अस्थियाँ एवं राख जिसे रं भाषा में 'हस्त' कहा जाता है, उसे श्मशान से परिवार की महिलाएँ लेकर आती हैं। रं जनजाति में तीन दिन बाद मृतक के कपड़े एवं उनका सामान उनकी तस्वीर के सम्मुख रख दिया जाता है। तस्वीर के सम्मुख जल एवं भोजन रखा जाता है। इस प्रक्रिया को 'तीतांमू' कहते हैं। यह प्रक्रिया तेरह दिन तक चलती है। एक साल बाद इन अस्थियों व राख को हिमालय की ऊँची - ऊँची पहाड़ियों में कुटि बनाकर स्थापित कर देते हैं। 'हस्त' को बेटा या बेटी ही लेकर जाते हैं। परिवार में औरत की मृत्यु होने पर दूध व आदमी की मृत्यु होने पर मांस खाना छोड़ दिया जाता है। लड़कियाँ एक साल तक कान में कोई भी आभूषण धारण नहीं करती हैं। लड़के अपने बाल कटवा लेते हैं।

जौहार की शौका बागेश्वर से होते हुए अन्त: अल्मोड़ा में निवास कर रही रूचि मर्तोलिया द्वारा साक्षात्कार में बताया कि शौका या भोटिया परिवारों में जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो उनके परिजनों द्वारा अनेक क्रिया-कर्म किये जाते हैं, जो प्राय: कुमाउनी प्रथा से मिलते-जुलते हैं। पति के मरने पर उसकी पत्नी के अंगाभूषण उतार दिये जाते हैं, जिसका अर्थ है कि अब वह सुहागिन नहीं रही। एस. एस. पांगती के कथनानुसार शव को ओढ़ाया जाने वाला वस्त्र 'कतौर' (कफन) कहलाता है। डानी (झग्गी) की लकड़ी बाँधकर शव को पीताम्बर से ढँक दिया जाता है। गर्भवती स्त्री के शवदाह से पूर्व उसका पेट चीरकर भ्रूण अलग कर दिया जाता है।

घर से शव उठा लिये जाने के पश्चात् घर की लिपाई कर मृतक के कपड़े धोकर एवं बिस्तर आदि को एक निश्चित स्थान पर सुखाने डाल दिया जाता है। मृतक के इन वस्त्रों को 'झुलपाल' कहा जाता है। मृतक परिवार में उसकी मृत्यु से दस दिन तक 'सुतक' (अशुद्धि) रहता है। कहीं-कहीं मृतात्मा की शान्ति हेतु 'ढुरिंग' करने की प्रथा भी रही होगी, ऐसा 'मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति-जौहार के शौका' पुस्तक में उल्लेखित है। ऐसी प्रथा भी है कि सोमवार के दिन मृतक के दोष निवारण हेतु उसके शव को घर के मुख्य दरवाजे से बाहर न लाकर खिड़की के रास्ते लाया जाता है। लोग ऐसा भी मानते हैं कि परिवार में जिस व्यक्ति की मौत 'पंचक' में होती है तो वहाँ उसके पीछे-पीछे पाँच मौतें होंगी। धनिष्ठा के तीसरे-चौथे चरण से रेवती के आखिरी चरण तक का समय 'पंचक' कहा जाता है। इससे उबरने के लिए 'पंचक' में मरे हुए व्यक्ति के शव के साथ कुश घास के पाँच पुतले बनाकर रखे जाते हैं, जिन्हें बाद में जला दिया जाता है। कहा जाता है कि पंचक में मकान की छत डालना, लकड़ी के काम सम्बन्धी कोई कार्य नहीं करना चाहिए। अंतिम संस्कार जैसे कुमाऊँ में होता है, उसी के अनुरूप करते हैं। पूरे साल भर माँस नहीं खाते हैं, कम से कम बारह दिन तक माँस नहीं खाया जाता है। मृतक संस्कार में दूर-दराज के सभी रिश्तेदार भागीदारी करने की यथासंभव पूरी-पूरी कोशिश करते हैं। एस० एस० पांगती के अनुसार जौहार में कुमाऊँ की अपेक्षा एक विचित्र प्रथा यह है कि शव यात्रा के आगे-आगे दो व्यक्ति लगभग एक मीटर नाप का सफेद वस्त्र पकड़कर चलते हैं, जिसे 'बाट' कहते हैं। उनके पीछे से एक व्यक्ति भुना हुआ धान (खिला) फेंकता जाता है, जिसे 'बुरक्यारी' कहते हैं। पत्नी की मृत्यु होने पर उसका पति उसकी शवयात्रा में सम्मिलित नहीं हो सकता है, न ही वह तिलांजलि देता है। अविवाहित एवं 18 वर्ष से कम आयु वालों को नदी किनारे या दूर वीरान स्थल में गड्ढे में नमक डालकर दफनाया जाता है।

डूँगर सिंह ढकरियाल 'हिमरज' ने अपनी पुस्तक 'हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर ।।। काकपुराण (छिरा खाँ मांगलास्यिो युता)' में मृत्यु संस्कार के सम्बन्ध में 'ग्वन' शब्द का उल्लेख किया है। उन्हीं के कथनानुसार जिसका अर्थ गबन, क्षति, नुकसान, खर्च, खोना एवं मरना आदि होता है। सौका समाज द्वारा ग्वन संस्कार का सृजन करते समय जीवित प्राणी 'या' (याक) पवित्र पशु का उपयोग कर उस जीवित प्राणी कि आत्मा में उस मृतक की आत्मा को प्रविष्ट कराने की परम्परा रही होगी। ग्वन को क्रमश: ग्वन, बौकरों तौमों तथा स्यां ग्वन तीन श्रेणी में सम्पन्न करते हैं। अति प्राचीन काल में जब 'ग्वन' संस्कार का सृजन किया गया था, उस समय हिमालय के हिम-ग्लेशियरों में निवास करने वाले जंगली 'याक' को मना-फुसला कर मृतक का

प्रतिनिधित्व कराने के लिए गाँव तक लाते थे। याक की आत्मा में प्रवेश कराने की औपचारिकता पूर्ण करने के पश्चात् उस जंगली याक की प्रतिदिन प्रातः व सायं मुँह, सींग तथा चारों पैर शुद्ध जल से धोकर पूजा करते हैं और तब मृतक आत्मा के लिये विशेष प्रकार से बनाया गया 'श्यु' पिण्ड खाद्य एवं पेय पदार्थ चवर गाय को खिलाया-पिलाया जाता है। ग्वन संस्कार पूर्ण होने तक हर तीन माह पश्चात् तीन संस्कार सम्पन्न करना होता है। याक्तौमों, चंदामौ तथा ग्वन गामों। उसके पश्चात् एक वर्ष पूर्ण होने के पश्चात् एक संस्कार और मनाया जाता है, जिसको दर्मा ल्वौ में 'नम्स्यांमों' कहते हैं। इस संस्कार के बाद उस मृतक आत्मा के शिव में लीन हो जाने की मान्यता है, जिसको सौका समाज मात्र 'स्यिामी' की उपमा देकर पुकारते हैं।

डूँगर सिंह ढकरियाल 'हिमरज' के कथनानुसार प्राचीन काल से 1962 ई. तक सौकों द्वारा मृत्यु संस्कार 'ग्वन' वास्तव में कार्तिक माह में ही सम्पन्न किया जाता था। सौका व्यक्ति चाहे किसी भी महीने में मृत्यु को प्राप्त होता था, उसका मृत्यु संस्कार उसी कार्तिक माह में ही सम्पन्न करते थे। उसकी अस्थि 'च्ये' को फूल के भीतर 'यांचूमो बां' पिण्ड चढ़ाने के स्थान में शुद्धता पूर्वक रखते हुए प्रतिदिन पिण्डदान चढ़ाते रहते है। वे अपनी अतृप्त भावनाओं को रो-रोकर आँसुओं के साथ मन कि व्यथा-कथा को उस 'याक' के सामने उड़ेलते हुए विलाप व क्रन्दन के साथ मृतक के प्रिय पेय व भोज्य पदार्थ पिण्डदान के रूप में याक को खिलाते-पिलाते रहते हैं। जिसको 'श्यु-छिमों, जाछिमों' कहते है, जिसका अर्थ है पिण्डदान खिलाना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनजातियों का मृतक के प्रति गहरा लगाव रहा है। उन्होंने मृतक की स्मृति को संजोने के साथ-साथ प्रकृति व पर्यावरण के संरक्षण व संवर्द्धन में सहभागिता दी है। वे अपने आस-पास के परिवेश से अछूते ना रहते हुए भी अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं।

# उराँव मृत्यु-संस्कार

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी

उराँव जनजाति का इतिहास अनवरत विस्थापन का इतिहास है। शताब्दियों की इस अनथक यात्रा में भी इन कुड़ुखर (उराँव) लोगों ने अपने जीवनचक्र को अस्त-व्यस्त नहीं किया है और न अपनी भाषा कुड़ुख के व्यवहार में कोई व्यतिक्रम किया है। एक मुंडारी लोककथा के अनुसार पहले इस जनजाति को कुड़ुखर/ कुड़ुख कहा जाता था। मुंडाओं ने ही इन्हें उराँव नाम दिया। जन्म से मृत्यु तक उराँव संस्कृति सुनिश्चित नियमों से बँधी है। उत्तर आधुनिकता की आँधी के बीच भी उराँव अपनी परम्पराओं से विमुख नहीं हुए है। जनम और विवाह के समय तो आधुनिक/ यांत्रिक प्रभावों का संक्रमण उराँव संस्कृति पर दिखता है, लेकिन मृत्यु - संस्कार आज भी ठेठ पारम्परिक है।

जन्म जितना आवश्यक है, मृत्यु भी उतनी ही तय है। किसी शायर ने कहा है- 'मौत का एक दिन मुकर्रर है।' उराँव जनजाति भी ऐसा ही मानती है कि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी सुनिश्चित होगी ही। मृत्यु चाहे स्वाभाविक हो अथवा दुर्घटनावश, हर दशा में मौत का गम तो मनाया ही जाता है। लेकिन आकस्मिक दुर्घटना से हुई मृत्यु के बाद मृतक की आत्मा को पूर्वजों की आत्माओं की कतार में शामिल नहीं किया जाता है। इन्हें 'मुवा' कहते हैं। जैसे डूबकर मरी मृतात्मा को 'डूबल मुआ' और बाघ द्वारा मार डाले गए को 'बाघूत मुवा' कहा जाता है। इस किस्म की मृत्यु के बाद कहा जाता है - 'ईर नन्नरती बरचका हिकनर औंगे ईर पुर्खार संगे माल बरचर, औंगे धर्मेस इरिन पुर्खार संगे माल उइय्या- ईर जन्म ती नन्ना तरती बरका र:चर औंगे ईर छंटरर केरर तरकुटी मंजार।' अर्थात् 'ये बाहर से आए हुए थे, इसीलिए परमात्मा ने इन्हें पूर्वजों के साथ नहीं रखा- ये जन्म से ही बाहरी थे, इसी कारण छँट गए, एक किनारे हो गए।' अस्वाभाविक मृत्यु के शिकार व्यक्ति के शव को घर नहीं लाया जाता। शव को घटना स्थल के पास ही अथवा कहीं अन्यत्र दफना दिया जाता है।

उराँव संस्कृति में मृतकों को अधिकतर दफनाया ही जाता है। मृत विवाहितों का शवदाह भी किया जाता है। यह भी देखा गया है कि आषाढ़, सावन, भादों और क्वार के चार महीनों में शव दफनाये जाते हैं, जबकि शेष महीनों में शव जलाए जाते हैं। इसका कारण निश्चित तौर पर बरसात है। बारिश के मौसम में दाह संस्कार की कठिनता का अनुभव करते हुए उराँव लोगों ने इन दिनों में दफनाना सुगम समझा।

शव को दफनाने के पूर्व उराँव समाज में कई विधियाँ सम्पन्न की जाती हैं। यदि मृतक विवाहित पुरुष हो तो उसकी पत्नी बायें हाथ की अंगुली से उसके मस्तक पर तीन बार सिन्दूर लगाती है और यदि मृतक स्त्री हो तो उसका पति दाहिने हाथ की अंगुली से सिन्दूर लगाता है। अविवाहितों के लिए सिन्दूर का प्रावधान नहीं है। शव को घर से बाहर निकालकर उसकी बाँस से बनी अर्थी पर कफन के सफेद कपड़े से ढँक दिया जाता है। अर्थी के समीप एक टोकरी में पर्याप्त धान मृतक के नाम पर भोज खाने के पहले परिवार के सदस्य तेल, खिचड़ी आदि खाद्य पदार्थ श्मशान की दिशा में फेंक देते हैं और अपनी एड़ी के बल पर बायाँ पैर एक चक्कर घूमकर बालू या मिट्टी सामने फेंकते हैं। फिर घूमकर बिना पीछे देखे लौटकर भोज प्रारम्भ होता है। इधर ऐसी आकस्मिक मृत्यु से दिवंगत लोगों को भी सामूहिक या पारिवारिक कब्रगाह में दफनाया जाता है। ऐसा आधुनिक विचारों और सभी मृतात्माओं को समानता देने की मान्यता के कारण ही हो रहा है।

प्राणान्त के साथ ही उराँव समाज में गमी का माहौल व्याप्त हो जाता है। शव को गीले कपड़े से पोंछकर, सिर दक्षिण और पैर उत्तर की ओर लिटाकर सारे शरीर में पिसा हुआ जौ-तेल के साथ मिलाकर लगाया जाता है, ताकि स्वर्ग के रास्ते में आत्मा को किसी किस्म का अवरोध न हो। इसके बाद ही समूचे गाँव को, सभी सम्बन्धियों को मृत्यु की खबर दी जाती है। लोग एकत्र हैं, लेकिन गमी के कारण कोई एक दूसरे को जोहर (नमस्कार) नहीं करता। लोगों के नाम पर एक टोकरी रखी जाती है, जिसमें गाँव के लोग और सगे-सम्बन्धी इच्छानुसार धान, बर्तन, पैसे आदि रख देते हैं। फिर परिवार के लोगों को मृतक का चेहरा अंतिम बार दिखाकर चेहरे को ढँक दिया जाता है। यदि मृतक के नाती-पोते हैं, तो उन्हें शव पर तीन बार आर-पार कराया जाता है, ताकि नाती-पोते मृतक को भूल जाएँ। इन दिनों यह प्रथा समाप्त हो गई है, क्योंकि मौजूदा पीढ़ी के नाती-पोते अपने नाना-दादा को भूलना नहीं चाहते। उनके मन में पुरखों के प्रति सम्मान और अभिमान है।

अब शवयात्रा प्रारम्भ होती है। अर्थी पर रखे सजे शव के उठाने से पहले ही गृहस्वामिनी एक घड़े में धान, कपास, उड़द और सात या बारह दतवन रख देती है। शव की अर्थी को सिर्फ विवाहित पुरुष ही ढोते हैं, क्योंकि उराँव लोगों का विश्वास है कि अर्थी ढोने से अविवाहितों की शक्ति क्षीण होती है। शवयात्रा के रास्ते में मिले दो राहों या चौराहों पर अर्थी को कुछ देर रखने के बाद वहाँ एक मुट्ठी धान और थोड़ा कपास गिराया जाता है। फिर यह शवयात्रा उत्तर-दक्षिण की लम्बाई में खुदी कब्र के समीप पहुँचती है। वहाँ शव को कब्र के चारों ओर तीन बार घुमाकर शरीर पर हल्दी-तेल लगाकर, खिचड़ी -भात और हँड़िया (चावल की बनी शराब) मुँह में डालकर शव को कब्र में उतारा जाता है। शव कब्र में उतारने के बाद सांकेतिक दहन क्रिया सम्पन्न की जाती है। परिवार या सम्बन्धियों में से कोई व्यक्ति शव के पैरों की ओर खड़ा होकर दक्षिण की ओर मुँहकर, खैर की घास जलाकर कब्र की ओर फेंकता हुआ कहता है-

*ओंदा निग्गागे चिआ लगदम,*
*इन्नाती फिर निग्हैं मुहिम माल एरोम,*
*औंगे चिच्च चिआ लगदम,*
*फिर अम्के किर्रा इतरा।*

अर्थात् लो तेरे दहन के लिए आग दी जाती है, आज से तुम्हारा मुँह नहीं देखेंगे, इसलिए लौटकर नहीं आना।

इसके बाद कब्र में मुर्दे के सिर के पास चीरो घास खड़ी की जाती है। कब्र में लोग बर्तन, पैसे आदि भी डाल देते हैं। इसके बाद मिट्टी देने का सिलसिला शुरू होता है। पहले परिवार के लोग, फिर उपस्थित सभी लोग कब्र में मिट्टी डालते हैं, जैसे-जैसे मिट्टी भरती जाती है, चीरो घास को ऊपर उठाया जाता है, जिससे शव के सिर के पास मिट्टी में एक छेद बन जाता है। उराँव विश्वास के अनुसार यह छेद मृतक की आत्मा के आवागमन का मार्ग है। इसके बाद गृहस्वामिनी द्वारा दिए गए घड़े में तेल, पानी, दतवन के धान को कब्र पर छींट दिया जाता है। जितने दतवन घड़े में होते हैं- तीन, सात या बारह उतने दिनों तक परिवार में गमी या फुतका मनाया जाता है। इन दतवानों या दिनों की संख्या परिवार की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। गरीब लोग अधिक से अधिक तीन दिनों की गमी मनाते हैं,

जबकि सम्पन्न लोग बारह दिनों तक गमी का पालन करते हैं। कब्र में शव को दफनाने के बाद सभी स्नान करते हैं। नहाने के बाद पानी पर तेल की कुछ बूँदें गिराने का रिवाज उराँव लोगों में है। यह भी मान्यता है कि पानी पर तेल का फैलना शुभ होता है, जबकि न फैलना अशुभ होता है।

मृत्यु -संस्कार की प्रक्रिया में उराँव समाज हँड़िया (चावल से बनी शराब) का अनेक बार उपयोग करता है। शव के मुँह में हँड़िया की बूँदें दफनाने के पहले पकाई जाती है और दफनाने के बाद रखा जाता है। फिर शव के मुँह में अन्न, तम्बाकू, हँड़िया आदि देकर मृतक का बेटा अथवा कोई वंशज खैर घास से आग लगाता है। वह अग्नि संस्कार के पूर्व कहता है-' *आखरी चेहरा इरकन कि चिआ लगदन एम्हैं एड़पान्ता उर्मी गोसा दलगीर माफ ननके चिअके।'* अर्थात् 'आखिरी बार चेहरा देखकर आग दे रहा हूँ, हमारे घर के सभी क्रोध माफ कर देना।'

घास के मुट्ठे को जलाकर तीन या सात बार बायीं ओर से घूमकर वह शव रखी लकड़ी पर फेंक देता है। शेष लोग भी ऐसा ही करते हैं। चिता के जलते ही स्त्रियाँ वहाँ से चली जाती हैं। शव के जलते समय उसके हाथ-पैर का ऊपर की ओर उठना अशुभ माना जाता है। ऐसे लक्षणों को देखकर उराँव लोग विशेष पूजा करते-कराते हैं। शवदाह के बाद तीन, सात अथवा बारह दिन तक मृतक के नाम पर प्रतिदिन दतवन, पानी और भोजन दिया जाता है। शव के जलने के कुछ देर बाद उसकी हड्डियाँ चुन ली जाती हैं और उन हड्डियों को मिट्टी की हाँडी में रखकर जमींन में गाड़ दिया जाता है। इसी जगह पर उराँव लोग पानी, भोजन और दतवन देते हैं।

उराँव संस्कृति में छाया -प्रवेश की विधि मृत्यु संस्कार की एक विलक्षण धारणा है। छाया प्रवेश के पूर्व घर का कोई सदस्य यहाँ तक कि बच्चे भी भोजन नहीं करते। शाम के अंधकार में घर के देवस्थान अथवा पूर्वजों के बैठक-स्थल में एक तेल भरा दीपक जला दिया जाता है। इस कमरे में घर का कोई बुजुर्ग अथवा गृहस्वामी अकेला रह जाता है। घर/ परिवार के शेष लोग वहाँ चले आते हैं, जहाँ मृतक के नाम पर प्रतिदिन पानी, भोजन दतवन दिया जाता है। वे साथ में तीन दतवन, तीन मुट्ठी चावल, दोने में तेल-दीपक और घड़े में हँड़िया लेकर जाते हैं। चिन्हित स्थान पर वे दीपक में तेल भरकर उसे दतवनों के बीच रखकर जलाते हैं, अपनी-अपनी मुट्ठी का चावल उस ओर फेंकते हैं और जमकर हँड़िया पीते हैं। इसके बाद वे घर लौटते हैं और दरवाजे पर दस्तक देते हुए कहते हैं- खोलअः बाबू बलीन (दरवाजा खोलो)।

कमरे के अंदर बैठा व्यक्ति कहता है- नीन ने हिकदर, अपन हिकदर का विरान? (तुम कौन हो, अपने या पराए?)

इसके बाद कमरे का दरवाजा खुलता है तो सभी देखते हैं कि इतनी देर में जलते दीपक की लौ बुझकर जमीन में सट गई है। इस दृश्य को देखकर सभी कहते हैं- छाया प्रविष्टि हो गई है। यह सारा विधान उराँव संस्कृति की एक पहचान बन गया है। छाया प्रवेश की प्रक्रिया के बहाने भी लोग हँड़िया का प्रचुर सेवन करते हैं।

शवदाह के बाद जिस स्थान पर चुनी हुई हड्डियों को जमीन में एक हांडी में गाड़ दिया जाता है, वहाँ भविष्य की स्मृति के लिए कभी-कभी कोई पत्थर अथवा स्मृति चिह्न/ स्मारक बना दिया जाता है। इसे पुलकी पत्थर कहा जताा है। जहाँ शव को दफनाया जाता है, वहाँ भी पुलकी पत्थर अथवा स्मारक बनाए गए हैं।

नहाने के बाद भी सभी लोग शुद्धिकरण के लिए हँड़िया पीते हैं। यहाँ तक कि तीसरे-सातवें अथवा बारहवें दिन भोज के समय भी हँड़िया का व्यापक उपयोग किया जाता है। उराँव लोगों में ही नहीं, सभी जनजातियों में इस नशीले पेय का प्रचलन स्वीकृत है। झारखण्ड, ओड़िसा, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ की सभी जनजातियों में हँड़िया का व्यवहार पानी की तरह होता है।

समय के चक्र ने उराँव समाज की संस्कृति और आदतों में पर्याप्त परिवर्तन किए हैं। महानगरों और विदेशों में रहने वाले उराँव मृत्यु संस्कार में प्रयुक्त होने वाले खैर और चीरो घास कैसे प्राप्त कर सकेंगे? उनके पास न जो दतवन है, न हांडी और न दीपक है। उराँव संस्कृति बदलाव के ऐसे दौर में है, जहाँ अत्याधुनिक परिवेश की अतिव्यस्तता और यांत्रिकता के बीच पारम्परिक मृत्यु संस्कार भी प्रभावित हुए हैं। सुदूर देहातों और वनाच्छादित क्षेत्रों में अभी भी इन संस्कारों की रोशनी अवश्य ही मौजूद है।

# बंजारों के मृत्यु संस्कार

डॉ. रवीन्द्र भारद्वाज

इस संसार में जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अटल है- मृत्यु ही जीवन का अंतिम सत्य है। बंजारा समुदाय में शोक अधिक मनाया जाता है। यदि किसी युवा की मृत्यु हुई हो तो समूचा तांडा ही शोकसागर में डूब जाता है। तांडे में जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो जब तक दाह संस्कार प्रक्रिया पूर्ण नहीं होती, तब तक किसी के घर का चूल्हा नहीं जलता है। बंजारा में प्रौढ़ स्त्री एवं पुरुष के शव का दाह संस्कार करते हैं, किन्तु जो बालक एवं अविवाहित होते हैं- ऐसे शवों को दफनाया जाता है।

परिवार के किसी सदस्य की असमय मृत्यु होने पर मृत शरीर को घर में शवदर्शन के लिए रखा जाता है। अन्य स्थानों पर रहने वाले परिवार के लोगों के आने के बाद ही अंतिम संस्कार की तैयारी करते हैं। रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धियों और आसपास के लोगों को समाचार मिलते ही दाह संस्कार के लिए तुरन्त उपस्थित होते हैं। शवदर्शन के वक्त यदि शव पुरुष का है तो पत्नी जोर-जोर से अपने विचारों को अभिव्यक्त करती हुई रोती है-

*मारो साहेब, शेवटेरी नीद लेरो बाई ऑ हियाँ।*
*मारे सायबेरी जोड़ी तुटगी याड़ी*
*रामे सीतारी जोड़ी तुटे लागी याड़ी, ऑ हियाँ।*
*मारो सायेब आदे वाटेती रिसान चालो।*

पत्नी कहती है कि मेरा पति आखिरी नींद ले रहा है। मेरे साहब के साथ मेरी जोड़ी आज विभक्त हो गई। हमारे राम-सीता की जोड़ी आज अलग हो गई। मेरा साहब सबको छोड़कर जा रहा है।

मृत व्यक्ति की बहन भी शव के पास बैठकर जोर-जोर से विलाप करती है-

*मारो विरळा भेन गप्प का व्हेगो बाई, ऑ हियाँ।*
*मारो विरेळा भेने न छोड़न चलेगो बाई*
*भेनेतो बोलो कोणी चालो कोणी बाई, ऑ हियाँ।*
*आठ दाड़ेन मारे सावु आवु केतो बाई*
*मारे विरेळान की काळ गाठो बाई, ऑ हियाँ।*
*मारो नारायण भिया एक बारचं हेटेती उठजो, ऑ हियाँ।*

मृत व्यक्ति कि बहन कहती है कि मेरा भाई चुप क्यों बैठा है? अपनी बहन को छोड़ने क्यों नहीं आ रहा है? अपने बहन से बात क्यों नहीं कर रहा? आठ दिन के बाद तुझे लेने के लिए आऊँगा, ऐसा कहा था, पर काल उसे हमसे बहुत दूर ले गया । मेरे भाई एक बार उठकर अपनी बहन से बात तो कर, यह कहते हुए वह बिलखने लगती है।

बंजारा जाति में वृद्ध व्यक्ति के जाने से अधिक शोकाकुल वातावरण नहीं बनता। यदि वृद्ध के बजाय किसी तरुण की मृत्यु किसी हादसे से होती है, तो देखते ही देखते यह समाचार फैल जाता है और तांडे के लोग एवं आस-पास के सभी शोकाकुल हो जाते हैं।

शवयात्रा से पहले तेल मर्दन करके शव को नहलाने की विधि सम्पन्न होती है। नहलाने के लिए शव को उठाकर पटिये पर बिठाते हैं और सगे-सम्बन्धी, रिश्तेदार एवं परिवार के सदस्य तेल या घी लगाकर मर्दन करते हैं। तेल मर्दन के पश्चात् शव को अंतिम सार्वजनिक स्नान करवाते हैं, जिसमें सभी जन सम्मिलित होते हैं। इस वक्त मृतक की पत्नी क्रंदन करती है-

*मारे सायेबे री हंगोळी, ऑ हियाँ।*
*सायेबेन शेवटे री हंगोळी घाले लागे, ऑ हियाँ।*
*मारे साहेबेन ले जाये री तयारी हिये लाग*
*मारो साहेब, ऑ हियाँ।*
*अब म काई करू ये याड़ी*
*मारो कळजो तुटे जागो याडी, ऑ हियाँ।*
*मारो साहेब कु बेटो याड़ी, ऑ हियाँ।*

इस गीत का भाव यही है कि मेरे साहब को ले जाने के लिए अंतिम स्नान की तैयारी हो रही है। हे माँ! अब मैं क्या करूँ? हृदय टूटा जा रहा है। बड़ी विचलित अवस्था में अपनी व्यथा को प्रस्तुत करती है।

मृतक पिता के शव को जब नहलाया जाता है, तो बेटी व्यथित होकर रोती है-

*मारे बापून हंगाळी घाले लाग*
*मारे बापू री शेवटे री हंगोळी, ऑ हियाँ।*
*मारे बापू री हवेली ठाली पड़गी, आं हियाँ*
*मारो बापू अब कत भेटिये, ऑ हियाँ।*

उपर्युक्त गीत में बेटी पिता के गम में व्याकुल होकर विलाप कर रही है। लड़की कहती है कि आज मेरे पिता को अंतिम स्नान करवाया जा रहा है। आज मेरे पिता सबको छोड़कर जा रहे हैं। उनकी हवेली उनके बिना वीरान हो गई है। अब मुझे मेरे पिता कहाँ मिलेंगे? बीती बातों को बार-बार स्मरण करती हुई वह रोती है।

शव स्नान की विधि के पश्चात् मृत व्यक्ति को नया वस्त्र पहनाया जाता है। कोई पुराना वस्त्र शव के शरीर पर ढंका जाता है। समय के साथ परिवर्तन भी दिखाई दे रहा है। 'कफन' शव पर ढँकने के समय मृत व्यक्ति की बहन सम्बोधित करती है-

*मारे विरेळा री जत्रा भराये लागी*
*जत्रा सारू लोक गोळा व्हिये लाग, ऑ हियाँ।*

बहन की यही व्यथा स्पष्ट कर रही है कि मेरे भाई की अंतिम यात्रा भरने जा रही है। इस यात्रा में सम्मिलित होने के लिए लोग दूर-दूर से एकत्रित हो रहे हैं। शव को अर्थी पर रखने के पश्चात् शव यात्रा शुरू होती है। अर्थी को बिरादरी के लोगों द्वारा ही उठाने की परम्परा रही है। इस सम्बन्ध में एक ग्रामीण कहते हैं- 'शव को श्मशान तक ले जाने के लिए अर्थी बनाते हैं। दो बड़ी लकड़ियों को समानान्तर रखकर बीच में थोड़े अंतर से पाँच छोटी लकड़ियाँ रस्सी से बाँधते हैं। डोरी बीच में तोड़ी नहीं जाती है। लकड़ियाँ बाँधने के बाद जो डोरी बचती है, उसे अर्थी में ही छोड़ देते हैं। शव यात्रा में सामान्यतया पिता की अर्थी को

पुत्र कंधा देते है। मृतक व्यक्ति की कोई संतान नहीं है तो बिरादरी के लोग कंधा देते हैं। बंजारा में शव के साथ स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती हैं। महिलाएँ दु:ख व्याकुल होकर रोने लगती है-

*मारो विरेळा कुळसे देस चालो, ऑ हियाँ।*
*विरेळा री मुरत कना दकाये।*
*मारो विरेळा रिसान चालोये, ऑ हियाँ।*
*मारे विरेळानं केरी नजर लागी याड़ी ये*
*विरेळा री काई आठवण काडू याड़ी ये ऑ हियाँ।*

बंजारा समुदाय में जिनके पास खेती है, उसी खेत में मृतक का दाह संस्कार करते हैं। जिनके पास खेती नहीं है, ऐसे बंजारे श्मशान भूमि में या सार्वजनिक जगह पर अंतिम संस्कार की विधि सम्पन्न करते हैं। तांडे के लोग शव जलाने के लिए लकड़ी जमा करते हैं। वह यह काम मुफ्त में करते हैं। सूखी लकड़ी का ढेर इस ढंग से रचा जाता है कि चिता में आग लगने पर लकड़ियाँ जलकर बिखरने न पायें और शव इधर-उधर गिरने न पाये।

दाह संस्कार के समय मुँह आकाश की ओर करते हैं, और पैर दक्षिण की ओर, सिर उत्तर की तरफ करते हैं। कहीं-कहीं बंजारे सिर दक्षिण की ओर करते हैं और पैर उत्तर की ओर, क्योंकि शव का चेहरा एवं आँखें उत्तर की ओर देखें, यह भी धारणा कहीं-कहीं देखने को मिलती है। शव को अग्नि देने से पहले शव के मुँह में घी एवं शक्कर डालकर और शव के मुँह में सोने या अन्य धातु का टुकड़ा रखकर कुमकुम आदि लगाकर पूजा की जाती है। शव को पुत्र अग्नि देता है। जब तक चिता की आग प्रज्ज्वलित रहती है, तब तक चिता छोड़कर जाते नहीं हैं।

दाह संस्कार के पश्चात् सभी बंजारे वापस आते हैं। वापसी में किसी नदी-जलाशय पर स्नान करके मृतक के आँगन में जाकर सभी बैठ जाते हैं। बैठे हुए लोगों के अंगूठे पर थोड़ा-थोड़ा पानी डालते जाते हैं। तांडे का नायक उठकर शोकाकुल परिवार को दिलाशा देता है और दु:ख भूलने के लिए सहानुभूति के साथ सान्त्वना देता है। तेरहवीं की तिथि निश्चित करता है। मृतक की पत्नी की आवाज आती है, वह फिर से जोर-जोर से विलाप करती है-

*सायेबा, तू मन आदे पर वाटे छोड़गो*
*अब बाल बच्चा केरे सावु देके*
*तू तो जल्मेरो हमेन छोड़न चलेगो, ऑ हियाँ।*
*भूके तरसे छं करन कुळे खबर लिये, ऑ हियाँ।*
*साहेबा, मनं छोड़न कत ग्यो तू, ऑ हियाँ।*

उपर्युक्त शोकगीत का भाव यही है कि शोकाकुल युवा पत्नी फूट-फूटकर रो रही है कि- हे मेरे साहेब! तुम मुझे आधे रास्ते पर क्यों छोड़ गये! अब ये बच्चे किसकी ओर देखेंगे? तुम तो अब हमें इस जन्म में छोड़कर चले गये। बाल-बच्चे भूखें-प्यासे हैं, इसकी अब कौन खबर लेगा? तुम हमें इस संसार में छोड़कर क्यों चले गये।

बंजारा समुदाय में व्यक्ति के मरने के बाद तीसरे दिन अस्थियों का विसर्जन करके दु:खी परिवार को रिश्तेदारों की ओर से माँस खिलाया जाता है। सब मिलकर शराब पीते हैं। इस प्रथा का प्रचलन अब बहुत कम हो गया है? साठ-सत्तर प्रतिशत बंजारे तीसरे दिन कार्यक्रम न करते हुए तेरहवें दिन ही तेरहवीं विधि सम्पन्न करते हैं। महाराष्ट्र में बारहवें दिन गंगा (गोदावरी) जैसी पवित्र नदी में अस्थियाँ विसर्जन की जाती हैं। तेरहवीं के दिन रिश्तेदार एवं सगे-सम्बन्धी एकत्रित होते हैं और दु:खी परिवार जनों को दिलाशा देते हैं। विधवा-बहन को भाई दिलाशा देता है, तो बहन रोती हुई कहती है-

*काई खावु काई पिवु भिय्या, ऑ हियाँ।*
*मन भुख लागेनी तरस लागेनी*
*म वनवासी व्हेगी भिय्या, ऑ हियाँ।*
*मारे बाल बच्चा झुरन मर रे*
*काई अंधारो करन चलेगो, ऑ हियाँ।*

इस शोकगीत में बहन अपना दु:ख व्यक्त कर रही है। वह कह रही है कि अब मुझे इस वियोग के कारण न भूख लगती है, न प्यास लगती है। हे भाई! देख तेरी बहन वनवासी हो गयी, मेरा दुनिया में कोई नहीं। जो था वह तो हमें अंधेरी कोठरी में झोंककर चला गया।

# अन्त्येष्टि संस्कार

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

जिसका जन्म होता है, उससे कोई भी बच नहीं सकता। ईश्वर भी पृथ्वी पर अवतार रूप में जन्म ले तो उन पर भी यह नियम लागू होता है। यही कारण है कि राम हों या कृष्ण, वे भी मृत्यु के नियम से बच न सके। प्राणियों की मृत्यु होती है। मानव समाज संस्कार सम्पन्न समाज है। इस समाज में जन्म पूर्व से मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों का अनुपालन किया जाता है। यों तो संस्कारों की संख्या में एकरूपता नहीं है, परन्तु स्थूल रूप से सोलह संस्कार बताये जाते हैं।

संस्कार शब्द का अर्थ है धार्मिक विधि-विधान अथवा वह कृत्य जिससे शारीरिक तथा आध्यात्मिक प्रकृति के अनुसार सात्विक अनुष्ठान। संस्कार के अनुष्ठान से व्यक्ति संस्कृति या संस्कार सम्पन्न हो जाता है। तब उसमें विलक्षण और अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है। मानव जीवन के निर्माण और सर्वांगीण विकास में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। संस्कारों में आरम्भ के तीन संस्कार जन्म से पूर्व के हैं। फिर छः संस्कार बाल अवस्था के हैं। उनके बाद के पाँच संस्कार शैक्षणिक हैं। शिक्षा के बाद विवाह और जीवन के बाद मृत्यु होने पर अन्त्येष्टि संस्कार है। यह परिवार के लोगों तथा अन्यों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

संस्कार की क्रिया तो आजकल भी वे ही हैं, परन्तु विधिवत् तो अब कतिपय संस्कार ही किये जाते हैं। जन्म पूर्व गोद भराई की जाती है, जो सीमन्तोन्नयन के समकक्ष होती है। नामकरण भी होता है, परन्तु उसका उत्सव नहीं होता। कर्णवेध भी बिना उत्सव के हो जाता है। आजकल लड़कों का नहीं, लड़कियों का कर्णवेध होता है। विद्यारम्भ भी बिना उत्सव के हो जाता है। उपनयन संस्कार अवश्य किया जाता है, केशांत या गोदान कुछ करते हैं। विवाह संस्कार धूमधाम से होता है। इसके बाद अन्त्येष्टि बहुधा परम्परानुसार की जाती है।

अन्त्येष्टि जीवन की अंतिम दृष्टि है, जिसमें मानव का पूरा शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है। दृष्टि का अर्थ पूजा भी होता है। मृतक संस्कार में मृतक के प्रति पूजाभाव रहता है। हर धर्म की विधि में आदर-पूजा भाव होता है। इस संस्कार के साथ ऐहिक जीवन समाप्त हो जाता है। यह जीवन का अंतिम अध्याय है। जात संस्कार से इस लोक को सुधारा जाता है और अन्त्येष्टि द्वारा परलोक सुधारा जाता है।

*जात संस्कारेणेमं लोकम भिजयति मृत संस्कारेणामुं लोकम।*

-बोधायन पितृमेघसूत्र, 3/1/4

अन्त्येष्टि के मंत्र ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं। इसका विधान कृष्ण यजुर्वेद के तैतरीय आरण्यक के छठें अध्याय में प्राप्त होता है। कुछ गुह्य सूत्रों में भी इसका विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। इस संस्कार को सम्पन्न करने से संक्रामक रोग और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इस संस्कार के द्वारा मृतक और जीवित के प्रति गृहस्थ के कर्तव्यों का समन्वय होता है। यह पारिवारिक और सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान का सामंजस्य और जीवित सम्बन्धियों को सान्त्वना प्रदान करने का अवसर होता है।

मृतक संस्कार संसार में सब दूर होता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में मृतक के साथ भय और कष्ट का भाव जुड़ा हुआ है। मृतक के प्रति अपनत्व या स्नेह, अविनाशी आत्मा के प्रति सम्मान, मृत्यु से भय और मृत शरीर को उचित समय पर घर से हटाना। इन सभी कारणों से अन्त्येष्टि संस्कार के विभिन्न कृत्यों का जन्म हुआ। मानव शव के अंतिम संस्कार के भिन्न-भिन्न प्रकार रहे। पाषाण युग में शव को निर्जन में रखकर बड़े-बड़े पत्थरों से उसे ढँक देते थे। यह अश्म (पाषाण) में शयन था। इस अश्मशयन शब्द का तद्भव रूप श्मशान है। यह भी एक विचार है- श्मशान शब्द के उद्भव का। जहाँ शव का अंतिम संस्कार किया जाता है, उसे श्मशान कहते हैं। श्मशान में जलाया जाता है, गाड़ा जाता है। अथर्ववेद में गाड़ने (निखात) दाह (दग्ध) परप्त और चौद्धिताः का संकेत मिलता है-

*ये निखाता में परीप्ता ये दग्धा ये चौद्धिताः।*
*सर्वांस्तानग्न आं वह पितृन दविषे अन्तवे।।* - 10/2/ 34

आजकल हिन्दुओं में सर्वाधिक प्रचलन शव का दाह संस्कार ही है। चिता को प्रज्ज्वलन के लिए घी, कपूर, तिल, मूँज, राल आदि का भी उपयोग किया जाता है। लकड़ी-कंडों की न्यूनता के कारण आजकल विद्युत शवदाह गृह भी नगरों में क्रियाशील हैं। तैतरीय आरण्यक में पितृमेघ शीर्षक से अन्त्येष्टि संस्कार तथा दशाह या दस दिनों तक होने वाले विभिन्न कृत्यों का वर्णन है। वे गतिविधियाँ आज प्रचलित इस संस्कार की प्रमुख क्रियाओं के समान ही प्रतीत होती हैं।

भारतीय परम्परा में कुछ बातें सर्वमान्य हैं, तदनुसार परलोक होता है। पाप से नरक और पुण्य से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। दान देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। दान पाने का पात्र ब्राह्मण होता है। अतः मृतक और परिवार जनों की इस आस्था की शांति के लिए परिवार की क्षमता के अनुसार मृतक के हाथ से गोदान आदि दिया जाता है। आटा, दाल, चावल, नमक, मिर्च-हल्दी आदि एक थाली में रखकर किसी ब्राह्मण को दान करवाया जाता है अथवा देवालय में वह दान किया जाता है। इस क्रिया से योग्य को दान देकर संतुष्ट किया जाता है। उसके संतोष से मृतक और परिवार के लोग भी संतोष का अनुभव करते हैं।

व्यक्ति के मरणासन्न होने पर व्यक्ति को पलंग से उतारकर भूमि पर लेटा दिया जाता है। भूमि सबकी माता है। उस पर ही उसका जन्म होता है और उसकी गोद में ही उसकी मृत्यु हो। पलंग पर मृत्यु होने से वह पलंग और उस पर का बिस्तर अशुभ और अस्वास्थ्यकर हो जाता है। अतः उसे शुभ और स्वास्थ्यकर बनाये रखने के लिए उसे भूमि पर लिटाया जाता है।

जिस स्थान पर मृतक को लिटाया जाना हो, उस स्थान को गोबर (सम्भव हो तो गाय के गोबर) से लीपकर पवित्र कर दिया जाता है। फर्श हो तो उसे धो देते हैं। तिल और कुश वहाँ बिछाते हैं। वैदिक काल से ही ये पवित्र माने जाते हैं। उससे वह भूमि पवित्र रहती है, वह शव भी प्रदूषण रहित रहता है।

शव का उत्तर दिशा में सिर रखकर लिटाया जाता है और उसके आसपास जल की रेखा बना दी जाती है। यह एक तांत्रिक प्रक्रिया का लोकरूप है, जिससे उस शव की भूत-पिशाच आदि अदृश्य मायावी शक्तियों से रक्षा हो सके और उस मृतक की आत्मा भी उस जलधर सीमा के भीतर शव तक सीमित रहे, जिससे घर भविष्य में सुरक्षित रह सके।

मरणासन्न को गंगाजल पिलाया जाता है, और तुलसी दल को मुख में रखा जाता है। गंगा जल निर्दोष और पवित्रतम जल है। उससे शव में विकार शीघ्र नहीं होता और वह जल्दी नहीं बिगड़ता। परम्परानुसार गंगा मोक्षदायिनी है। वह रोग, अपवित्रता, अशुद्धि और शव को मुक्ति प्रदान करती है। इसलिए परम्परानुसार गंगाजल पिलाया जाता है। तुलसी दल भी स्वास्थ्यकर, वातावरण प्रदूषण रहित रखने वाला और पवित्र रखने वाला माना जाता है। अत: उसका सेवन करवाया जाता है। सम्भव हो तो मुख में मूंगा और आँख में मोती रखा जाता है। ये सब शव को और वातावरण को प्रदूषित नहीं होने देते।

मरणासन्न के पास श्रीमद्भागवदगीता के अट्ठारवें अध्याय का पाठ किया जाता है, भजन गाये जाते हैं। मृत्यु के बाद तक जब शव घर में रहे, तब तक यह क्रम चलता रह सकता है। इससे मृतक का मन संसार से विमुख होकर ईश्वरोन्मुख हो सके और उसे सद्गति प्राप्त हो। शव को वस्त्र से ढँक दिया जाता है, जिससे उसके अंगविकार ढँके रहे और प्रदर्शित न होते रहें। शव को श्मशान तक ले जाने की और शवदाह की जिम्मेदारी मृतक के ज्येष्ठ पुत्र या अन्य पुत्र या निकट के प्रियजन का मुख्य उत्तरदायित्व रहता है। शव के विभिन्न कार्य करने वाले व्यक्ति का मुण्डन किया जाता है। सिर पर चोटी रखी जाती है। शुद्धता के लिए स्नान किया जाता है। स्नान करके नयी धोती पहनी जाती है। शव को स्वजन स्नान करवाते हैं। पुरुष शव को पुरुष-नारी शव के लिए नारियाँ स्नान करवाती हैं।

इसके लिए घर से बाहर दो-तीन कंडे जलाये जाते हैं। इनकी आग पर एक दोना (हाँडी) में पानी गरम कर लिया जाता है। उस जल से शव को स्नान करवाया जाता है। दोनी को जमीन पर नहीं रखा जाता। उसे मृतक की पत्नी के हाथ में दे देते हैं। मृतक के लिये लाये गये सफेद वस्त्र में से कमर पर लपेटने के लिए कपड़ा फाड़ कर पट्टी और कमर पर बाँधने के लिए एक रस्सी हेतु चिंदी ली जाती है और उससे उसे लंगोट पहना दी जाती है। स्नान के बाद नया वस्त्र धारण करवाया जाता है। क्योंकि यह उस व्यक्ति के अंतिम संस्कार का उत्सव है। यह ध्यान रहे उस श्वेत वस्त्र को फाड़ने के लिए शस्त्र का उपयोग नहीं किया जाता है। यह परम्परा का निर्वाह तो है ही। साथ ही यह भी व्यक्ति के अंतिम संस्कार के समय शस्त्र का होना आवश्यक नहीं है। अत: कम से कम संसाधनों से संस्कार सम्पन्न किया जाए। फिर शस्त्र हिंसा का साधन है। उससे वस्त्र प्रदूषित होने की सम्भावना रहती है। वह रजोगुण का प्रतीक है। यह समय सात्विक गुण का है, रजोगुण या तमोगुण का नहीं। फिर शव को सोल पहनाया जाता है। वह रेशमी होता है। उत्तरीय नहीं पहनाया जाता। नया यज्ञोपवीत पहना दी जाती है। यज्ञोपवीत उसे ही पहनाते हैं जो उसके लिए पात्र हो। भाल पर टीका लगाते हैं। मुख में पान का बीड़ा और कुछ मीठा रखा जाता है। व्यक्ति की यह अंतिम यात्रा होती है। अत: परिवार उस व्यक्ति को पूरी तरह से सजा-धजा कर उत्सव और आदर सहित अंतिम विदाई यात्रा करते हैं। पंचक में मृत्यु होने पर ऐसा होता है- आटे के चार पुतले बनाकर अर्थी पर रख देते है, श्मशान में पंडित पूजा करवाता हैं। समस्त संयोजन स्त्रियों का भी किया जाता है। यदि मृतक नारी हो तो स्नान के बाद उसे रंगीन, सधवा हो या विधवा और बहुधा केसरिया साड़ी, कंचुकी, घाघरा पहनाये जाते हैं। केश संवारकर चोटी की जाती है। माथे पर कुंकुम की बिन्दी और हाथ पैर में कुंकुम की मेहंदी लगाते हैं। गले में मंगलसूत्र, कान में बाली और हाथों में कंगन पहनाये जाते हैं। नाक में काँटा पहनाया जाता है। पहले से पहना हो तो उसे निकालते नहीं है। स्पष्ट ही सधवा के सब शृँगार किये जाते हैं। कानों में ऊंबका रखा जाता है। सधवा का यह अंतिम शृँगार होता है। अत: परिवार का आदर और मृतक की भावना की इसमें रक्षा करने का उपक्रम रहता है। व्यावहारिकता की दृष्टि से असली सोने-चाँदी के आभूषण उस समय उतार लिये जाते हैं, ताकि परिवार को अधिक हानि न हो।

शवयात्रा के प्रस्थान करते ही घर की स्त्री हाथ में दोनी (हाँडी) लेकर सब एकत्रित महिलाओं के साथ थोड़ी दूर तक अर्थी के पीछे-पीछे जाती है। फिर वह हाँडी मार्ग में ही पटककर फोड़ दी जाती है, और वे स्त्रियाँ वापस लौट जाती हैं। थोड़ी देर बाद वे स्त्रियाँ नदी, तालाब पर जाकर अथवा जैसी सुविधा हो उससे स्नान करती हैं। यह शुद्धि के लिए आवश्यक है। हाँडी मृतक के निमित्त फोड़ी जाती है, अर्थात् यह जीवन और शरीर समाप्त। साथ ही उस शव का जीवन यदि उस हाँडी रूपी घर में रह गया है तो उसे बाहर निकालकर मुक्त कर दिया जाता है।

शवयात्रा आरम्भ होते ही 'राम नाम सत्य' के उद्घोष के साथ वह आगे बढ़ती है। इस ध्वनि को सुनते ही राहगीर रास्ता दे

देते हैं, और ईश्वर का नाम जाप भी होता जाता है। कतिपय समुदायों में इसकी जगह अन्य उद्घोष भी करते रहते हैं। मार्ग में पैसे, पुष्प और मखाने भी उड़ाते जाते हैं। शवयात्रा में सम्मिलित लोगों के भाल पर गुलाल लगाते हैं। कुछ लोग शवयात्रा में ढोल अथवा बाजे के साथ सम्पन्न करते हैं। यह उस मृतक की सम्मानजनक उत्सव शवयात्रा का प्रतीक है। शवयात्रा आरम्भ करने के बाद बार-बार नहीं रोकी जाती है। विश्राम स्थल पर जाकर ही यह यात्रा रुकती है। वहाँ शव का विधि अनुसार जल से तर्पण करने के बाद कन्धा बदला जाता है। अर्थात् पीछे वाले आगे और आगे वाले पीछे हो जाते हैं। शव का सिर आगे हो जाता है।

श्मशान में प्रवेश करने के बाद अर्थी को स्नान करवाकर उत्तर दिशा में सिर करके रख दिया जाता है, जिससे शव की दृष्टि दक्षिण की ओर रहे। परम्परागत मान्यता है कि यमराज की दिशा दक्षिण है और वही मृतक के जीव को ले जाता है। अत: उस ओर शव की दृष्टि रहे। साथ में आये लोग चिता बनाने लगते हैं। शव के सिर की ओर से अग्नि देते हुए शव के पैर तक चिता को अग्नि दी जाती है। चिता आधी से अधिक जल जाती है, तब अर्थी के एक लम्बे बाँस के सिरे को भूमि पर रखकर फाड़कर उसमें एक घी भरा लोटा बाँधा जाता है। दाह कर्म करने वाला उस बाँस द्वारा चिता में मृतक के सिर पर घी डालता है। यह कपाल क्रिया कहलाती है। शरीर का सबसे मजबूत भाग सिर है, घी से वह भलीभांति जल जाता है।

कपाल क्रिया हो जाने के बाद शवयात्रा में आये लोग लकड़ी का टुकड़ा उस चिता पर डालकर अपनी श्रद्धांजलि देते हैं। मृतक के परिवार के लोग आगन्तुकों को हाथ जोड़कर विदा देते हैं। आगे के कार्यक्रम की जानकारियाँ दी जाती हैं। सब लोग जलाशय पर जाकर स्नान करके गीले कपड़े पहने ही मृतक के घर पर आ जाते हैं। नगरवासी लोग आजकल बहुधा घर जाकर स्नान करते हैं। स्नान करके ही घर में प्रवेश करते हैं। श्मशान के धुएँ का प्रदूषण स्नान से दूर हो जाता है।

सूर्यास्त के बाद शवदाह नहीं की जाती। परन्तु उज्जैन, काशी आदि में (आवश्यक होने पर) रात में भी शवदाह किया जाता है। छोटे बच्चों, साधुओं और कुछ समाजों में शव को गाड़ने की प्रथा है। अधजले शव को जल में विसर्जित किया जाता है

मृतक के शरीर के पहने वस्त्र और झाड़ू आदि बाहर फेंक दिये जाते हैं। पत्नी न होने पर हाँडी फोड़ने की क्रिया दाग देने वाला पुरुष करता है। उसके बाद सब स्त्रियाँ जलाशय पर स्नान कर गीले कपड़े से ही लौटती हैं। एक दीपक जलाकर रखा जाता है, जहाँ शव रखा गया था। सब उस दीपक के दर्शन करते हैं, यह उस मृतक की आत्मा का प्रतीक है। जो सदा ज्योतिर्मय रहती है। उस दिन से दस दिन तक घर में अशौच (सूतक) रहता है।

श्मशान से लौटने के बाद ससुराल पक्ष द्वारा भोजन हेतु कड़वा दिया जाता है। हर व्यक्ति को भोजन के साथ नीम की पत्ती दी जाती है। यह मृतक के वियोग के दु:ख के प्रतीक होने के साथ ही नीम-पत्ती खाने से प्रदूषण से मुक्ति और निरोग हो जाने का प्रतीक है। ससुराल पक्ष के लोग कड़वा का भोजन इसलिए देते हैं कि घर के लोगों के दु:ख में उनकी सहानुभूति हो सके। इसमें दाल, घी, आटा, हल्दी, मिर्च आदि देते हैं। घर में बिना बघार का सादा भोजन बहन या बेटी बनाती है। दामाद को केवल तीन दिन का सूतक होता है। कुटुम्ब अशौच सात पीढ़ी तक लगता है। यह कुटुम्बी एकता का प्रतीक है। शवयात्रा के समय स्त्रियाँ शव स्थान पर थाली में आटा बिछाकर उसे ढँक देती है। शवदाह करके दागियों (दाह करने वालों) के लौटने पर उसे खोलकर देखा जाता है। उसमें कोई आकृति बन जाती है। मृतक अगले जन्म में वही बनता है। यह माना जाता है।

मृत्यु के तीसरे दिन अस्थि चयन करते हैं। तीसरे दिन रविवार, बुधवार या शुक्रवार हो तो एक दिन पूर्व ही कर लिया जाता है। दूध वाले जल से गरम राख को ठंडा करके अस्थि चयन किया जाता है। कुछ अस्थियाँ एकत्र कर दो डिब्बे में या छोटी थैली में रख लेते हैं। शेष अस्थियाँ सहित राख को जल में विसर्जित कर दिया जाता है। अस्थि का एक भाग घर या श्मशान के पास के किसी वृक्ष की शाखा पर टाँग देते हैं। इसे घर का सदस्य जब भी हरिद्वार या गंगातट पर जाता है, वहाँ तर्पण-पूजा, श्राद्ध कर्म पंडित की सहायता से सम्पन्न किया जाता है। नगरों में आजकल सुविधा के लिए उठावने की प्रथा शुरू हो गयी है।

सूतक दस दिन (दशाह कर्म तक) रहता है। शवदाह

करने वाला व्यक्ति इस अवधि में कहीं भी बाहर नहीं जाता है। घर में बिना बघारा भोजन किया जाता है। इस अवधि में बाहर और घर के लोग अपवित्र और दु:खी रहते हैं। दाह करने वाला सिर पर साफा (सफेद) बाँधे रहता है। ये सब लक्षण देखकर कोई अन्जान भी समझ जाता है कि इसके घर में गमी हुई है।

कुछ लोग गरुड़ पुराण बिठाते हैं। जिस कमरे में शव रखा गया था, वहाँ मृतक का एक चित्र रखते है। पंडित निश्चित समय पर में गरुड़ पुराण का वाचन करता है। शवदाह करने वाला प्रमुख श्रोता होता है। घर के और बस्ती के अन्य लोग भी सुनते हैं। गरुड़ पुराण से प्रेत प्रसंग का इस समय वाचन होता है। इसमें मृतक के जीव की यात्रा, नरक के कष्ट, पाप-पुण्य के फल आदि का विस्तार से वर्णन होता है। इससे बुरे कर्म न करने की प्रेरणा मिलती है। यह गरुड़ पुराण वाचन पगड़ी के दिन तक चलता है।

उठावना होने के बाद दशाकर्म और बारहवाँ-तेरहवाँ के लिए चिठ्ठियाँ लिखना शुरू कर देते हैं। इस बीच सम्बन्धी परिचित मातम पुरखी (शोक संवेदना) हेतु आते रहते हैं। बारहवाँ-तेरहवाँ होने तक यह क्रम चलता रहता है। पुरुषों का बारहवाँ और स्त्रियों का तेरहवाँ होता है। इसके बाद शोक संवेदना हेतु लोग सोमवार या गुरुवार को ही जाते हैं। यह क्रम बरसी (वर्ष श्राद्ध) तक चलता रहता है।

मृत्यु के दसवें दिन अशौच दूर करते हैं। घर की सफाई करते हैं। कुटुम्ब के पुरुष लोग बाल देते हैं, और पूरे (घोटमोट) सिर-मुँह के बाल देते हैं। जिसके पिता जीवित हो वह मूँछ नहीं कटवाता है। स्नान कर सब पुरुष यज्ञोपवीत बदलते हैं। इस दिन दाल-बाटी या सादा भोजन किया जाता है।

पुरुष की मृत्यु पर घाट हो, जाने के बाद विधवा को सबके सो जाने के बाद नहलाकर पीहर से लाई टांडी सरपाव भाई द्वारा पहनाया जाता है। श्रृँगार उतारकर विधवा की चूड़ी पहना देते हैं। सधवा स्त्रियाँ उन स्त्रियों का रोना नहीं सुनती।

ये सब गतिविधियाँ देश, काल, समाज और जाति अनुसार बदलती रहती हैं। हर जाति की पद्धति में थोड़ा भेद होता है। पारम्परिक राजपरिवारों की पद्धति थोड़ी अलग होती है। वह भी देश-काल तथा समाज अनुसार थोड़ी भिन्न होती है। इस पूरी पद्धति के प्रति उत्तराधिकारी का कर्तव्य, अधिकार और सम्मान प्रकट करती है। अपनी-अपनी पद्धतियों के अनुसार आचरण किया जाता है। यह उसका सामाजिक कर्तव्य है। यह संतान के पितृ ऋण उतारने का एक रूप है, जिसे वह सम्पन्न करता है।

मृत्यु के बाद बारह-तेरह दिन का शोक पालन इसलिए भी आवश्यक है कि लोगों को शोक संवेदना के लिए दूर-दूर से आने में समय लगता है, फिर सबकी अपनी-अपनी व्यस्तताएँ और समस्याएँ रहती हैं। अत: सबको पर्याप्त समय मिल सके। समाचार पहुँचाने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है।

परम्परा के निर्वाह से व्यक्ति के चित्त में शांति रहती है और सामाजिकता का निर्वाह हो जाता है। उससे अनावश्यक सामाजिक निन्दा नहीं होती है। जो रूढ़ियाँ होती हैं, उनका खंडन नहीं किया जा सकता- 'रूढे: का खण्डना।' हर रूढ़ि के पीछे कोई न कोई कारण होता है। कालान्तर में वे रूढ़ियाँ रह जाती है और उनके कारणों को लोग भूल जाते हैं। लेकिन वे सब परम्पराएँ व्यक्ति, परिवार और समाज के हित के लिए पूर्वजों ने सोच-समझकर बनाई हैं। परम्पराओं के पीछे वे सब कारणों को हम नहीं जानते, परन्तु वे सब सोची-समझी रीतियाँ हैं। उनके पालन करने में ही सबका हित है।

मरणं प्रकृति: शरीरिणाम् - मरना शरीर धारी का स्वभाव है। परन्तु मनुष्य संस्कार सम्पन्न इसलिए है कि वह जन्म से मृत्यु तक के संस्कार को निष्ठापूर्वक निभाता है।

# मृत्यु संस्कार

डॉ. पूरन सहगल

एक बार भगवान महावीर स्वामी ने भगवान बुद्ध से प्रश्न किया- जन्म और मृत्यु में क्या अंतर है? प्रश्न सुनकर प्रभु बुद्ध तनिक मुस्कुराए और फिर नमित होकर शील वाणी में बोले- भगवान इस प्रश्न का उत्तर तो आप भी जानते हैं, किन्तु आपका आदेश है, इसके पालन में निवेदित हूँ- जन्म एक उत्सव है और मृत्यु महोत्सव है। महावीर स्वामी ने आगे पूछा- जीवन क्या है? भगवान बुद्ध ने कहा- 'जन्म और मृत्यु के मध्य का काल ही जीवन है। जन्म और मृत्यु जीवन रूपी सेतु के दो छोर है।'

हमारे चिन्तकों ने सदा से जन्म और मृत्यु के रहस्य को जानने के लिए गहन चिन्तन किया है और अंत में दोनों को एक सहज सत्य के रूप में स्वीकार किया है।

रामचरित मानस के वर्णन अनुसार जब भरत अयोध्या लौटकर आते हैं तो राम-सीता-लक्ष्मण के वन गमन, पिता दशरथ के श्रीधाम गमन और माता कैकेई के छल व्यवहार को जानकर व्याकुल हो उठते हैं, तब उन्हें कुलगुरु वशिष्ठजी समझाते हुए कहते हैं-

*सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।*
*हानि लाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ।।*

जन्म और मृत्यु विधि के हाथ है, ऐसा ज्ञानी वशिष्ठ जी कहते हैं। उस जन्म और मृत्यु के लिए हमने लोक में अनेक संस्कारों, नियमों, पूजा-अनुष्ठानों का प्रावधान किया है।

मृत्यु के पूर्व गीता आदि धर्मग्रंथों का श्रवण करवाकर प्राणी को मृत्युभय से मुक्त करवाने और चित्त को स्थिर करने का प्रयास

करना, दान-पुण्य करवाना और सांसारिक माया-मोह से मुक्त करवाना, मृत्यु को सहज करने का ही प्रयास है। ये सब संस्कार लोक जीवन में सर्वत्र ही मान्य हैं। मृत्यु की सत्यता को स्वीकार करने के कारण ही ये सब संस्कार निर्वाहित किए जाते हैं। उसकी अटल संभावना होने में किसी को भी शंका नहीं है। जब वह अटल है, तब उसे स्वीकारने में अधैर्य क्यों हो? वेदों, पुराणों और महाकाव्यों में भी अनेक कथा प्रसंग ऐसे हैं, जिनमें अमरता के वरदान की बात कही गई- और कथा के अंत में यह सिद्ध किया गया है कि मृत्यु को टाला नहीं जा सकता। स्वयं अवतारों ने भी अपना अवतार काल समाप्त हो जाने के पश्चात् मृत्यु का वरण कर इस सत्य को प्रमाणित किया है।

मृत्यु के पश्चात् देह को ठिकाने लगाने के अनेक माध्यम हो सकते थे। मानव देह को अग्नि संस्कार, समाधि संस्कार, जल समर्पण संस्कार आदि प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्नता प्रदान की जाती है। कबीर तो कहते हैं- विदेश में मरना ठीक है। जहाँ कोई अपना नहीं हो। इस शरीर को पशु-पक्षी खा जाएँ, जिससे मरने के बाद भी शरीर किसी काम आ सके।

संभवत: इसी परम्परा का निर्वाह पारसी समाज में किया जाता है। मानव देह को नहला-धुलाकर पवित्रता के साथ एक कूप में रख दिया जाता है, जिसे मांसभक्षी पक्षी नोच-नोचकर खा जाते हैं।

हिन्दू समाजों में अग्नि संस्कार का चलन है। अग्नि दाह के पश्चात् उस राख को नदी-सरोवर आदि में प्रवाहित कर दिया जाता है। अनेक नदी तटवर्ती अंचलों में मुखाग्नि संस्कार कर उस देह को नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है, जिसे नदी में रहने वाले कच्छ-मच्छ खा जाते हैं। कुछ समाजों में कुमार और कुमारियों को (किशोर अवस्था में) मृत्यु हो जाने पर जल में प्रवाहित कर दिया जाता है। उनका दाहकर्म नहीं किया जाता। इसी प्रकार शीतला माता के कारण मृत्यु प्राप्त देह को भी नदी में प्रवाहित किये जाने की परम्परा रही है।

नाथ सम्प्रदाय में मृत्यु के पश्चात् दाह संस्कार के बजाए समाधि देने की परम्परा है। हिन्दुओं के अलावा अन्य समाजों में जमीन में दफन करने की विधि संस्कार रूप में अपनायी जाती है।

एक प्रश्न बार-बार उठता रहा है कि मृत्यु के उपरान्त देह तो राख अथवा खाक हो जाती है या उसे पक्षी अथवा नदी के कच्छ-मच्छ खा जाते हैं, किन्तु उसमें रहने वाले प्राण का क्या होता है? चिंतकों ने आदिकाल से आज तक इस गुत्थी को सुलझाने के लिए गहन विचार किया है, किन्तु किसी भी निर्णय को सर्वमान्य नहीं किया जा सका। लोक आधारित एक साखी की माने तो वह कहती है- जीव जब देह से मुक्त होता है और अपने 'अयन' को त्याग देता है, तब वह तत्काल दूसरे गर्भ में जाकर स्थापित हो जाता है।

*इत अथमें उत ऊगमें, जिव बपुरो तत्काल।*
*मिले न परमानंद ती, जीव सदां बेहाल।।*

लोक कवि या लोक संत कहता है- जीव इधर अस्त होता है और फिर तत्काल अन्यत्र उदित हो जाता है। अर्थात् वह सूर्य की भाँति सदा प्रकाशित है, सदा विद्यमान है। एक देह से निकलकर दूसरे गर्भ में प्रवेश कर जाता है। आत्मा सूर्यवत् है। जिस प्रकार सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता। भौगोलिक कारणों से अस्त हुआ दृष्टिगोचर होता है। उसी प्रकार जीवन भी विगत हुआ आभासित होता है। वह वर्तमान भी है और भूत-भविष्य भी। ऐसा इस साखी का आशय है। वह अपने परमात्मा से कभी नहीं मिल पाता। सदा बेहाल रहता है। किन्तु कबीर कहते हैं-

*बजा नगाड़ा काल का मेरे मन आनंद।*
*कब मरिहों कब भेंटिहों पूरन परमानंद।।*

तब लगता है जीव या आत्मा अथवा प्राण पूरन परमानंद से भेंट करने को उत्सुक है। वह अपने परमात्मा में विलीन हो जाना चाहता है। इसकी पुष्टि में लोक कहता है-

*जीव देह ती मुक्त वै, पहुँचे साहिब द्वार।*
*आतम परमातम मिलै, यो विधि को निरधार।।*

यह साखी कहती है कि- मृत्यु के उपरान्त जीव देह से मुक्त होकर साहिब के दरबार अर्थात् ईश्वर की शरण में पहुँच जाता है। फिर आत्मा/ जीव परमात्मा में विलीन हो जाती है। ऐसा विधाता ने निर्धारण किया हुआ है।

यह मतान्तर हमारे चिन्तकों में 'लोक अनुभवियों में' संतों-

भक्तों में आज भी बना हुआ है। यदि जीव या आत्मा देह से मुक्त होते ही अन्य गर्भस्थित देह में स्थित हो जाता है, तब उसे परमात्मा से मिलने का आनंद कब और कैसे मिलता होगा? यदि वह तत्काल परमात्मा से विलग हो जाता है, तब उससे विलग होकर फिर अन्य देह में कैसे आ पाता होगा? जिस प्रकार जल की बूँद समुद्र में विलीन हो जाय और फिर उसी बूँद को विलग करना कठिन बल्कि असम्भव है, उसी प्रकार क्या आत्मा को परमात्मा में विलीन हो जाने के पश्चात् उसी तत्त्व रूप से विलग कर पाना सम्भव हो सकेगा?

ऐसे कई प्रश्न हमारे सामने सदा बने रहने के कारण लोक में मृत्यु पश्चात् अनेक संस्कारों का प्रावधान हुआ। लाख चौरासी से मुक्ति के लिए अनेक संस्कार हमने निर्धारित किए। भूत बाधा, प्रेत योनि आदि की संभावित स्थितियों से बचाने के लिए मृत्यु पश्चात् के अनेक संस्कार परम्परा ने निर्धारित किए है।

ऐसा ही संस्कार लोक चलन में रहा है, जिसे कुण्डा पंथी लोग अपने विशेष तरीकों और अनुष्ठानों के माध्यम से करते चले आ रहे हैं। कुण्डा पंथ वाममार्गी सिद्धियों एवं साधकों तथा साधनों की जनसामान्य में लालशा वृत्ति के कारण अस्तित्व में आया। इसी कुण्डा पंथ की ही एक पारंपरिक विधि है- शंकाढाल। यह उसी पंथ का एक उपक्रम है। कुण्डा अनुष्ठान के उपरान्त (यहाँ कुण्डा तथा काँचली पंथ का वर्णन अभीष्ट नहीं होने के कारण छोड़ा जा रहा है।) सभी सहभागीजन स्त्री-पुरुष गोलाकार बैठ जाते हैं। यह आयोजन भादवा बीज की रात्रि में किया जाता है।

उस वर्ष भर में जितने भी साधकों की मृत्यु हो चुकी होती है, उनका स्मरण किया जाता है और उसके लिए अमरपुरी वास की कामना की जाती है। अमरपुरी में जब आत्मा पहुँच जाती है, तब वह आत्मा अपने परमानंद में विलीन हो जाती है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इसी अनुष्ठान को 'शंकाढाल' कहा जाता है। शंकाढाल अर्थात् शंका का समाधान। यह शंकाढाल का आयोजन कभी-कभी कुण्डा आयोजन में पारंपरिक खान-पान के पूर्व भी होता है।

स्वर्गीय साधक का स्मरण करके गुरु उसका एक पुतला बनाता है। पुतला घास या वस्त्र का बनाया जाता है। सभी उपस्थित साधक उस पुतले पर दूध-पानी डालकर उसको स्नान करवाते हैं। यह उसका पवित्रीकरण माना जाता है। पवित्रीकरण के पश्चात् गुरु महाराज उस पुतले को गाड़ देने का आदेश देते हैं। चार पंथी साधक पुतले को लेकर जंगल में गाड़ने जाते हैं। जब गाड़कर लौट आते हैं, तब गुरु उनसे पूछता है-

- कहाँ गए थे ?
- चारों उत्तर देते हैं- साधक को सिद्ध करने गए थे।
- गुरु महाराज- कितने गए थे?
- चारों साधक-पाँच। (चारों साधक तथा पाँचवें की आत्मा)
- गुरु महाराज - लौटकर वापिस कितने आए?
- चारों साधक - चार
- गुरु महाराज - एक कहाँ गया? या पाँचवां कहाँ गया?
- चारों साधक - सिद्ध होकर अमरापुरी चला गया।

तब गुरु महाराज चारों साधकों को बैठने का संकेत करते हैं। चारों अपने-अपने स्थानों पर बैठ जाते हैं। साधकों द्वारा पुतला गाड़ने (सिद्ध करने) और लौट आने के बीच गुरु महाराज स्वयं अथवा उनके आदेश से दो साधक छत की कड़ी में लच्छे का (सूत को) एक लम्बा डोरा बाँधकर लटका देते हैं। उसी डोरे में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रूई के सात फूंबे (रूई के टुकड़े) क्रम से बाँधे जाते हैं। उस सतलड़े रूई को नीचे से जला देते हैं। आग ऊपर बढ़ती है, एक के बाद दूसरा फिर आखिरी रूई का टुकड़ा (फूंबा) जलता चला जाता है। यदि सातों फूबे क्रम से जल जाए, तब माना जाता है कि साधक अमरापुरी पहुँच गया है। अमरापुरी पहुँचने के लिए सात आसमान (आकाश) पार करना पड़ते हैं। यदि वह डोरा बीच में बुझ जाता है, तब जितने रूई के फूंबे शेष बच जाते हैं, तो माना जाता है साधक की आत्मा उतने आसमानों के नीचे अटक गई है। तब उपस्थित साधकगण उसकी मुक्ति के लिए भजन कीर्तन करते हैं। यदि सातों आसमान पार करने का संकेत मिल जाता है, तब सभी साधक खुशी मनाते हैं। मदिरा पान भी करते हैं। भजन-कीर्तन रातभर चलता रहता है। सूर्योदय पश्चात् सभी साधक अपने-अपने घर लौट जाते हैं।

मृत्यु पश्चात् के अनेक संस्कारों में यह शंकाढाल संस्कार वाममार्गी साधकों का एक विचित्र आस्था संस्कार है। जितने भी संस्कार हैं, वे निश्चित रूप से मृत्योपरांत ही किए जाते हैं।

मुस्लिम सम्प्रदाय में मृत्यु के पश्चात् आत्मा (रूह) खुदा के दरबार में पहुँच जाती है। कयामत (प्रलय) के दिन सबका फैसला होता है। पुनर्जन्म का सिद्धांत मुस्लिम दर्शन नहीं मानता।

मृत्यु के उपरान्त पुत्रों –पौत्रों द्वारा श्रद्धांजलि, तिलांजलि और तर्पण की परम्परा वैदिक युग से रही है। रामायण काल में तो वाल्मीकि जी और फिर मध्यकाल के महाकवि तुलसीदास जी ने गुरु वशिष्ठ द्वारा दशरथ के स्वर्गवासी होने पर श्री राम–लखन द्वारा स्नान कर तर्पण करने का स्पष्ट उल्लेख किया है।

*ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा।*
*मुनिहु कहें जलु काहूँ न लीन्हा।।*
× × ×
*करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी।*
*भे पुनीत पातक तम तरनी।।*
× × ×
*सुद्ध भएं दुई बासर बीते।*
*बोले गुरु सन राम पिरीते।।*

महाभारत काल में भी तर्पण का संस्कार महाभारत महाकाव्य में प्रमाणित है। युद्धोपरांत युधिष्ठर जी समस्त पाण्डव कुल और कुरू कुल के मृतकों का तर्पण करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मृत्यु के उपरांत किए जाने वाले प्राणी के निमित्त तथा अपने गृहस्थ के शुद्धिकरण एवं भूत–प्रेत बाधा से संभावित मुक्ति एवं रक्षा के निमित्त अनेक संस्कारों का प्रावधान शास्त्रों में (पुराणों में) तथा लोक परम्परा में प्रचलित हैं। गरुड़ पुराण को तो मृत्योपरांत संस्कारों की आचार संहिता ही माना जाता है। श्रद्धावश अथवा कभी–कभी भावी भयवश इन संस्कारों का पालन हिन्दू समाज तथा अन्य समाजों में अपने–अपने धर्म तथा लोक व्यवहार द्वारा निर्धारण के अनुसार किया जाता है।

# मरणोत्सव के मसाणिया गीत

डॉ. प्रहलाद चन्द्र जोशी

'जनम-वरण और मरण'- यह मानव जीवन के तीन शाश्वत धर्म हैं। जो जन्म लेता है- युवावस्था में वही वैवाहिक बंधनों में बंधकर 'एकोऽहं बहुस्यामि' जैसे जीवतत्त्वानुसार संतति उत्पन्न कर गृहस्थ सुख का आनंद उठाता है- और जब सांसारिकता के आनंद से तृप्त हो वृद्धावस्था की ओर बढ़ने लगता है, तब एक दिन ऐसा भी आता है, जब शंकराचार्य जी के मोहमुद्गर के अनुसार 'अंगम् गलितम्, पलितम् मुण्डम्, दशन विहीन जातक तुण्डम्, करघृत कांचित शोभित दण्डम्' के अनुसार मानव सर्व प्रकार से शारीरिक शिथिलता का अनुभव करने लगता है, तब जैन धर्म के संलेखना नियमानुसार उसे अपनी देह छोड़ने का उपक्रम करने लग जाना चाहिये। ऐसी मानसिकता बनाते जाना चाहिये कि अब उसका सांसारिकता से कोई नाता नहीं रहा। उसे प्रभु के भजन, श्रवण, वंदन कीर्तन आदि में अहर्निश व्यस्त हो जाना चाहिये। कुल मिलाकर जो व्यक्ति ऐसा करके सांसारिक माया-मोह के जाल से विमुक्त होकर, शांति पूर्वक मरण से साक्षात्कार कर लेता है, वही परम पद को प्राप्त कर सकता है। ऐसा नहीं कि जब मरण की बेला आये और मरण के भय से भयभीत हो अपने इस क्षणभंगुर नाशवान शरीर को बचाने के लिए इधर-उधर भागता फिरे। यह कर्म तो मोह जनित होता है जो कि उसे अधोगति ही दे सकता है- सुगति नहीं। इसलिए हर संयमशील एवं विचारवान पुरुष को चाहिये कि वह 'मरण' को हँस-हँस के गले लगाने का उपक्रम करे। उसका भजन-भाव, उसका प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण ही इस अवस्था में उसकी देह सुधार सकता है। ऐसे मनोभावों को अपनाने वाला ही सही मायने में अपनी गति को सुधार कर परमात्मा में लीन हो सकता है।

मालवा में इस अवस्था को प्राप्त करने वाले भजनानंदी ऐसे भी सत्पुरुष हैं, जो अपनी मृत्यु की कामना को लेकर उसे मरणोत्सव समझकर उस प्रभु की शरणागति प्राप्त करने के लिए नारदीय गीत या मसाणिया गीत गाते हैं। जब शरीर की इंद्रियाँ शिथिल

हो जायें, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और पंच कर्मेन्द्रियाँ जब अपना कार्य करना बंद कर दें तो उसे शरीर के प्रति आसक्ति भाव को त्याग देना चाहिये और उस विराट परब्रह्म में लीन होने का उपक्रम करना चाहिए। इसी भाव को आध्यात्म में वैराग्य भाव के साथ ग्रहण किया जाता है। जो तत्त्वज्ञानी है, जो ईश भक्त हैं, जो माया-मोह से परे हैं, उनके लिए मृत्यु भी एक उत्सव सदृश है।

मालवा एवं निमाड़ प्रांत में किसी भी वृद्धजन या साधु-संत की मृत्यु हो जाने पर ऐसे भजन गाये जाते हैं, यहाँ तक कि गीतों के आयोजन में वाद्ययंत्रों के साथ मृत व्यक्ति की शव यात्रा श्मशान भूमि तक संजोई जाती है। झांझ-मंजीरे एवं मृदंगादि वाद्ययंत्रों के आरोह-अवरोह में वैराग्य भाव को उद्दीप्त करने वाले गीत गाते हुए उस शव को श्मशान तक अंतिम यात्रा करवाई जाती हैं। संत कबीर ने भी इसे नारदीय भक्ति निरूपित किया है। नारद जी चूँकि भगवान के अति निकट माने जाते हैं। अत: ऐसे वैराग्य भावोद्रेक वाले गीतों को मसाणिया गीत भी कहा जाता है। जिस किसी ने संसार के माया-मोहादि प्रपंचों का परित्याग कर दिया है, जो सदैव आत्म स्वरूप में रमे होकर जीवन मुक्त साधक की भाँति आत्मज्ञानी एवं आत्मदर्शी हो गये हैं। वे ही इस अंतिम यात्रा के आनंद की अनुभूति के अधिकारी हो सकते हैं। क्योंकि आत्मा भी परमात्म तत्त्व में विलीन होने के लिए इस भौतिक शरीर का त्याग करके परलोक प्रस्थान को छटपटाती रहती है। अत: मृत्यु के पश्चात् परब्रह्म की निकटता प्राप्ति हेतु मसाणिया गीत की भाव व्यंजना का आस्वादन करने को यह आत्मा अकुलाती है।

मृत्यु गीतों में वैराग्य भावना होने से मृत्यु की विभीषिका नहीं खलती। गीता के संन्यास योग का यही सार है कि मानव गृहस्थ एवं समस्त कामनाओं का त्याग करके संतोष से अपना जीवन यापन करे। 'जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया'- वाली उक्ति को हृदयगम करने वाला पुरुष ही ऐसे निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। जीव भी जब अपने माया-मोह को त्याग देता है, तब मरण भी उसे उत्सव सदृश मंगलमय लगने लगता है। गीतों में निहित वैराग्य की भावना इतनी प्रभावमयी होती है कि स्थिति का उल्लास, आत्म स्वरूप का ज्ञान आदि भावनाएँ एवं चिन्तनाएँ हृदय को झकझोर देती हैं। उसका प्रभाव श्मशान वैराग्य की अपेक्षा स्थायी होता है। इन लोक गीतों के दार्शनिक चिंतन से काव्य रस उमड़ने लगता है। आकर्षण और राग की डोर में बँधा मानव जब संसार से पलायन करता है, तब उसके परिजनों का विशेषकर उसकी अर्द्धांगिनी का मनोवैज्ञानिक विलाप और करुणा के साथ संसार की असारता एवं मानवी देह की नश्वरता का भाव जाग्रत कर देता है। यथा-

*ओ म्हारा हंसा रे लोभी जिवड़ा रे।*
*काया री बाड़ी में मेली मती जाजो।*

ऐसे भजनों में प्राणी (पंछी) के उड़ जाने की परिकल्पना में नश्वर देह और आत्मा के चैतन्य एवं शाश्वत स्वरूप में संकेत छिपा हुआ है। मानव एवं संतों का परम लक्ष्य निर्गुण धाम को जाना है। संत ब्रह्मगीर ने तो ब्रह्म के ध्यान में ब्रह्म को ही देवता माना है और ब्रह्म से मिलकर ही ब्रह्म की सेवा की है। इस विराट कल्पना को इन पंक्तियों में खोजा जा सकता है-

*नाद से बिन्दु जमाइया जैसा कुम्भ का काचा।*
*काचा कुम्भ ना रहे, एक दिन होय विनाशा।*

संत मनरंगीर के एक भजन का भाव है कि 'यह शरीर सप्त धातु का बना पींजरा है। इसमें तीन सौ साठ पट्टे डले हैं। यह सिर्फ एक कड़ी का जुड़ाव है, जिस पर सारा ठाठ रचा है। यह न तो सोता है न जागता है। तू तो बिन ब्याही का पूत है, जिसके संग में सोहम् पुरुष है। बाँझ का बच्चा भी झूला झूल रहा है। अनहद नाद बज रहा है, और अजपा जाप चल रहा है। जिस तरह तालाब में अष्टकमल दल खिल रहा है, ऐसे ही बच्चे के शरीर में प्राणों का संचार हो रहा है। यथा-

*सप्तधात को पींजरों, पाट्या तीन सौ साठ।*
*एक कड़ी रो जड़ाव हे तामें रचिया ठाठ।*
*आकाश झूलो बांधियों, बांध्यो निरगुन डोर।*

मसाणिया गीत किसी युवा बालक, स्त्री की मृत्यु पर नहीं गाये जाते। इसमें प्राण रूपी पंछी के तन रूपी पिंजरे से उड़ जाने की कल्पना के साथ ही नश्वर देह और आत्मा के चैतन्य एवं शाश्वत स्वरूप का संकेत किया गया है। यथा -

*पींजरा से पोपट उड़ी गयो रे बेठ्या जमना तीर।*
*जमना में पोपट न्हई रह्यो रे खासी बाग लगाई।*

मालवा एवं निमाड़ की कई जातियों में भक्ति रस में आप्लावित प्राणियों के स्वजनों द्वारा मृत्यु के समय करुण रस में परिपूर्ण गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में दाह संस्कार के समय किये जाने वाले आचारों का वर्णन या मृत व्यक्ति के गुणों का कीर्तन किया जाता है। यथा-

*लाडला तम चढ़ो अणी घोड़ी पर,*
*चढ़ो अणी घोड़ी ने बाग मरोड़ी।*
*लक्कड़ की घोड़ी ने मोया की डोरी।*
*चार जणा मिल तोकी ने चाल्या, उपर जगन्नाथी ओड़ी,*
*पईसा का तो नाड़ा लाया और मोया की डोरी।*
*चार जणा तोकी ने चाल्या पाछे हांडी फोड़ी।*

ऐसे गीतों में मृतक की शवयात्रा से लेकर दाह संस्कार तक के कर्तव्यों का आकलन पाया जाता है। यहाँ घोड़ी, मोया, जगन्नाथी, नाड़ा, हांडी आदि परिभाषिक शब्दों में शव यात्रा की पूरी प्रक्रिया को समझाया गया है।

मानव जब तक जीता है, अपने घर, वस्त्र, खान-पान एवं रीति-रिवाजों को उच्चतम प्रदर्शित करता है। किन्तु जब वह इस संसार चक्र से मुक्ति पाता है तो कुछ भी साथ नहीं ले जा पाता, सब यहीं का यहीं धरा रह जाता है। मात्र फूस की अर्थी ही उसका अस्थायी विराम हो जाती है। मुक्तिधाम में उसे अग्नि से संस्कारित करना पड़ता है। भगवान के नाम का जगन्नाथी वस्त्र ही उसका अस्थायी आवरण होता है- जिसमें लपेटकर उसे श्मशान भूमि तक ले जाया जाता है, और 'हांडी फोड़ने' का अभिप्राय मात्र मिट्टी रचित शरीर की नश्वरता का भान कराना है। इन गीतों का अपना शांत, धीर एवं गंभीर प्रभाव ही श्रोताओं के मानस पर संसार की क्षण भंगुरता एवं असारता का बोध करवा देता है। यहाँ 'घोड़ी' शब्द से अर्थी का उद्‌बोधन करवाया गया है। जैसे घोड़ी पर चढ़कर दूल्हा विवाह के लिये प्रस्थित होता है, वैसे ही इस अर्थी रूपी घोड़ी पर चढ़कर वह अपने जीवन की महाप्रयाण यात्रा पर जाता है। जहाँ से उसे वापस लौटने की उम्मीद नहीं होती है। यह घोड़ी भी लकड़ी या काठ की बनी होती है, जिसकी लगाम या रस्सी 'मोया तृण' की बनी होती है। इस घोड़ी को चार मनुष्य कंधों पर उठाकर ही ले जा सकते हैं।

भारतीय संस्कृति में विधवा का जीवन कितना कष्टप्रद होता है। इस सम्बन्ध में एक गीत उपलब्ध है। मेघनाद की मृत्यु पर उसकी पत्नी सुलोचना द्वारा किया गया विलाप करुण रस की सृष्टि कर देता है। वह कहती है- हे प्रभो! मेरी तो अभी बाली उमर भी व्यतीत नहीं हुई और मेरे पति की मृत्यु हो गई। हे नाथ! अब मैं अपना शेष जीवन किस भाँति व्यतीत करूँगी? एक और गीत में पंछी के माध्यम से मानव को चेतावनी देते हुए लिखा है- हे पक्षी! तू जीव-जंतु खा-खा कर कैसा मोटा ताजा हो गया है। मानो चौरासी लाख योनियों को काटकर उनका भोग करके मुक्त हो गया है। तूने अपनी शरीर तो बाटी जैसा बना लिया है, पर ईश्वर को भूल गया। तूने छल-कपट करके धन-संपदा एकत्रित करके पाप की दीवार बना ली है। अपने स्वार्थ के लिये कितनों के ही गले काटे। तुम अपने सगे भाई को घी-बाफला खिलाते हो, पर बहिन-भानेज के आने पर खट्‌टी छाछ तक नहीं खिलाते। हे संतों! इतना सब करोगे तो आगे फिर यमराज की घाटी ही पार करनी पड़ेगी।

वैराग्य भाव को उत्पन्न करने वाले ये मसाण्या गीत (मृत्यु गीत) सृष्टि एवं जन जीवन सम्बन्धी चिंतन के साथ गूढ़ एवं अर्थ गांभीर्य प्रद हो उठते हैं। इन मृत्युगीतों पर मध्य युगीन संतों की वाणी का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इनमें सबद (शब्द) तिरवेणी (त्रिवेणी) अणहद (जिसकी कोई हद या पार न हो) सूरत, अष्ट दल कमल आदि पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग और निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी विचारधारा का प्रतिपादन मिलता है। कबीर की वाणी का भाव सौंदर्य इन निर्गुण भक्तों के जीवन पर पर्याप्त मात्रा में दिखाई देता है- वही फक्कड़पन, वही अनहद नाद, वही शब्दों की रणुकार, वही त्रिकुटी महल, वही शून्य में शयन और वही अखण्ड ज्योति से भरपूर नाद ब्रह्म की उपासना, अव्यक्त ब्रह्म का वर्णन भी साधकों के हृदय में ज्योति की रेखा खींच सकता है। उसका परब्रह्म पानी से भी पतला (झीना) है, पर सूर्य के तेज जैसा है, चंद्रमा की शीतल चाँदनी जैसा हृदय को शीतलता प्रदान करवाने वाला भी है, यथा-

*पाणी पवन सूं पाजलां वेसे सूरज में घाम,*
*ज्यूं शशि में हो चांदणी ऐसा मेरा राम।*

निर्गुण ब्रह्म की शक्ति को, उसके स्वरूप को हर कोई नहीं समझ सकता। आत्मा और परमात्मा के प्रेम की अभिव्यक्ति

का लौकिक आधार दाम्पत्य सम्बन्ध पर आधारित है। आत्मा एक नववधू है और परमात्मा उसका प्रियतम है। यह संसार आत्मा का नैहर (मायका) है। प्रियतम आकर अपनी वधू को अपने घर ले जाता है। विवाह के पश्चात् जैसे ससुराल में नववधू को ले जाने की परम्परा होती है। वैसी प्रथा को लोक जीवन में 'आणा' नाम से सम्बोधित किया जाता है। 'मृत्यु का आना' भी मानो प्रियतम की ओर से प्रेषित किया गया 'प्रणय' का आह्वान है। शव की 'अन्त्येष्टि क्रिया' से पूर्व जो श्रृँगार सज्जा की जाती है, वह वधू का प्रिय के महामिलन के समारम्भ का उल्लास है। यथा–

*आणो आयो रे परिब्रह्म को सासरिया कूं जाणा रे।*
*चालो–चालो म्हारी सात की सई होण,*
*अरे अपण न्हावा ने जावां।*
*अरे कंई देवा मंदिर में सिदारां।*
*चालो म्हारी सांत की सई होनो अरे अपण माथो गुंथावां।*
*कंई गूथ्यां, कंई गूंथणो मोतियन मांग पुरावां।*
*आणो आयो रे परिब्रह्म को ... ।*

आज इस शरीर को लेने के लिये परब्रह्म का बुलावा आ गया है। अरी! चलो, हम स्नान करने चलें, देव मंदिरों में दर्शनार्थ चलें। ओ मेरी सहेलियों! चलो, हम शीघ्र अपना सिर गुंथावावें। अरे! कुछ तो गूंथ लिये, कुछ का क्या गुंथना? चलो हम उस परब्रह्म रूपी मोती से मांग पूर लें। क्योंकि उसका बुलावा आ चुका है। यह जीव के परलोक गमन के समय उल्लास का प्रतीक है। जीव–ब्रह्म कहावत सूर स्याम झगरो का मिलन भी आध्यात्म में ऐसा ही आत्मिक मिलन है। सूर ने कहा–

*एक जीवन एक ब्रह्म अबकी बेर नाथ*
*मोहिं तारों नहिं प्रन जात टरो।*

इस मिलन में दोनों एकीकृत हो उल्लास के रंग में रंग जाते हैं। जहाँ मृत्यु की विभीषिका भी जीव को भयग्रस्त नहीं करती।

जीव अपने परब्रह्म से मिलने को आतुर है। छटपटाता है। उसके त्रिकुटी महल में अनहद नाद निनादित हो रहा है। जहाँ शब्द की चोट पड़ रही है। सुकमण नाड़ी रूपी सेज बिछी है। शून्य में वह आत्मा झूला झूल रही है। सोहम् पुरुष ही उसका पति है, यथा–

*त्रिकुटी मेल में अनहद वाजे, होत हे सबद झणकारा।*
*सुकमण सेज शून्य में झूले सोहम पुरुष हमारा।*
*एक बूंद की रचना सारी जाका सकल पसारा।*

ब्रह्म की कैसी विराट कल्पना है। वह अलख निरंजन है, जिसे कोई देख नहीं सकता। वह निर्भय एवं निराकार है। वह न शून्य है, न ही स्थूल है। उसकी कोई रूपरेखा नहीं है– 'रूप रेख बिन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चक्रत धावे। सब विधि अगम बिचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावे।' जैसे पद में महाकवि सूर ने निराकार ब्रह्म की सत्ता का दिग्दर्शन करवाया है। वह निराकार ब्रह्म न दृश्यमय है, न अदृश्य। उसे न गुप्त कह सकते है, न ही प्रकट। वह तो अनुभव की आँख से ही जाना जा सकता है।

'मृत्यु' जिसकी होती है, उस हंस को तो अकेले ही वैतरणी पार करके अपने प्रियतम से मिलने जाना पड़ता है। उसके साथ कोई नहीं जाता। अनाम कवि कहता है कि– हे प्राणी! अपने साथ आटा–सीधा रख लेना, क्योंकि आगे बाजार नहीं है। (ध्याननीय है– मृतक की अर्थी के साथ सिका सत्तू का लड्डू रखा जाता है।) सांसारिक कुटुम्ब का नाता भी झूठा है। न तो कोई किसी की माता है न ही कोई किसी का पिता। कोई किसी का बेटा भी नहीं है। यह जीव तो अकेला ही आया है और अकेला ही इस संसार से महाप्रयाण करेगा। रास्ते में आड़ी वैतरणी नदी मिलती है। इस प्राणी को उसके पार पहुँचना है। उस तक पहुँचने का और कोई मार्ग नहीं है। अरे प्राणी! अरे जीव! तुम्हें तो अकेले ही उस पार जाना है, यथा –

*गरब करी ने राधा मेलां चड़िया, बीच मांय ढल गई खाट।*
*जीवड़ो तो जावेगा प्राणी एकलो, कोई नी चलेगा वीके सात।*
*आड़ी नदी उबट को चलणो, जाणो है पेले पार।*
*जीवड़ो जावेगा प्राणी एकलो, कोई नी चलेगा वीके सात।*

घोड़ी नामक मृत्युगीत के माध्यम से जीव को दूल्हा बनाकर, उसके मायाजाल से छुटकारा पाने का मार्ग एक लोकगीत में बताया गया है, यथा–

*लाड़ला तम चढ़ो अणी घोड़ी पर*
*लाम्बी–लाम्बी सागरी ने मोया की डोरी।*

*ने बनड़ा ने घोली जगन्नाथी ओड़ी।*
*काली-काली हांडी ने चारा की कोळी,*
*तो राइवर तो चाल्या ने घरवाली ने फोड़ी।*

उक्त गीत में मृतक का केसरियाँ श्रृँगार कर उसे दूल्हे के वेश में सजाकर मृत्यु का वरण करवाया गया है। जो मायाजाल से रहित होगा, वही इस घोड़ी पर सवारी कर सकेगा। यह घोड़ी सीधी श्मशान ले जायेगी। मृत्यु को श्मशान घाट ले जाते समय उसकी स्त्री भी काली हांडी फोड़ डालती है। इसी प्रकार आत्मा को स्त्री का रूपक देकर उसे दुल्हन वेश में सजाया जाता है। वह दुल्हन बड़ा वजनदार बोर (सिर का आभूषण) पहिने हुए है। उसके टीके में अपनी सूरत देखी जा सकती है। श्मशान में झूला बंधा है। उसमें मैनाबाई (मन रूपी बनड़ी) को झूलने के लिए बुलवाया जाता है, यथा-

*बनी भंवर पेर्‌या भारी, टीका में सुरत हमारी*
*ओ नादान गजरावाली।*
*बनी मसाणा में बांद्‌यो झूलो*
*लाड़ी मसाणा में बांट्‌यो झूलो,*
*तम झूलो म्हारी मैनाबाई बनड़ी।*
*बनी साड़ी ओड़ी भारी।*

हमारा यह शरीर अस्थि पंजर से बना है। यही शरीर रूपी पिंजरा कहलाता है और इसमें निवास करने वाला तोता रूपी प्राण जब उड़ जाता है, तब वह यमुना नदी के तट पर जाकर बैठ जाता है। यमुना शब्द का भाव सौदर्य यहाँ उच्चकोटि का है, जिसमें यम की यातना न हो- वह स्थान यमुना। इसके तट पर जाकर वह हंस रूपी तोता स्नान करता है। अरे तोते! तेरे कारण यह संसार रूपी बाग लगा था। इसमें चंपा-चमेली और मोगरा सदृश पुष्प महक रहे थे। तुम इस बाग को छोड़कर जा रहे हो तो श्रीराम नाम का जाप करो।

मृत्युगीत 'सोवन वालो हालरो' में भी इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि यह पिंजरा सप्तधातु का बना है, जिसमें ब्रह्म ज्ञान रूपी निर्मल ज्योति प्रकाशित हो रही है। इस सप्त धातु के पालने में 360 पटिये लगे हैं, जो वर्ष के प्रतीक हैं। यह एक ही परब्रह्म रूपी कील से जुड़ा है, जिसमें अनहद नाद रूपी दीपक सतत जलता रहता है। यदि उसमें से जीवात्मा रूपी दीपक निकल जाय तो टट्टर (पिंजरा मात्र) रह जाता है। सहस्त्रार चक्र में फुलवारी शोभित है, जिसकी डोर त्रिवेणी से बंधी हैं। अरे मन! इसमें युक्तिपूर्वक झूला लेना। इसमें बजने वाली अनहद नाद का विचार 'सुरत' (श्रुति-स्मृति) कराती है। अष्ट कमल में दीपक जल रहा है, इसमें ध्यान रूपी झालर का बंधन बंधा है। यदि इस पींजरे में से 'हंस' रूप परमात्मा उड़ जाता है तो गोविन्द इसे अपनी पेटी में स्थान दे देते हैं। इसमें योगियों के योग मार्ग के द्वारा उस परब्रह्म की प्राप्ति का उपाय बतलाया गया है, यथा-

*अरे सोवन वालो हालरो रे, जाकी निरमल जोत।*
*सपद घात को पालणो रे, पाट्‌या तीन सौ साठ।*

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मालवा एवं निमाड़ जनपदों में मृत्यु या मसाण्या गीतों के नाम से निर्गुण ब्रह्म की जो गंगा बहाई गई है, वह जीवन-मृत्यु के रहस्य की परतें खोलती प्रतीत होती है। कहा है-

*दिल दरियाव अमीरस मीठा, ओर नीर सब खारा।*
*एक बूंद का सकल पसारा, छिटक रह्‌या न्यारा-न्यारा।*

उस परब्रह्म से साक्षात्कार बड़ा कठिन है। खांडे की धार पर चलने जैसा है। इसमें ज्ञान प्राप्ति अनिवार्य है। तुलसीदास जी ने कहा है- 'ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा, परत खगेस लाग नहीं बारा।' सगुण भक्ति में तो नवधा भक्ति में से कोई एक तरीका भी भक्ति को प्राप्त करवा सकता है। परन्तु निर्गुण भक्ति में शीघ्र पराभव की संभावना हर समय बलवती बनी रहती है। इसमें ज्ञान पंथ से शीघ्र पतन की राह बन जाती है और पतनोन्मुख प्राणी की गति धोबी के कुत्ते सदृश हो जाती है, जो न निर्गुण को पा सका, न सगुण की प्राप्ति कर सका। इस पंथ में तो सद्‌गुरू की कृपा अनिवार्य है। वही आवागमन से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करवा सकता है। ब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग बतला सकता है। जब ज्ञान का पंथ मिलता है, तभी ईश्वर से मिलन की आकुलता बढ़ती है, और साधना का पथ स्पष्ट होता जाता है। वैसे साधना का पथ बड़ा झीना होता है, क्योंकि यह यात्रा बाहर की नहीं, भीतर से ही चलती है। हमारे मानस में ही वह निरंजन बैठा हुआ है। इसलिए संतों ने उसके नाम स्मरण, इंद्रिय निग्रह, ध्यान, प्राणायाम आदि क्रियाओं की चर्चा की है। आत्मा शारीरिक और मानसिक साधन से विलग हो परमात्मा में निमग्न हो जाय। एक अलौकिक सत्य

का अनुभव होने लगे। यही योग साधना है। योग के आठों अंगों पर निर्गुण विचारधारा में पर्याप्त मंथन मिलता है। यम, नियम, संयम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और समाधि ये आठ अंग ही साधक के योग मार्ग के अनन्य साथी हैं, इसी के अंग हैं। परमात्मा से मिलन के लिये प्राणायाम क्रिया आवश्यक है। प्राणवायु के द्वारा शरीर स्थित नाड़ियों में शक्ति का संचार होता है। शिव संहिता में तीन लाख पचास हजार नाड़ियों का उल्लेख मिलता है। गोरख शतक में इनकी संख्या तीन लाख बताई गई है। ये समस्त नाड़ियाँ मानव के शरीर में विद्यमान हैं। इसी शरीर में छः चक्र, सोलह आधार और पाँच आकाश है। इन तीन लाख नाड़ियों में दस नाड़ियों की भूमिका जीवन एवं प्राणायाम क्रिया में महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इनमें (इड़ा) शरीर में बाईं ओर स्थित है, पिंगला (दाईं ओर), सुषुम्ना (मध्य में), गांधारी (बाईं आँख में), हस्त जिव्हा (दाईं आँख में), पुष्प (दायें कान में), यशस्विनी (बायें कान में), अलंभुषा (मुख में), कुहुष (लिंग स्थान में) और दसवीं शंखिनी (यश स्थल में) रहती है।

इसी प्रकार छः चक्र हैं। मूलाधार (गुदा स्थान के समीप), स्वाधिष्ठान (लिंग भूत में स्थित), मणि पूरक (नाभि में), अनाहत (हृदय में), विशुद्ध (कंठ में) आज्ञा (त्रिकुटि या भौहों के बीच में) सातवां चक्र ब्रह्मरंध्र होता है। नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की चर्चा संतों के भजनों, नारदीय भजनों, मसाण्या गीतों और आध्यात्म में बार-बार आती है। सुषुम्ना नाड़ी के नीचे मुख में कुंडलिनी शक्ति होती है। प्राणायाम के द्वारा वह जाग्रत की जा सकती है। इड़ा और पिंगला का जब सुषुम्ना में बहने वाली प्राणवायु से तादात्म्य होता है, तब कुंडलिनी जाग्रत होकर उर्ध्वमुखी होती है और षड्चक्रों को भेदती हुई सहस्त्रार चक्र या ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करती है। यह वही स्थान है, जहाँ अमृत कूप से अमृत वृष्टि होती है। जीवात्मा उसका पान करता है। उसी अवस्था में 'अनहद नाद' सुनाई पड़ने लगता है। प्रकाश दृष्टिगत होता है। आत्मा-परमात्मा में विलीन हो जाती है। यही समाधि स्थल की स्थिति है। इसलिए इसे कुण्डलिनी योग या लय योग कहा जाता है, यथा-

*अगम घाट तिरवेणी तीरथ, जहाँ सुरति लोलाओ।*
*गंगा -जमना-सरस्वती, तिरवेणी जी में न्हावो।*
*अजपा ऊपर एक मुकाम, जोत एक झिलमिलावे।*
*अनहद नाद बजे चोघड़िया, भंवर गुफा के मांहीं।*

मृत्यु का वरण करने वाला एक आत्मस्थ योगी होता है। उसे निर्गुण पंथ का उपरोक्त सभी ज्ञान हृदयगत होता है, तभी वह मृत्यु जैसे सत्य का आनंदपूर्वक साक्षात्कार करता है। तभी उसे दैहिक, दैविक एवं भौतिक आधि-व्याधियाँ नहीं सताती। क्योंकि आत्म प्रकृति का ज्ञाता होकर परमात्म मिलन की उत्कंठा से अभिभूत हुआ होता है। संतों की वाणियों में गीति काव्य की धारा अजस्त्र रूप में प्रवाहित मिलती है। 'माया महाठगिनी मय जानी' के अनुसार माया का फंदा बड़ा कठोर होता है, और मानव उनमें फँसता चला जाता है। अतः माया को त्यागकर उस परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग बनाने वाला ही सच्चा साधक होता है, योगी होता है और उस योगी या साधक के मरणोत्सव को अधिक गम्भीरता प्रदान करने वाले ये मालवी-निमाड़ी के मसाण्या गीत मानव को जीवन मुक्त अवस्था वाला घोषित करने के प्रतीक में गाये जाते हैं। कबीर ने भी बड़े सहज ढंग से इनका प्रशस्ति गान करते लिखा है-

*जहां जरा मरण व्यापत नहीं, मुवा न सुनिये कोय।*
*चल कबीर तेहि देसड़े, जहं बेद विधाता होय।।*

संतों के सारे उपमान और प्रतीक लोक जीवन और लोक व्यवहार से जुड़े हैं। संतों ने इसी लोक भूमि पर खड़े होकर कर्तव्य के जरिये सृष्टि के सत्य 'मृत्यु' तक अपनी पैठ बनाई है। उन्होंने इस जीवन को, इसकी नश्वरता को, इसके सत्य को समझा है, जाना है, पहचाना है और मानव जन्म के ध्येय को हृदयंगम किया है। जानते हैं कि मोह विगलित होना ही मृत्यु वरण करना है। उन्होंने जीवन को भोगा भी है और उससे साक्षात्कार भी किया है। यही कारण है कि व्यक्ति की मुक्ति की कामना भी समाज के व्यापक संदर्भों में ही हुई मिलती है, कहा है -

*संगी हमारे चले गये, हम भी चालन हार।*
*कागज में कुछ शेष है, तासे लागत बार।।*

# मालवांचल में मृत्यु संस्कार

डॉ. शशि निगम

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में सोलह संस्कारों को अपनाया गया है। ये संस्कार मनुष्य जीवन में आने वाले भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न मनोभाव पैदा करते हैं एवं अपना महत्त्व रखते हैं। जैसे सोलह संस्कारों में प्रथम जन्म संस्कार जीवन में आनंद-उत्साह तथा आसक्ति पैदा करता है, तो अंतिम 'मृत्यु संस्कार' पीड़ा, घोर निराशा एवं विरक्ति के भाव।

मृत्यु का अवसर ऐसा होता है, जब व्यक्ति के सद्‌गुणों की प्राय: चर्चा होती है और यही वह अवसर होता है, जब जीवन की क्षण भंगुरता एवं सभी को 'एक दिन अवश्य जाना है' के भाव अंतर्मन को छूने लगते हैं। इसलिए ऐसे समय दिवंगत के गुणों को याद करने, उसके अभाव से होने वाले कष्टों को अनुभव कर विलाप करने तथा उससे उत्पन्न रिक्तता की चर्चा करने के साथ ही धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। माया मोह से जुड़े लोग प्राय: विलाप करते हुए एवं जीवन के गूढ़ अनुभवी लोग ईश्वर स्मरण का प्रयास करते हैं।

मालवा क्षेत्र में किसी की मृत्यु होने पर उसकी मुक्ति हेतु परिवारजन 'गरुड़ पुराण' का पाठ करवाते हैं। मृत्यु के तीसरे दिन अस्थि संग्रह का कार्य सम्पन्न होता है, जिसे 'तीसरा' कहा जाता है। दसवें दिन स्नान, सिर के बाल कटवाना (मुण्डन) इत्यादि कार्य होता है, उसे मालवांचल में 'दसवाँ' या 'घाटा' कहा जाता है। किसी महिला की मृत्यु होने पर मायके में भी एक रस्म पूर्ण की जाती है, जिसे 'गोरनी' कहा जाता है। इस कार्यक्रम में सुहागिन महिलाओं को भोजन कराया जाता है तथा किसी एक को पूर्ण शृँगार सामग्री भेंट की जाती है (मृतका सुहागिन होने पर)। यथाशक्ति समाज के लोगों को भी भोजन करवाया जाता है। बारहवें या तेरहवें दिन उत्तराधिकारी को पगड़ी बंधवाकर 'पगड़ी रस्म' एवं ब्राह्मण तथा समाज को भोजन करवाकर 'अन्नदान' किया जाता है।

प्रतिवर्ष मृत्यु तिथि पर श्राद्ध पक्ष में दिवंगत आत्मा हेतु 'श्राद्ध' किया जाता है। सम्पन्न वर्ग प्राय: मृत्यु के छ: मास में 'छह मासी' और एक वर्ष पूर्ण होने से पूर्व 'बरसी' करते हैं, भोज देते हैं। मृत्यु से जुड़े अंतिम कार्य को किसी पवित्र नदी में अस्थि विसर्जन तथा 'गया' आदि पवित्र स्थल पर पिण्डदान देकर सम्पन्न किया जाता है।

सुदूर गाँवों में बुजुर्ग जनों से चर्चा के दौरान ज्ञात हुआ कि मालवा में भी राजस्थान की भाँति 'रूदाली' प्रथा रही है। जिस परिवार में महिलाएँ न हों, वहाँ 'रूदाली' बुलाकर शोक प्रदर्शन करवाया जाता रहा है।

मालवा में मृत्योपरांत भावनाओं की अभिव्यक्ति सम्बन्धी लोकगीत कम ही प्रचलन में पाए गए हैं। ऐसे समय अधिकांशत: वैराग्य एवं ईश भक्ति में ही सार्थकता के दृष्टिकोण के साथ दर्शन व धार्मिक आस्था वाले लोक भजन ही अधिक गाए जाते हैं। कुछ ऐसे गीत अवश्य प्रचलित हैं, जिनमें मृत्यु होने पर विछोह-वेदना के मार्मिक भाव देखने को मिलते हैं। एक गीत में बड़ी करुण और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। लाड़ले तुम इस घोड़ी पर चढ़ो और लगाम थाम लो। लकड़ी की तो घोड़ी है और जूट की डोरी। चार लोग उठाकर चल पड़े हैं और ऊपर जगन्नाथी (सफेद वस्त्र) ओढ़ ली है। नाड़ा और जूट की डोरी खरीद लाए हैं, उसके बाद मटकी फोड़ी। प्रिय! इस घोड़ी पर सवार होकर चलो-

*लाड़ला तम चड़ो अणी घोड़ी,*
*चड़ो अणी घोड़ी ने बाग मरोड़ी। लाड़ला.....*
*लक्कड़ की घोड़ी ने मोया की डोरी।*
*चार जणा मिल तोकी ने चाल्या,*
*ऊपर जगन्नाथी ओड़ी। लाड़ला.....*
*पईसा का तो नाड़ा लाया ओर मोया की डोरी।*
*चार जणा तोकी ने चाल्या पाछे हाँडी फोड़ी।*
*लाड़ला तम चड़ो अणी घोड़ी।*

पति की मृत्यु पश्चात् उत्पन्न वेदना के कारण स्वर भावों को आन्दोलित करते हैं। वह कहती है- मेरे स्वजनों! मेरे माथे का भम्मर तथा बाहों के लिए चूड़े बनवा दो। मेरे स्वामी का डोला चंदन-चमेली वृक्ष के नीचे रुका हुआ है। मुझे उनसे दूर मत करो-

*माथा ने भम्मर घड़ावो रे सेवग म्हारा।*
*सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो।*
*चन्दन नीचे ऊबो चमेली नीचे ऊबो।*
*सायबजी से छेटी मती पाड़ो रे सेवग म्हारा।*
*सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो।*
*बैंयन के चूड़लो चिराव रे सेवग म्हारा।*
*सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो।*
*चन्दण नीचे ऊबो चमेली नीचे ऊबो।*
*सायब से छेटी मती पाड़ो रे सेवग म्हारा*
*पाँवा ने पायल घड़ाव रे सेवग म्हारा।*
*सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो।*
*चन्दण नीचे ऊबो चमेली नीचे ऊबो।*

पति की मृत्यु हो चुकी है, प्रियतमा विछोह नहीं सहन कर पायी और उसकी भी मृत्यु हो गई। ऐसे समय परिजन विलाप करते हुए कहते हैं कि अब हमारी सती का निवास हवाबाग में है, अब आपकी सेवा कैसे करें? अरे बड़े बाप की बेटी! हम पान का बीड़ा पेश करेंगे, सत्कार करेंगे। अरे बड़े घर की बेटी! किस तरह तुम सास-ससुर को, माता-पिता को छोड़ आई। कैसे छोड़ दिए बड़े-बड़े आँगन और अपने नन्हें बालक को-

*सतिया रा डेरा हवा बाग में।*
*कणिपत सेवा हिंगलाज।*
*बावड़ली ने बीड़ो पान को।*
*कणिपत मेल्या सासू-सुसरा हे म्हारी सतिया।*
*कणिपत मेल्या माय न बाप हो मोटा का जाया।*
*बावड़ली ने बीड़ो पान को।*
*हाँसत मेल्या सासू-सुसरा, रोयत मेल्या माय न बाप।*
*मोटा का जाया।*
*बावड़ली ने बीड़ो पान को।*
*कणियारी धँसी अम्मर पाल हे म्हारी सतिया।*
*बावड़ली ने बीड़ो पान को।*
*कणिपत मेल्या ऊँडा ओवरा, कणिपत मेली।*
*मोटा का जाया।*
*कणिपत मेल्या देवर-जेठ, कणिपत मेल्या नाना बालूसा।*

*मोटा का जाया।*
*बावड़ली ने बीड़ो पान को।*

प्रथम दो-तीन दिनों के तीव्र शोक और रुदन पश्चात् दुनिया की नश्वरता का स्मरण करने तथा दिवंगत की आत्मा की शांति एवं कल्याण हेतु उपस्थित महिलाएँ आत्मा-परमात्मा, देह की नश्वरता सम्बन्धी भावपूर्ण गीत व भजन गाती हैं।

मालवा एवं निमाड़ में किन्हीं वृद्ध, संत आदि की मृत्यु होने पर शवयात्रा के दौरान भी वैराग्य से परिपूर्ण गीत, भजन, झाँझ, मंजीरे, मृदंग इत्यादि वाद्यों के साथ गाए जाते हैं, जो आध्यात्मिक और शांत वातावरण निर्मित करते हैं। ऐसे गीतों को 'मसाणिया गीत' या 'नारदीय भजन' कहा जाता है। धार्मिक गीत तो लोक सृजित हैं, परन्तु भजन कबीर, मीरा, दादू, धरमदास, लखमा माली इत्यादि के प्रचलित हैं।

निम्नांकित लोक भजन में कहा जा रहा है कि जीव रूपी हंस शरीर से बाहर निकल गया है और काया तस्वीर के समान (निर्जीव) पड़ी हुई है। लम्बी आयु प्राप्त करने के लिए मनुष्य देवी-देवता, पीर इत्यादि न जाने किस-किस को मनाता है, लेकिन जब उसकी (परब्रह्म) ओर से बुलावा आ जाता है, तो जाना ही पड़ता है। शेष रह जाता है तो प्रियजनों का रुदन विलाप-

*हंसो निकल गयो रे काया से,*
*खाली पड़ी रई तसवीर।*
*हाँ... भोत मनाया देवी रे देवता,*
*भोत मनाया पीर।*
*जब आयो परवानो रे उसको,*
*जाणो रे पड़े आखीर। हंसो...*
*हाँ .... कोई रोवे, कोई मलमल न्हावे,*
*कोई ओड़ावे चीर।*
*चार जणा मिल मोत उठाई,*
*ले चलो सिपरा तीर। हंसो....*
*हाँ... भाई केवे भुजा हमारी,*
*नार केवे भरतार,*
*माता केवे पुतर हे मेरा,*
*बेन्या केवे बीर। हंसो....*
*हाँ ... तेरा दन तक तिरिया रोवे,*
*फेर करे घर वासा,*
*बार तेवार के बेन्या रोवे,*
*माँ रोवे जनम-जनम। हंसो.....*
*हाँ... जोर जुलम नई चले किसी का,*
*एसो जम परवानो,*
*जई जंगल में चिता लगा दी,*
*कई गया दास कबीरा।*

एक और भजन जिसमें कहा जा रहा है, प्रभु स्मरण करने से ही उद्धार सम्भव है। इस स्वार्थी संसार में कोई किसी का अपना नहीं है। यहाँ तक की तेरा शरीर भी नश्वर है। दाह संस्कार के पश्चात् जो राख शेष रह जाती है- उसे भी जलाशय-नदी इत्यादि में प्रवाहित कर दी जाती है। अर्थात् उसे भी घर में नहीं रखी जाती। उसका भी त्याग कर दिया जाता है। इसीलिए हे मन! तू हरि का स्मरण कर-

*सुवा भाई रे, ले ले प्रभु को नाम,*
*नाम से तिर जावेगो रे।*
*बीर म्हारा रे सगो नई संसार,*
*बीर थारी काया काची रे। सुवा भाई रे...*
*बीर म्हारा रे एकलो तू जावेगो,*
*सुवा भाई रे, नो मण लपट्यो सूत,*
*किस विध सुलझावेगो रे? सुवा भाई रे....*
*बीर म्हारा रे मूरख फिर-फिर जाय,*
*चतर नर सुलझावेगो रे। सुवा भाई रे...*
*सुवा भाई रे, माटी की गणगौर,*
*घाघरो धमकावेगी रे। सुवा भाई रे....*
*बीर म्हारा रे दन तेरा को चाव,*
*कुँवा में गेर्यावेगी रे,*
*सुवा भाई रे, ले ले हरि को नाम,*
*नाम से तिरजावेगो रे।*

मनुष्य देह चौरासी लाख योनियों को पार करने के पश्चात् प्राप्त होती है। अर्थात् मनुष्य शरीर बहुत ही सौभाग्य सत्कर्म से प्राप्त होता है। इसीलिए उसे सदैव परमात्मा का स्मरण करना चाहिए, उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए-

*हरि के सुमरो रे भाई,*
*परभु के सुमरो रे भाई।*
*भजन से नर देही पाई,*
*लख चोरासी योनी भुगत के,*
*मनसा देह पाई। हरि के...*
*चोरासी के अंत ही दु:ख पायो,*
*कठिन कर मनुस देह पावे।*
*भरम कर गरब वास आवे,*
*अरज 'करता' से गुजरावे। हरि के....*
*पवन जहाँ रसक नहीं आवे,*
*जीव तो अतिशय दु:ख पावे।*
*रयो आँत से लिपटाय,*
*जहाँ जठड़ा अतिछक दु:ख पावे।*

इन्हीं भावों से युक्त एक और भजन जिसमें मनुष्य को सचेत किया गया है कि चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद सुन्दर दूल्हे जैसा मनुष्य शरीर प्राप्त करने का अवसर आया है और यदि यह अवसर चूक गया अर्थात् इसमें सत्कार्य नहीं किया तो तुम्हारा कहीं ठिकाना नहीं लगेगा–

*लख चोरासी भटकत-भटकत अबके मोसम आया रे।*
*अबके मोसम चूकि जाय तो कहीं ठोर नहीं पाया रे।*
*बनड़ा थें भले रिझाया रे।....*
*थारी सूरत सुवागण नवल बनी सायब भर पायो रे।*
*हेत की हल्दी ने प्रेमरस पीली, तन को तेल चढ़ायो रे।*
*मन पवन हतलेवो जोड़्यो वीर परण घर आयो रे।*
*बनड़ा थे भले रिझाया रे।*
*राम-नाम का मोड़ बँधाया, कर लो प्रेम सवाया रे।*
*धाँच धलन में सेज बिछाई ओढ़े प्रेम सवाया रे।*
*बनड़ा थें भले रिझाया। रे ....*

मनुष्य चुन-चुन कर अपनी गृहस्थी बसाता है। धन-दौलत इकट्ठी करता है, लेकिन रघुनाथ के भजन बिना उसका कोई साथी नहीं है–

*डुंगर से निरधणियो गुड़क्यो, खबर न लेवे कोई।*
*बिन चुन कंकरी मेल बणायो, बणी गया कंचन मेल।*
*बिना राम रघुनाथ भजन बिना,*
*कोई नहीं संगी रे आपणों कोई नहीं संगी।*
*मूरख के घर मेरा है, जंगल होगा डेरा रे। बिरा राम...*
*बाजा बाजे ढोल नगारा, ओर बाजे सरनाई।*
*हाती ना होदे यो परन्यो रे भई,*
*चँवर डुले फटकारा। बिना राम.....*
*कोड़ी-कोड़ी माया रे जोड़ी, जोड़ जमीन में गाड़ी।*
*बाल पणा थने खेल में गवाया,*
*भर जवानी में खोया।...*
*देख बुढ़ापा लकड़ी का टेका, फिर तू ज्यों पछताया। बिना...*
*चार जणा ना खाँदे चड़ियो, चड़ियो काष्ट की घोड़ी।*
*जाय उतर्‌यो नदी किनारे, भई! दियो होली फूँक। बिना...*
*हाड़ जले ज्यों लाकड़ी जी कँई, केस जले ज्यों घास।*
*कंचन काया यूँ जले रे भई, पास नी आवे कोई। बिना....*
*गेली तिरिया यूँ उठ बोली, या जोड़ी किने तोड़ी।*
*कहत कबीर सुणो भई साधू, जिने जोड़ी उने तोड़ी। बिना...*
*बेन्या माँगे दान दायजो, माता माँगे तीरथ।*
*गेली तिरिया गेणो माँगे, तीनी माँगे लेणो। बिना राम*
*बेन्या ने दाँगा दान दायजो, माता कराँवा तिरथ।*
*तिरिया ने दाँगा गेणो सारो, तीनी दाँगा देणो। बिना राम...*
*चंद्रसखि भजो बाल की शोभा, हरि के चरण बलिहारी।*
*बार-बार प्रभु विनती म्हारी, सुणजो दीन दयाल।*
*कोई नहीं संगी रे, आपणो कोई नहीं संगी।*

अंतिम संस्कार के इस गीत में वैराग्य भावना के साथ ही धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। मनुष्य का ध्येय धर्म के माध्यम से आत्मशांति प्राप्त करना है, जिसके लिए ईश्वर स्मरण आवश्यक है–

*रामजी हुई मिजाजन चुनड़ी, दिन-दिन रंग चड़ी जाय।*
*जीपे चमके हीरा जवाहर, सोदा कर हरि नाम का।*
*तो उतरे भव से पारा।*
*काया रंग चूनड़ी रे, थारो राम भजन बेपार।*
*रामजी अधिक बुनावे, अधिक सजावे।*
*बुन-चुन हुई तैयार।*
*पाँच तत्त्व की चूनड़ी, ओड़ी सब संसार। काया...*
*रामजी जोबन थो जब रूप थो गावे हे सब लोग।*
*हुई पुरानी चूनड़ी, दिन-दिन रंग उड़ जाय।*

*जोबन रूप गँवाय के, हुवो जलाणे जोग। काया...*
*फाट-फूट धरनी पड़ी, रम गयो ओड़न हार,*
*धना भगत नरसी ने ओड़ी, ओड़ी मीरा बाई।*
*संत कबीरा ऐसी ओड़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी।*
*काया रंग चूनड़ी रे, थारो राम भजन बेपार।*

मनुष्य को आत्मज्ञान कराने तथा आत्मा से परमात्मा को मिलाने का कार्य सद्गुरू द्वारा दिए गए ज्ञान और मार्ग दर्शन से ही सम्भव है। सिंगाजी की छाप वाले भजन में सद्गुरू से जन्म सुधारने का (उद्धार) निवेदन किया गया है-

*अब तो जनम सुधारो गुरूजी,*
*अब तो जनम सुधारो।*
*घड़ी-घड़ी में करूँ सुमरण,*
*अब तो जनम सुधारो।*
*गुरू बिना ज्ञान-ध्यान सब सूनो,*
*नहीं भूलूँगा ध्यान तमारो,*
*अब तो जनम सुधारो।*
*राम मिलन की राह बताजो,*
*गुरू नई मेटो मन म्हारो।*
*अब तो जनम सुधारो।*
*कहे जन सिंगा दरसण दीजो,*
*सिर पे पंजो थारो।*
*अब तो जनम सुधारो गुरूजी,*
*अब तो जनम सुधारो।*

एक और गीत जिसमें सद्गुरू से विनती की गई है। यह संसार-सागर कठिनाई से भरा हुआ है। माया-मोह ने अपने फंदे में उलझा रखा है। आप उस उलझन से पार लगायें, हमारा सद्मार्गदर्शन करें-

*म्हारा सतगुरु दीनदयाल, नैया लगई दीजो पार।*
*म्हारों बेड़ो लगई दीजो पार।*
*माया-मोह का फंदा भारी, उलझी दुनिया सारी।*
*जम पकड़-पकड़ मँगाय। म्हारा सतगुरु...*
*लोभ लालच की नदियाँ गहरी, डूब रयो संसार।*
*म्हारी नैया भँवर के माय। म्हारा सतगुरु.....*
*रोगी-भोगी जटाजूट धारी, मोह में उलझ्या भारी।*
*म्हारा काना में सबद सुणाय। म्हारा सतगुरु...*
*धन-सुख सब मिली, माया मोह से दूरा।*
*गुरु चरण-कमल अधार, म्हारा सतगुरु....*
*म्हारो बेड़ो लगई दीजो पार।*

इस प्रकार मानव मन की पीड़ा, वैराग्य, धर्म, दर्शन और आध्यात्म के भावों से परिपूर्ण गीत, भजन आदि मालवांचल में व्याप्त हैं, जो अंतिम संस्कार के अवसर गाए और सुने जा सकते हैं।

# मरण गान भी है मालवा में

नरहरि पटेल

मालवा में जन्म के समय सरल स्वरावलि में हर्ष उल्लास के गीत छाये रहते हैं, किन्तु मृत्यु पर भी मरण गान है मालवा में। जब अर्थी उठती है तब 'राम नाम सत है, सत बोल्या गत है' के सामूहिक वैष्णवी बोल अनायास गूँज उठते हैं, दागियों के मुख से। शव यात्रा में कहीं-कहीं ढोल-नगाड़े वादन की भी प्रथा है। बारह दिन तक गरुड़ पुराण का वाचन होता है। तेरहवें दिन पुराण समापन के समय मृतक के नाम से शैय्यादान, वस्त्र दान आदि की अनुष्ठानिक प्रथा है। कहीं-कहीं गाँवों में संतों की साखियों, बोलियों और पदों का गान भी होता है इकतारे पर। निमाड़ अंचल में प्रचलित प्रथा की तरह कबीर, दादू, गोरख आदि निर्गुणी संतों के निर्गुणी गीत भी गाये जाते हैं। भजन मण्डलियों द्वारा वैसे चर्चित भारतीय संतों की कृतियाँ हिन्दी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी में हैं, किन्तु लोक गायकों के कण्ठ पर चढ़कर ये कृतियाँ मालवी बोली में मालवी प्रतीकों, रूपकों और ध्वनियों में ऐसी परिवर्तित हो जाती हैं मानों कबीर, गोरख आदि लोक कवियों ने जैसे इन्हें मालवा के ग्राम्य ओटलों और चौपालों पर बैठकर ही रची हों। इन्हें सुनकर लगता है कि ये लोक संत मालवा में जन्में हों। जीवन की नश्वरता और आत्मा की अमरता के इन सात्विक गीतों में जीवात्मा और परमात्मा का मार्मिक बखान है। फानी जिंदगी की जगह, भौतिक दंभी गतिविधियों की जगह, लोक धुनों में रूहानी दिव्यता और परमात्म शक्ति के एकत्व के भाव महकते हैं। एक चर्चित पद में मालवी में कबीर कहते हैं - इस जीवन को लाख रोका, यह रुका नहीं। यह चार दिन का ही मेहमान था। शहर के द्वार बंद थे, फिर भी यह जीव घोड़े पर सवार होकर निकल भागा, रोके नहीं रुका, 'तेजी छूट्यो शहर में रे कस्बे पड़ी पुकार। दरवाजा जड़िया रईग्या ने निकल भागो असवार।'

इसी भाव भूमि पर मालवी लोक में मृतक को दूल्हे की भूमिका में भी बताया गया है। प्रतीकात्मक रूप में दूल्हे से कहा जाता है कि तू जिस घर जा रहा है, उस प्रियवर का ठिकाना बड़ी दूर है। वहाँ शुभ मुहूर्त देखकर जाना और सुन, वहाँ बारात सजाने वाले

सहायक जैसे जोशी, बजाज, माली, सोनी आदि के व्यवसायियों के घर भी दूर-दूर बसे हैं। वहाँ उतावला मत होना, स्वजनों की प्रतीक्षा करना, चम्पा के पुष्पित वृक्ष के नीचे तनिक रुकना और फिर देखना बनड़ी (मुक्ति) तुझे कैसे मिलती है-

*जोसी रो घर म्हारा राईवर दूर बसे*
*बजाजी री दूकान म्हारा राईवर दूर दूर*
*सोनी रो घर म्हारा राईवर दूर बसे*
*ऊवा तो रीजो हो राईवर चम्पा री छाँव*
*तो बनड़ी ने लारा लीजो बनड़ा*
*ऊ बातो रीजो*

दूसरे गीत में जीव को राधा नाम से पुकारा गया है (इस गीत पर सूफी संतों की छाप है)। इसमें बहुरिया जीव को बड़े गुमान से अटारी चढ़ने की सलाह दी गई है, वहाँ खाट बिछाने का मशविरा है। यह भी सलाह दी गई है कि अपने अंतिम प्रयाण में जाने के पहले हाट से सीधा (रसद) आदि सौदा लेते जाना है, क्योंकि हे जीवन! तुझे अपने गंतव्य पर कोई नहीं मिलेगा। वह ऐसी जगह है जहाँ न कोई बस्ती है, न माँ -बाप और न कोई संतान। कोई रिश्ते-नाते नहीं है उस लोक में-

*आटो सीधो रे प्राणी लई लीजो*
*आगे नी हे बजार*
*किनका छोरा ने किनकी डावड़ी (छोरी)*
*किनका माय न बाप*
*आड़ी नद्दी ने ऊपर चालणो*
*जाणो हे पेले पार*

वहाँ मृत्यु के रास्ते टेढ़े-मेढ़े अंजाने मार्ग की कल्पना है, जहाँ निर्जन मार्ग पर उफनती नदी को पार करना आसान नहीं होगा। चर्चित भारतीय कबीर, गोरख, पीपा जैसे संत कवियों की तरह मालवा में जिन संतों के गीत गाँव-गाँव गाये जाते हैं, इनमें कालूराम गुरु, चंद्रसखि, निरभेराय, अजोध्यादास, लख्मो माली, मनिराम, भवानी राम, राय दामोदर और काशीनाथ प्रमुख हैं। इन संतों की मालवी रचनाओं में जीवन की सार्थकता के साथ ही जीवन की निस्सारता के प्रभावी गीत हैं।

जीवन की नश्वरता को लेकर गोरख कहते हैं- हे जीव! तेरा अस्तित्व तितली के कोमल पंखों पर लगे पराग के समान है, जो मात्र छूने भर से उड़ जाएगा। एक रात विश्राम कर ले यहाँ। आत्मा का प्रिय दूर देश का वासी है, उसे जानने -समझने के लिए तुझे भाव नगर जाना होगा।

मृत्यु के बारे में गीता में कहा गया है कि आत्मा अजर अमर अविनाशी है। वह मरती नहीं। देहरूपी मात्र चोला बदलती है। मालवी लोक में भी यही भाव है। यह मान्यता भी है कि जीवन स्वप्न जैसा है और मौत नींद समान।

मनुष्य के जीवन की अवस्था सपने जैसी है। इसीलिये कहा गया है कि भलाई इसी में है कि सही तरीके से जी लिया जाए। पता नहीं, यह सपना कब टूट जाए और खेल खत्म हो जाए।

मृत्यु के बाद सात्विक जीव से आग्रह किया है कि इस संसार सागर के पार जाना और अण-विंध्ये मोती लाना। मौत आने पर जीव की स्थिति ऐसी होती है जैसे दूध फट जाने के बाद जामण नहीं जमती। धागा टूटने के बाद गाँठ कभी नहीं जुड़ती।

*जाजो जाजो रे भई म्हारा जाजो इना समंदर पार*
*मोती लाजो साधू अण विंध्याजी।*
*उड़ गई उड़ गई रे भई म्हारा उड़ गई इना बनकी चिड़िया*
*अपणा मंदर बासा फिर किया जी।*
*फाटा फाटा रे भई म्हारा फाटा सूर्या गाय दूध*
*दूध फाटे रे जामण ना जमे होजी।*
*डोर टूटे रे गाँठ ना छूटे होजी।*

मृत्यु के बाद यह तन मिट्टी में मिल जाएगा। दीया बुझ जाएगा। सब यहीं जमीन में गल जाएगा अथवा जल भुनकर खाक हो जाएगा। यह काया तो आसमान से गिरे ओले के समान है, जो गिरते ही समाप्त हो जाएगा। मालवी में गोरख का कथन है-

*मत कर काया रो अभिमान मत कर माया रो गुमान*
*काया गार (ओला) से काची।*
*भई थारी आत्मा ने जाण, भई थारो हंस ले पेचाण*
*मोती ओझरा झलके रे जिण घर झूलता हाथी*
*उन घर दिया ना बाती, काया गार से काची*

मालवा के लोक संतों ने आत्मा की अमरता, मृत्यु की भयंकरता और विकर्मों की वीभत्सता का भी खुलकर बखान किया है। इनमें वर्तमान को सुधारने के उपयोगी संदेश भी हैं। इनमें प्रभावी भाषा है- उजली। इनमें प्रतीकात्मक रूप से पूरी मानव जाति की अनुभूतियाँ और उच्च ज्ञान की बानगियाँ हैं। लोक जीवन के श्वास-प्रश्वास से मुखरित होने वाले करुण भावों की गुंजार है इनमें। दुलाजी की भाव रचना देखें तो इसमें कहा गया- 'हे नाथ! यह अकेला उड़कर आया है। नवलख तारों में अकेला चाँद हूँ मैं। पावन चंदन के समान मैं अकेला हूँ, जो पाँव फैलाकर आया हूँ। मैं अकेला गरीब जीवन तेरी शरण में हूँ प्रभु।'

*दया करो म्हारा नाथ हूँ तो गरीब जन जन एकलो*
*चुगता तो सगला पंछी बैठे पंख पसार*
*हंसो उड़ी जावे एकलो*
*मोती मृग चुग खाय पक्षी उड़ी जाय एकलो*

मृत्यु के कोई साथ नहीं चलता। रास्ते में वैतरणी आड़े आती है। यहाँ से बिना रास्ते ही गन्तव्य तक पहुँचना होता है-

*जीवड़ो जाएगा प्राणी एकलो*
*कोई नी चालेगा साथ*
*आड़ी नदी उबट चालणो*
*जाणो हे पेले पार*

मालवा में मृत्यु विषयक मिथकों का भी महत्त्व है। ये आस-पास घटने वाले सत्य को समझने में सहायक होते हैं। मरण के सार्थक भाव की भी ये समझ देते हैं। किन्तु दु:ख का विषय है कि मिथकों को हकीकत मानकर उनके रूपकीय सौंदर्य की सराहना की जगह, उन्हें साधन मानने की जगह (लोक जीवन में) 'मृत्यु' को वीभत्स समझने की भूलें भी हुई हैं। नतीजा यह हुआ कि मौत में जमदूत पाड़े पर बैठकर आने लगा। मृत्यु के आध्यात्मिक अर्थ की जगह उसे भय और नकारात्मक प्रसार में ले लिया गया, जबकि मौत के रूपकों में मनुष्य को सुधारने के अंतर दर्पण हैं, जिन्हें देख-समझकर मृत्यु के पूर्व, जीवन को सुधार लेने की अमूल्य सीख के भाव हैं।

मालवा में मृत्यु पर मुण्डा पल्ला लेने की प्रथा है। इसके अंतर्गत दिवंगत परिवार में सांत्वना हेतु परिजनों के आने पर महिलाओं का रोता हुआ स्वाभाविक स्वर सुनाई देता है। यहाँ राजस्थान की तरह मृत्यु प्रसंग पर व्यवसायिक 'रूदाली' (रुदन के साथ गान) करने वाली मण्डलियों का प्रचलन नहीं हैं। प्रियजन की मृत्यु के बिछोह के समय भला किसे रोना नहीं आता? योगियों, ज्ञानियों और संतों की बात छोड़ दें। वे जीवन और मृत्यु के लौकिक/ अलौकिक अर्थ को जानते-समझते हैं। लोक में साधारण पारिवारिक रिश्तों में, मृत्यु पर रोने, चीखने, तड़पकर, आर्तनाद की स्थिति सहज ही देखी जा सकती है, फिर चाहे वह मालवांचल अथवा कोई अन्य अंचल हो। हाँ मालवा में मृतक के प्रति, यदि वह छोटा है तो ममता भरे रुदन स्वर, यदि युवा है तो बिछोह के कातर स्वर और यदि दिवंगत बुजुर्ग है तो बिछोह में रुदन की अभिव्यक्ति होती है। पास-पड़ौसी महिला समाज सदैव औपचारिक रूप से रुदन करता है। मातमपुर्सी के रूप में महिलाएँ छोटे-छोटे दलों में एकत्रित होती हैं और दिवंगत के गुणों का बखान कर रुदन करती हैं। इस औपचारिक सामूहिक रुदन में वास्तविक आत्मीय रुदन की जगह अभिनय का रुदन स्वर ज्यादा होता है, इसे 'मुण्डा पल्ला' अथवा 'पल्ला' लेना कहते हैं। मुण्डा पल्ला की प्रथा शवयात्रा वाले दिन की सर्वाधिक होती है, फिर उठावने वाले दिन और फिर मासी में और वार्षिकी में इसकी तीव्रता क्रमश: कम होती जाती है।

मृत्यु को लेकर अलग-अलग सोच है, पृथक-पृथक प्रवृत्तियाँ हैं। मालवा में भी मृत्यु को लेकर हमारे समग्र भारतीय सोच से पृथक सोच नहीं है। हमारे यहाँ मृत्यु सम्पूर्ण विराम नहीं है- सम्पूर्ण अंत नहीं है। यह ठहरने का एक पड़ाव मात्र है, जहाँ से जीवन की नई यात्रा शुरू होती है। हकीकत में मृत्यु एक ऐसी घटना है, जिसे देख-जानकर उसके परिणामों को अनुभव कर जीवन को समझने का अवसर मिलता है। यह जीवन की सार्थकता को जानने-पहचानने का एक साधन है। इसीलिए जीते जी कुछ ऐसा कर जाने की तमन्ना बनती है कि हमारे नहीं रहते भी हमें याद किया जाए। हमारी याद निरंतर बनी रहे। अर्थात् मर कर भी हम मरजीवा बने रह जायें। हमारे विचार, भाव मरने के बाद भी जीवित रहते हैं। सुधार कैसा और कितना हुआ, यह मृत्यु के बाद ही जाना जा सकता है। मृत्यु के बाद क्या यह जानना मुमकिन है?

# निमाड़ी मृत्यु गीत

डॉ. सुमन चौरे

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार जीवन का अंतिम एवं सोलहवाँ संस्कार अंत्येष्टि है, जिसके साथ वह अपने ऐहिक जीवन का अंतिम अध्याय समाप्त करता है। मनुष्य जन्म के पश्चात् ही अपनी उन्नति और सुखमय जीवन के लिए विभिन्न संस्कारों एवं क्रिया-कलापों द्वारा सुसंस्कृत होता है। मरणोपरान्त जीव के सांसारिक सम्बन्धी परलोक में भी उसके सुखी रहने की आकांक्षा से उसका अन्तिम संस्कार करते हैं। वास्तव में शरीर नष्ट हो जाना मृत्यु नहीं है। आत्मा भी परमात्म तत्त्व में मिलने के लिए भौतिक शरीर को छोड़कर परलोक के लिए प्रस्थान करती है। मृत्यु एक अत्यन्त अनोखा, रोमांचकारी, आध्यात्मिक, वियोगात्मक और कारुणिक प्रसंग है। दार्शनिक तथा तत्त्व-ज्ञानी की दृष्टि में जीवन की अनेक प्रमुख घटनाओं की तरह मृत्यु भी एक घटना है। पुनर्जन्म के सिद्धांत के अनुसार प्राणी मृत्यु के साथ अपना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करता है। अतः मृत्यु कोई शोकजनक घटना नहीं है।

मृत्यु आत्मा और परमात्मा का मिलन है। मृत्यु ही जीवन का सत्य है, जो इस नश्वर लोक में जन्मा है, वह मृत्यु को अवश्य ही धारण करेगा। ऐसे ज्ञानमय उपदेश संदेशों के बावजूद भी सांसारिक जन में प्रीति, मोह और विछोह, सुख-दुःख, राग-द्वेष का संचरण होता है। मनुष्य को अपने आसपास की वस्तुओं से लगाव हो जाता है। फिर वो जब घर-परिवार में किसी व्यक्ति का मरण सुनता है, तो दुःख-शोक होना स्वाभाविक है।

हिन्दू संस्कृति में सभी धर्म-जाति के लोग मृत्यु को शोक-जनक घटना मानते हैं। यहाँ तक मुस्लिम संस्कृति में भी मातम (शोक) मनाने का रिवाज देखा गया है। उर्दू साहित्य में भी मृत्यु सम्बन्धी शोक गीतों की बहुत प्रथा है। इन गीतों को मर्सिया कहते हैं, जिनमें करुणा और शोक का मार्मिक वर्णन है। मृत्यु संसार से अदृश्य होने का रूप है। किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि हमारे

जीवन का यह शोकजनक अवसर भी गीत और संगीत समारोह से शून्य नहीं है।

निमाड़ में भी मृत्यु विषयक गीत गाये जाते हैं, लेकिन इनकी संख्या बहुत कम है। भावनागत आवेश के साथ मृतक के परिजन जिस प्रकार विलाप करते हैं, उसमें भी एक सुर और रिदम होती है। इन्हें महिलाओं के स्वर में सुना जाता है। दूसरे वे गीत मिलते हैं, जिन्हें पुरुष वर्ग गाते हैं। ये गीत मृतक को श्मशान ले जाते समय शव यात्रा के साथ चलते-चलते ढोलक और मंजीरों की लय पर गाये जाते हैं। इन गीतों में ज्ञान और वैराग्य का भाव होता है। इन गीतों को 'मसाण्या गीत' कहा जाता है। डॉ. श्याम परमार ने लिखा है – 'नर्मदा उपत्यका का वह क्षेत्र जिसे निमाड़ कहा जाता है, वास्तव में मृत्यु के इन गीतों के लिए उल्लेखनीय है। परम्परा से ये गीत चले आ रहे हैं। युवक अथवा युवतियों की मृत्यु पर इन्हें नहीं गाया जाता; केवल वय प्राप्त पुरुषों अथवा स्त्रियों के मरण पर शव के साथ मार्ग में सामूहिक रूप से मृदंग की थापों के साथ गाया जाता है। श्मशान में शवदाह की क्रिया के पूर्व तक गीतों का क्रम चलता है। संदेह नहीं कि परिवार के पुरुषों को अपने प्रियजन का वियोग दु:खी करता है, पर गीतों के इस आयोजन में उन्हें आध्यात्मिक परितोष भी प्राप्त होता है।

मानव देह को चुंदड़ी की उपमा देकर, निर्गुण धारा का गीत गाया जाता है, इसे 'निरगुण्या गीत' कहते हैं –

*नौ महयना मँऽ हुई तैयार रेऽ*
*चुंदड़ी बड़ी अनमोल,*
*पीयर मँऽ पेरी ओढ़ी मगनऽ रही मनऽ मँऽ*
*रह्यो माया को नसो म्हारा मनऽ मँऽ*
*माया मँऽ हेरी गई सासरऽ को ध्यान रेऽ*
*आणु लेणऽ खऽ आया म्हारा मेजवान रेऽ*
*न्हाई धोईऽ नऽ करी तैयार रेऽ*
*म्हारा लाकड़ा की घोड़ी उठी आँगणऽ*
*चुंदड़ी बड़ी अनमोल रेऽ*
*चारऽ बराती मखऽ लई नँऽ*
*खूब कर्‌यो मिलापऽ रेऽ*
*पाछऽ सी रड़ऽ म्हारा पीयरऽ का लोगऽ रेऽ*
*ली जो प्राणी चुंदड़ी ओढ़ऽ रेऽ*
*चुंदड़ी बड़ी अनमोल*

– स्रोत- बाबूलाल जासवाल, ग्राम-कालमुखी, पूर्वी निमाड़

चुंदड़ी रूपी यह सांसारिक शरीर माता के गर्भ में पलकर नौ महीने में तैयार हुआ है। यह चुंदड़ी (शरीर) बड़ी ही अनमोल है। पीयर में इस चुंदड़ी को ओढ़कर मगन रही अर्थात् इस शरीर के साथ दुनिया के राग-रंग में मस्त रहे। माया के नशे में मस्त रहे और जब ससुराल के लोग गौना लेने आए, तो बुरा लगने लगा। नहा-धोकर शृँगार किया, लकड़ी की गाड़ी तैयार हुई (मृतक को स्नान और शृँगार कराने की परम्परा है)। अरथी के पहले एक लकड़ी की गाड़ी श्मशान जाती है। मेरे मेहमान गौना लेने आ गए हैं। यह काया रूपी चुंदड़ी अमूल्य है। चार बराती अरथी उठाकर चले (प्रतीकात्मक रूप है)। घर के लोगों ने मुझसे बहुत मेल-मिलाप किया, मेरे लिए मेरे पीयर के लोग रो रहे हैं। प्राणी यह चुंदड़ी त्याग कर तू दूसरी चुंदड़ी धारण करना। चुंदड़ी बड़ी अनमोल है।

आत्मा और परमात्मा का यह निर्गुण भक्ति गीत है। पति ईश्वर, मायका सांसारिक परिवार कहलाता है, यह भी मोह का रूप है। एक भजन हमें और प्राप्त हुआ, जो मृत्यु के अवसर पर ही गाया जाता है –

*चलो हंसऽ सतलोकऽ हमारे*
*छोड़ो योऽ संसारऽ*
*योऽ संसार काळऽ छे, राजा,*
*करमऽ को जाळ पसारऽ*
*चौदा लोक बस्याऽ ओका मुखऽ मँऽ*
*सबको करेऽ अहारा हो*
*कहे कबीर सुनो धरमदासा*
*लखो पुरुष दरबारा हो*
*बाळऽ जाळऽ कोयला करी डालऽ*
*लखऽ चौरासा मँऽ डरा हो।*

– स्रोत- श्री हीरालाल, ग्राम-हीरापुरा, पूर्वी निमाड़

उपर्युक्त गीत कबीरदासजी की परम्परा का निर्वाह करने वाले उनके किसी शिष्य का ही जान पड़ता है। निमाड़ संत सिंगाजी के निर्गुण भक्तिपरक भजनों का ऋणी है। वे इस जीवन को सफल बनाने के लिए ईश्वर में अपना मन लगाने को कहते हैं। वे कहते हैं- ईश्वर के बिना हमारा कोई अन्त नहीं है। संत सिंगा के गुरु

मनरंगीर के गुरु ब्रह्मगीर का प्रस्तुत गीत शवयात्रा के समय पर भी गाया जाता है –

*समझी लेवो रेऽ मनाऽ भाई, अन्त नी होयऽ कोई आपणो,*
*आप निरंजनऽ निरगुण, सगुणऽ तट ठाड़ा*
*यही रेऽ माया के फंद में नरऽ आणा लुभाणा।*

नर्मदा नदी दक्षिण की गंगा कहलाती है। पतित पावनी पूज्या माँ नर्मदा के जल में अस्थि-विसर्जन एवं भस्म-विसर्जन से मोक्ष प्राप्ति की अवधारणा निमाड़ में विद्यमान है। कभी-कभी मृत्यु के पूर्व ही लोग अपनी इच्छा व्यक्त कर देते हैं कि उनके शरीर को थोड़ा दाग देकर ओंकार मांधाता में, नर्मदा जल में विसर्जित कर दें, ताकि शरीर को कच्छ-मच्छ खाकर तृप्त हो जायें। लोक विश्वास है, इससे सीधे मोक्ष मिलता है। मांधाता के प्रति मृतक की उत्कृष्ट आस्था का यह प्रमाण है। यह गीत है –

*मनऽ रेऽ मांधाता का बिचऽ जाई रह्यो*
*माया जाणऽ नीऽ देवे।*
*पचमड़ी पंडव बसे पाँची करे असनानऽ*
*छतिस मुरतऽ जा रमी रह्या, वो का अम्मर नाम ।*

प्रस्तुत 'मसाण्या गीत' में मृत्यु से साक्षात्कार का अद्‌भुत चित्रण मिलता है –

*जदऽ जमराजऽ काकड़ऽ आया तो घरऽ मँऽ दपड़ी पड़ी*
*भैया म्हारी परेमऽ सुहागण आतमा।*
*झाड़ऽ नीं तोड़्या, सखी मनऽ फुलड़ाऽ नी तोड़्या।*
*नई मनऽ झाड़ झड़ाया*
*भैया म्हारी परेमऽ सुहागण आतमा।*
*जदऽ जमराजऽ गोयाऽ पऽ आया तो छानऽ मँऽ दपड़ी पड़ी*
*भैया म्हारी परेम सुहागण आतमा।*
*जदऽ जमराजऽ सेरी मँऽ आया तो कोंट्या मँऽ दपड़ी पड़ी*
*भैया म्हारी परेमऽ सुहागण आतमा।*
*जदऽ जमराजऽ आँगणाऽ मँऽ आया तो रड़ऽ कुटुम परिवारऽ*
*भैया म्हारी परेम सुहागण आतमा।*

हे भैया! जब यमराज काकड़ (ग्राम सीमा) पर आए, तो मेरी प्रेम प्यारी सुहागन आत्मा घर में छिप गई। हे सखी! मैंने कभी पेड़ नहीं तोड़े, कभी फूल नहीं तोड़े और कभी पेड़ हिलाकर फल नहीं गिराए। हे भैया! मेरी प्रेम प्यारी सुहागन आत्मा। हे भैया! जब यमराज गली में आ गए, तो मेरी प्रेम प्यारी सुहागन आत्मा कोने में छिप गई। जब यमराज आँगन में आ गए, तो मेरे कुटुम्ब-परिवार के लोग रोने लगे। हे भैया! मेरी प्रेम प्यारी सुहागन आत्मा।

इस गीत में मृत्यु पूर्व के पग-पग का चित्रण किया गया है। स्वप्न एवं मंत्रदृष्टा ऋषि की अनुभूति एवं आत्म साक्षात्कार से किसी भी प्रकार यह लोकगीत पीछे नहीं है। यमराज के आगमन एवं उनसे सुहागन आत्मा की दूरी समझाने के लिए किसी भी दूरी नापने की इकाई का प्रयोग न करते हुए काकड़, गोया और आँगन आदि ग्रामीण स्थल-इकाई का प्रयोग किया गया है। इन ग्राम्य शब्दों के प्रयोग से यमराज कितनी दूर पर और कहाँ है? आमजन को स्पष्ट रूप से समझ आता है। यमराज के आगमन एवं आत्मा को ले जाने का ऐसा स्पष्ट एवं सरल चित्रण कहीं उपलब्ध नहीं है।

लोक विश्वास है कि संत परम्परा के इन भजनों को गाने से लोक में मृत्यु का विषाद कम होता है। मनुष्य का सांसारिक जीवन भले ही समाप्त हो, भौतिक शरीर भले ही नष्ट हो, आत्मा तो अजर-अमर है। इतने ज्ञानपरक भजनों के बाद भी मृत्यु का विषाद कम नहीं होता, वह तो समय के साथ घटता जाता है।

साधारण लोक जीवन में मृत्यु अभी भी कोई सामान्य घटना नहीं मानी जाती। महिलाओं का हृदय वैसे ही अधिक कोमल होता है। उनके लिए मृत्यु विषाद का कारण और असहनीय है। जब मृतक सम्बन्धी को लेकर वे विलाप करती हैं, उस करुण रुदन को सुनकर सबका हृदय दहल जाता है। काल-कवलित व्यक्ति की स्मृति में उनका मन छटपटाता है, नेत्र उसे ढूँढते हैं, परन्तु व्यर्थ। जीवन को दु:खमय बनाने के लिए उसकी स्मृतियाँ ही शेष रह जाती हैं। उसका प्रेम ही पाथेय बनता है।

सम्बन्धों के आधार पर विलाप करती महिलाएँ मृतक को सम्बोधित कर रोती हैं। बीच-बीच में सांस टूटने पर- ओ म्हारा! अरे भगवान्! और पति के लिए 'म्हारा राम जी' सम्बोधन करती हैं। ये रुदन मृतक के घर पर ही होता है। श्मशान से इसका सम्बन्ध नहीं रहता।

कौरवी लोकगीतों की मर्मज्ञ डॉ. सत्या गुप्ता मृत्यु संस्कार गीत के सम्बन्ध में कहती हैं – 'यद्यपि इस समय साधारणत: गीतों

का विधान नहीं होता, पर स्त्रियों का इस समय का रुदन एक लय में होता है और उसके साथ जो शब्द वे कहती हैं, वह प्राय: मृत-व्यक्ति की प्रिय वस्तुओं का नाम लेकर शोक प्रकट करती हैं। इनको इस प्रदेश में 'उलाहणी' कहते हैं। वृद्ध की मृत्यु पर नायन जिस गीत को गाती है, वह 'उठावणी' भी कहलाता है- उठावणी का तात्पर्य है- अरथी के अवसर पर गाया जाने वाला गीत।

ब्रजमण्डल में मथुरा के चतुर्वेदियों के यहाँ मृत्यु के अवसर पर गीत गाने की प्रथा है, जिसमें मृत व्यक्ति के विविध प्रिय पदार्थ का नाम लेकर शोक प्रकट किया जाता है। लोक-साहित्य के विद्वान् डॉ. तेजनारायण लाल शास्त्री ने भी मृत व्यक्ति की प्रिय वस्तुओं के नाम एवं स्मृतियों को लेकर विधवा के विलाप करने को मृत्यु गीत के अन्तर्गत समाविष्ट किया है।

कोई वृद्ध बुजुर्ग या प्रतिष्ठित व्यक्ति के न रहने पर परिवार की महिलाएँ विलाप करती हैं -

*अरेऽ तुमऽ काँ मजलिस मँऽ*
*जाई नँऽ बठी गया.. ओ म्हारा - दाजी।*
*तुम्हारा बिना या चावढ़ी सूनी छेऽ*
*तुम्हारा नात्या पोत्या रड़ी रह्याजऽ रेऽ*
*तुमऽ उनखऽ अई नँऽ खेलाओ... ओऽ म्हारा.... ।*

हे माननीय दादाजी! तुम किस मजलिस में जाकर बैठ गए। तुम्हारे बिना चौपाल सूनी है। मेरे दादाजी तुम्हारे नाती-पोते तुम्हारे बिना रो रहे हैं। तुम उनको आकर गोदी में उठा लो, मेरे दाजी।

यदि मृतक की बीड़ी, चिलम, चौपड़ आदि की आदत रही थी, तो महिलाएँ गाते-गाते रोती हैं -

*अरेऽ तुम्हारी चौपड़ सूनी पड़ीजऽ तेऽ*
*तुमऽ काँ चौपड़ खेलणऽ बठी गया म्हारा...*
*तुम्हारी चिलम भरेलऽ धरेलऽ छेऽ*
*ओखऽ पेणऽ आई जाओ म्हारा दाजी।*
*तुमऽ काँ का गोत मँ ऽ बिलमई गयाजऽ ते,*
*हमरा सी नई बोलता ओऽ म्हारा... ।*

हे दादाजी! तुम्हारी चौपड़ सूनी पड़ी है, तुम कहाँ चौपड़ खेलने बैठ गए हो? तुम्हारी चिलम भरी रखी है, तुम आकर पीते क्यों नहीं? तुम किस परिवार में जाकर रम गये मेरे दादाजी, तुम बोलते क्यों नहीं?

अगर मृतक विवाहित युवा है, तो उस व्यक्ति के लिए किया विलाप रुदन बड़ा ही कारुणिक होता है। हिन्दू समाज में तो पति के बिना उसकी विधवा पत्नी का जीवन बड़ा ही दु:खमय हो जाता है। उसे स्वयं अपनी और अपने बच्चों का भविष्य अंधकारमय जान पड़ता है। वह मृतक द्वारा बच्चों को किया लाड़ याद कर रोती है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में ऐसा ही विलाप दशरथ की मृत्यु पर कौशल्याजी का है -

*सुकुमारं च बालं च सततं लालितं त्वया।*
*तात भरतं हित्वा विलपन्तं गतो भवान्।*

तात आपने जिनको सदा लाड़-प्यार किया तथा जो सुकुमार और बालक हैं, उन रोते-बिलखते हुए भरत को छोड़कर आप कहाँ चले गए? ऐसा ही रुदन भाव एक निमाड़ी गीत में भी मिलता है -

*तुमऽ अपणा लेकरू नऽ खऽ रेऽ म्हारा रामऽ जी*
*मुड़ा मऽ सी कौळ हेड़ी नँऽ देता था, तेऽ म्हारा...*
*ऊ भूख्याऽ फिरी रह्याजऽ ते... तुमऽ आई जाओ म्हारा...*
*मखऽ कुणऽ का भरोसा पऽ छोड़ी रे रामऽजी*
*तुम्हारा बिनऽ हाऊँ किसी उपाणई रेऽ म्हारा....*
*म्हारी गाठऽ छोड़ी गया म्हारा रामऽ जी....*

अरे मेरे राम जी! तुम जिन बच्चों को अपना मुँह का कौर दे देते थे, वे बच्चे अब भूखे घूम रहे हैं। मेरे पति! तुम जल्दी आ जाओ। तुम्हारे रहित मैं बिना शृँगार अशुभ नज़र आऊँगी। तुम ब्याह बंधन की गाँठ छोड़कर कहाँ चले गए?

वस्तुत: इस कारुणिक रुदन को सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पत्नी तो इतनी भाव-विह्वल हो उठती है कि उसे 'मृत्यु सत्य है' का ज्ञान भी नहीं रहता। वह बच्चों की दुहाई देकर मृत पति पर पछाड़े खा-खा कर गिर जाती है -

*अरे हाऊँ म्हारो तरसेलऽ मनऽ कसी समझाऊँगा*

पति भी पत्नी के मरण पर ऐसा ही कारुणिक रुदन करता है -

*अरे म्हारो खाटलो सूनो छोड़ी गई,*

*थारी फुलवारी सूखी रहीजऽ ओ म्हारी... ।*

इन भावों में 'भगवान्' शब्द की अभिव्यक्ति भी मिलती है। वय पूर्ण होने पर जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है, उसके लिए इस प्रकार रुदन करते हैं –

*अऽ ओ म्हारी माँयऽ*
*तू हरी भरी फुलवारी छोड़ी नँऽ कहाँ गई*
*थारा नात्या पोत्या रड़ी रह्याजऽ*
*तू क्यों चुपकी छे ओऽ*

ओ मेरी वृद्ध माय! तू अपनी हरी-भरी फुलवारी छोड़कर किस परिवार में रम गई। तेरे नाती-पोते रो रहे हैं। मृतक के परिवार में जब महिलाएँ एवं पुरुष उनसे मिलने आते हैं, तब घर की महिलाएँ मुँह ढँककर सिर पर दोनों हाथ रख आगन्तुक के आगमन की खबर से रोना प्रारंभ कर देती हैं। वस्तुतः दु:ख के कारण ही मुँह से ऐसे शब्द, ऐसी चीत्कार निकल पड़ती है। इसे 'मुंडो देना' कहते हैं। बालक की मृत्यु पर सम्बोधन चलते हैं, बालक की कृष्ण लीलाएँ मन को कैसी उद्वेलित करती हैं –

*ओऽ म्हारा होर्याऽ...*
*थारी चेंडू अल्यांगऽ वल्यांग फेकई रहीजऽ तेऽ,*
*ओखऽ खेलनऽ अई जा रेऽ म्हारा होर्या*
*ओ म्हारा पोपट थारा बिनऽ घरऽ आँगणा*
*सूना-सूना रेऽ म्हारा पंछी*
*थारी थालऽ परेसल छेऽ तेऽ*
*तू जीमणऽ क्यों नी आवतो रेऽ*
*तुखऽ काँ की माँयऽ मिली गई*
*तू ओखऽ छोड़ी नँऽ आ रेऽ पोपट... ।*

परम्परा और रीति-रिवाजों के अनुसार मृतक को श्मशान ले जाने के पूर्व घर पर स्नान कराया जाता है। नवीन वस्त्र, चन्दन एवं सुगंधित द्रव्य लगाकर शृँगार किया जाता है। उसे पुष्प से सुसज्जित किया जाता है। मृतक के हाथ में आटा मसकर कच्चे लड्डू रखे जाते हैं। अरथी पर लिटाकर उसका पूजन किया जाता है। रिश्तेदार श्रद्धानुसार शाल, साड़ी भी ओढ़ाते हैं। मृतक को ईश्वर-सा आदर दिया जाता है। प्रणाम किया जाता है। उसकी परिक्रमा लगाई जाती है। उससे क्षमा याचना की जाती है। उसे इस परिवार में जो कष्ट हुए, उसके लिए उस देह से क्षमा माँगी जाती है। उसे विदा किया जाता है। पश्चात् नहा-धोकर में प्रवेश किया जाता है।

जब पुरुष लोग श्मशान से दाह क्रिया कर घर पहुँचते हैं, तो रुदन के स्वर में महिलाएँ पूछने लगती हैं –

*अरेऽ म्हारी भगवान् मायऽ खऽ*
*काँ धरी आया रेऽ म्हारा...*
*वा काँऽ का नात्या मँऽ बिलम्ई रेऽ*
*मखऽ काँ जाई मिलसे रेऽ म्हारी माँयऽ*

यूँ तो दाह-संस्कार के पश्चात् मृत्यु संस्कार सम्पन्न हो जाता है; किन्तु हिन्दू रीति-रिवाज एवं परम्पराओं के अनुसार तीसरा, अस्थि-संचयन, दसवां (दशगात्र), ग्यारहवाँ, बारहवाँ, तेरहवाँ (त्रयोदश श्राद्ध) उत्तर कर्म आदि कर्म-काण्डी पंडित सम्पन्न कराते हैं। निमाड़ में इन रीति-रिवाजों एवं कर्म-काण्ड सम्बन्धी गीत नहीं होते।

जब कोई वृद्ध या वयपूर्ण करने पर कोई व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है, तो ग्रामीण क्षेत्रों में मृत्यु की सूचना कुछ इस प्रकार दी जाती है –

*चलो मायऽ का गीतऽ गावणऽ चलो।*
*चलो दाजी की रागऽधरी आवाँऽ।*

मृतक के परिवार एवं नाते-रिश्तेदार महिलाएँ उसके यश, कीर्ति और उससे परिवार में हुई क्षति की गणना शब्दों में बाँधकर करती हैं। दूर से वे स्वर संवेद गीत जैसे ही सुनाई पड़ते हैं। अतः मृत्यु के अवसर का रुदन गीत की श्रेणी में ही आता है। 'कौरवी लोकगीतों' की डॉ. सत्या गुप्ता, 'भोजपुरी लोकगीतों' के डॉ. रविशंकर उपाध्याय, 'मैथिल लोकगीतों' के डॉ. तेजनारायण लाल शास्त्री आदि लोक-साहित्य मर्मज्ञों ने इसकी पुष्टि की है। हर्षोल्लास कि अभिव्यक्ति गीत हैं, तो शोक की अभिव्यक्ति भी गीत हैं।

**पोटळई गीत**

निमाड़ में वयोवृद्ध व्यक्ति की शवयात्रा में स्त्रियों के सम्मिलित होने और गीत गाते हुए उसे गाँव की सीमा तक पहुँचाने की परम्परा आज भी जीवित है। शवयात्रा में आगे-आगे पुरुष वर्ग झांझ और

मृदंग पर अंतिम यात्रा के गीत गाते हुए चलते हैं और पीछे-पीछे महिलाएँ भी गाती हुई चलती हैं। स्त्रियाँ ग्राम-सीमा से वापस लौट आती हैं। स्त्रियों द्वारा शवयात्रा के साथ गीत गाने सम्बन्धी ऐसी परम्परा का उल्लेख अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया। निमाड़ में इन गीतों को पोटळई गीत कहते हैं। पोटळई गीतों में सम्पूर्ण भारतीय दर्शन एवं वेदान्त के उदात्त दर्शन होते हैं।

शवयात्रा के साथ चलते-चलते स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला एक निमाड़ी लोकगीत -

*मैली मती राखो गुरु रेऽ गोविन्द जी की कोठरी*
*उजळई करी राखो गुरु रेऽ गोविन्दजी की कोठरी*
*तांबा की झारी गंगाजळऽ पाणी न्हावणऽ करो नँऽ प्राणी*
*गुरु रेऽ गोविन्द जी की कोठरी।*

– श्रीमती निर्मला बाई, ग्राम-बड़ूद, प.निमाड़

गुरु गोविन्दजी द्वारा प्रदत्त इस कोठरी अथवा काया को मैली मत करना। इस काया को हमेशा उजली रखना। ताम्बे की झारी में गंगाजल रखा हुआ है। हे प्राणी! तुम गंगाजल से स्नान करते जाओ, अर्थात् सर्व पापों से मुक्त होकर जाओ। प्रस्तुत है एक अन्य पोटळई गीत-

*म्हारा दाजी चल्या कैलासऽ ओऽ*
*संगात लीऽ एक पोटळई*
*काया की पोटळई जळई बळई गई*
*सच्ची जोतऽ गई कैलास ओऽ*
*या पोटळई मँऽ केत्ताकऽ पुन्नऽ छे*
*केत्ताकऽ बांध्या पापऽ ओऽ*
*संगातऽ ली एकऽ पोटळई*

– स्रोत- श्री गेंदालाल जोशी, सनावद, प.निमाड़

मेरे दादाजी कैलाश चल दिए। उन्होंने अपने संग एक पोटली ले ली है। काया की पोटली तो जल-बल गई, सत्य की ज्योति कैलाश चली गई। इस पोटली में कितने ही पुण्य हैं, कितने ही पाप बंधे हैं। इस गीत में देह को नश्वर और आत्मा को अमर जोत कहा गया है। यह ज्योति ब्रह्मांश है, वह देह से निकल कर पुनः ब्रह्म में विलीन हो गई।

स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला एक और पोटळई गीत देखिए -

*कायाऽ की लम्बी चौड़ी पेटी*
*धरी एकऽ डब्बी ओमऽ*
*जवँऽ लसऽ डब्बी धरी रही,*
*पेटी गयऽ गयऽ पाट*
*चोरी गईऽ डब्बी तो*
*लुटी गया वानऽ रेऽ।*

स्रोत- श्री गेंदालाल जोशी, सनावद, प.निमाड़

काया की लम्बी-चौड़ी पेटी है। उसमें एक डिब्बी है। जब तक पेटी में आत्मा रूपी डिब्बी रखी रही, तब तक सब कुछ चैतन्य और रौनकदार था। जैसे ही डिब्बी चोरी चली गई, तो लगा सब कुछ लुट गया, पेटी जड़ स्वरूप हो गई।

इस गीत का बिम्ब विधान देखिए। शरीर और आत्मा के जीवंत प्रदर्शन के लिए पेटी और डिब्बी से अच्छा लोक-सुलभ साधन और क्या हो सकता है। शरीर पेटी है, आत्मा उसमें रखी डिब्बी है। यमदूत आकर डिब्बी चुरा ले जाता है। पेटी जड़ स्वरूप पड़ी रह जाती है।

जन्म की अंतिम परिणति मृत्यु ही है। जीवन का सत्य ईश्वर में ही विद्यमान है। प्रस्तुत गीत में कहा गया है - प्राणी तू पोपट की तरह हरिनाम को रटता रह, मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है -

*सीतामाय नँऽ पढ़ाया पढ़ो रेऽ पोपटऽ*
*हरि नावऽ खऽ।*
*अमरकण्ठ का जाण्या, पढ़ो रेऽ पोपटऽ*
*हरि नावऽ खऽ।*
*इना रेऽ प्राणी खऽ न्हावणऽ कराया, न्हावणऽ करनऽ नीऽ पायऽ*
*पढ़ो रेऽ पोपट हरिनावऽ खऽ।*

–स्रोत- श्रीमती निर्मला बाई, ग्राम- बहूद, प.निमाड़

सीता माता ने पढ़ाया। हे पोपट! तू हर घड़ी, हर-क्षण ईश्वर का नाम रटता रह। हे बैकुण्ठ को जाने वाले प्राणी सुवा! तू हरिनाम की रट लगाए रह। हरिनाम का स्मरण ही अमरवाणी है। इस प्राणी को स्नान करने को जल रखा, किन्तु वह स्नान भी नहीं कर पाया और मृत्यु आ गई। इसीलिए- हे प्राणी! तू ईश्वर का नाम पोपट जैसा रटते रह।

लोकमान्यता है कि जिस व्यक्ति ने मृतक का दाह-संस्कार किया है, मृतक का प्राण ग्यारह दिन तक उसके कंधे पर ही वास करता है। कहीं यह लोक-धारणा है कि मृतक का जीव ग्यारह दिन तक घर के द्वार 'वळेण' में लटका रहता है, और कहीं उसके घर के डांडे में रहता है। अत: प्रात:काल जागते और संध्याकाल तथा भोजन के समय उसका स्मरण कर जोर-जोर से रोते हैं। जिस प्रकार मंगल कार्यों में किसी व्यक्ति के आगमन पर मंगल गीत गाये जाते हैं तथा प्रत्येक प्रसंग का कार्य प्रारंभ होते ही गीत आरम्भ होता है, उसी प्रकार मृतक के परिवार में बारह दिन तक किसी के आगमन पर, कोई कार्य आरम्भ करने पर, भोजन करने बैठने पर, कुछ महिलाएँ राग में रोने लगती हैं। मृतक हमारे साथ रहा, उसका हमसे अभिन्न नाता रहा, इतना लगाव-मोह होना स्वाभाविक ही है। जीवन के हर क्षण उसकी याद आती है और दु:ख होता है। मृतक के घर संवेदना व्यक्त करने जाने को निमाड़ में 'घल्लक फिरना' कहते हैं। इस अवसर पर आगन्तुक को देखकर महिलाएँ घूँघट में मुँह छुपाकर मृतक के विषय में चर्चा कर रोने लगती है। मान्यता है कि घल्लक फिरने जो व्यक्ति गया और उसके आगमन पर मृतक के परिवार के लोगों ने 'मुँडो नहीं दिया' अर्थात् रोये नहीं, तो आगन्तुक अपने लिए अपशकुन मानता है।

अन्त में बारह दिन बाद हण्डी फोड़कर मृतक की आत्मा को घर से विदा कर रोना बंद किया जाता है। इस समय परिवार की सभी महिलाएँ एक साथ भोजन करने बैठती हैं। सबकी थाली में उड़द के आटे की टिकिया परोसते हैं। जिस व्यक्ति ने दाहक्रिया की थी, वह व्यक्ति मिट्टी की मटकी को घर के बाहर किसी कोने में फोड़ देता है। महिलाएँ एक साथ आवाज़ कर रोने लगती हैं। आज के दिन से इस प्रकार 'मुँडा देना' बंद हो जाता है।

यूँ तो मृतक का पक्षी श्राद्ध, सवा मास का श्राद्ध, छह मासी, बारहमासी (बरसी) श्राद्ध होते हैं, पर उनमें ऐसे कोई गीत नहीं होते। हरियाणा के डॉ. यादवजी ने मृत्यु संस्कार के अन्तर्गत लिखा है- 'मृत्यु गीतों का वर्ण्य-विषय मृत व्यक्ति के गुणों का परिगणन होता है।' भोजपुरी प्रदेश में औपचारिक रूप से मृत्यु गीतों का प्राय: अभाव पाया जाता है।

मृतक की शव यात्रा के समय ईश्वर नाम का स्मरण करने की परम्परा सभी क्षेत्रों में पाई जाती है। मनुष्य की अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् कर्मकाण्ड करने का विधान है। कई समाजों में इनको अलग-अलग पद्धति से करते हैं। निमाड़ के कुछ जातीय समाजों में इस अवसर पर 'सवा घड़ा' अनुष्ठान किया जाता है। इस अनुष्ठान का निष्पादन करने वाले पुरोहित को 'साद' कहा जाता है। मृत्यु के दसवें दिन 'सवा घड़ा' भरा जाता है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, उन गीतों को 'काया खोजी' गीत कहते हैं। लम्बे समय तक साथ-साथ रहने के कारण काया से आत्मा का भी मोह हो जाता है। अब काया से आत्मा निकल गई। काया दाह संस्कार के पश्चात् अदृश्य हो गई। आत्मा उस काया को मृतक के घर पर दस दिन तक खोजती रहती है। आत्मा के द्वारा काया को खोजने के कारण ही इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'काया खोजी' गीत कहते हैं। ये निर्गुणी गीत होते हैं।

'सवा घड़ा' अनुष्ठान में दसवें दिन 'सवा घड़ा' सीपित किया जाता है। सूर्यास्त से दो घड़ी बाद साद गुरु इस कर्म को करते हैं। घड़े को काया और उसके भीतर जोत जलाते हैं, जो आत्मा का प्रतीक होता है। रात्रि भर गीत और चार प्रहर आरती होती है। सूर्योदय से पूर्व जलते दीपक सहित घड़े का विसर्जन जलाशय में कर दिया जाता है, अर्थात् काया और आत्मा साथ हो गए।

**संदर्भ**


1. हिन्दू संस्कार - डॉ. राजबली पाण्डेय, चतुर्थ संस्करण: 1985
2. कल्याण - सम्पादक : राधेश्याम खेमका, वर्ष 72 संख्या 4, अप्रैल 1998
3. वीणा (मालवी अंक) सितम्बर-अक्टूबर 1971 - सम्पादक : मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही'
4. मालवी का लोक साहित्य - डॉ. श्याम परमार, प्रथम संस्करण 1969
5. निमाड़ी और उसका साहित्य - डॉ. कृष्णलाल हंस, प्रथम संस्करण : 1960
6. हरियाणवी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन - डॉ. गुणपाल सिंह सांगवान, प्रथम संस्करण : 1989
7. निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास - रामनारायण उपाध्याय, प्रथम संस्करण
8. हरियाणा प्रदेश के लोक गीतों का सामाजिक पक्ष - डॉ. जगदीश नारायण भोलानाथ शर्मा, प्रथम संस्करण : 1989

# हम परदेशी पावणा

रमेशचन्द्र तोमर 'निमाड़ी'

'मृत्यु एक शाश्वत सत्य है, जो जन्मा है वह मरेगा' जो माँ की गोद में सोया है, उसे धरती की गोद में भी सोना पड़ेगा। इस सत्य को कोई नहीं झुठला सकता है। गीता में कहा गया है- 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः'। आत्मा को न कोई अस्त्र-शस्त्र काट सकते हैं, न ही अग्नि जला सकती है, केवल शरीर नश्वर है और आत्मा अजर-अमर है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्र धारण कर लेता है। उसी प्रकार आत्मा भी वृद्ध शरीर को त्यागकर नये शरीर में प्रवेश कर लेती है। उस आत्मा को पिछले जन्मों की बातें याद रहती हैं, तब बच्चा बातें करते हुए कहता है- मैं अमुक गाँव का था, मेरे माता-पिता का नाम, मेरी सम्पत्ति, पत्नी-बच्चे के बारे में बताता है। पर यह यदा-कदा ही होता है। मनुष्य जीवन में आकर हम सत्कर्म करें, सत्य वचन बोलें, सद् व्यवहार करें, प्रेम पूर्वक रहें, दान-धर्म करें, तो हमारी आत्मा को मुक्ति मिलेगी, आवागमन मिट जायेगा- आत्मा परब्रह्म में लीन हो जायेगी।

मिट्टी (काया) की दार्शनिकता को लेकर सदियों से बहुत-सी बातें कही गयी हैं। कबीरदास जी, रहीम, सूरदास, दादू दयाल, सेन भगत, पीपा भगत, संत सिंगाजी और दल्लु दास कितने ही संतों ने मनुष्य देह से लेकर सब जगत की सर्जना का मूल मिट्टी की बड़ी गहरी व्याख्या की है। अलग-अलग समय में उनकी यह वाणी मर्मभेदी रही है। उसका प्रभाव पीढ़ियों के साथ आज तक चला आया है। मिट्टी से जीवन है और जीवन का अंत मिट्टी है। मिट्टी हमारी जिंदगी का सच है। कबीरदास जी ने मनुष्य शरीर के बारे में कहा है - *पानी केरा बुदबुदा, अस मानष की जात।*

मनुष्य का जीवन पानी के बुलबुले के समान है। कब हवा का झोंका आये और बुलबुला फूटकर बिखर जाये। संत सिंगाजी

ने अपने पद में कहा है- 'निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझहारा।' भगवान निराकर है, उनका सगुण स्वरूप नहीं है। सिंगाजी ने हमेशा निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर जनमानस को प्रेरित किया है। संत सिंगाजी के प्रपौत्र दल्लुदास ने कहा है- 'हम परदेशी पावणा, दो दिन का मिजवाना।' हम परदेशी मेहमान है, हमें इस संसार में दो दिन रहना है। सत्य यह भी है कि यह संसार एक बाजार है। बाजार करके हमें घर लौट जाना है।

हमारे संतों ने शरीर (काया) को मिट्टी कहा है। महिलापरक इस गीत की पंक्तियों में भी इसी सच को उजागर किया गया है।

*माटी ओढ़ना माटी बिछावणा*
*योवन है माटी माटी म मिल जाणा*

हमारा शरीर मिट्टी का है। मृत्यु होने पर कई समाजों में मृत शरीर को दफनाया जाता है। तब मिट्टी ही ओढ़ना होता है। मिट्टी का ही बिछौना होता है। ये तन माटी का है और अंत में मिट्टी में ही मिल जाता है।

अधिकांश समाजों में मृत्यु होने पर मृत शरीर को अग्नि दाह किया जाता है। अग्नि दाह से अग्नि का तत्त्व अग्नि में, जल का तत्त्व जल में, वायु का तत्त्व वायु में मिल जाता है। इसीलिये अग्नि दाह किया जाता है। मृत शरीर के जलने से वायु में प्रदूषण न फैले, इसीलिये मृत शरीर को घी, कपूर, अगरबत्ती, चंदन का चूरा लगाकर अग्नि दाह किया जाता है, जिससे वायु प्रदूषण न हो।

काया खोज एक आध्यात्मिक और अनुष्ठानिक विधान है। मसाण्या गीतों में शरीर और आत्मा के संवाद होते हैं। इनमें आत्मा को दुल्हन की उपमा दी जाती है। निमाड़ी मसाण्या गीत भारतीय आध्यात्म की उदात्त लोक अभिव्यक्ति है। जिसमें राग-विराग, आत्म तत्त्व, क्षणभंगुरता, सबद त्रिवेणी, अणहद सूरत, अष्ट कमल, ताना-बाना आदि योग-साधना के तात्त्विक शब्दों के साथ निमाड़ी के अपने निजी मौलिक तात्त्विक शब्द, आणा, सासरिया, हंसा, जीवड़ा, अमरगढ़, मुगल, सतगुरु, चुन्दड़, दस द्वार, दुलरी, चलावा, बंजारी, दुल्हन, दुल्लव आदि आध्यात्मिक प्रतीकों के माध्यम से काया खोज के गीत चमत्कारिक रहस्यात्मक अर्थ को प्रकट करते हैं। शव जलाने तक शरीर का गीतों के द्वारा सांगोपांग वर्णन किया जाना एक अद्वितीय परम्परा कही जा सकती है।

मृत्यु शरीर की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, और संसार की सबसे बड़ी सच्चाई भी, जिसे मनुष्य जीते जी साक्षात् देखता है और महसूस करता है कि मृत्यु का अर्थ एक सजीव ईकाई का निर्जीव होना है। आत्मतत्त्व का शरीर से निकल जाना है। निमाड़ में जब कोई चर्चित-प्रतिष्ठित, लोकप्रिय या साधु जाता है, तब उसकी शवयात्रा बड़ी धूमधाम से गाजे-बाजे से निकाली जाती है, जिसे डोला निकलना कहते है। अवयस्क युवा की असमय मृत्यु पर शवयात्रा में कोई धूम नहीं होती हैं। अधिक उम्र के, रोगी व्यक्ति के शरीर छोड़ने के बारे में लोग प्रायः आपस में कहते हैं- 'चलो छुटकारा गति हुई' अर्थात् मोक्ष हुआ। बड़े के जाने का गम तो होता है, लेकिन इसके साथ एक सूकून भी होता है कि मौत जैसी सच्चाई से एक दिन सबको सामना करना पड़ता है।

'हम परदेशी पावणा, दो दिन का मिजवाना' और अब अंतिम संस्कार। संसार रूपी सराय से विदा होने की बेला। प्रकृति का यह अटल नियम है कि जो यहाँ जन्म लेता है, उसे एक न एक दिन जाना होता है। जन्म और मृत्यु दोनों भाई-बहन हैं, एक का आगमन सुखद और दूसरे का दुःखद। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों, संत-महन्तों और चिन्तकों ने भारतीय वाङमय में जन्म और मृत्यु तथा जीवन और ब्रह्म आदि के विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार-मंथन कर जो निष्कर्ष निकाला है। उसका सार यह है कि संसार असार है, नाशवान है। न जाने किस जन्म के पुण्य-प्रताप से मानव योनि में जन्म होता है। अतः मनुष्य को ऐसे सत्कर्म करना चाहिये कि बार-बार के जन्म-मरण के कष्ट से मुक्ति पा सके। माया-मोह, ममता आदि ऐसे विकार हैं, जो मनुष्य को संसार में बाँधे रखते हैं।

मृत्यु संध्या के समय होने पर रात्रि में भजन मंडली को बुलाया जाता है। भजन मण्डली मृदंग और झाँझ लेकर आते हैं और भजन शुरू हो जाते हैं। मृत्यु की रात काफी लम्बी होती है। भजन मण्डली निर्गुण पद गाती है। अच्छे सत्कर्म, दान, दया, धर्म की बातों वाले पदों का गायन करते हैं-

*दुःख सुख मन मऽ नी लावणा, सुख सागर भरिया*
*दुःख सुख मनऽ.....*
*हरिश्चन्द्र सरीखा राजवी, जिनकी दमयन्ती राणी*

*अपणे सत के कारण भरऽ डोम घर पाणी*
*दु:ख सुख मन मऽ.....*
*राजा नल सरीखा राजवी, जिनकी विस्बासी नारी*
*अपणे सत के कारणे दिया पुत्र  चिराय*
*दु:ख सुख मन मऽ.....*
*अणहद वाजा वाजिया वाजा गुरू दरबार*
*सेन भगत की विनती, राखो शरण लगाय*

सुख-दु:ख दोनों एक परछाईं की तरह आते-जाते हैं। दु:ख है तो सुख भी आयेगा ही। दु:खों से मनुष्य को घबराना नहीं चाहिये। दु:ख तो अच्छे-अच्छे राजा-महाराजाओं को भी उठाना पड़ते हैं। सुख-दु:ख के बारे में सोचना ही नहीं चाहिये। मृत्यु के समय गाये जाने वाले कुछ भजन निम्नानुसार है-

**संत सिंगाजी**

*कोई नी मिल्यो रे म्हारा देश को*
*केकऽ कऊँ म्हारा मन की*
*कोई नी मिल्यो रे.....*
*चहुंदिशा मन खऽ छोड़िया*
*सायब ढुढी लाओ*
*बाहर भटके से ना मिले*
*अंत मऽ लय लाओ*
*कोई नी मिल्यो रे.....*
*लाली कहुँ कछु लाल नहीं*
*कछु जरदा भी नाहीं*
*देह कहुँ सब झूठ है*
*वो ही सब माटी*
*कोई नी मिल्यो रे.....*
*पवन पाणी से प्रभु पातला*
*जसो सुर्या मऽ धारा*
*ज्यो शशि केरा चाँदणा ऐसा मेरा रामा*
*कोई नी मिल्यो रे.....*
*पग धारण को ठौर नहीं*
*मानो धारण को ठोर नहीं*
*मानो की मति मानो*
*सुक्ति सुधारो सिंगा आदणी*
*जीवता पहिचाणो*
*कोई नी मिल्यो रे म्हारा देश को*
*केकऽ कऊँ म्हारा मन की*

इस संसार में कोई भी ईश्वर की अनुभूति प्राप्त नहीं मिला? मुझे उस परमात्मा से मिलना है। मेरे मन का रहस्य कहूँ? चारों दिशाओं से मन भटका उस परमपिता ईश्वर को ढूँढने के लिये, तब समझ में आया कि वह बाहर भटकने से नहीं मिलता, वह तो सबके भीतर बैठा है। मैंने उसे अनुभव किया। अगर इसे (ईश्वर को) लाल कहूँ तो उसमें लाली भी नहीं है। इसे लाल रंग का कहूँ तो उसमें लाल रंग भी नहीं है। जिस देह पर मुझे इतना गुमान है, वह नश्वर है। इसे एक दिन मिट्टी में मिल जाना है। सत्य तो यह कि आत्मा अमर है। वही आत्मा के रूप में सबमें समाया है। वह ईश्वर तो पानी और पवन से भी पतला है। वह मेरा ईश्वर (राम) चाँदनी की तरह अव्यक्त है। यानी जो धूप और चाँदनी की तरह दिखाई देकर भी पकड़ में न आ सके, पर जिसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है, वह राम सबके हृदय में इसी तरह वास करता है। मानो या न मानो ये बात सत्य है। यदि संसार सागर से मुक्ति पाना है, तो राम-राम नाम का स्मरण करो। जब तक जीवन है, तब तक उस ईश्वर को पहचान लो। यही बात सिंगाजी अपने आपसे कह रहे हैं। जब तक शरीर में आत्मा है, तब तक उस ईश्वर को पहचाना जा सकता है। शरीर नष्ट हो उसके पहले परमात्मा से मनुष्य को मिलने का सच्चा प्रयास करना चाहिए, यह सब जीते जी का खेल है।

**संत सेन भगत**

*मन पंछी दगो दई गयो, खुब करी रे तुनऽ घात*
*भव रे सागर का बीच मऽ, एकदम छोड़ी गयो हाथ*
*मन पंछी दगो दई गयो...*
*भवन में अकेली बठी कऽ, पिया जीवु थारी वाट*
*आँसू नमऽ चोली भींजी गई, बिगड़ी गयो सब ठाट*
*मन पंछी दगो दई गयो...*
*दोई वीर संग साथ मऽ, पिया ढूंढऽ थारो गाँव*
*तू तो नजर नी आवतो, रही रई रे उबी वाट*
*मन पंछी दगो दई गयो...*
*सूरत नजर नहीं आवती, पिया थारी मकऽ आस*

*यारा बिनऽ चैन नी पड़ऽ, असो छोड़ी गयो रे संगात*
*मन पंछी दगो दई गयो...*
*कुटुम्ब कबीलो संग साथ मऽ, सबको झुठो संसार*
*इनी रे माया का फंद मऽ, प्रभु लगई दिजो पार*
*मन पंछी दगो दई गयो...*
*अणहद बाजा बाजीया वाजा गुरू दरबार*
*सेन भगत की विणती जिनखऽ काया मऽ राख*
*मन पंछी दगो दई गयो...*

मन रूपी पंछी धोखेबाज है, जो मनुष्य को कभी भी धोखा दे सकता है। वह शरीर के साथ आघात कर सकता है। मन का कोई भरोसा नहीं है। इस संसार सागर में मुझे वह अकेला छोड़ सकता है। शरीर रूपी भवन में बैठकर मैं तेरी पत्नी की तरह अकेली बाट जोहती रही हूँ। आँसुओं से मेरी चोली भीग गई है और सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो गया है। दोनों आँखें दो पीर हैं, उनके सहारे मैं तुम्हें खोज रही हूँ, पर तू कहीं नजर नहीं आ रहा है। रास्ते भर खोजते मैं रो रही हूँ। तेरी सूरत मुझे दिखाई नहीं देती है। शरीर कहता है- आत्मा पति की तरह मैं तेरा रास्ता देख रही हूँ। मुझे आशा है तू आयेगी, तेरे बिना मुझे एक पल भी चैन नहीं है। तुम किस प्रकार मेरा साथ छोड़ गई हो। कुटुम्ब परिवार के सभी लोग मेरे साथ हैं, पर यह सब मिथ्या संसार है। इस माया रूपी संसार से प्रभु मुझे पार लगा देना। जहाँ अणहद संगीत सुनाई दे रहा है। बस गुरुजी के दरबार में मुझे जगह देना। सेन भगत की यही प्रार्थना है, भगवान तुम्हारा नाम मुझे सदैव स्मरण रहे। क्योंकि मन (आत्मा) रूपी पंछी तो कभी भी धोखा देकर उड़ सकता है।

**संत धनजी दास**

*अभिमन्यु स्वर्ग सिधार्‌या रोयऽ सुभद्रा*
*पुत्र-पुत्र कय रोवती बेटा रे अभिमन्यु*
*येम येकलो पुत्र थो जिनऽ घर नहीं राखियो*
*पाण्डव कुल रोवण लयो बेटा रे अभिमन्यु*
*बाप तुम्हारो घर नहीं जिवकाई रे बतावांगा*
*कौन की माता किनका पिता किनका कुटुम्ब परिवार*
*झूठी रे माया झूठा जगत पसारा*
*तुलसीदास री विणती राखो शरण लगाय*
*दास धन्जी कयण लग्या तारी लेवो रघुनाथ*

*अभिमन्यु स्वर्ग सिधार्‌या रोयऽ सुभद्रा*

महाभारत के युद्ध में, चक्रव्यूह की रचना में अभिमन्यु का वध किया गया था। माता सुभद्रा रो रही हैं। वह पुत्र-पुत्र की रट लगा रही हैं। मेरे कुल दीपक, मैंने तुम्हें भी अपने पास नहीं रखा। तुम्हें भी महाभारत के युद्ध में मौत के मुँह में झोंक दिया। सभी पाण्डव बेटा अभिमन्यु पुकार कर रो रहे हैं। सुभद्रा रोते-रोते कह रही है- बेटा! जब तुम्हारे पिताजी लौटकर आयेंगे तो मैं क्या जवाब दूँगी? जब वह मुझसे पूछेंगे कि मेरे अभिमन्यु को क्या हुआ? मेरा अभिमन्यु कहाँ गया? तब मैं क्या जवाब दूँगी? ऐसा कहकर विलाप कर रही है।

भगवान श्रीकृष्ण सहित अर्जुन युद्ध से वापस आते हैं। तब सुभद्रा भगवान से प्रार्थना करती है- आपका अकेला भांजा मौत के मुँह में चला गया है। हे मधुसुदन! कुछ कीजिये। सुभद्रा का मोह भंग करने के लिए भगवान कुछ पल के लिये अभिमन्यु को जीवित कर देते हैं।

जीवित होने पर अभिमन्यु कहता है- हे माता! किसकी माता, किसका पिता, किसका कुटुम्ब-परिवार? मेरा कोई नहीं है। व्यर्थ शोक मत करो, यह सारी माया-ममता झूठी है। संसार का सारा प्रसार झूठा है। यह यथार्थ नहीं है, जिसने शरीर धारण किया है, उसकी मृत्यु निश्चित है, इसलिये मेरा शोक मत करो। आत्मा अजर-अमर है। ऐसी ज्ञान की बातें बताकर अभिमन्यु वापस मृत्यु की गोद में लीन हो जाता है। धनजीदास कहते हैं कि जैसे तुलसीदास जी ने राम भक्ति में अपना जीवन लगा दिया, ठीक ऐसे ही रघुनाथ (श्रीराम) से मेरी भक्ति लगी रहे।

**संत दल्लुदास**

*दया करो म्हारा नाथ, हऊँ रे गरीबजन ऐकलो*
*दया करो म्हारा .....*
*सकल वनस्पति फुलीया फूली डाल मऽ डाल*
*वा ही चंदन ऐकलो, जाकी निरमल वास*
*दया करो म्हारा नाथ.....*
*नव लख तारा ऊगीया, जाकी जगमग ज्योत*
*वा ही में चंदा ऐकलो, जाकी निरमल ज्योत*
*दया करो म्हारा नाथ.....*

*नव लख पंछी बैठीया, बैठा पंख पसार*
*वा ही में हंसा ऐकलो, मोती चुग-चुग खाय*
*दया करो म्हारा नाथ.....*
*अणहद वाजा वाजिया वाजा गुरू दरबार*
*दास दल्लु की वीनती, उतरो भवके पार*
*दया करो म्हारा नाथ हऊँ रे गरीब जन ऐकलो*

हे स्वामी! मुझ पर दया कीजिये, मैं गरीब अनाथ अकेला हूँ। मुझ पर दया बनाए रखें। मैं तुम्हारे भक्ति मार्ग पर अकेला ही चलने वाला हूँ। सारी वनस्पति फूलों से लद चुकी है। इसी तरह हजारों तरह के पेड़-पौधे-वनस्पति पृथ्वी पर हैं, पर उनमें चंदन का पेड़ अकेला है, जिसकी निर्मल सुगन्ध से सारा जंगल महकता है।

आकाश मंडल में हजारों तारे है, जिनका झिलमिल प्रकाश फैलता है, लेकिन उन लाखों तारों में चन्द्रमा के समान अकेला हूँ, जिसका प्रकाश सारी पृथ्वी पर चाँदनी बनकर छिटक जाता है। मेरी भक्ति चन्द्रमा के समान स्वच्छ निर्मल और शीतल है, इसे मैं बहुत ही विनम्र भाव से स्वीकार करता हूँ।

सृष्टि में नौ लाख प्रकार के पंछी यानी जीव-जन्तु प्राणी विद्यमान हैं। जो अपने-अपने कर्म करने में लगे हुए हैं। उनके बीच में मैं हंस अकेला हूँ, जो मोती चुग-चुगकर खाता है। ज्ञान के एक-एक मोती चुगकर मगन रहता है। ठीक उसी प्रकार मैं ज्ञान के श्रेष्ठ सार को ग्रहण करता हूँ।

दल्लु दास कहते हैं- जिन्होंने परमात्मा का भजन नहीं किया, गुरु दीक्षा नहीं ली। वे इस भवसागर से पार नहीं हो सकते हैं। जिन्होंने हरि का ध्यान किया, गुरु का आदर किया, वे इस भवसागर से बिना संकोच के नि:संदेह पार हो जाते हैं।

**संत कबीरदास जी**

*निमाड़्या पावणा रे म्हारा घर रमतो झमतो आ*
*निमाड़्.....*
*आवतऽ देख्यो पावणू रे भाई कवल पाड़ी रगट रे*
*झोपलो दई त कायर निकली*
*अरे भाई पावणू लगी गयो वाट*
*निमाड़्या पावणा रे म्हारा घर.....*
*बारह भैसी बाकड़ी न तेरा तानी दुवाय*
*घर लीपनऽ गोबर नहीं रे*
*अरे भाई मही मोल को खाय*
*निमाड़्या पावणा रे म्हारा...*
*अस्सी कली को घाघरो रे थेगला तीन सौ साठ*
*पाँव ठोका मूसल सरीका, अरे भाई नहीं गल सणी को तार*
*निमाड़्या पावणा रे म्हारा....*
*कय कबीर सुणो भाई साधौ*
*ये पद है निरबानी*
*इना पद की कोई निंदा करऽ वो*
*अरे भाई बोकी नरक निशानी*
*निमाड़्या पावणा रे म्हारा घर रमतो झमतो आ*

मनुष्य जीवन एक मेहमान की तरह है। यह निमाया नामधारी शरीर एक पाहुना है। इसलिए कबीरदास जी कहते हैं- हे भाई! यदि तुम यह शरीर लेकर संसार में आए हो तो थोड़ा आनंद के साथ जीओ। क्योंकि यह पाहुना शरीर चार दिन रहकर चला जायेगा। इस मेहमान के आने पर घर में कितनी खुशी मनाई जाती है। उसकी सुख-सुविधा का इंतजाम किया जाता है। उसे सांसारिक सुखों में बाँध दिया जाता है। लेकिन इस पाहुने रूपी शरीर से आत्मा बाहर निकल जाती है, तब शरीर पड़ा रह जाता है। इसलिये मनुष्य शरीर का बस आनंद में रहना है, भले ही संसार के सुख मिल जाये। भले ही घर में दूध देने वाली भैसों की कमी न हो, घर लीपने के लिए गोबर मिल जाता हो। अर्थात् शरीर को पुष्ट करने के सभी साधन हों। फिर भी यह शरीर रूपी घर ऐसा हैं, जिसके लीपने के लिये सच्चा गोबर उपलब्ध नहीं होता है। यहाँ तक की दूध-दही में होने पर भी स्वास्थ लाभ के लिये बाहर से मठा या मही खरीदना पड़ता है। यह शरीर अस्सी कली का घेरदार घाघरा है, जिसमें तीन सौ साठ नाड़ियों के थेगड़े अर्थात् जोड़ लगे हैं। शरीर चाहे जितना बलवान हो जाये, फिर भी शरीर तो नश्वर ही है, जिसे गले के हार के समान सदैव नहीं पहना जा सकता है। कबीरदास जी कहते हैं कि शरीर नश्वर है, यही सच्चाई है। इसे प्रत्येक देहधारी को स्वीकार करना चाहिये, जो इस विचार की निंदा करता है, वह निश्चित रूप से नर्क का भागीदार होता है।

**महिलापरक मृत्यु गीत**

*म्हारा हिरदा बिसर्‌यो भगवान*
*माया तो गलऽ लागी रही।*
*राम जल पियारी माछली रे*
*सूम पियारो माल रे*
*बाँझ पियरो पालणो*
*भक्त पियारो भगवान। माया तो गलऽ.....*
*राम पाचन सी तो तीरथ नी करीया*
*कर सी दियो नी दान*
*मंदिर दिवलो जोयो नहीं रे*
*मुख सी भज्यो नहीं राम*
*माया तो गलऽ लागी रही*
*भयो कुटुम्ब का बार*
*करपट करी करी गया रे*
*अंत सी पड़ी रे पुकार*
*माया तो गलऽ लागी रही*
*माया तो गलऽ ...*

मेरे हृदय (आत्मा) से भगवान का नाम छूट गया है। मैं मोह-माया के बंधनों में लिप्त होकर गले तक डूब गया हूँ। जिस प्रकार मछली को पानी से प्यार होता है, कंजूस आदमी को धन से प्यार होता है, बाँझ स्त्री को बच्चे से प्यार होता है, उसी प्रकार भक्त को भगवान से प्यार होता है।

भगवान ने तुम्हें पैर दिये हैं, पर तीर्थयात्रा नहीं की। भगवान ने हाथ दिये, पर हाथों से दान-पुण्य का कार्य नहीं किया। इन्हीं हाथों से तुमने मंदिर में दीपक तक नहीं जलाया। राम नाम का मूल्य तुमने कभी नहीं पहचाना। बचपन में और न बड़े होने पर तुमने प्रभु का नाम नहीं लिया। गृहस्थी के कर्मों को करते आखिर में मर गये। लेकिन राम नाम का स्मरण नहीं किया।

**भजन**

*हाय रे चंदा चादणी सी राह*
*चाँदो ऊंगी नऽ जाण्यो*
*हाय रे राजवण हाय हाय*
*हाँ रे बजाजी बार तो उगाड़*
*म्हारो कपड़ा नो काम*
*घर भई छे कागा रोल,*
*मरवो पड़्यो रे मसाण मऽ*
*हाय रे चंदा चाँदरणी सी रात*
*चाँदो ऊँगी नऽ जाण्यो*
*हाय रे राजवण हाय हाय*
*हाँ रे गवली बार नो उगाड़*
*म्हरो दही तो पड़्यो छे काम*
*घर मई छे कागा रोल,*
*मखो पड़्यो हो मसाण मऽ*
*हाय रे चाँदा चादणी सी रात*
*चाँदो ऊँगी नऽ जाण्यो*
*हाय रे राजवण हाय हाय*
*हाँ रे कुम्हारया बार नो उगाड़*
*म्हारो हाँडी नो पड़्यो काम*
*मखो पड़्यो छे रे मसाण नऽ*
*हाँ रे संतिया बार नो उजाड़*
*म्हारो नारियल नो पड़्यो काम*
*घर भई छे कागा रोल*
*मरवो पड़्यो छे मसाण मऽ*

घर में मृत्यु होने पर अचानक 'हाय' शब्द ही निकलता है। चन्द्रमा अभी उदित होने को है, उसी समय हाय राजा जैसे आदमी की मृत्यु हो गई। तब तक चन्द्रमा उग गया है। चाँदनी चारों ओर फैल गई है, तब कपड़े की दूकान वाले का दरवाजा खटखटाकर आवाज लगाते हैं- हे बाजाजी! दरवाजा खोलो, मेरे घर में मृत्यु हो गई है। मुझे कपड़ा (कफन) चाहिये, मृत शरीर घर में पड़ा है। उसे श्मशान ले जाने की तैयारी है। घर में रोना पीटना लगा हुआ है। इसी क्रम में यादव (गवली) के घर से दही के लिये आवाज लगाकर दही लाया जाता है। कुम्हार के घर से मिट्‌टी की हंडिया लाई जाती है। बनिये के दूकान से हल्दी और नारियल लाकर अंतिम संस्कार किया जाता है।

हाय राजवण शब्द बार-बार दुहराया जाता है। इस गीत में महिलाएँ अपनी छाती पीट-पीटकर रोती हैं। इसे निमाड़ी में 'पीटन्या' का गीत कहते हैं। मृत शरीर को ले जाने के बाद मृतक की पत्नी को बीच में बिठाकर गोल घेरे में घूमते और छाती पीटते

हुए महिलाएँ गीत गाती हैं। यह क्रिया 'पाटीदार' समाज में होती है, जब कोई विशिष्ट आदमी मृत्यु को प्राप्त होता है। तब यह गीत अवश्य गाया जाता है–

*माय चली रे कैलास कऽ*
*कोई लेवो रे मनाय*
*माय चली रे कैलास कऽ*
*पयलो संदेशो उनकी छोरीन कऽ दिजो*
*दूजा साजन लोग*
*माय चली रे कैलास कऽ*
*कोई लेवो रे मनाय*
*तीजो संदेशो उनका छोरान कऽ दिजो*
*चवथो गाँव का लोग*
*माय चली रे कैलास कऽ*
*कोई लेवो रे मनाय*
*हरिया डोगर का बाँव कटाड़ो*
*माय को डोलो सजावऽ*
*माय चली रे कैलास कऽ*
*कोई लेवो रे मनाय*
*अबीर गुलाल का दवड़ा उठावो*
*माय का गंगा का पोयचावो*
*माय चली रे कैलास कऽ*
*कोई लेवो रे मनाय*

माता जी कैलाश पर्वत पर भगवान शंकर के पवित्र धाम को जा रही हैं। उसे कोई मना लो– रोक लो। मृत्यु के समय आत्मा को सम्बोधित करते हुए ऐसा कहा गया है। आत्मा भगवान के पास कैलाश जा रही है, उसे रोक लो। मृत्यु के समय पहला संदेशा उनकी लड़कियों को देना, दूसरा संदेशा सगे–सम्बन्धी को देना। तीसरा संदेशा उनके लड़कों को देना। चौथा संदेशा गाँव वालों को देना। हरे–भरे जंगल से बाँस काटकर लाओ, माता जी का डोला सजाओ। अबीर–गुलाल की वर्षा करो और माँ को गंगा जैसे पवित्र स्थान पर पहुँचाओ, ताकि उनकी आत्मा को शांति मिले।

निमाड़ जनपद में कहीं–कहीं मरणा सन्न व्यक्ति को राजा भरथरी की इस वैराग्य कथा को सुनाया जाता है, जिससे मरने वाले को माया–मोह से मुक्ति में आसानी होती है।

## राजा भरथरी

*जुग मऽ अमर राजा भरथरी, उज्जैन नगरी का राजा। टेक*
*इन्द्र को नात्यो ओ भयो, गंधर्व सैन का लड़का।*
*भाई विक्रमाजीत है, मैनावती माई।। 1 जुग मऽ....*
*जा दिन जन्मे राजा भरथरी, बजे टपला निसान।*
*हरे–हरे गोबर मंगाए के, आंगणा बेदी लिपाया।।2।। जुग मऽ....*
*मोतियन चौक पुरय के, कंचन कलस धराया।*
*सुहागन सहेली बुलाय के, गावे ओ मंगलाचार ।।3।। जुग मऽ...*
*काशी से पंडित बुलावती, चंदन चौक बिछाया।*
*ब्राह्मण वाचत वेद को, मुल्ला हरस की तान।।4।। जुग मऽ....*
*नाम जो निकला भरथरी, करम लिखा बाला जोग।*
*बालों चारों थारो बैद को, पुत्र दोष लगाय ।।5।। जुग मऽ..*
*कंचन दूंगी दखिणा, लौट धरो इसका नाम ।*
*उल्टी पल्टी रे ब्राह्मण देखिया, क्या लिखा करतार।।6।। जुग मऽ....*
*लिखने वाला सही लिख गया, कौन मिटावन हार।*
*कागज होय रानी वाचिया, करम वाचो नी जाय।।7।। जुग मऽ....*
*ब्रह्मा ने क्या होकर दिया, बालक बुद्धि सहाय ।*
*एक बरस के भरथरी, दूजो तिजो हो लागऽ ।।8।। जुग मऽ....*
*चार बरस के भरथरी, वैद पढ़ने को जाय।*
*सात बरस के भरथरी, पढ़े अनतरे चटसार ।।9।। जुग मऽ....*
*नवे बरस के भरथरी, ब्याही अनूप देशी नार।*
*ग्याहर बरस के भरथरी, ब्याही पिंगला हो नार।।10।। जुग मऽ....*
*बारह बरस के भरथरी, ब्याही श्यामा दैही नार।*
*तेरह बरस के भरथरी, बांदा तीर कमान।।11।। जुग मऽ....*
*एक दिन बोली रानी श्यामा दे, सुनो राजा महाराजा ।*
*कभी न आए रंग महल, न कभी खेले शिकार।।12।। जुग मऽ...*
*इतनी सुन राजा भरथरी, बोले सुनो हो खवास।*
*जल्दी हो घोड़ा सजाय के, लावानी टंकी कमाल।।13।। जुग मऽ...*
*कपड़े मंगाये भण्डार से, पहने राज कुमार।*
*पाँचों पहने राजा कपड़े, पाँचों बाधी हथियार।।14।। जुग मऽ....*
*चुन–चुन बांधे राजा पागड़ी, दिवलो दियो रे जलाय।*
*ऐसे हैं राजा भरथरी, मानों इन्द्र अखाड़े जाय ।।15।। जुग मऽ....*
*चले घोड़े ललकार के, बन दिया रे उजाड़ ।*
*बारा कोष उजाड़ के, मरी मिरगी दी डाल।।16।। जुग मऽ....*
*बोली मिरगी सिंघल दीप, सुनो राजा महाराजा।*

*जो तुम भूखे शिकार के, मारो मिरगी चार ।। 17 ।। जुग मऽ....*
*काला मिरग मत मारजो, तिरिया होयगी रांडी।*
*बोले ओ राजा भरथरी, सुन मिरगी म्हारी बात।। 18 ।। जुग मऽ....*
*नाति है राजा इन्द्र के, पिता गंधर्व सेन।*
*भाई विक्रमजीत है, मैनावती माय।। 19 ।। जुग मऽ....*
*हम बेटे राजपूत के, तिरिया गरे न हाथ।*
*मारे ओ काले मिरग को, भक्षण करेंगे बना।। 20 ।। जुग मऽ....*
*बोली मिरगी सिंघल दीप की, सुन मिरगा म्हारी बात।*
*भागो नहीं तो मिरग भाग्यो, सिर पर छाई रह्यो कालऽ ।। 21 ।।*
*भागणा सी मिरगी नई बचुं, लेख लिखी करतार।*
*काहे कलपे तिरिया बावली, कहीं करती विचार।। 22 ।। जुग मऽ...*
*जारी हुकुम भगवान का, हम पर छोड़ेगा हाथ।*
*नहीं हुकुम भगवान का, लौट महेल को जाय।। 23 ।। जुग मऽ....*
*बीन बजाय राजा भरथरी, मिरगी लियो रे मोय।*
*फुदक-फुदक मिरगा नाचता, राजा खेलऽ शिकार।। 24 ।। जुग मऽ...*
*पहेला बाण राजा मारता, मिरगो गयो रे चूकाय।*
*दुजा बाण राजा मारता, लैटी सिंगों की आड़।। 25 ।। जुग मऽ....*
*तीजा बाण राजा मारता, लगा सीने का माय।*
*गस्त खाय मिरगा गिरता, गिर के करता जबाब।। 26 ।। जुग मऽ...*
*खुर देना हो गाय को, घर-घर पूजा होय।*
*नैन देना चतुर नार को, जग देखी रिझाय।। 27 ।। जुग मऽ....*
*सींग देना कोई क्षत्रीय को, सिंहनाद बजाय।*
*वस्त्र दिजो कोई संत को, बैठे आसण लगाय।। 28 ।। जुग मऽ....*
*एक बीन के कारण, सिर कर बख्शीस ।*
*औंधी लागी ओ पालती, गैरो लाग्यो रे घाव।। 29 ।। जुग मऽ....*
*जब तक जिव कंठ म, जब तक बीन बजाव।*
*हंस उड़ा रे बैकुंठ म, काया गई कुम्लाय।। 30 ।। जुग मऽ....*
*बोली मिरगी सिंघल दीप की, सुणो राजा महाराजा।*
*जैसे ओ कलपत हम फिरे, वैरे फिरे थारी नार।। 31 ।। जुग मऽ....*
*तीन दिन तेरे राज के, पीछे साधौ मैं जीव।*
*मारी मिरग राजा लईओ चल्यो, आयो जंगल बीच।। 32 ।। जुग मऽ....*
*सीधा मिले गोरखनाथ जी, पहुँचे जोगी के पास।*
*चरण छुए बाबा नाथ के, गोरख करते जबाब।। 33 ।। जुग मऽ....*
*मेरे चरण बच्चा ना छिवो, तुमको लगा रे पाप।*
*ओ रे जंगल को तपस्वी, मिरगा मार गिराय।। 34 ।। जुग मऽ....*
*एक मिरग को मार के, सत्तर रहे रांडी।*
*बुरा किया रे राजा भरथरी, अब क्यों पछताय।। 35 ।। जुग मऽ....*
*बोले ओ राजा भरथरी, सुनो बाबा गोरखनाथ।*
*जो अजमत की फकीर है, मिरगा देवो रे जीवाय।। 36 ।। जुग मऽ...*
*याद की भगवान को, राखो भक्त की लाज।*
*म्हारी चुटकी भभूत की, मिरगो उठी भाग्यो जाय।। 37 ।। जुग मऽ...*
*फुदक-फुदक मिरगा नाचता, पहुँचो जो मिरगी का पास।*
*बोली मिरगी सिंघल की, सुनो बाबा गोरखनाथ।। 38 ।। जुग मऽ....*
*जुग-जुग जीवो गोरखनाथ जी, फिर से फेरा सुहाग।*
*चरण में सिस झुकाय, चले बन के हो माय।। 39 ।। जुग मऽ....*
*ग्यान गुरू का लग गया, गया हिरदा समाय।*
*बोले ओ राजा भरथरी, सुनो बाबा गोरखनाथ।। 40 ।। जुग मऽ....*
*चेला बना लो बाबा आपका, सेवा करूं दिन रात।*
*बोले ओ गोरखनाथ, सुनो बच्चा म्हारी बात।। 41 ।। जुग मऽ....*
*तुमको चेला हम ना करा, तुम हो राजकुमार।*
*तुम्हारे महल में रानियां, हम पर पड़ेगा सराप।। 42 ।। जुग मऽ....*
*पान फूल के भोगिया, ना साधै तुमसे जोग।*
*बोले ओ राजा भरथरी, सुनो बाबा म्हारी बात।। 43 ।। जुग मऽ....*
*हमको चेला बनाओ, नहीं तो देवुंगा सराप।*
*मन में सोचे गोरख बाबाजी, मन में करता विचार।। 44 ।। जुग मऽ....*
*जो थारी मनसा जोग की, मानो वचन हमारो।*
*महल से भिक्षा लई आवो, ब्याही से बोलकर माँ।। 45 ।। जुग मऽ...*
*वचन सुनी राजा भरथरी' मन में करत विचार।*
*अंग का ओ जामा फाड़ के, गोधड़ी गले कि बनाय।। 46 ।। जुग मऽ....*
*सिर का चीरा फाड़ी के, सिर की सैली बनाय।*
*कानों का मोती उतार के, करो ब्राह्मण को ही दान।। 47 ।। जुग मऽ...*
*सोने के कुंडल उतार के, देवो खवास के हाथ।*
*हाथ खप्पर खांदे पावड़ी, मुख पर भस्मी रमाय।। 48 ।। जुग मऽ...*
*अंग वरणी जोगी बन चले, गुरू को सिस नवाय।*
*वन से चले राजा भरथरी, गया नगरी के माय।। 49 जुग मऽ....*
*खिड़की से अलख जगावते, भिक्षा आलो भोली माँय।*
*पुत्र कहे भिक्षा डालजो, जोग अमर हो जाय।। 50 ।। जुग मऽ....*
*शब्द सुनी रानी श्यामा दे, चम्पा बांदी बुलाय।*
*थाल भरे मोती लावती, सरस दुसाला धराय।। 51 ।। जुग मऽ....*
*भिक्षा देवो बांदी जोग की, नहीं तो धरम घटी जाय।*
*भिक्षा देने बांदी आवती, मन में करती विचार।। 52 ।। जुग मऽ....*
*बांदी से भिक्षा नहीं ओ लेवां, सन मुख देगी झोली माय।*

मैं हूँ रानी मैं पटारानी, मैं महलों की माँय।। 53 ।। जुग मऽ....
सोना पहना जोगी है रूपा, बाँदी कैसे बनाय।
गुस्सा भरी बाँदी आवती, लाई पास उठाय।। 54 ।। जुग मऽ....
बोले ओ राजा भरथरी, सुन बाँदी म्हारी बात।
एक दिन बाँदी ओ जो बीता, तुमको मोल खरीदा।। 55 ।। जुग मऽ...
तले ऊपर बाँदी देखती, मन में करती बिचार।
पाँय पदम माथ चन्द्रमा, और भभूत रमाय।। 56 ।। जुग मऽ....
देखी सूरत अपने राजा की, उल्टी खाई रे पछाड़।।
रोती पिटती बाँदी आवती, करते रानी से जबाब।। 57 ।। जुग मऽ...
जोगी के दरसन कीजिए, ठाढ़े राजकुमार।
माँई करके बोलते, सोए भभूती रमाय।। 58 ।। जुग मऽ....
बोली ओ रानी श्यामा दे, सुन बाँदी म्हारी बात।
मारूँगी बाँदी तुझे डाटूँगी, देऊ कोठे में चुनाय।। 59 ।। जुग मऽ....
हट जाओ बाँदी, बावरी, दोस राजा को लगाय।
रोवे पिटे बाँदी, सिर कूटे, उल्टी खाई रे पछाड़।। 60 ।। जुग मऽ...
देख रानी बाँदी रोवती, मन में करती विचार।
न्हाई धोई कपड़ा पैरती, करती सोला रे सिंगार। 61 ।। जुग मऽ....
थाल भरे मोती लावती, आँचल भरे हीरालाल।
जरी के परदे छोड़ दिए, आई उठ के द्वार।। 62 ।। जुग मऽ....
भिक्षा ले जाओ रमता जोगिया, राजा देता रे आशीष।
बोले ओ राजा भरथरी, सुन रानी म्हारी बात।। 63 ।। जुग मऽ....
जेठ ससुर से परदा करो, जोगी से परदा ओ नाय।
मोती मुंगा ओ क्या करूं, क्या करूं हीरालाल।। 64 ।। जुग मऽ....
संकट लाग्या जोगी चल पड़ा, भिक्षा लाओ भोली ओ माँय।
पुत्र कहे भिक्षा डाले दे, जोग अमर हो जाय।। 65 ।। जुग मऽ....
परदा उठाय रानी देखती, ठाड़े राजकुमार ।
देख सूरत अपने राजा की, उल्टी खाई रे पछाड़ ।। 66 ।। जुग मऽ...
थाल पटक रानी सिर कूटे, मन में करती विचार।
पाँव पकड़ रानी समझावती, सुनो राजकुमार।। 67 ।। जुग मऽ....
तेरा भेजा कैसा हो गया, कहता ब्याही को माँय।
सीढ़ी भये के बावरे, की तूने भांग हो खाई।। 68 ।। जुग मऽ....
कौन समय की हम रानियाँ, कैसे कहते हो माँय।
ओछी बातें राजा मत करो, तुम हो राजकुमार।। 69 ।। जुग मऽ....
बोले वो राजा भरथरी, सुन रानी म्हारी बात।
राज धरम की रानियाँ, जोग फकीरी के माँय।। 70 ।। जुग मऽ....
क्या गये बाबूल द्वार पे, क्यों किया तूने ब्याह।
कुँवारी रहती सैयां वर मिलता, ब्याही लग गया दोष।। 71 ।। जुग मऽ..
औंधी वाणी मत कहे, सुन ओछी की बात।
बालक थे जब ब्याहिया, किया धोखे में ब्याह।। 72 ।। जुग मऽ....
तेरा मेरा संयोग था, जोड़ा रचा करतार।
जोग लिखा मेरे भाग में, राज लिखा तेरा भाग ।। 73 ।। जुग मऽ....
पुत्र कहे भिक्षा डाले दे, जोग अमर हुई जाय।
बोली ओ रानी स्यामा दे, सुन राजा महाराज ।। 74 ।। जुग मऽ....
जो थारी मंशा जोग की, जोग तपी लेवो घर।
गंगा मंगा दू हरिद्वार से, बैठे तीरथ न्हावो ।। 75 ।। जुग मऽ....
मड़िया बना दूँ चम्पा बाग में, धुनी देवंगी जलाय।
सोने का आसन बनाय के, जड़वा दूँ हीरालाल।। 76 ।। जुग मऽ...
केसर धुनी औ डालूँगी, खड़ी रहूँगी हुजुर।
दरसन करूँ दिन रात, हऊँ भोजन देऊँगी बनाय।। 77 ।। जुग मऽ...
बोले ओ राजा भरथरी, सुन रानी म्हारी बात।
तेरे द्वार रानी नई ओखां, आये गुरू की लाज ।। 78 ।। जुग मऽ....
बहता पानी रमतें जोगी, दिल मैला हो जाय।
बैठे राजा वो बैठे प्रजा, मृग फिरे रे उजाड़।। 79 ।। जुग मऽ....
घर पनघट और मसान, है जोगी का मारग।
पुत्र कहे भिक्षा डाल दे, जोग अमर हो जाय।। 80 ।। जुग मऽ....
जोगी बन कैसे चल दिये, मन की पुरी न आस।
दूध न भिगा कापड़ा, बालक खेला नहीं गोद।। 81 ।। जुग मऽ....
गोदी में बालक नहीं, दिल को कैसे बिलमाऊँ।
जो हो बालक में पालती, करती नगरी को राज।। 82 ।। जुग मऽ...
बोले ओ राजा भरथरी, सुन रानी म्हारी बात।
मूरख रानी तू तो भई, करम लिखा भगवान।। 83 ।।
बेटा ओ बेटी नसीब का, माँगे मिलते ओ नाय।
बीज बोया बबूल का, आम कहाँ से आय।। 84 ।। जुग मऽ....
रस की क्यारी में बीज बोया, सुन के क्यों पछताय।
बैठी रहो रंग महल में, चाबो नागर वेली पान।। 85 ।। जुग मऽ....
पूजा करो दीनानाथ की, लगावगा पार।
हाथ का दिया तेरे संग चले, वही आवऽ थारा काम।। 86 ।। जुग मऽ...
जोगी बनकर तुम चले, घर-घर मांगोगे भिक्षा।
नीच द्वार तुम जावोगा, गाली देगा गंवार ।। 87 ।। जुग मऽ....
क्षत्रिय धरम घट जायेगा, तुम हो राजकुमार।
समझो ना क्यों म्हारा राजा जी, जोग छोड़ी देवो आज।। 88 ।। जुग मऽ...
मकऽ गाली से रानी क्या हो पड़ी, हमनऽ मांड्यो छे जोग।

*मन मारे तन वश करे, साधे सकल शरीर।। 89।। जुग मऽ....*
*तुम तो जाओ अपने मायके, हमने साधा है जोग।*
*समझो क्या रानी श्यामा दे, इनका नाम फकीर।। 90।। जुग मऽ...*
*बोली ओ रानी श्यामा दे, सुनो राजा महाराजा।*
*माँय बिना कैसा मायका, भाई बिना कैसी बेना।। 91।। जुग मऽ...*
*बैन बिना केसी ममता, पुत्र बिना कैसा घर।*
*गौरस बिना केसा भोग है, राजा बिना कैसा न्याय।। 92।। जुग मऽ...*
*चाँद बिना कैसी चाँदनी, दीपक बिना कैसी जोत।*
*बिना पुरुष की कामनी, कुण लगावगा पार।। 93।। जुग मऽ....*
*तम मती मांगो भिक्षा ओ, खप्पर भरी आगे धरूंगी।*
*घर-घर माँगूगी भिखा में, सेवा करूँगी हाऊं तमारी।। 94।। जुग मऽ...*
*रानी ओका संग चले, संग नहीं देह चलेगी।*
*हमने लिया जोगी तपस्वी का, अवतार देगी न माता।। 95।। जुग मऽ...*
*तजा राज-पाठ को, तजी सोलह सौ रानी।*
*तजा गढ़ दीप को, सुनी गोरखनाथ की बाणी।। 96।। जुग मऽ....*
*सावन आवे सैया रंग भरे, भादव गहरो गंभीर।*
*इन्द्र उठ घनघोर करे, बोले दादुर मोर।। 97।। जुग मऽ....*
*जब सुध आवे पिया की, नैना बरसे नीर।*
*बोले ओ राजा भरथरी, सुन रानी मेरी बात।। 98।। जुग मऽ....*
*सदा न फले रानी तोरई, सदा न सावन होय।*
*सदा न जीव थिर रहे, सदा जीवे न कोई।। 99।। जुग मऽ....*
*चलती फिरती जिंदगानी, जैसी बढ़ती पीपल छाँव।*
*सदा न रहे कोई की नार, सब झूठा रे संसार।। 100।।*
*जैसा है मोती ओस का, वैसा खलक जहान।*
*देखा हो कैसा झिलझिला, गिरते लगे नहीं वार।। 101।। जुग मऽ...*
*क्या तो लंकापति ले गया, करने गया वह खोया।*
*हाथ पसारे जायेगा, जिनके लाख करोड़।। 102।। जुग मऽ....*
*पानी जैसा बुलबुला, मत करना अरमान।*
*पुत्र कहे भिक्षा डाल दे, जोग अमर हुई जाय।। 103।। जुग मऽ....*
*बोली ओ रानी श्यामा दे, सुन ओ राजा महाराजा।*
*जोगी हो जैसा रमी चले, मैं जोगी तेरे साथ।। 104।। जुग मऽ....*
*तेरे चले तिरिया तो ना बने, जोग पूरा नहीं होवे।*
*चलना पूरे दिन रैन को, रहे ना बिकट उजाड़ ।। 105।। जुग मऽ...*
*जाय उतरेंगे कोई नगर में, धुनी देंगे जलाय।*
*खेही नगर का जो राजा, आया जोगी के पास।। 106।। जुग मऽ...*
*देखी सूरत तेरी रंग ओ भरी, दिल में लायेगा पाप।*
*तुम को बनायेगा वो पटरानी, हमको डालेगा मार।। 107।। जुग मऽ...*
*तेरी मेरी संग ना बने, माया मिले न राम।*
*पुत्र कहे भिक्षा डाल दे, जोग अमर हुई जाय।। 108।। जुग मऽ....*
*पाँव पकड़ समझावती, सुनो राजा महाराजा।*
*ज्ञान गुरू का बतावजो, मुर्दा लेवगी छिनाय।। 109।। जुग मऽ....*
*कौन गुरू के बालक हो, कौन दिया ऐसा ज्ञान।*
*शब्द गुरू के बोल का, गौतम दे गये ज्ञान।। 110।। जुग मऽ....*
*मेरे गुरू गौरखनाथ जी, जिनने दिया है ज्ञान।*
*गुरूकऽ गाली मत देवो, पल में कर देगा नाश।। 111।। जुग मऽ...*
*गुरू गुंगा गुरू बावला, गुरू देवन का देव।*
*गुरू से चेला अति हो बड़ा, करता गुरू की सेवा।। 112।। जुग मऽ...*
*गुरू बसेंगे काशी में, चेला बसेगा प्रयाग।*
*अपने गुरू को शीश झुकाओ, जसी कूप पानी हार।। 113।। जुग मऽ...*
*बड़े बड़ाई ना करे, बड़े न बोले बोल।*
*हम तो जोगी बन चले, लाख हमारा है जोर।। 114।। जुग मऽ....*
*बोली ओ रानी श्याम दे, सुनो राजा महाराजा।*
*जोगी हो के शय्या जाओगे, चौसर खेले मेरे साथ।। 115।।जुग मऽ...*
*चौसर खेले रानी कई करां, बाजी बदले ओ नाय।*
*हम तो तमारी संग चला, जीते जाने न देऊं।। 116।। जुग मऽ....*
*ऐसी बाजी रानी सोचती, ताक लियो दोनों दाव।*
*जीते ओ रानी श्यामा दे, दस दिन राखो बिलमाय।। 117।। जुग मऽ...*
*जीते बाजी राजा भरथरी, तुम्हें लगावे न हाथ।*
*एक पासे की बाजी ब्रह्मा दे, दुजी एक नहीं देवा।। 118।। जुग मऽ..*
*चौसर लिये मंगाय के, खेले राजकुमार।*
*पासा लियो रानी हाथ में, सुनो पासा अरदास।। 119।। जुग मऽ....*
*करम का साथ दिजो, पड़ो सोला अरू साता।*
*सात के ऊपर सात पड़ो, नई पड़ा अरू चार।। 120।। जुग मऽ....*
*पासा लिया राजा भरथरी, धर्‌यो हरि से ध्यान।*
*किया याद गोरखनाथ को, राखो बाणे की लाज।। 121।। जुग मऽ...*
*पासा फेक्या राजा भरथरी, लाये दरशा पौ बारह।*
*जीती बाजी राजा उठ चला, खुलता दसवां द्वार।। 122।। जुग मऽ...*
*हाथ पकड़ राणी कहे, सुणो हो राजकुमार।*
*आखरी भोजन जीम लो, रंग महल में झणकार।। 123।। जुग मऽ...*
*खबर निकल्यो जोगी भरथरी, एक देवो भोली मांय।*
*पुत्र कही नऽ भिक्सा आलजो, काया अम्मर थाय।। 124।। जुग मऽ...*
*ओच्छा गुरू का बाळका, ओच्छा लाये भंडार।*

*सोलह राणी भोजन परोसती, खप्पर में ना समाय।। 125।। जुग मऽ...*
*पूरे गुरू के हम बाळका, पूरण है रे भंडार।*
*तीन लोक की सम्पदा, धरा खप्पर के माय।। 126।। जुग मऽ....*
*ऊँचे तकत का बैठणा, छोड़ी कुसुमल सेज।*
*छोड़ी कंचन कामणी, तोड़ी बंधन हेत।। 127।। जुग मऽ....*
*सोलह सिणगार राणी पिंगला, दिया राणी नऽ उतार।*
*पुत्र कही नऽ भिक्स्या डालती, छोड्या राज दुवार।। 128।। जुग मऽ...*
*मेरी-मेरी करी मरी गये, गये कोटि हजार।*
*मुट्ठी बाँध कर आये थे, गये हाथ पसार।। 129।। जुग मऽ....*
*धन्य-धन्य उज्जैन नगरी, हुआ बैकुण्ठ वासा।*
*जाही नगरी में राजा जनमिया, हुया सिंघ निवासा।। 130।। जुग मऽ....*
*माया के बंधन काट के, पहुँचे गुरू के पास।*
*चेला बणावजो बाबा आपणा, रहूं चरणों का दास।। 131।। जुग मऽ...*
*चुटकी काटी चेला किया, मुंदरी दी पहिनाया।*
*पीठ ठोकी गोरखनाथ ने, काया अम्मर थाया।। 132।। जुग मऽ....*
*सब धरती कागज करूं, कलम करूं बनराय।*
*सात समुन्दर स्याही करूं,*
*गुरू गुण लिख्यो नहीं जाय।। 133।। जुग मऽ...*
*कुंवार सुदी तीन को, कथा नई हो बणाई।*
*अरू बातन को छोड़ के, थोड़े में समझाई।। 134।। जुग मऽ....*
*भूलचूक गर हो जाय तो, सुण लेणा सुधीर।*
*थोड़ी लिखूं समझो घणी, मैं हूँ शरण तुम्हारी।। 135।। जुग मऽ....*
*धन्य-धन्य उनी नारियों को, देव हुई कुलतारी।*
*अपणा धर्म के कारणे, दिये प्राणों को वारी।। 136।।*
*धन्य-धन्य चेला भरथरी, धन्य छे गुरू गोरखनाथ।*
*कलयुग मऽ अम्मर हुया, धन्य मांय न बाप।। 137।। जुग मऽ....*
*धन्य-धन्य सन्तो नऽ सभा, जां सतसंग होय।*
*भरथरी कथा जो सामळे, पूरण मंगल थाय।। 138।। जुग मऽ....*
*गावे गवावे सामले जो, जा घर भक्ति होय ।*
*मुक्ति पदारथ पावसे, वासा वैकुण्ठ होय।। 139।। जुग मऽ....*
*सारी सभा विनती करां, कथा विसरजन होय।*
*रामलाल विनती करे, राखो चरण अधार।। 140।। जुग मऽ....*

**भावानुवाद**

राजा भर्तृहरि की कथा प्राचीनतम कथाओं में से एक है। उनका नाम युगों तक अमर रहेगा। भर्तृहरि स्वयं उज्जैन नगरी के राजा थे। उसके पिता का नाम गन्धर्व सेन और माता का नाम मैनावती था। उनके भाई का नाम विक्रमजीत था। ये इन्द्र के वंशज थे।[1]

जब राजा भर्तृहरि का जन्म हुआ। उस समय नगर में बाजे बजाए गए, निसान (ध्वज) उड़े, काफी उत्सव मनाया गया। लोगों ने हरे-हरे गोबर से घर-आँगन लीपे।[2] सभी नगरवासियों ने अपने घरों को सजाया, मोतियों के चौक पुराये, राज महल में चाँदी के कलश सजाये और सुहागिन स्त्रियों को आमंत्रित कर मंगल गीत गवाये।[3] भर्तृहरि के जन्म के पश्चात् उनके नामकरण संस्कार के लिये काशी से पंडित बुलाये गये। पंडितों का आदर सत्कार कर उन्हें चंदन की चौकियों पर बिठाया गया। नामकरण संस्कार के समय पंडितों ने वेद मंत्रों का तथा अन्य लोगों ने अपनी तरह से मंगल पाठ किया।[4]

ब्राह्मणों ने कुंडली बनाई और नामकरण संस्कार किया। नाम निकला 'भर्तृहरि'। कुंडली के ग्रह योगों से भर्तृहरि को कर्म योगी होना बताया गया। भर्तृहरि राजपाठ त्याग कर वनखण्ड में योगी बनेंगे। इतना ग्रह योग निकालने के बाद ब्राह्मण ने भर्तृहरि की माता मैनावती को बताया कि रानी माँ! आपके पुत्र का नाम भर्तृहरि है और उनकी भाग्य रेखा ये बताती है कि वो चारों वेदों के ज्ञाता होंगे तथा राज-पाठ त्याग कर वनखण्ड में तपस्या कर योगीराज बनेंगे।[5] तब माता मैनावती ने कहा- ब्राह्मण देवता! मैं तुम्हें बहुत सा सोना दूँगी, आप इसकी कुण्डली में फेर बदल कर दीजिये, हो सके तो नाम को भी बदल दीजिये। आप एकबार अपनी ज्योतिष गणना फिर कीजिये। कहीं आपसे भूल तो नहीं हो गई। ब्राह्मण ने उलट-पलटकर पत्रिका की गणना की और कहा कि- हे रानी माँ! मैं अब कुंडली में कुछ भी फेर बदल नहीं कर सकता हूँ।[6] भगवान के लिखे लेख को मिटाने में असमर्थ हूँ। रानी माँ! यह कोई साधारण कागज नहीं है, जिसे मैं फाड़ दूँ और पुनः दूसरा लिख दूँ। भगवान ने आपको जिस प्रकार का पुत्र दिया है, उसे भगवान का उपकार मानकर स्वीकार कीजिये। यह पुत्र आपका नाम उज्ज्वल करेगा और इसका नाम अमर होगा। कागज पर लिखा तो पढ़ा जा सकता है, लेकिन भाग्य को नहीं पढ़ा जा सकता।[7]

भाग्य ब्रह्मा लिखते हैं। धीरे-धीरे भर्तृहरि बड़े होते गये

और वे एक बरस के हो गये। देखते-देखते उन्होंने दूसरा वर्ष भी पार कर लिया।[8] तीसरे वर्ष बीतने के बाद चार वर्ष की आयु में उन्हें गुरुकुल में वेदाध्ययन के लिये भेजा गया। जहाँ पर उन्होंने मन लगाकर विद्या अध्ययन किया और सभी वेदों का अध्ययन कर लिया। तब तक भर्तृहरि सात वर्ष के हो गये थे।[9] नौ वर्ष की अल्प आयु में भर्तृहरि का विवाह कर दिया गया। अनूप देश की रानी पिंगला से ग्यारह वर्ष की आयु में उनका दूसरा विवाह हुआ।[10] बारह वर्ष की आयु में उनका तीसरा विवाह रानी श्यामादेवी से हुआ था। तेरह वर्ष की आयु में वे सजीले राजकुमार जैसे लगने लगे। धनुष-बाण लेकर जब वे निकलते तो सभी प्रजाजन मुग्ध होकर उन्हें देखते ही रह जाते थे। [11]

एक दिन रानी श्यामादेवी ने राजा भर्तृहरि को उलाहना दिया और कहा कि -महाराज! आप कभी मेरे रंग महल में नहीं आये और न कभी शिकार खेलने गये। कभी मेरे रंग महल में पधारकर अनुग्रहित करें, तो मेरा रंग महल धन्य हो जाये। भर्तृहरि ने कहा- हमें राजकार्य से फुरसत ही कहा हैं। तब रानी ने कहा- आप कभी शिकार खेलने भी नहीं गये।[12] रानी की इतनी बात सुनकर राजा भर्तृहरि ने सेवक को आज्ञा दी और कहा कि जल्दी से जाओ मेरे पाँच हथियार ले आओ, साथ में शिकार पर जाने वाले कपड़े भी लेते आना।[13] एक सेवक जल्दी से गया और अस्त्र-शस्त्र तथा शिकारी वेश के कपड़े लेकर आया। भर्तृहरि ने कपड़े पहने। पाँचों अस्त्र-शस्त्र बाँधे और एक अच्छी सी चुनिंदा पगड़ी अपने सिर पर बाँधी।[14] पाँचों शस्त्रों से सुसज्जित भर्तृहरि ऐसे प्रतीत होते थे, मानों इंद्र के अखाड़े में जाने को उद्यत हों। भर्तृहरि के शृँगार को देखकर मानों महल में हजारों दीपक प्रज्ज्वलित हो गये हों।[15] पाँचों शस्त्रों से सुसज्जित होकर वे घोड़े पर बैठकर शिकार खेलने चल पड़े हैं। उन्होंने अपने घोड़े को ललकारा और घोड़ा राजा की ललकार सुनकर सरपट भागने लगा। वन-खण्ड जंगल में जाने के बाद राजा को बारह-बारह मील तक जंगल उजाड़ ही दिखाई दिया। उन्होंने अपने घोड़े को थोड़ा और आगे बढ़ाया, आगे जाने पर उन्हें हिरनियों का झुण्ड दिखाई दिया। राजा ने घोड़े को ऐड़ लगाई और हिरनियों के झुण्ड के पीछे घोड़ा दौड़ा दिया।[16]

सब हिरनियों के झुण्ड में से सिंघल द्वीप की एक हिरनी बोली- महाराज! आप मेरी बात सुनिये, आप शिकार खेलने आये हैं, यह बात हम भी जानती हैं। आप हम हिरनियों में से दो-चार जो भी अच्छी लगें, उन्हें मारकर अपने शिकार का शौक पूरा कर लीजिये।[17] लेकिन हमारे झुण्ड में जो काला हिरन दिखाई दे रहा है, उसे मत मारना। हम सभी का वह अकेला सरदार और स्वामी है।

हिरन के मरते ही हम हिरनियाँ विधवा हो जायेंगी। तब राजा ने कहा- हिरनियों मेरी बात सुनो। [18] मैं इन्द्र राजा का नाती हूँ। गंधर्वसेन मेरे पिता हैं तथा मैनावती मेरी माता है। शूरवीर विक्रमजीत मेरा भाई है।[19] मैं एक क्षत्रिय हूँ और क्षत्रिय कभी नारी पर हाथ नहीं उठाता है, उसका वध नहीं करता है। हम तो तुम्हारे काले मृग को ही मारेंगे और उसका मांस भक्षण करेंगे।[20] तब मृगियों ने अपने काले मृग से कहा- हे स्वामी! आप भाग जाईये। यह काल रूपी राजा आपके सिर पर मौत बनकर मँडरा रहा है। आप भाग जाईये। [21] तब काले मृग ने कहा- मैं भागूँगा तब भी नहीं बचूँगा, इस राजा के तीर से। यदि भगवान को यही मंजूर है और मेरे भाग्य में मौत ही लिखी है, तो तुम व्यर्थ में विलाप कर रही हो। [22] यदि भगवान इस राजा की बुद्धि पलट दे तो यह राजा मुझे जीवित छोड़कर राजमहल को लौट सकता है।[23] इतना सुनने पर सभी मृगियों ने काले मृग को घेरे अपने बीचों-बीच कर लिया। यदि राजा धनुष पर तीर चढ़ाकर काले मृग को मारेंगे तो हम बीच में आकर काले मृग को बचा लेंगे। जब राजा ने देखा कि काले मृग को मृगियों ने घेर कर झुण्ड के बीचों-बीच कर लिया है, तो उन्होंने भी बीन बजानी शुरू की। बीन की मस्त धुन पर थिरकता हुआ काला मृग झुण्ड से बाहर आया और नाचने लगा। राजा शिकार खेलने लगा।[24] राजा ने उसे सम्मोहित होकर नाचते देखा तो धनुष पर बाण चढ़ाया और पहला बाण मारा, काले मृग ने पहला वार बचा लिया। राजा ने दूसरा बाण मारा, काले मृग ने दूसरे बाण को अपने सींगों पर झेल लिया। [25] तब राजा भर्तृहरि ने तीसरा निशाना हाथ साधकर मारा जो उसके सीने में लगा और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। मृत्यु के क्षणों में उसने राजा भर्तृहरि को अपने पास बुलाया और कहा[26]- हे राजन! मेरी कुछ अर्ज है सुन लीजिये- मेरे खुर गाय को देना, जिससे उसकी पूजा होती रहेगी। मेरे नैन किसी चतुर नारी को देना, जिससे वह अनुपम संसार की शोभा को देखे, शायद इसलिए नारी की आँखों को मृगनयिनी कहा जाता है।[27]

मेरे सींगों को किसी क्षत्रिय को देना, जो सिंहनाद करके रणक्षेत्र में जाये और विजयी हो। मेरा चर्म किसी साधु संन्यासी को देना, जो आसन लगाकर भगवान का ध्यान करे।[28] राजन! तुम्हारी बीन नहीं बजती तो आज मेरी मृत्यु नहीं होती। तुम्हारी बीन ही मेरी मृत्यु का कारण बनी। इस बीन की धुन पर मैं मोहित न होता तो आपका यह बाण मुझे घायल नहीं करता और इतना गहरा घाव नहीं होता। [29] राजन! मेरी आपसे प्रार्थना है कि जब तक मेरे कंठ में प्राण अटके हैं, जब तक मेरी मृत्यु न हो, तब तक आप बीन बजाते रहें। तब राजा ने मृग की प्रार्थना स्वीकार करके बीन बजाना आरंभ किया। कुछ ही पल में काले मृग के प्राण पखेरू उड़ गये, और वह वैकुण्ठ में चला गया। उसकी देह कुम्हला गई।[30]

सिंघल द्वीप की सभी मृगियाँ ठगी सी दु:खी अपने मृग की मृत्यु देख रही थी। मृगियों ने रोते हुए आँसुओं से सराबोर हो राजा भर्तृहरि को देखा और राजा को श्राप दिया- जिस प्रकार हम अपने काले मृग के वियोग में रो रही हैं, विकल हो रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारी रानियाँ भी रोयेंगी।[31] तीन दिन तक तेरे राज्य में त्राहि-त्राहि मचेगी, अकाल पड़ेगा और हजारों लोगों कि मृत्यु होगी।[32]

मृगियों के श्राप को सुना-अनसुना करके राजा भर्तृहरि ने मृग को घोड़े पर डाला और उसे लेकर चल दिया। चलते-चलते राजा बीच जंगल में पहुँचता है। बीच जंगल में उन्हें गोरखनाथजी मिले। वे चरण छूने के लिये जैसे ही झुके। [33] तब गोरखनाथ जी ने कहा- बच्चा! मेरे चरण स्पर्श मत करना, तुझे घोर पाप लगा है, तू पापी है। राजा ने कहा- महात्मन् मुझसे ऐसा कौन -सा पाप हो गया? कृपया बतलाईये। [34] गोरखनाथ जी ने कहा-रे दुष्ट! सुन, जंगल में जिस काले मृग को तूने मारा है, वह जंगल का तपस्वी सत्तर मृगियों का पति था। उसको मारकर तुमने सत्तर मृगियों को विधवा बना दिया। यह पाप कर्म नहीं है तो और क्या है? उन सत्तर मृगियों को विधवा करना क्या साधारण पाप है? राजा ने गोरखनाथ की बातें सुनी और मन ही मन पश्चाताप की आग में जलने लगा।[35] तब राजा ने विनम्र होकर प्रार्थना कि- बाबा! आप तो कोई तेजस्पी तपस्वी मालूम होते हैं। आप अपनी तपस्या के बल से इस काले मृग को जीवनदान दीजिये। तब गोरखनाथ जी ने कहा-बच्चा! तपस्या का फल अभी तुमने देखा ही कहा हैं। तपस्या के बल से तपस्वी सशरीर स्वर्ग को जा सकता है। तपस्या से कठिन कार्य भी सिद्ध हो सकता है। तू क्या जाने तपस्या के महत्त्व को? तब राजा भर्तृहरि ने कहा- महाराज! आपकी तपस्या में तेज बल है तो आप इस काले मृग को जीवित करके दिखाइये।[36] गोरखनाथ जी ने भगवान को स्मरण करके कहा- हे ईश्वर! मेरी भक्ति और तपस्या की लाज रखना और इस काले मृग को जीवनदान देना। प्रभु स्मरण करके गुरु गोरखनाथ ने अपनी झोली से भभूत निकाली और काले मृग पर फेंक दी। क्षण मात्र में ही काला मृग जीवित हो उठा, और फुदकता हुआ मृगियों के झुण्ड में जा पहुँचा।[37] तब मृगियों ने मृग से पूछा- आपकी तो मृत्यु हो गयी थी, आप जीवित कैसे हो गये। तब काले मृग ने कहा- मुझे जीवनदान दिया है बाबा गोरखनाथ जी ने।[38] तब सभी मृगियाँ गोरखनाथ जी के पास पहुँची और बाबा से कहा- आप युगों-युगों तक जीवित रहें। आपने हमारा सुहाग हमें वापस लौटा दिया और गुरु गोरखनाथ जी के चरण स्पर्श करके वे वनखण्ड जंगल में प्रस्थान कर गईं।[39] गुरु की तपस्या देखकर गुरु की भक्ति से प्रभावित राजा भर्तृहरि मन ही मन में विचार करने लगे और राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। [40] तब राजा भर्तृहरि ने बाबा से कहा- बाबा जी! आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए, मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिये। मैं आपकी सेवा दिन-रात करूँगा।[41] तब गोरखनाथ जी ने कहा-बच्चा! सुन, तुम्हें शिष्य कैसे बना लू? तुम तो एक राजकुमार हो। तुम्हारे महल में रानियाँ होंगी और उन रानियों की आह का मुझे श्राप लगेगा।[42] राजा भर्तृहरि तुम तो पान-फूल के भँवरे हो, रसिया हो। तपस्या जैसा कठिन कार्य तुम्हारे बस का नहीं है। तब राजा ने कहा- हे बाबाजी! आप मेरी बात भी सुन लीजिये। [43] यदि आपने मुझे शिष्य रूप में स्वीकार नहीं किया तो मैं यहीं प्राण त्याग दूँगा। मन ही मन गोरखनाथजी ने विचार किया।[44] भर्तृहरि से कहा- मेरी एक शर्त है। जब यह शर्त पूर्ण होगी, तब मैं तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर लूँगा। यदि तुम्हारे मन में जोग लेने का पक्का इरादा है तो तुम तुम्हारे महल में जाकर अपनी विवाहित पत्नी को माँ कहकर भिक्षा ले आओ, तो मैं तुम्हें शिष्य बना लूँगा। गुरु गोरखनाथ जी की शर्त सुनकर राजा ने कहा कि मुझे आपकी शर्त मंजूर है।[45]

गुरु के वचन सुन विचार कर उन्होंने अपने बहुमूल्य वस्त्रों को फाड़ डाला और संन्यासियों का चोगा बना लिया।[46] सिर

पर जो कीमती पगड़ी बंधी थी, उसे गूंथकर गले की सेली बना ली। कानों में पहने बहुमूल्य मोती उतारकर ब्राह्मण को दे दिये।[47] अपने सेवक को कानों के कुण्डल उतारकर दान में दे दिये। जोगिया वस्त्र धारणकर हाथ में खप्पर लेकर पैरों में पावड़ियां पहनकर मुख पर भस्मी रमा ली। [48] अंगों पर जोगिया वस्त्र धारणकर गुरु को शीश नवा राजा उज्जैन की ओर प्रस्थान कर गये।[49]

वनखण्ड जंगल से चलकर राजा भर्तृहरि उज्जैन नगरी में पहुँचे और अपने रंग महल के दरवाजे के सामने जाकर आवाज लगाई। अलख निरंजन! भिक्षां देहि माता, माता! भिक्षां देहि, माता! भिक्षा दीजिये। हे माँ! मुझे पुत्र कहकर मेरी झोली में भिक्षा डालें, ताकि मेरी यात्रा साधना अमर हो जाये। जोगी की आवाज रानी श्यामा देवी को सुनाई दी और रानी ने चम्पा दासी को बुलाया और कहा- द्वार पर खड़े जोगी को भिक्षा दे आओ। चम्पादासी ने थाली में मोती रखे, उसे सुंदर वस्त्र से ढंका और जोगी को भिक्षा देने आई।[50] जब जोगीराज ने देखा कि यह तो चम्पा दासी है, मेरी रानी नहीं है। उन्होंने दासी से भिक्षा लेने से इंकार किया, उन्होंने कहा- दासी से भिक्षा नहीं लेते। हमारा धर्म घट जाता है। क्योंकि जिस उद्देश्य को लेकर वे आये थे, वह पूर्ण नहीं हो रहा था।[51] अतः उन्होंने दासी से कहा-मैं तुम्हारे हाथों से भिक्षा नहीं लूँगा। मैं तो रानी माँ से भिक्षा लूँगा। [52] तब चम्पा दासी ने कहा- मैं ही रानी हूँ मैं ही पटरानी हूँ। मैं महलों की सर्वस्व हूँ।[53] तब जोगीराज ने कहा- सोना पहनने से कोई दासी रानी थोड़े बन जाती है। अरे! तुम तो दासी हो दासी, कभी रानी नहीं बन सकती हो। दासी ने योगीराज की ऐसी बातें सुनी तो वह गुस्से में भरकर बोली- भिक्षा लेना हो तो लो, नहीं तो मैं चली।[54] तब योगीराज ने कहा- दासी मेरी बात सुन, एक ही दिन में कितना अंतर आ गया। तेरे जैसी दासियों को तो मैंने कई बार मूल्य देकर खरीदा है।[55]

तब दासी ने गोरे योगीराज के मुख मण्डल को देखा। तेजस्वी ललाट और आँखें देखकर चम्पा दासी ने मन ही मन विचार किया कि ये राजा भर्तृहरि तो नहीं है, क्योंकि राजा भर्तृहरि के पैरों में पद्म का निशान था। वही तेजस्वी ललाट और आँखें भी वैसी ही हैं, जैसे राजा भर्तृहरि की आँखें थी। भभूत रमाने से मुख मण्डल की शोभा नहीं बदली है। [56] यह देखकर दासी गश खाकर गिर गई। होश आने पर दासी रोती हुई राजमहल में प्रवेश करती है और आकर रानी जी से कहती है कि रानी जी आप भी उस अद्भुत योगीराज के दर्शन कीजिये। हो न हो वे हमारे राजा ही हैं। आपको माता-माता कहकर भिक्षा माँग रहे हैं। उनके सुंदर शरीर पर जोगिया वस्त्र है और मुख मण्डल और शरीर पर भस्मी रमी हुई है। [58] तब रानी श्यामा देवी ने कहा दासी! तू झूठ बोल रही है और झूठ बोलने के जुर्म में तुम्हें दीवार में चुनवा दूँगी।[59] न जाने क्या-क्या अनाप-शनाप बोले जा रही है। दासी! तू व्यर्थ में ही राजा पर दोष लगा रही है। दासी रोती ही रही और रोते-रोते पछाड़ खाकर फिर बेहोश हो गई। [60] रानी ने दासी की यह दशा देखी, तो उन्हें भी विश्वास होने लगा कि दासी की बात कहीं सही न हो। रानी ने स्नान किया, सोलह शृँगार करके थाली में मोती रखकर जोगी को भिक्षा देने निकली। जो रानी हमेशा जरी के परदों के बीच बैठी रहती थी, आज वही रानी जरी के पर्दों को छोड़कर योगीराज को भिक्षा देने जा रही है।[61] दरवाजे पर आकर रानी ने कहा- हे रमते हुए जोगी! भिक्षा ले जाओ। तब राजा भर्तृहरि ने रानी को आशीर्वाद दिया।[62] देखा, रानी घूँघट निकालकर भिक्षा देने आ रही है। तब योगी ने कहा- हे माता! जोगी-यति से पर्दा कैसा, जोगी यति से पर्दा करना अच्छा नहीं है।[63] परदा तो जेठ और ससुर के सामने अच्छा लगता है। उनसे परदा करना चाहिये। जोगीराज से परदा क्यों? और हे माँ! मैं तेरे हीरे जवाहरात, मोतियों का क्या करूँ।[64] मुझे तो पुत्र कहकर अन्न की भिक्षा दो, तो मेरी योग साधना अमर हो जायेगी।[65] मेरी तपस्या सफल हो जायेगी। घूँघट उठाकर रानी ने जोगी की सूरत देखी। स्वयं अपने पति राजा भर्तृहरि को योगी के वेश में देखा तो रानी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। [66] रानी के हाथों से मोती का थाल भी गिर पड़ा। जब उन्हें मूर्छित अवस्था से होश आया तो उन्होंने जोगीराज के चरण पकड़ समझाने लगी। [67] हे स्वामी! आपने योगी का वेश क्यों धारण किया? आपको क्या कमी थी, जो आप योगी हो गये? क्या हुआ बताईये? तब योगीराज ने कहा- मुझे संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया है और मैं सभी मोह, माया, ममता के बंधनों को तोड़कर योगी बना हूँ। अब इस झूठे संसार से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। तब रानी ने कहा- आपका योग सम्पूर्ण कैसे होगा? अरे! आप अपनी विवाहित पत्नी को माँ कह रहे हैं, क्या आपको ताप तो नहीं चढ़ गया? क्या आपने भांग तो नहीं पी ली? क्या आप बावरे तो नहीं हो गये हैं?[68] तब योगीराज ने कहा- कौन रानी,

किसकी रानी? तब रानी ने कहा- राजा जी ओछी बात मत कीजिये। प्रजा पूर्ण रूप से गवाह है, हम आपकी रानियाँ हैं। फिर हमें माता किसलिए कह रह हो।[69] तुम मेरी राजधर्म की पत्नियाँ हो और जोगी धर्म की माताएँ। [70]

राज्य के कर्मचारी जानते हैं कि आप हमें विवाह करके लाये हैं। यदि आपको योगी बनना था तो आपने हमारे साथ विवाह क्यों किया? क्यों गये थे हमारे बाबुल के द्वार? विवाह करके आपने हमें दोषी बना दिया है। हमें दोष लगा है कि हम विवाहित हैं। यदि हम कुँवारी रहतीं तो कोई भी राजकुमार विवाह करके ले जाता, क्यों हमें दोष लगाया।[71] यदि योग साधना ही करना था तो विवाह क्यों किया? तब योगीराज ने कहा- ऐसी तुच्छ बातें मत बोलो, मेरा विवाह बाल्य अवस्था में भगवान के योग-संयोग से हुआ। [72]यह मेरे साथ धोखा हुआ है। हमारा-तुम्हारा जोड़ा भगवान ने बनाया है। भाग्य से मैं राजघराने में पैदा हुआ हूँ। भगवान के घर से यदि मेरे भाग्य में योगी बनना लिखा है तो वह भी हो चुका हूँ।[73]

अब मैं राज-पाठ तुम्हें सौंप रहा हूँ। पुत्र कहकर भिक्षा दे दो। योग-साधना सफल हो जाय। तब रानी श्यामा देवी ने कहा- महाराज मेरी बात सुनों। [74] यदि तुम्हारी इच्छा तपस्या करने की है तो यहीं पर रहकर तपस्या कीजिये। आपके लिये मैं हरिद्वार से गंगा मंगवा दूँगी और आप घर बैठकर तीर्थ स्नान करते रहना।[75]

मैं आपके लिये चम्पा बाग में सुन्दर सी कुटिया बनवा दूँगी और वही धूनी रमा दूँगी। सोने का आसन बनाकर उसमें हीरे जड़वा दूँगी।[76] धूनी में केसर डालकर आपकी सेवा में खड़ी रहूँगी और आपके दर्शन करती रहूँगी और अच्छा भोजन भी बनाकर दिया करूँगी।[77] तब राजा ने कहा- सुनों रानी माँ, तेरे द्वार पर हम नहीं रहेंगे। तेरे पास रहेंगे तो हमारे गुरु का नाम बदनाम होगा। हमारे गुरु को लज्जा आयेगी।[78] बहता हुआ पानी, रमता हुआ जोगी कभी नहीं ठहरता। रमते जोगी का कोई ठिकाना नहीं होता। यदि पानी एक स्थान पर रुक जाये तो मैला हो जाता है। ऐसे ही योगी भी एक ही स्थान पर रहेगा तो उसकी योग साधना में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं और उसके चरित्र पर लाँछन लग सकता है। उसका हृदय मैला हो जायेगा। निष्क्रिय बैठे रहना राजा को शोभा नहीं देता है। प्रजा का न्याय करना राजा का काम है। राजा प्रजा के बीच ही अच्छा लगता है। मृग को स्वछंद घूमना अच्छा लगता है।[79] पनघट और श्मशान ही जोगी के रहने का स्थान है। हे माँ! तुम तो मुझे पुत्र कहकर भिक्षा दे दो, तो मेरी योग साधना सफल हो जाये और गोरखनाथ जी मुझे शिष्य स्वीकार कर लें।[80]

तब रानी ने कहा- तुम कैसे जोगी बनकर चल दिये। अभी तो मेरे मन कि अभिलाषाएँ पूरी नहीं हुई। क्या अभी तुम्हारी उम्र है जोगी बनने की? योग साधना तो बुढ़ापे में की जाती है। जब बच्चे बड़े होकर सयाने हो जाते हैं, अभी तो मुझे बालक पैदा नहीं हुआ है, और न ही बच्चे के स्तनपान से मेरा आँचल भीगा है।[81] यदि मुझे आप एक बालक ही दे जाते तो मैं उसके सहारे पूरी उम्र गुजार देती। बिना बच्चे के मैं मन कैसे बहलाऊँगी। यदि मेरा बच्चा होता तो मेरा मन बहल जाता। मैं उसे राज पाठ के कार्य में लगा देती, उसे पालती। [82]

तब भर्तृहरि ने कहा- रानी बात ध्यान से सुनों, तुम क्या मूर्खों जैसी बातें करती हो, भगवान के यहाँ से जो लेख लिखा होता है, वह होकर ही रहता है। हमने यह राजपाट त्याग कर दिया है। सोलह सौ रानियों का त्याग कर दिया। उज्जैन नगरी को छोड़ दिया। अपने गुरु गोरखनाथजी की अमूल्य वाणी को सुनकर आ रहा हूँ। इन प्रपंचों में मत खींचो, मुझे योगी बन जाने दो। [83]

तब रानी ने कहा- हे स्वामी! सावन आयेगा, सावन की रिमझिम फुवारों में मुझे तुम्हारी याद आयेगी, मैं किस प्रकार अपने मन को बहलाऊँगी। भादव की गहन अंधियारी रातें मुझे काले नाग की तरह डँसेंगी, तब मैं क्या करूँगी? बादल गरजेंगे, पपीहा-मोर बोलेंगे और तुम्हारी याद दिलायेंगे, तो मेरे नैनों से अश्रुधारा बह निकलेगी, तब मैं क्या करूँगी? मुझे कौन धीरज बंधायेगा? किससे मैं अपना दु:ख कहूँगी, तब राजा भर्तृहरि ने कहा- रानी मेरी बात सुन, तुरई की बेल पर सदा ही फल नहीं लगते। सावन का क्या? सावन आयेगा और चला जायेगा।

तब राजा ने कहा- रानी सुन भगवान के यहाँ से जो लेख लिखा होता है, उसमें कुछ भी फेर-बदल नहीं हो सकता है। रंच मात्र भी बदलाव नहीं आता। बेटा-बेटी भगवान की देन है, माँगने से नहीं मिलते हैं। सब भगवान की इच्छा पर निर्भर है। तुमने बीज तो बबूल का बोया है, उस पर आम खाने की इच्छा रखती हो। आम तुम्हें कैसे मिलेंगे? जैसा बोओगे वैसा पाओगे।[84] तुमने

प्रेम की क्यारी में विष बोया है, तुम्हारी ईष्या-द्वेष के कारण रंग महल में बैठी रहना, तुम्हारे छल कपट के कारण ही मैं जोगीराज बना हूँ। अब इस रंग महल में बैठकर तुम पान चबाती रहना।[85] भगवान श्री हरि का भजन करते रहना। तुम्हें मुक्ति मिलेगी। इस मनुष्य देह से आत्मा छूट जायेगी। अच्छे कर्म करना, अच्छे कर्म ही तुम्हारे साथ जायेंगे।[86]

तब रानी ने कहा- महाराज! तुम योगीराज बन गये। जोगी बन घर-घर भिक्षा माँगोगे। किसी तुच्छ या गंवार के घर गये तो वह तुम्हें गाली भी दे सकता है।[87] उसकी गाली देने से तुम्हारा क्षत्रिय धर्म नष्ट हो जायेगा। क्या वह गाली देगा तो तुम्हें क्रोध नहीं आयेगा। तुम तो एक राजकुमार हो और राजकुमार को भिक्षा माँगना शोभा देगा क्या? हे महाराज! यह योगी बनने की बात छोड़ो। महाराज! आप समझते क्यों नहीं? छोड़िये यह योगी बनने का चक्कर और रंग महल में आकर राजपाठ सँभाले।[88] तब राजा ने कहा- सुन, मुझे अब किसी की गाली से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हमने तो संन्यास ले लिया है, और संन्यासी को गाली का कोई असर नहीं होता है। मैंने मन को अपने वश में कर लिया, मैंने शरीर की सभी इन्द्रियों को साध लिया है। मुझे अब कोई असर नहीं होगा।[89] रानी, तुम्हारा मन नहीं लगता है तो तुम मायके चली जाओ। रानी, मैं अब तो फकीर हो ही गया हूँ।[90]

बेचैन हो रानी ने कहा- हे महाराज! मेरे मायके में कोई भी जिंदा नहीं है। माँ के बिना मायका कैसा, भाई बिना कैसी बहना,[91] बहना के बिना ममता कैसी और पुत्र के बिना तो यह घर- यह सारा संसार ही सूना है। बिना पुत्र के घर भी कोई घर होता है? और दूध-घी के बिना कोई पकवान बनाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। बिना राजा के कोई राज्य शोभा नहीं देता और राजा के बिना न्याय नहीं हो सकता है।[92] जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना चाँदनी सूनी होती है, उसी प्रकार मैं आपके बिना अधूरी हूँ। स्वामी दीपक बिना बाती सूनी होती है, बिना दीपक के प्रकाश नहीं होता। उसी प्रकार- हे महाराज! आपके बिना मैं सूनी हूँ। बिना पुरुष के स्त्री की संसार में कोई कद्र नहीं करता है। स्त्री का सब कुछ उसका पति ही होता है। बिना पुरुष के स्त्री इस संसार सागर को पार नहीं कर सकती है।[93] आपके जाने के बाद मेरी हालत क्या होगी? मैं अपना सुख-दुःख, विरह- व्यथा, आरजू-फरियाद किससे कहूँगी? मेरा तो कोई भी मायके में जीवित नहीं है। फिर में किसके सहारे रहूँगी। स्वामी! आप मुझे तो अपने साथ ले चलिये अथवा आप यहीं रहकर तपस्या कीजिये। यदि आप मुझे ले चलेंगे तो मैं आपके लिये घर-घर से भिक्षा माँग लाऊँगी और आपकी सेवा करती रहूँगी।

तब राजा ने कहा- मैं तुम्हें अपने साथ नहीं ले जा सकता हूँ। जिस प्रकार आत्मा शरीर से निकलकर चली जाती है और देह सूनी पड़ी रहती है, उसी प्रकार तुम देह और मैं आत्मा हूँ।[95]

मेरे साथ तुम नहीं जा सकती हो और यदि मैं तुम्हें अपने साथ ले भी गया तो मेरी तपस्या भंग होगी और मेरी माँ का दूध लज्जित होगा। मेरी माता ने मुझे जन्म दिया है। उस जन्म को सफल करने दो। मनुष्य जीवन सफल हो जाने दो और मुझे मुक्ति के मार्ग पर जाने से मत रोको, मेरा जीवन सफल हो जाये, ऐसी कामना करो। मुझे पुत्र कहकर भिक्षा दे दो, तो मेरा यहाँ आना सफल हो जाये। मेरी योग साधना सफल हो जाये और गोरखनाथ जी मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कर लें।[96]

सावन आयेगा, पानी बरसा कर चला जायेगा। भादव बरसेगा ही, घनघोर घटाएँ उठेंगी ही, मोर नाचेंगे, बिजली चमकेगी ही।[97] ऐसे समय में प्रिय की याद आना स्वाभाविक है। नैनों से आँसू बहना जरूरी है।[98] क्या हरदम सावन थोड़े रहेगा। मनुष्य की कामनाएँ कभी पूर्ण नहीं होती है। कामनाएँ सदा अतृप्त ही होती हैं। वे कभी तृप्त नहीं होती और यह संसार तो आने-जाने का नाम है। सदा क्यों कोई जीवित रहेगा?[99]

जिस प्रकार पीपल की छाया बार-बार स्थान बदलती है, उसी प्रकार जिंदगी में तो दुःख आते ही रहते हैं और फिर चले जाते हैं। कोई किसी की पत्नी नहीं, कोई किसी का पुत्र नहीं, कोई किसी की माता नहीं। सब संसार मिथ्या है, झूठी मोह माया है, बंधन है।[100] ओस की बूंद के समान यह संसार है, ओस की बूंद रात भर रहती है और जब सूर्य उदित होता है तो गायब हो जाती है। इसी प्रकार यहाँ का हर प्राणी नष्ट होने के लिये ही पैदा हुआ है। जिस प्रकार आकाश में झिलमिलाता हुआ तारा दिखाई देता है, वह कुछ देर प्रज्ज्वलित होने के बाद टूटकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस संसार में आने-जाने का काम चलता ही रहता है।[101]

लंकापति रावण ने क्या सोचकर सीता का अपहरण किया था, वह उसे रानी बनाकर अपने महल में रखने वाला था। वहाँ करने गये थे कुछ और हो गया कुछ। राम के बाणों के आगे उसकी एक न चली और अंत में मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस संसार में वह खाली हाथ आया था और खाली ही विदा हुआ। क्यों नहीं ले गया वह अपने साथ सब धन-दौलत? जिनके पास लाखों - करोड़ों की सम्पत्ति है, वे भी अपने साथ सम्पत्ति नहीं ले जाते हैं। जब रावण जैसा महाबलशाली कुछ भी नहीं ले गया तो हमारी-तुम्हारी क्या औकात है?[102] यह जिंदगी तो पानी के बुलबुले के समान है। इस जिंदगी पर अभिमान मत करना। यह शरीर नश्वर है, इस पर भी घमण्ड मत करना। तुम तो मुझे पुत्र कहकर भिक्षा दे दो, जिससे मेरी योग साधना सफल हो जाये। [103] तब रानी श्यामा देवी ने कहा- आप जोगी बने हैं, तो मैं भी जोगन बनकर आपके साथ ही चलूँगी।[104] तब भर्तृहरि ने कहा- नहीं यह सम्भव नहीं है। इस प्रकार तुम जोगन बनकर मेरे साथ चलोगी तो मेरी योग साधना सफल नहीं होगी।[105] मेरा रहने का कोई निश्चित स्थान भी तो नहीं है। कभी तो योगी को पूरे दिन चलना पड़ता है। कभी गाँव या नगर में विश्राम होता है। कभी सुनसान उजाड़ जंगल में रहना पड़ता है। [106] यदि मैं तुम्हें जोगन बनाकर ले गया, किसी नगर में विश्राम किया, किसी राजा की बुरी नजर तुम पर पड़ गई तो वह राजा मेरे पास आयेगा और तुम्हारी सूरत पर मुग्ध होकर वासना ग्रसित होकर तुम्हें उठा ले जायेगा। अपनी रानी बना लेगा और मुझे मार डालेगा। [107]

तुम्हारा और मेरा साथ कभी नहीं हो सकता है। न तो मेरे पास धन है और न ही मेरे पास कोई मूल्यवान वस्तु। मैंने अपना राजपाट सर्वस्व ही यहीं पर छोड़ दिया है। यह महल तुम्हारा है, फिर मेरे साथ जाने की क्या जरूरत है? तुम तो मुझे पुत्रवत् स्नेह से भिक्षा दे दो तो मेरी तपस्या सफल हो जाये। [108]

पाँव पकड़कर रानी-राजा को समझाती है। महाराज! मेरी बात सुनो, आपको किसने ऐसा उच्च ज्ञान दिया, जिससे आप मोह-माया और संसार से विरक्त हो गये हैं। आपके गुरु कौन हैं? मुझे उनका नाम तो बताईये, मैं उस गुरु से आपको छुड़ा लाऊँगी।[109] कौन हैं आपके गुरु? कौन से गुरु ने आपकी आत्मा को जगा दिया और किसने आत्म-ज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित किया है? तब राजा ने कहा- मेरे गुरु का नाम गोरखनाथ जी है, जिन्होंने मुझे इतना ज्ञान दिया है। तुम मेरे गुरु को गाली मत दो। मेरे गुरु पल भर में सब कुछ भस्म कर सकते हैं और मृत आदमी को जीवित कर सकते हैं। वे सब कुछ करने में समर्थ हैं।[111] गुरु कैसे भी गूंगे हों, अपंग हों, बावले हों तो भी गुरु ही होते हैं। गुरु के साथ शिष्यों का भी बड़ा महत्त्व है। शिष्य अपने गुरु की सेवा करते हैं।[112] गुरुजी काशी में रहते हैं और उनकी शिष्य परम्परा प्रयाग में हो सकती है। गुरु के शिष्यों की परिपाटी काफी लम्बी रही है। गुरु का आदर सबसे बड़ा आदर है। गुरु को नित्य प्रणाम करना चाहिये। जिस प्रकार पानी की धार ऊँचाई से नीचे की ओर गिरती है, उसी प्रकार शिष्यों को भी अपने गुरु चरणों की ओर ध्यान लगाना चाहिये।[133] गुरु बड़े हैं और बड़े कभी अपने मुँह से बड़ाई नहीं करते हैं और न ही गर्व के बोल बोलते हैं। हम तो अब जोगी बन गये हैं। लाख जोर करो, पर हम पर तो कोई जोर नहीं चलता है।[114]

तब रानी श्यामा देवी ने कहा- महाराज! आप जोगी बने रहिए, मगर मेरे साथ एक बार शैय्या पर विश्राम करें और चौसर की बाजी खेलकर चले जायें।[115] राजा ने कहा- अब मैं चौसर पासे खेलकर क्या करूँगा? वैसे भी इस संसार में मैं सब कुछ हार चुका हूँ। अब मुझे हार-जीत से कोई मतलब नहीं है।[116] तब रानी ने कुटिलता पूर्वक मन ही मन सोचकर कहा- यदि मैं हार गयी तो आपके साथ चलूँगी और जीत गई तो आपको दस दिन तक जाने नहीं दूँगी। ऐसी बाजी रानी ने सोच ली और दोनों तरफ दांव-पेंच लगा लिये।[117] राजा ने भी मन में विचार किया और कहा कि रानी मैं चौसर खेलने में असमर्थ हूँ, क्योंकि चौसर का खेल काफी उलझा हुआ है। इसी चौसर के खेल में तुम मुझे दस दिन रख लोगी। [118] इसलिये मैं चौसर की बाजी नहीं लूँगा। यदि मैं जीत भी गया तो तुम्हें हाथ नहीं लगाऊँगा। रानी ने किसी तरह राजा को चौसर खेलने के लिये राजी कर लिया और चौसर की बिछात बिछा दी। पासों को हाथ में लेकर रानी ने पहला पासा ब्रह्माजी के नाम डाला और विनम्र प्रार्थना की।[119] पासों! मेरी प्रार्थना है इस कार्य में मेरा साथ देना। जिस इच्छा से मैं ऐसा कर्म कर रही हूँ। रानी ने पासों को फेंकते हुए कहा- कर्म के साथी सोलह और सात अंकों मेरा साथ देना और तब रानी ने जो अंक चाहे थे, वही गिरे। [120]

राजा भर्तृहरि ने पासों को हाथ में लिया और भगवान का

ध्यान किया। उसके बाद अपने गुरु गोरखनाथ का स्मरण किया और प्रार्थना की- हे गुरुदेव! मेरे बाने की लाज रखना। तब गुरु का स्मरण करके राजा ने पासें फेंके और पौ बारह की आवाज लगाई। पासें वही पड़े जो राजा ने दांव लगाया था। राजा चौपड़ की बाजी जीत गये और खेलने से उठ गये। उनका दसवां द्वार खुल गया।[121]

तब रानी ने हाथ पकड़कर कहा- सुनो राजकुमार! जाने से पहले आखिरी बार महल में भोजन कर लीजिये। तुम्हारे रंगमहल में आने से रंगमहल गुलजार हो जायेगा। चारों ओर आनंद के घुँघरूओं की झंकार गूंज उठेगी।[122]

राजा भर्तृहरि ने कहा- तुम तो मुझे भीक्षा देकर विदा करो। बस, मुझे पुत्र कहकर भिक्षा दे दो, ताकि मेरी तपस्या सफल हो जाये, मेरे इस शरीर का उद्धार हो जाये। [123]

तब रानी पिंगला ने कहा- तुम्हारे गुरु ओछी बुद्धि के हैं और ओछे गुरु के चेले भी ओछे ही होते हैं। क्या भिक्षा-भिक्षा की रट लगा रखी है। सारा भण्डार भरा है। मैं तुम्हें सभी कुछ दे सकती हूँ। तब सोलह रानियों ने भोजन परोसा। राजा भर्तृहरि ने कहा- हम तो खप्पर में खाने वाले हैं। रानियों ने भोजन खप्पर में डाल दिया। खप्पर पूरी तरह से भर गया। भोजन उसमें समा नहीं रहा है। [124]

हम पूर्ण रूप से सक्षम गुरु के चेले हैं। उनके पास ज्ञान का अक्षय भण्डार है। तुम मेरे गुरु के भण्डार के आगे कुछ भी नहीं हो। मेरे गुरु के पास तीनों लोकों की सम्पदा है। इस खप्पर में सभी कुछ समा सकता है।[125]

तब रानी पिंगला ने कहा- तुम ऊँचे सिंहासन पर बैठने वाले हो, तुमने उसका त्याग क्यों किया है? तुम जन्म से नरम बिछौने की सेज पर सोने के अभ्यस्त थे। उस सेज को क्यों छोड़ा? तुम्हारी सुन्दर पत्नियाँ है, उन्हें क्यों छोड़ दिया? तुम्हे संसार से अचानक विरक्ति क्यों हो गई? तुमने सब सुखों का त्याग क्यों कर दिया है? जिन रानियों पर तुमने अपनी जान छिड़क दी थी, उनसे सारे बंधन क्यों तोड़ लिये हैं? तुमने एकदम से सारे नाते-रिश्ते तोड़ दिये। ऐसा क्या हो गया?[126]

रानी पिंगला के लाख समझाने पर भी भर्तृहरि नहीं माने। तब रानी ने अपने सारे आभूषण श्रृँगार उतार दिये और कहा- लो पुत्र, भिक्षा लो। ऐसा कहकर उसने राजयोगी भर्तृहरि के पात्र में अपने सारे जेवर डाल दिये। पुत्र कहकर मिलते ही राजा भर्तृहरि महल छोड़कर चल दिये। [127]

इस संसार में 'मेरा-मेरा' सभी करके मर जाते हैं। करोड़ों लोग मेरा-मेरा करते इस संसार को छोड़कर चले गये। पैदा होते समय मुट्ठी बंद करके आये थे और जाते समय यानी मृत्यु के वक्त खाली हाथ चले जाते हैं। साथ में कुछ भी नहीं ले जाते।[128]

धन्य है! धन्य है! उज्जैन भूमि, जहाँ राजा भर्तृहरि ने जन्म लिया। अच्छे कर्म करके वे वैकुण्ठ धाम गये। जहाँ सिंह के समान राजा भर्तृहरि हुए। [129]

राजा माया मोह तृष्णा के बन्धन तोड़कर गुरु के पास पहुँचे। गुरु के समीप जाकर बोले- हे गुरुदेव! आपने जैसा कहा था, वैसा मैंने कर दिया है, पुत्र कहलाकर मैं माता पिंगला से भिक्षा ले आया हूँ। अब मुझे अपने चेले के रूप में स्वीकार कर लें अथवा मुझे अपने चरणों का दास बना लें। अब मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। अब आप मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कर लें। [130]

तब गुरु गोरखनाथ ने भर्तृहरि को चुटकी काटकर उसकी सच्चाई की परीक्षा ली। वह सचेत है या गाफिल। भर्तृहरि परीक्षा में खरे उतरे। उन्होंने उनके कानों में जोगियों के कुंडल और हाथ की अँगुली में अँगूठी पहना दी। पीठ ठोककर आशीर्वाद दिया और कहा-जाओ शिष्य, तुम्हारी योग-साधना सफल होगी। तुम्हारा शरीर अमर हो जायेगा। [131]

इस धरती को यदि मैं कागज बना लूँ । वन के बाँस या सारे पौधों को काटकर कलम बना लूँ। सात समुद्रों को स्याही बना लूँ, तब भी गुरु के गुणों का बखान नहीं लिख सकता हूँ। [132]

कुँवार सुदी तीज को इस नई कथा की रचना की है और बातों को छोड़ दीजिये। अपनी मंद बुद्धि से थोड़ी सी कथा कही है।[133] कोई भूल-चूक हो तो माफ कर देना। मैं अल्प बुद्धि हूँ। आप ज्ञानवान हैं। थोड़ी बात लिखी है, उसे आप अधिक समझना। मैं तो आपकी शरण में हूँ। दास हूँ। सेवक हूँ।[134]

धन्य है वह नगर, धन्य है वह कुटुम्ब-परिवार, धन्य है! धन्य है! धन्य है! वह देश, जहाँ पावन सलिला गंगा माता बहती हैं।[135]

धन्य-धन्य हैं वे नारियाँ जो देवियों के समान पूजित हैं। जो अपने कुल-वंश में अपना नाम रोशन कर गई हैं, जो अपनी श्रद्धा-भक्ति से अपना नाम बढ़ा गई हैं। अपने धर्म के कारण, अपनी मान-मर्यादा के कारण जिन्होंने अपने प्राणों तक का त्याग कर दिया है। धन्य हैं वे नारियाँ जिसने अपना आत्म-सम्मान नहीं खोया है।[136] धन्य हैं शिष्य भर्तृहरि, धन्य हैं गुरु गोरखनाथ। कलयुग में जिनका नाम अमर हो गया है। धन्य हैं उनके माता-पिता जिन्होंने राजा भर्तृहरि जैसी संतान को जन्म दिया।[137] धन्य हैं वह संत जहाँ भगवान का भजन-कीर्तन होता है। पूजा-पाठ होती है। जहाँ पर राजा भर्तृहरि की कथा का गायन होता है। उस स्थान के उन सुनने वालों के सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।[138]

जो इस कथा का आनंद लेगा, ध्यान से सुनेगा। वह संसार से मुक्त को जायेगा और वैकुण्ठ धाम जायेगा।[139]

सारी सभा से विनती करके कथा को विश्राम दिया जा रहा है। इसे रामलाल ने गाया है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वे अपने दास पर कृपा बनाये रखें।[140]

# मृत्यु संस्कार : एक अनुष्ठान

डॉ. दुर्गेश दीक्षित

जन्म और मृत्यु का क्रम तो स्वाभाविक ही है, जिसका जन्म होगा- उसकी मृत्यु अवश्य ही होगी। जो संसार में आया है, वह एक दिन अवश्य जाएगा। मृत्यु ध्रुव सत्य है। संत कबीर भी कह गये है - आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर। किसी बुंदेली चौकड़ियाकार ने सत्य ही कहा है-

*किदनां मन-पंछी उड़ जाने, कीके कौन ठिकानें।*
*ऐसईं दिन जीवन के कड़नें, करतन काल भियानें।*
*जौं जिऊ पानी सौ बलबूजा, पानी बीच बिलानें।*
*माटी तन दुर्गेश सबई जौ, माटी में मिल जानें।।*

शरीर नाशवान हैं, किन्तु आत्मा अमर है। शरीर नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती। गीताकार ने स्पष्ट ही कहा है-

*वासांसि जीर्णानि यदा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।*
*तथा शरीराणि विहाय जीर्ण, न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।*

सोलह संस्कारों में जन्म और मृत्यु महत्त्वपूर्ण संस्कार हैं। जिस उमंग और उत्साह के साथ समाज के लोग जन्म संस्कार में रूचि लेते हैं, उतनी अधिक रूचि मृत्यु संस्कार में नहीं होती। किन्तु पारंपरिक और सामाजिक बंधनों के कारण प्रक्रिया बहुत प्राचीन है। त्रेतायुग में महाराज दशरथ और गिद्ध जटायू की मृत्यु संस्कार का स्पष्ट उल्लेख है। मानस के अयोध्या काण्ड में महाराज दशरथ के संस्कार का संकेत किया गया है-

*चंदन अगर भार बहु आए, अमित अनेक सुगंध सुहाए।*
*सरजु तीर रचि चिता बनाई, जनु सुरपुर सोपान सुहाई।*

दाह संस्कार के पश्चात् अन्य अनुष्ठानिक क्रियाओं का भी वर्णन किया गया है–

*एहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही।*
*विधिवत् न्हाइ तिलांजुलि दीनी।।*
*सोधि सुमृति सब वेद पुराना।*
*कीन्ह भरत दसगात बिधाना।।*

भरत ने षोडषी, सपिण्डी और दशगात्र आदि अनुष्ठानिक क्रियाओं को विधि–विधान पूर्वक सम्पन्न किया।

गिद्ध जटायू सीता जी की रक्षा करते हुए रावण की तलवार से मरणासन्न हो गये थे। उन्होंने राम को सारी कथा सुनाकर अपने प्राण त्याग दिये थे। राम ने अपने हाथों से जटायू का मृत्यु संस्कार सम्पन्न किया था। मानस में इस घटना का उल्लेख है–

*अबिरल भगति मागि बर, गीध गयउ हरिधाम।*
*तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्हीं राम।।*
*कोमल चित अति दीन दयाला।*
*कारन बिनु रघुनाथ कृपाला।।*
*गीध अधम खग आमिष भोगी।*
*गति दीन्ही जो जाचत जोगी।।*

मृत्यु संस्कार की सारी अनुष्ठानिक क्रियाएँ त्रेतायुग से आज तक संचालित हो रही हैं। बौद्धिकता और विज्ञान की चकाचौंध में वे सबकी सब आज फीकी पड़ती जा रही हैं। अलग–अलग समुदायों में कुछ इनीं–गिनीं क्रियाओं को ही सम्पन्न कराया जाता है और शेष क्रियाओं को लोग भूलते जा रहे हैं। और तो और इन क्रियाओं को सम्पन्न कराने वाले कर्म–काण्डी बाह्मणों का अभाव भी होता जा रहा है। ये सब क्रियाएँ केवल उच्चवर्गीय परिवारों में ही सम्पन्न कराई जाती हैं।

वैसे ये अवसर रुदन का है। वयोवृद्ध और निश्छल व्यक्तियों को मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है और उन्हें मृत्यु सुखदायक होती है। संत कबीर के शब्दों में–

*दुल्हिन गावहु मंगलचार*
*हमारे घर आए हों, राजाराम भरतार।*

आत्मा–परमात्मा के एकाकार की स्थिति का चित्रण एक साखी में किया गया है–

*हेरत–हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।*
*बूंद समानीं समुद्र में, सो कत हेरी जाइ।*

मरते समय व्यक्ति को अपने परिवारजनों का स्मरण हो आता है। एक बुंदेली लोकगीत में इस स्थिति का चित्रण किया गया है–

*बैकुंठई सैं आ गओ तार, राम मोरे आ गये लिबौआ।*
*आव तुम राम बैठों मोरे पास, हमें लरका बुलावनें।*
*आव मोरे लरका तुम बैठों मोरे पास।*
*चारई कोंनन माया धरी है, जुर मिलकै लिइयौ बांट।*
*राम मोरे आ गये लिबौआ।*

मरते समय हर माता को अपने पुत्रों का स्मरण हो आता है। वह अपनी संग्रहीत सम्पत्ति को अपने पुत्रों में बराबर वितरित करना चाहती है। माता अपने पुत्रों के साथ अपनी पुत्र–वधुओं को भी बुला रही है–

*आव मोरे राम पास बैठो राम,*
*हमें बऊएँ बुलावनें।*
*आव मोरी बऊएँ तुम पास बैठों बऊएँ।*
*हमरे बगस में सारीं धरी हैं।*
*हिल–मिल कै लिइयौ बांट, राम मोरे आ गये लिबौआ।*

सास के मन में अपनी पुत्र–वधुओं के प्रति कितना अधिक आकर्षण है। उनकी आत्मीयता देखने योग्य है। वे अपने संदूक में रखी साड़ियों को अपनी पुत्र–वधुओं को बाँटना चाहती हैं। पुत्र–वधुओं की तरह उनके मन में पुत्रियों के प्रति भी ममत्व है। वे मरते समय उन सबको देखना चाहती हैं–

*आव मोरे राम तुम बैठों मोरे पास,*
*हमें बिटियाँ बुलावनें।*
*आव मोरी बेटी तुम पास बैठों बेटी।*
*भइया उर भौजी सैं हिल–मिल कैं रइयौ।*
*राम मोरे आ गये लिबौआ।*

अंत में पत्नी अपने पूज्य पतिदेव का स्मरण करती है। वे बड़ी भाग्यशालिनी हैं। सौभाग्यवती के रूप में प्राण त्याग रही है। अन्त्येष्टि पूर्व सौभाग्यवती का श्रृँगार किया जाता है, जिसकी झलक इस लोकगीत में दिखाई दे रही है-

*आव मोरे राम तुम बैठों मोरे पास,*
*हमें स्वामी बुलावनें।*
*आव मोरे स्वामी तुम पास बैठों स्वामी।*
*तुलसा उर चंदन की लकड़ी कटइयौं,*
*चुन-चुन कलियाँ डोली सजइयौं,*
*डोली सैं आंगै कंधा लगइयौं,*
*सैंदुर सैं भर दिइयौ मांग, राम मोरे आ गये लिबौया।*
*बैकुंठई सैं गओ तार, राम मोरे आ गये लिबौआ।*

अधिकांश परिवारों में सौभाग्यवती महिलाओं का अन्त्येष्टि के पूर्व श्रृँगार किया जाता है। पतिदेव प्रसन्नता पूर्वक अर्थी में कंधा लगाते हैं। चंदन और तुलसी की लकड़ी का अर्थी में उपयोग किया जाता है, जिसका संकेत लोकगीत में प्राप्त हो रहा है।

मरते समय आदमी अपनी भूलों पर पछतावा करता है। बाबा तुलसी के शब्दों में-

*मन पछतइयें अवसर बीते,*
*दुर्लभ देह पाइ हरि-पद भजु, करम वचन अरु हीते।*
*हम-हम कर धन धाम संवारे, अंत चले उठि रीते।*
*अंतहु तोहि तजेंगे पामर, तुम तजें अब हीते।।*

जाते समय प्राणी पछताने लगता है कि मैंने अपना सारा जीवन माया-मोह में डूबकर व्यतीत कर दिया। कभी मन लगाकर हरि का भजन नहीं कर पाया। 'अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत'- ये भाव इस लोक गीत में प्रदर्शित हो रहा है-

*हरि कौ भजन नईं कीनों,*
*मन माया में भूलो।*
*जब कीरतन कौ आयों बुलौवा,*
*घर सैं फुरसत नैयां रे-मन माया में भूलो।*

हर नारी को अपना मायका अच्छा लगता है। भैया के आने पर बहिन को कितनी अधिक खुशी होती है?

*जब मायके के आ गये लिबौआ,*
*का बांधों का छोरों रे, मन माया में भूलो*
*हरि कौ भजन नईं कीनों-मन माया में भूलो.. ।*

इस प्रकार से सम्पन्न होने पर भी जरा भी दान-पुण्य नहीं किया। पशु-पक्षियों को खिलाने-पिलाने का प्रयास नहीं किया। तीर्थ यात्रा करने का साहस नहीं जुटा पाये।

*पांचों कोठा गौंऊवन सैं भरे हैं।*
*अन्नदान नईं कीनों रे- मन माया में भूलो...*
*हरि कौ भजन नईं कीनौ रे-मन माया में भूलो*
*एक रोटी मैंने गइया खौं दई है।*
*ओई में सैं आदी बचा लई रे- मन माया में भूलो*
*पांच बोरा चावरन के धरे हैं*
*चिंड़ियन खौं चुन नईं डारो रे- मन माया में भूलो।*
*इकसठ गऊएँ बगर में पिड़ी हैं*
*गऊदान नईं कीनों रे- मन माया में भूलो.....*
*तीन तिजोड़ी माया की भरी हैं,*
*तीरथ प्राग नईं कीनों रे - मन माया में भूलो....*

अंतिम समय यमदूतों को देखकर पछतावा होने लगता है। किन्तु अब पछताने से कुछ होता नहीं है। समय आ जाने पर अब कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, जरा देखिये-

*जब जमदूतन के आ गये लिबौआ।*
*पुन्न दान कछु कीनों रे - मन माया में भूलो।*
*दो दिन की तुम मोहलत दे दो,*
*पुन्न दान कछु कीनों रे - मन माया में भूलो।*
*राई बढ़ें न तिल घटें ना,*
*इतने दिन का कीनों रे - मन माया में भूलो।*

ये सब प्रेरक और मार्ग दर्शक लोकगीत हैं। इन्हें सुनकर लोग सद्पथ की ओर अग्रसर होते हैं। कभी-कभी ऐसी स्थिति निर्मित हो जाती है कि माया-मोह के महासागर में डूबे रहने के कारण समय आ जाने पर भी प्राण पखेरू नहीं उड़ पाते हैं। पापी-प्राण शरीर के पिंजड़े में अटककर फड़फड़ाने लगते हैं। उनका

उद्धार भी नहीं हो पाता, उनमें से कुछ सर्प और कुछ प्रेत बनकर उस माया की रखवाली करते रहते हैं। एक लोकगीत में इस स्थिति का चित्रण किया गया है-

*हरि के नाम न बिसरे*
*जे पापी प्रान न निकरें।*
*तातीं जलेबीं मगद के लड्डवा,*
*जे थारी धरीं-धरीं बिलखें।*
*जे पापी प्रान न निकरें।*

समृद्धशाली दिन-चर्या होने पर भी आत्मिक शांति के बिना समस्त सुख साधन निरर्थक हैं।

*सोने के लोटा गंगाजल पानी,*
*जे लोटा धरे-धरे बिलखे,*
*जे पापी प्रान न निकरें।*
*सोने के सतखण्डा पै पलका बिछो है,*
*जे पलका डरे-डरे बिलखें,*
*जे पापी प्रान न निकरें।*

मोह -ग्रस्त व्यक्ति सहजता से जीवन-मुक्त नहीं हो सकता। माया-मोह के चक्र में पड़कर यहीं भटकता रहता है। एकाकार होने की स्थिति से दूर रहता है।

## अनुष्ठानिक क्रियाएँ

यह एक ऐसी अनिवार्य भावात्मक परम्परा है, जिसका निर्वहन पुत्र या पौत्र द्वारा अपने दिवंगत पिता, पितामह एवं अन्य पितरों के प्रति सम्मान व्यक्त करने हेतु पूर्ण श्रद्धा के साथ किया जाता है, जिसे पिण्डदान की प्रक्रिया कहते हैं। पिण्डदान करने से पितरों को शांति, तृप्ति, सद्गति एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। पिण्डदान की प्रक्रिया मृत्यु से लेकर फल्गु नदी में पिण्डदान तक संचालित रहती है। गया जी में पिण्डदान करने के पश्चात् पितरों का उद्धार हो जाता है। ऐसा कहा जाता है कि वनवास के समय श्रीराम-लक्ष्मण, सीता ने फल्गु नदी में अपने पूज्य-पिता दशरथ को बालू के पिण्ड बनाकर दान किया था। मृत्यु संस्कार की अनुष्ठानिक क्रियाओं में पिण्डदान का विशेष महत्त्व है।

प्रथम पिण्डदान मृत्युस्थल पर, द्वितीय पिण्डदान अर्थी पर, तृतीय पिण्डदान पीपल के वृक्ष के नीचे और चतुर्थ पिण्डदान अर्थी पर रखने के पूर्व किया जाता है। इस प्रकार मृत्यु-दिवस से दसवें दिन तक सोलह पिण्डदान किये जाते हैं। देवता और पितर क्षमाशील होते हैं तथा पूजन में हुई त्रुटियों को क्षमाकर पूजा को स्वीकार कर लेते हैं। पितर कार्य में शुद्धता को महत्त्व देते हैं। कहा भी गया है-

*पितरो वाक्यमिच्छन्ति भवमिच्छन्ति देवता:।*

शव को अर्थी (चिता) पर रखने के पश्चात् पुत्र अथवा पौत्र मुखाग्नि देता है। सारे कुटुम्बी मिलकर शिरच्छेदन (कपाल क्रिया) सम्पन्न करते हैं। अग्नि प्रज्ज्वलित होने पर पुत्र कंधे पर घड़ा रखकर पानी की चाक लगाता है। इसके बाद सारे ग्रामीणजन परिक्रमा लगाकर 'पंच लकड़ी' देते हैं। पंचलकड़ी पंच तत्त्व का प्रतीक है। तीसरे दिन अस्थि संचय और भस्म विसर्जन का कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। प्राय: हिन्दू समाज के लोग नदी अथवा जलाशय में भस्म विसर्जित करते हैं, किन्तु जैन समुदाय के लोग झाड़ियों में भस्म बिखेर देते हैं। चिता स्थल को लीपकर स्वच्छ करके कर्मकाण्डी ब्राह्मण तिल, जवा, तेल, लोहा और भृंगराज के द्वारा प्रेत का भोजन कराकर पिण्डदान कराता है। चेटका पर गेहूँ और नमक बिखरा दिया जाता है। एक तिपाही पर घड़ा भरकर रख दिया जाता है। इस जल को पीकर पक्षी और प्रेत प्यास बुझाता है। गायें चेटका पर पड़े हुए गेहूँ को खाती और नमक को चाटती हैं, जिससे चेटका शुद्ध और पवित्र हो जाता है। गंगा के किनारे पिण्डदान करके अस्थियाँ गंगा जल में विसर्जित की जाती हैं। तेरहवें दिन तेरहवीं के पूर्व निम्नलिखित अनुष्ठानिक क्रियाएँ सम्पन्न कराई जाती हैं-

## मलिन षोडशी

मृत्युतिथि से दसवें दिन तक होने वाली पिण्डदान की प्रक्रिया को मलिन षोडशी कहा जाता है। इसमें सोलह पिण्ड दिये जाते हैं। मृत्यु स्थल से अस्थि संचयन तक छ: पिण्ड और दशगात्र के दस पिण्ड होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर सोलह पिण्ड होते हैं। ये अशौचकालिक पिण्डदान है। इसी कारण से इन्हें मलिन षोडशी की संज्ञा दी गई है। ये दो भागों में विभक्त हैं-

(क) षट् पिण्डदान - शवयात्रा में मृत्यु स्थान से लेकर

अस्थि संचय तक छः पिण्ड दिये जाते हैं। प्रथम पिण्ड जहाँ पर मृत्यु हुई है, इस पिण्डदान से उस भूमि के देवता संतुष्ट होते हैं। द्वितीय पिण्ड मार्ग में दिया जाता है, इस पिण्डदान से घर के वास्तु देवता प्रसन्न होते हैं। तीसरा पिण्ड चौराहे पर दिया जाता है, जिससे शव पर कोई विघ्न बाधा नहीं आ पाती। चतुर्थ पिण्ड भूत के हेतु दिये जाते हैं। पाँचवां पिण्ड अर्थी निर्मित करते समय दिया जाता है, जिससे राक्षस-पिशाच आदि संतुष्ट होते हैं। छठवां पिण्डदान अस्थि संचय के अवसर पर किया जाता है। ये षट् पिण्डदान की प्रक्रिया है।

(ख) दश् पिण्डदान- गरुण पुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर यम मार्ग में यात्रा के लिए अतिवाहिक शरीर प्राप्त हो जाता है। जिनकी परिपुष्टि दशगात्र के दश पिण्डों के द्वारा होती है। इस अवसर पर पिण्डदान न करने से जीव अतृप्त होकर इधर-उधर भटकता रहता है। इस प्रक्रिया को दशह कृत्य कहा जाता है। इस अवसर पर पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर विधि-विधान से दश पिण्ड दिये जाते हैं।

### मध्यम षोडशी

एकादशाह के दिन अर्थात् ग्यारहवें दिन मध्य षोडशी श्राद्ध किया जाता है, जिसमें पन्द्रह पिण्ड देवताओं को और एक पिण्ड प्रेत को दिया जाता है।

### उत्तम षोडशी

इसी दिन आद्य-श्राद्ध होता है, जिसमें एक पिण्ड प्रेत को दिया जाता है। इसके बाद उत्तम षोडश श्राद्ध में सोलह पिण्ड दिये जाते हैं, जो वर्ष भर की मासिक तिथियों के आधार पर दिये जाते हैं।

### सपिण्डीकरण

बारहवें दिन सपिण्डीकरण का श्राद्ध किया जाता है। उस पिण्ड को पितरों के पिण्ड के साथ मिला दिया जाता है। उसी दिन से जीव की प्रेतत्त्व से मुक्ति हो जाती है और उसे पितरों की पंक्ति में स्थान प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार मृत्यु तिथि से बारहवें दिन तक विभिन्न श्राद्धों में पितरत्व प्राप्त करने हेतु विविध रूपों में पिण्डदान किया जाता है। एक वर्ष तक हर माह मृत्यु तिथि को श्राद्ध और ब्रह्मभोज का आयोजन किया जाता है। एक वर्ष पश्चात् श्राद्ध बरसी का आयोजन किया जाता है, इसमें पिण्डदान किया जाता है। एक वर्ष अथवा तीन वर्ष के पश्चात् पितृ मिलन श्राद्ध किया जाता है। तत्पश्चात् प्रति वर्ष पितृ-पक्ष में पितृ-तर्पण किया जाता है। जो व्यक्ति पितृ-तर्पण अथवा श्राद्ध-कर्म सम्पन्न नहीं करता। उसके पितृ गण अतृप्त होकर भटकते रहते हैं। पिण्डदान करने से न केवल जीव प्रेतत्व से मुक्त होता है, न केवल पितरों की तृप्ति होती है, न केवल श्राद्धकर्ता का कल्याण होता है, बल्कि ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, दोनों अश्विनी कुमार, सूर्य, अग्नि, आठों वसु, वायु, विश्वदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु और ऋषिगण, भूत प्राणी सभी तृप्त होते हैं। अतः यह पिण्डदान एक आवश्यक प्रक्रिया है, इसे श्रद्धा पूर्वक सम्पादित करना चाहिए। कहा भी गया है-

*पिण्डं प्रतिदिनं दद्युः सायं प्रातर्यथा विधिः।*

### तीर्थों में पिण्डदान

*'गंगायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके'* गंगा, प्रयाग और अमरकण्टक में किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायक होता है। गया जी पितरों का श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ पिण्डदान करने से मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है। उसे पुनः संसार में जीवन धारण नहीं करना पड़ता। गया जी जाकर पिण्डदान करने से पितर नरक आदि कष्टप्रद लोकों से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार पुष्कर तीर्थ में पिण्ड और श्राद्ध करने से पितरों को तृप्ति एवं मुक्ति प्राप्त होती है। सोमवती अमावस्या को काशी में और कपिलधारा में बद्रीनारायण तीर्थ, हरिद्वार, क्षिप्रा किनारे उज्जैन, नासिक, ओंकारेश्वर, नैमिषारण्य आदि तीर्थों में पिण्डदान और श्राद्ध करने से पितरों को तृप्ति प्राप्त होती है। मातृ गया में माता का पिण्डदान करना विशेष लाभकारी है। पितरों की शांति एवं मोक्ष हेतु पिण्डदान एक अनिवार्य एवं आवश्यक परम्परा है, जिसका निर्वहन करना आवश्यक है।

पितर अत्यंत दयालु और कृपालु होते हैं। वे अपने पुत्र पौत्रादिकों से पिण्डदान और तर्पण की अपेक्षा रखते हैं। श्राद्ध की विभिन्न क्रियाओं द्वारा पितरों को परम तुष्टि प्राप्त होती है। प्रसन्न होकर वे पितृगण श्राद्धकर्ता को दीर्घ आयु, संतति, धन-धान्य, विद्या, राज-सुख, यश-कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री और मोक्ष प्रदान करते हैं। मार्कण्डेय पुराण में कहा है-

*आयु: प्रजा धनं विद्यां, स्वर्ग मोक्षं सुखनिच।*
*प्रयच्छन्ति तथा राज्यं, पितर: श्राद्ध तर्पिता।।*
*आयु पुत्रान यश: स्वर्ग, कीर्ति पुष्टि बलं श्रियम्।*
*पशुन: सौख्यं धनं-धान्यं, प्राप्नुयात पितृ पूजनात।।*

श्राद्ध शब्द को परिभाषित करते हुए कहा गया है- 'प्रेतान पितृनुदिदश्य यस्मादन्नं दीयते तस्ताम् श्राद्ध मुच्यते।' अर्थात् पितरों एवं प्रेतों के उद्देश्य से किये गये सत्कार्य दान, पूजन, तर्पण, पिण्डदान आदि समस्त कार्य श्राद्ध के अन्तर्गत आते हैं। पूर्वजों एवं किसी भी मृत प्राणी के कल्याण हेतु की गई क्रिया को श्राद्ध की संज्ञा दी जाती है। श्राद्धों के अनेक प्रकार हैं, जैसे- नित्य श्राद्ध, नैमित्तिक श्राद्ध, तीर्थश्राद्ध, एकोदिष्ट श्राद्ध, पार्वण श्राद्ध और नान्दी श्राद्ध प्रमुख हैं। अन्त्येष्टि के प्रारंभ से लेकर मलिन मध्यम एवं षोडशी, सपिण्डीकरण तथा वार्षिक श्राद्ध और प्रतिमाह श्राद्ध का विधान है। ये श्राद्ध गृहस्थों के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। गया श्राद्ध आदि विशेष आयोजन मनुष्यों को विविध-विपदाओं से मुक्त कर देते हैं। श्राद्ध-पिण्डदान, तर्पण, हवन, ब्राह्मण भोजनादि क्रियाओं को विधिवत् सम्पन्न करने से पितृशांति और प्रेतत्त्व से मुक्ति होती है।

ऐसा शास्त्रों का निर्णय है कि कभी-कभी विरोधी वचन और परस्पर विरोधी वाक्यों के मिलने पर जन साधारण भ्रम में पड़ जाते हैं और अपनी कपोल कल्पित व्यवस्था का उपयोग करने लगते हैं, जबकि निर्धारित तिथि का श्राद्ध उसी तिथि को होना चाहिए। कहा भी गया है-

*यां तिथि समनु प्राप्य, उदयं याति भास्कर:।*
*सा तिथि: सकला ज्ञेयां दानाध्ययनकर्मसु।।*

श्राद्ध कार्य में तीन बातें वर्जनीय हैं-

1. श्राद्ध कार्य में शीघ्रता नहीं करना चाहिए, अन्यथा पितृगण रूष्ट जो जाते हैं।
2. श्राद्ध कर्ता को श्राद्ध करके यात्रा नहीं करना चाहिए।
3. श्राद्धकर्ता एवं भोक्ता के हृदय में श्रद्धान्न भोजन के निमित्त पितृ गणों का निवास रहता है, अत: उसे दुष्कर्मों से दूर रहना चाहिए।

पिण्डदान एवं श्राद्ध की परम्परा बहुत प्राचीन काल से सम्पूर्ण भारत देश में प्रचलित है। वेद की संहिताओं, गुह्य सूत्रों, धर्मशास्त्रों, स्मृतियों तथा पुराणों में इस विषय में पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। दान की महिमा सभी धर्म-शास्त्रों में वर्णित है। किन्तु कितनी मूल्यवान और उपयोगी वस्तु दान की जाये, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। कभी-कभी ग्रहणकर्ता पूर्ण संतुष्ट नहीं होता, किन्तु पितर जो सूक्ष्म वायु तत्त्व के रूप में पुत्र-पौत्र द्वारा अर्पित पिण्डदान ग्रहण करते हैं, तो वे अति तृप्त होकर ढेरों आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

पिण्डदान और श्राद्ध की सामग्री नदी या जलाशय में विसर्जित करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो पिण्ड की सामग्री गाय को खिला देना चाहिए। प्रथम दिवस जिस द्रव्य से पिण्डदान किया जाये, दस दिन तक उसी का उपयोग किया जाये।

एकादशा और द्वादशा को भी पिण्डदान होता है। पिता की मृत्यु पर पुत्र द्वारा एक वर्ष तक प्रतिमाह पिण्डदान किया जाये और किसी सुयोग्य ब्राह्मण को भोजन कराया जाये। वार्षिक तिथि आने पर विधिवत् वार्षिक श्राद्ध का आयोजन किया जाये और ब्राह्मणों को सुस्वाद भोजन कराया जाये। यह मृत्यु संस्कार की सुनियोजित प्रक्रिया है, जो आज धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। नवयुवक समुदाय का इन क्रियाओं की ओर से विश्वास घटता जा रहा है। किन्तु ये सब क्रियाएँ तथ्यपूर्ण और वैज्ञानिक हैं।

# लोक में मृत्यु और गीत

गुसेश्वर द्वारका गुप्त

जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिसमें एक ओर जन्म और दूसरी ओर मृत्यु का स्वरूप उजागर होता है। मृत्यु का भय हर प्राणी के जीवन में होता है। मानव जीवन के अन्तर्गत चूँकि प्राणी में बोलने, बताने और बुद्धि के द्वारा विचार करने की क्षमता विद्यमान होती है। इसलिए वह एक-दूसरे को मृत्यु के निकट आने पर ढाँढस बँधाता दिखता है। उसे आश्वस्त करता है कि मनुष्य योनि में यदि उसने जन्म लिया है, तो उसकी मृत्यु निश्चित है। क्योंकि यह शरीर नश्वर है। इसलिए देह की क्षण भंगुरता के साथ-साथ मनुष्य के भीतर जो जीवन अथवा जिसे आत्मा कहा जाता है, उसे अमर माना जाता है। गीता में उसे और भी स्पष्ट रूप से समझाया गया है। कहा जाता है कि आत्मा को परमात्मा की प्राप्ति हेतु इस नश्वर देह का त्याग अनिवार्यतः करना होता है। इस देह त्याग के बारे में बुन्देली के लोक कवि ईसुरी ने अपने ढंग से उजागर किया है, वे कहते हैं-

*बखरी रैयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।*
*कच्ची भीत उठी माटी की, छई फूस चारे की।*
*बे बंदेज बड़ी बेबाड़ां, जेई में दस द्वारे की।*
*किबार किबरियां एकउ नैयाँ, बिना कुची तारे की।*
*ईसुर चाय निकारो जिदना, हमें कौन वारे की।*

लोक कवि ने इस चौकड़िया फाग के माध्यम से इस शरीर को बखरी की उपमा देकर उद्घाटित किया है। जिसमें से आत्मा जिसे हम जीव कहते हैं, निकल जाता है। लोक में यदि किसी बुजुर्ग की जब मौत होती है, तो उसके लिए जो अर्थी ( ठठरी) तैयार

की जाती है, वह बाँस की तो होती ही है, पर उसे केले के पत्ते और फूलों से भी उसे सजाया जाता है, विमान जैसा तैयार किया जाता है। फिर गाजे-बाजे के साथ शवयात्रा निकाली जाती है। और उसके ऊपर से न्यौछावर में पैसे, मुरमुरे, बतासा आदि फेंके जाते हैं। कहा जाता है कि उसकी 'अच्छी मौत भई।' इस तरह की मौत व्यक्ति विशेष के लिए आनन्द के दरवाजे खोलती है। यदि वह कनागत (पितृपक्ष) में मृत्यु का वरण करता है, तो कहा जाता है कि उसकी अच्छी सुधर गई, खुलीं किबरियन गयो।

लोक जीवन में सोलह संस्कारों के अन्तर्गत मृत्यु अन्तिम संस्कार होता है। जहाँ जन्म और विवाह संस्कारों में नाते-रिश्तेदारों और गाँव-घर तथा आसपास के पड़ौसियों को निमंत्रण देने की परम्परा का निर्वहन किया जाता है, वहीं मृत्यु संस्कार के अन्तर्गत लोग-बाग 'फलाने' की मृत्यु हो गई, सुनकर बिना बुलाये ही अधिक से अधिक संख्या में एकत्रित हो जाते हैं। लोक विश्वास है कि मृत्यु संस्कार में सम्मिलित होना एक पुण्य का काम है।

अंत्येष्टि संस्कार के तहत शव को बाँस की बनाई हुईअर्थी पर रखा जाता है और फिर अर्थी उठाकर चार व्यक्ति कंधा देकर श्मशान तक ले जाते हैं। रास्ते में और घर में रीति-रिवाजों के अनुसार क्रियाकर्म किये जाते हैं, जिसमें पिण्डदान विशेष रूप से किया जाता है। राह चलते श्मशान के स्थान तक पहुँचने के पूर्व भी स्थान विशेष पर अर्थी रखी जाती है और वहाँ पर क्रियाकर्म किये जाते हैं। तत्पश्चात् श्मशान घाट पर पहुँचकर, जहाँ लकड़ी की चिता बनाई जाती है, उस चिता पर अर्थी से उठाकर शव को रखा जाता है और फिर अन्तिम क्रियाओं की रस्में करते हुए दाह दी जाती है। लोक प्रचलित परम्पराओं के साथ ही जब चिता जलने लगती है, तब श्मशान में आये हुए लोग उसकी परिक्रमा करते हैं तथा तुलसी या चंदन की छोटी लकड़ियाँ अग्नि में डालते हुए प्रणाम करते हैं। यह क्रिया चिता में लकड़ी देने के रूप में पुण्य कार्य मानी जाती है। श्मशान से लौटने पर जिस घर में मृत्यु होती है, उसके बाहर नीम की पत्ती चबाई जाती है।

दाह देने के दिन से शुद्धता होने तक घर में सूतक रहता है तथा उस घर में बघार नहीं लगाया जाता और न ही भोजन में हल्दी का उपयोग किया जाता है। कढ़ाही भी चूल्हे पर नहीं चढ़ाई जाती। बुन्देलखण्ड में पहले दिन तो गकरिया और उड़द की छिलके वाली दाल बनती है, जिसका 'गई हुई आत्मा' को भोग लगाया जाता है। गाय के लिए गो-ग्रास अलग निकाल कर रखा जाता है। शाम को रोज दीपक रखा जाता है। शुद्धता के पहले फूल चुने जाते हैं, तत्पश्चात् सिराये जाते हैं। यह कार्य स्थान विशेष नदी या तालाब आदि में किया जाता है। घर, कपड़े और शरीर को शुद्ध करने पर सूतक समाप्त होती है।

शुद्धताई हो जाने पर घर में चने की दाल, बिना पकौड़ी डाली हुई सादी कढ़ी और बरा बनाये जाते हैं। मृतक के लिए पनवारे में पूरा भोजन जो तैयार किया गया होता है, उसे मरण स्थल पर रखते हैं, फिर वह गाय को खिला दिया जाता है। नाते-रिश्तेदारों और समाज के लोगों के साथ उस घर के लोग मंदिर में दर्शन हेतु जाते हैं, पगड़ी रस्म होती है। तेरह दिन बाद तेरहवीं तथा वर्षी की भी करने की परम्परा लोक में की जाती है। पंडितों को भोजन कराकर दान दिया जाता है। तत्पश्चात् समाज को तथा सगे-सम्बन्धियों को भोजन कराया जाता है।

लोक धारणा है कि आत्मा शरीर से अलग होती है, तो कुछ दिनों तक वह अपने घर के भीतर या आसपास ही विचरण करती रहती है। यदि उसे विधि-विधान के अनुसार विदा नहीं किया जाता तो वह दूसरे योनि में जन्म लेती है। लोक प्रचलित रीति के अनुसार एक थाली में राख बिछा दी जाती है और उसे स्थान विशेष पर रख दिया जाता है। रात के सुनसान में उस राख पर कुछ चिन्ह बनते हैं, इससे योनि विशेष का यह अनुमान लगा लिया जाता है कि व्यक्ति का जन्म किस योनि में होगा। मृत्यु की क्रियाओं के तहत लोक में पानी से भरकर डबुलियाँ, दतौन जहाँ रखी जाती है, वहीं मृत्यु के पूर्व उस व्यक्ति के मुख में गंगाजल तुलसी पत्ता डाले जाते हैं। वैतरिणी पार करने के लिए दान स्वरूप गाय ब्राह्मण को उसके हाथ से दिलवाई जाती है। लोक विश्वास है कि जीव उस गाय की पूँछ पकड़कर वैतरिणी पार हो जायेगा।

वैदिक काल में अंत्येष्टि क्रियाओं के कुछ विधान बने थे, फिर सूत्रकाल के समय गुह्यसूत्रों के अन्तर्गत इस संस्कार का वर्णन विधि-विधान और एक क्रमबद्ध व्यवस्था को रखा गया। मध्ययुग तक आते-आते लोक संस्कारों में मजबूती आई और उसका पालन भी सख्ती से होने लगा। प्रेम मंजरी नामक पुस्तक

में मरण के उपरांत की विधिवत क्रियाएँ लिखी हैं। दस दिन तक दशागात नाम के श्राद्ध होते हैं। फिर अस्थि संचयन, गंगा में उनका प्रवाहित करना आदि होता है। एकादशा को 16 श्राद्ध 12वें दिन सपिण्डीकरण और तेरहवें दिन शांति तथा घट दानादि एवं ब्राह्मण भोजन कराये जाते हैं। मरणोत्तर संस्कार का विधि-विधान दिवंगत आत्मा की शान्ति और उसे सद्गति प्रदान करने के लिए ही होता है। मृतात्मा के सद्गुणों की प्रशंसा कर अपनाये हुए उसके श्रेष्ठ कार्यों को पूर्ण करके ही मृतात्मा को सच्ची शान्ति या श्रद्धांजलि प्रदान की जाती है।

बोधायन के अनुसार जन्म के बाद संस्कारों द्वारा मनुष्य इस लोक को जीतता है, जबकि मृत्यु के बाद किये जाने वाले संस्कारों द्वारा परलोक को जीतता है।

हिन्दू संस्कारों में सोलह संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। इन सोलह संस्कारों में अन्तिम संस्कार होता है- मृत्यु। यह संस्कार दुनिया की सभी जातियों में रीति-रिवाजों और प्रथाओं के अनुसार होता है। मृत्यु के इस संस्कार के समय लोक में उससे जुड़े हुए गीतों के गायन की भी परम्परा है। हिन्दी साहित्य के वृहद इतिहास में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं कि मृत्युगीत प्रधानतया दो प्रकार के पाये जाते हैं। एक में तो मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है और दूसरे प्रकार के गीतों में उसकी मृत्यु से उत्पन्न दु:खों का उल्लेख। यदि कोई बच्चा असमय ही काल-कवलित हो गया तो उसकी सुन्दरता, भोलापन तथा सरलता का वर्णन इन गीतों का विषय होगा। यदि परिवार के किसी धन कमाने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो गई तो उसके निधन से परिवार की होने वाली आर्थिक दुर्दशा का चित्रण इन गीतों में मिलेगा।

मृत्यु गीतों का उल्लेख वेदों में भी मिलता है। ऋग्वेद की ऋचाओं के अनुसार प्रेत की आत्मा किस मार्ग से स्वर्ग को जायेगी, उसकी रक्षा के लिए कौन रक्षक के रूप में जायेगा... आदि... ऋग्वेद के अनुसार -

*प्रेहि-प्रेहि पथिभि: पुण्योभ: यत्रान: पूर्वे पितर: परेयु:।*
*उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।।*

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में मृत्यु गीत अपनी पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति पाते हैं। कुमारसंभवम् में कामदेव के भस्म हो जाने पर रति विलाप का जो चित्र उभरता है, वह पत्थर हृदय को भी पिघला देने की क्षमता रखता है। रति के भावों का अवलोकन करें -

*मदनेन विना कृपा रति: क्षण मात्रं किल जीवतीति मे।*
*वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण त्वामनुयामि यद्यपि।।*

आगे वे करुण वंदन का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करते हैं-

*अत्र सा पुनरेव विह्वला वसुधा लिङ्गन धूसरस्तनी।*
*विलाप विकीर्ण मूर्धजा समुद: खामिव कुर्वती स्थलीम्।।*

इसी प्रकार से कालिदास जी इन्दुमती की अकाल मृत्यु पर अज के माध्यम से शोक को प्रस्तुत करते हैं-

*गृहिणी सचिव: सखी मित्र: प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।*
*करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किन्नमे हृतम्।।*

महाकवि बाण ने भी हर्षचरित में महाराज हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री के पति की मृत्यु पर शोकगीत गायन का उल्लेख किया है।

लोक साहित्य के अन्तर्गत मृत्युगीतों का उल्लेख वैसे तो कम ही मिलता है, पर फिर भी लोक में अपने आत्मीय की मृत्यु पर हिन्दी प्रदेशों में स्त्रियों द्वारा विछोह का दु:ख उनकी भावना से एकाकार होकर फूटता है। यह दु:ख एक विशेष लय के साथ उसके गुणों का बखान करते हुए उनके हृदय से निकलता है। कातर पीड़ा का रुदन सुनकर सामने वाले की आँखों से बरबस ही आँसुओं की झड़ी लग जाती है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार ब्रज में चतुर्वेदियों में मृत्यु के अवसर पर स्त्रियों द्वारा जो विलाप किया जाता है, वह संगीतात्मक होता है। उसमें एक लय होती है और वह अर्थ से युक्त पाया जाता है। बुन्देलखण्ड में किसी पुरुष के मर जाने पर घर की स्त्रियों में, विशेषकर उसकी पत्नी उसके विशिष्ट गुणों का उल्लेख करती हुई रोती है। उसके रोने में एक लय होती है। वह रोते हुए मृत व्यक्ति के न रहने से उत्पन्न होने वाले भावी दु:खों का उल्लेख करती है। उसके द्वारा किये गये विशिष्ट कार्यों को उद्घाटित करती है। यदि मृत व्यक्ति घर-गृहस्थी संभालने वाला अथवा पैसे कमाने वाला हुआ तो उसके दु:ख की मात्रा और रुदन अधिक तीव्र हो जाता है। यह विलाप

हृदय द्रावक होता है। बुजुर्ग, बड़े-बूढ़े की मृत्यु पर बाजे-गाजे के साथ शव यात्रा निकलती है, इसमें भजन वाद्य यंत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनमें विशेषकर 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम' की धुन सुनने मिलती है। अर्थी के साथ चलने वाले समुदाय द्वारा भी 'राम नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है' को एक विशेष लय के साथ राह चलते हुए बोला जाता है। यह घर से शव को उठाते हुए प्रारम्भ होता है, जो श्मशान घाट तक लगातार चलता रहता है। शव यात्रा में सबसे आगे बाजे वाले चलते हैं। उसके पीछे अर्थी और फिर काली हंडी में कंडे की जलती हुई अग्नि लिए हुए व्यक्ति साथ में और फिर पीछे शव यात्रा में शामिल होने वाले समुदाय के लोग चलते हैं। बुन्देली परम्परा के अनुसार शव की अर्थी के ऊपर मुरमुरे और चिल्हर फेंकने की भी परम्परा है, जो अर्थी ले जाते हुए राह चलते थोड़े-थोड़े अन्तर से निभाई जाती है। रामधुन गायन की विशेषता पूरी उम्र वाले और किसी संत-महात्मा के मृत हो जाने पर सुनने को मिलती है। नारदी भजन और नारदी राई के साथ-साथ कायापरक लोकगीतों के माध्यम से व्यक्ति को आध्यात्म जगत की ओर सजग-सचेत किया जाता है, जिसमें लोक की विशेषता झलकती है। नश्वर शरीर के प्रति मोह का तोड़ दर्शाया जाता है। ये गीत बड़े-बूढ़े रात के समय चौपालों, खेत-खलिहानों और दुगई-दालानों में सुनाते हुए दिखते हैं, पर ये गीत मृत्यु के समय नहीं गाये जाते। बुन्देलखण्ड में मृत्यु गीतों के गायन की परम्परा नहीं है, पर ऐसा सुनने में अवश्य आता है कि बुन्देलखण्ड के कबीरपंथी समाज में इसका प्रचलन है। मृत्यु एक संस्कार है, जिसमें लोक की रीति के अनुसार उसे सम्पन्न किया जाता है।

माड़िया, मुरिया और कोरकू जनजातियों के मृत्यु संस्कारों में जो परम्परा विद्यमान है, उसमें मृत्यु गीतों की प्रस्तुतियाँ अपना विशेष स्थान रखती हैं। बस्तर जिले के जो कि आजकल छत्तीसगढ़ में है, दण्डामी माड़िया आदिवासियों में मृत्यु को बड़ी घटना माना जाता है। माड़िया जनजाति में किसी की मृत्यु हो जाने पर 'महरा' द्वारा घर के बाहर एक स्थान पर बैठकर लगातार ढोल बजाया जाता है, जिसकी आवाज जंगल, घाटियों और पहाड़ियों में गूंजती है। यह आवाज लयहीन बिखरती रहती है। महरा ढोल को सिर्फ एक ओर से लकड़ी द्वारा ठक-ठक-ठक... की ध्वनि के रूप में बजाता है। इसे सुनकर मीलों दूर का माड़िया यह जान जाता है कि अमुक दिशा में किसी की मृत्यु हो गई है, और वह उसे सुनकर बिना किसी के पूछे उस स्थान पर पहुँच जाता है।

माड़िया आदिवासी में 'आना गुंडा' की मृत्यु संस्कार के समय महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बिना उसके घर से शव भी नहीं उठाया जाता। 'आना गुंडा' के आने के बाद ही शव को श्मशान में ले जाया जाता है। श्मशान ले जाते समय सबसे आगे ढोल बजाता हुआ महरा चलता है। उसके पीछे अर्थी, अर्थी के पीछे 'आना गुंडा' और आना गुंडा के पीछे समुदाय। बीजापुर क्षेत्र में 'अड़तुड़' नामक व्यक्ति होता है, जो 'आना गुंडा' से मिलती-जुलती मृत्यु संस्कार की रस्म को सम्पन्न कराने की भूमिका निभाता है। यह मुख्य रूप से मृतक परिवार के घर पर ढोल बजाता है और 'आना पाटा' नामक मृत्यु गीत गाता है। 'आना पाटा' नामक यह गीत मुरियों में भी मृत्यु के समय गाया जाता है।

मुरिया जाति में मृत शरीर को दफनाने की प्रथा है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी के मृत शरीर को दफनाया जाता है। युवा काल तक यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तो सिर्फ शोक मनाया जाता है। किन्तु सयाने आदमी की मृत्यु होती है, तो शोक कम करने के लिए गीत गाये जाते हैं। घर के बाहर लगातार डोल पाटा (मृत्युगीत) नामक गीत गाया जाता है। यह नृत्य गीत है। इसमें बच्चों से लेकर बूढ़े तक कोई भी भाग ले सकते हैं। मृत व्यक्ति के नाना-नानी, बहिन के रिश्ते के लोगों की हिस्सेदारी इस नृत्य-गीत में अच्छी मानी जाती है। डोल पाटा सयाने व्यक्ति की मृत्यु पर ही होता है, अन्य की मृत्यु पर नहीं। दफनाने की जगह को 'मरहानी' कहा जाता है। मरहानी पर चार या पाँच साल के बीच मरे हुए व्यक्तियों की याद में पारम्परिक क्रियायें सम्पन्न होती हैं। उसे 'नहानी' कहा जाता है। इस दिन आस-पास के गाँव के ही नहीं, बल्कि दूर-दराज के रहने वाले सभी रिश्तेदार भी आवश्यक रूप से उपस्थित रहते हैं। और सभी क्रियाओं में भाग लेते हैं। इस दिन मरहानी पर एक छोटा सा बाजार लगता है। बाजार गाँव के लोगों द्वारा लगाया जाता है। मरहानी मनाने वाला परिवार सभी से थोड़ा बहुत खरीदारी करता है। गाँव के लोगों को खाना और शराब दी जाती है। सुबह से शाम तक पुरुष और महिलाएँ गाना गाती रहती हैं। गाने में अक्सर प्रौढ़ वर्ग ही भाग लेता है। कारण कि ये गीत काफी लम्बे होते हैं, जो अनुभव और

धैर्य की माँग करते हैं। पुरुषों द्वारा गाया जाने वाला गीत 'घोटुल पाटा' और महिलाओं द्वारा गाया जाने वाला गीत 'आना-पाटा' के नाम से जाना जाता है। 'डौल पाटा' मृत्यु पर गाया जाने वाला गीत है, बावजूद इसके यह मृत्यु गीत अथवा शोक गीत नहीं है। वरन् यह उक्ति वैचित्र्य से परिपूर्ण गीत है। इसमें प्रत्युत्पन्मति का होना आवश्यक है। इसे साधारण शब्दों में बुझौअल कहा जा सकता है। इस काव्यमय (लिरिकल) बुझौअल से मुरिया की मानसिक स्थिति की जानकारी बहुत हद तक हमें प्राप्त हो सकती है। 'डौल पाटा' सवाल-जवाब की शैली में गाया जाने वाला लम्बा गीत है, जो कई घण्टों लगातार चलता रहता है। इसके शब्द मानसिक शोक और उलझनों को दूर करने के साथ आल्हादित तो करते ही हैं, साथ ही परिवेश की गंभीर किन्तु सहज शिक्षा भी देते हैं। 'डौल पाटा' अनुभव प्रधान मनोरंजन है। यह काव्यमय अनुभव परम्पराओं की उचित जानकारी के साथ विसंगतियों को दूर भी करता है। उनकी जानकारी के अनुसार इस नृत्य गीत में मृत व्यक्ति के मामा के रिश्तेदारों से सम्बन्धित व्यक्ति का शामिल होना थोड़ा अच्छा और मृतक व्यक्ति के लिए सम्मान योग्य माना जाता है। नृत्य गीत में शामिल व्यक्ति बीच-बीच में आते-जाते रहते हैं। यह बन्धन नहीं होता कि जो एक बार हिस्सा ले चुका है, वह अंत तक उसमें शामिल रहेगा ही। डोल पाटा में सम्मिलित व्यक्ति मृत व्यक्ति के घर से मुर्गा बगैरह उठाकर अपनी कमर में बाँध लेता है। वह शराब की बोतल पकड़े रहता है। इस मुर्गे का उपयोग बाद में भोजन के रूप में किया जाता है। 'डोल पाटा' डोल नामक वाद्य के साथ गाया जाता है। यह एक ही तरह के डप-डप-डप की आवाज के साथ बजाया जाता है। बीच-बीच में तोड़ी नामक वाद्य मुँह से फूँककर बजाया जाता है। गोटुल पाटा (घोटुल पाटा) के बारे में उनका कहना है कि यह आख्यानपरक गीतिकाव्य है। इसमें मुख्यत: राजा जोलोंग साय की कथा है। राजा जोलोंग साय के साथ कई उपकथाएँ जुड़ती चली जाती हैं। गोटुल पाटा अपने मिथक और परम्पराओं के कारण काफी महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रकृति की बहुत सारी चीजों की उत्पत्ति और उनका इतिहास भी मिलता है। यह कथा आठ-दस घण्टे तक चलती है। गोटुल पाटा के बीच-बीच में कथा तत्त्व को गद्य में भी गायक द्वारा बतलाया जाता है। गोटुल पाटा गाने वाले संख्या में थोड़े लोग ही हैं। बावजूद इसके प्रत्येक गाँव में कोई न कोई मिल ही जाता है। गोटुल पाटा नहानी के वक्त नहानी के स्थान पर ही गाया जाता है। गाने के बीच में सल्फी और शराब लगातार पी जाती है। गोटुल पाटा में बुजुर्गों की ही हिस्सेदारी होती है। साथ में बाँस की एक खपाची होती है, जिसे कांधे पर ठोक-ठोक कर गायक गोटुल पाटा के साथ बजाते हैं। गोटुल पाटा के माध्यम से मुरिया के आदिम किन्तु बेहद निजी और आत्मीय संसार से साक्षात्कार होता है। यहाँ उनकी मान्यताओं-विश्वासों और परम्पराओं के दर्शन के साथ अनेक जिज्ञासाओं के सहज हल प्राप्त होते हैं। कोरकुओं में मृत्युगीत गाने की प्रथा है। कोरकू बूढ़ी महिलाएँ मृतक के तीसरे दिन या दसवें दिन मृत्युगीत गाती हैं। मृत्युगीतों को गाथा गीत, फूल जगनी या सिडोली गीत कहते हैं। गाथा गीतों में मृतक द्वारा किये गये कार्यों का बखान और उसकी प्रिय वस्तुओं को स्मृति-चिन्ह के रूप में गाया जाता है।

# बुंदेलखण्ड में मृत्यु संस्कार

डॉ. बहादुर सिंह परमार

नर्मदा–यमुना और चम्बल–टोंस सरिताओं के मध्य स्थित बुंदेलखण्ड अंचल में संस्कारों की अपनी विशिष्ट परम्परा है, जो अन्य अंचलों से सामान्यीकृत होने के साथ कुछ संदर्भों में विशिष्ट भी है। यहाँ पुंसवन से लेकर मृत्यु तक के संस्कार अपनी अनुष्ठानिकता के साथ निभाये जाते हैं। यह शाश्वत सत्य है कि जो जन्मा है, उसे मृत्यु वरण अनिवार्यत: करेगी। मृत्यु अनिवार्य है। इसे स्वीकार करना ही पड़ता है। शरीर को त्यागना ही पड़ता है। शरीर स्थायी नहीं है। जिस प्रकार वृक्ष में पत्ता अपनी आयु पूर्ण करके पककर नीचे गिर जाता है और वह दुबारा डाल पर नहीं लग सकता, इसी तरह मानव शरीर मृत्यु उपरांत जला दिया जाता है, वह मिट्टी में समाहित हो जाता है। बुंदेली के प्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी इन भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह तन भरोसे लायक नहीं है, पता नहीं कब मृत्यु इसे समाप्त कर दे। वह कहते हैं –

*तन कौ तनक भरोसौ नइयाँ, राखें लाज गुसइयाँ।*
*तरुवर पत्र गिरत धरनी में, फिर न लगत डरइयाँ।।*
*जर–बर खाक मिलें मांटी में, फिर न चुनें चिरइयाँ।*
*जा नर देही काम न आवै, पशु की बनै पनइयाँ।।*

मृत्यु उपरांत मानव शरीर किसी काम का नहीं रहता है। मृत्यु से मानव जीवन लीला का समापन होता है। मृत्यु होने के पूर्व परिजनों या उपस्थितों को आभास हो जाता है कि सम्बन्धी का अंतिम समय आ गया है। इसलिए मृत्यु के पूर्व मनुष्य के मुँह में गंगाजल

डालने तथा गौ दान कराने की परम्परा बुंदेलखण्ड में पाई जाती है। साथ में गीता का पाठ सुनाने की प्रथा भी है। इनके सम्बन्ध में लोक विश्वास है कि गंगाजल पान से पापों से मुक्ति तथा प्राण त्यागने में कष्ट नहीं होता तथा दान कराई गई गौ ऊपर स्वर्ग लोक में भवसागर पार कराने में सहयोग करती है। दान की गई गाय की पूँछ पकड़कर जीव भवसागर पार कर जाता है। गीता पाठ के पीछे सांसारिक बंधनों के मोह त्यागने की शिक्षा प्रदत्त की जाती है। मृत्यु उपरांत परिजनों द्वारा रुदन-विलाप के साथ मृत देह को धरती पर सर्वप्रथम लिटाया जाता है। तदुपरांत अंतिम संस्कार की व्यवस्था की जाती है। शव यात्रा के समय ठठरी को परिवार के निकट सम्बन्धी अपने कंधों पर लेकर चलते हैं। बीच-बीच में लोग बदल-बदलकर शव को अपने कंधों पर लेकर चलते है। इसे कंधा देना कहा जाता है। ग्राम सीमा पर स्थित पीपल के वृक्ष के नीचे शव को रखकर पिंडदान करने की परम्परा है। इसके पीछे की मान्यता यह है कि पीपल में ब्रह्मदेव का वास होता है, जो मुक्ति प्रदान करते हैं। इस लोक विश्वास के पीछे यह कारण भी हो सकता है कि पीपल सर्वाधिक प्राणवायु प्रदान करने वाला वृक्ष है, यदि प्राणवायु पाकर मृतक जीवित हो सकता है, तो उसको यह अंतिम अवसर प्रदत्त किया जाता है। बुंदेलखण्ड अंचल में शवयात्रा के समय सभी शामिल लोगों के हाथ में लकड़ी, सूखी तुलसी का झाड़ या चंदन अवश्य रहता है। चिता बनाने के पहले उस स्थल को साफ करके गोबर से लीपा जाता है। चिता में मोटी लकड़ी नीचे तथा उसी क्रम में पतली लकड़ी ऊपर लगाई है। चिता के बगल में आड़िया गाड़ने की परम्परा भी है। इसके बाद शव के वस्त्र, आभूषण तथा अन्य धारण की गई वस्तुएँ निकालकर उसे चिता पर लिटाया जाता है। चिता पर पिंडदान एवं कपाल क्रिया सम्पन्न करवाने के बाद चिता को मुखाग्नि दिलाई जाती है। मुखाग्नि के बाद लोग चिता की परिक्रमा करते हुए पंच लकड़ियाँ देते हैं। इसमें तुलसी की सूखी लकड़ी या चंदन का टुकड़ा चिता को समर्पित कर हाथ जोड़कर अंतिम विदाई दी जाती है। दाह-क्रिया में शुद्ध घी, रार तथा कपूर आदि ज्वलनशील पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जिससे चिता शीघ्र अग्नि पकड़ लेती है। अंतिम संस्कार करके घर लौटने के पूर्व तालाब, नदी या अन्य जलस्रोत पर स्नान करने की परम्परा है। पुरुष जब अंतिम क्रिया करके घर पहुँच जाते हैं, तब घर तथा पड़ोस व उपस्थित महिलाएँ स्नान करने जाती हैं। जिसके घर दु:खद मृत्यु का वज्रपात होता है, उस परिवार में उस दिन भोजन नहीं पकाया जाता है। पड़ोसी तथा मित्र मृतक के यहाँ भोजन पहुँचाने का दायित्व निभाते हैं, जो सामूहिक रूप से दु:ख सहन करने का उत्कृष्ट उदाहरण है। मृत्यु के दिन को बुंदेलखण्ड अंचल में केवल काली उड़द की दाल बनाने की परम्परा भी देखने को मिलती है। मृत्यु के बाद पंडित द्वारा बताए गए अनुसार निश्चित तिथि को शुद्धता की जाती है। इस दिन घर तथा वंश के लोग मुण्डन करवाते हैं। जिस स्थान पर घर में मृतक को अंतिम समय लिटाया गया था, उस स्थान को गोबर से लीपकर लगातार त्रयोदशी तक दीप जलाया जाता है। श्मशान में भी अंतिम संस्कार के स्थान पर दीप जलाने की प्रथा है। बुंदेलखण्ड के कुछ भाग में दस दिन बाद तथा कुछ भाग में तीन दिन बाद शुद्धता करने की परम्परा है। शुद्धता के पहले पंडित के द्वारा बताए मुहूर्त के अनुसार परिजनों द्वारा फूल उठाये जाते हैं। इस अनुष्ठान में परिजन श्मशान जाकर अस्थियों के बचे अंशों का संचयन करके एक कोरे करवा (मिट्टी के पात्र) में रखते हैं। इसे फूल उठाना कहा जाता है। इन अस्थियों को चुनने के उपरांत बची हुई राख (भस्म) को किसी सरिता या जलस्रोत में प्रवाहित किया जाता है तथा दाह-स्थल को गोबर से लीपकर नमक आदि बिखरा दिया जाता है। जिससे गायें वहाँ आकर उस नमक को खा लेती हैं। इसी दाह स्थल पर लकड़ी की त्रिपदी पर पानी की गगरी में नीचे पेंदी में छेदकर रखा जाता है, जिससे शीतलता प्रदान की जाती है। अस्थियों का संचयन करके उसे पीपल के वृक्ष पर या गौशाला में विश्राम कराया जाता है। इसके बाद उन अस्थियों को पुत्र और परिजन प्रयाग स्थित त्रिवेणी संगम में ले जाकर विसर्जित करते हैं। जब इन अस्थियों को प्रयाग हेतु प्रस्थान किया जाता है तो इसके लिए कपड़े की एक थैली सिलवाई जाती है, उसमें अस्थियाँ तथा मुद्राएँ आदि डालकर गले में लटकाकर अंतिम क्रिया करने वाला व्यक्ति ही लेकर जाता है। इस अस्थि प्रस्थान के अवसर पर सभी निकट सम्बन्धी, पुरा-पड़ोसी, मित्र तथा रिश्तेदार अंतिम विदाई देते हैं। विदाई हेतु सभी लोग गाँव/नगर की सीमा तक पैदल आते हैं। प्रयाग में क्रिया-कर्म करवाने वाले पंडा पिंडदान के साथ अन्य दान करवाकर अस्थि विसर्जित कराते हैं। फूल (अस्थि) विसर्जित

करने के उपरांत परिजन गंगाजल व अन्य पूजा सामग्री प्रयाग से लाते हैं, जिनका उपयोग त्रयोदशी के अवसर पर किया जाता है।

मृत्यु उपरांत दाहक्रिया के तेरहवें दिन त्रयोदशी (तेरहवीं) करने की परम्परा बुंदेलखण्ड में है। इस दिन पिंडदान करवाकर गंगाजली पूजन किया जाता है। महिलाओं की त्रयोदशी ग्यारह दिन में करने का रिवाज है। इस दिन तेरह ब्राह्मणों का भोजन पहले करवाकर गीता, आसनी, गिलास तथा वस्त्र आदि सामर्थ्य अनुसार दान में दिया जाता है। इसी दिन क्रियाकर्म करवाने वाले ब्राह्मण को पूरी दैनिक उपयोग की वस्तुएँ दान में दी जाती हैं। इसके बाद रिश्तेदारों, मित्रों तथा पड़ोसियों का भोज करवाया जाता है। त्रयोदशी के बाद क्वाँर माह के कृष्ण पक्ष में बरसी/श्राद्ध करने की परम्परा बुंदेलखण्ड में प्रचलित है। इसमें बरसी व श्राद्ध उसी तिथि को की जाती है, जिस तिथि को मृत्यु हुई थी। उदाहरणार्थ यदि किसी की मृत्यु चैत्र की कृष्ण या शुक्ल पक्ष की षष्ठी को होती है तो उस मृत व्यक्ति का श्राद्ध/बरसी क्वाँर कृष्ण पक्ष की षष्ठी को ही होगी। इसमें भी पिंडदान के साथ त्रयोदशी वाली पूरी-परम्परा का निर्वाह किया जाता है। इस अनुष्ठान को बुंदेलखण्ड में पितर मिलाना कहा जाता है।

# दतिया के मृत्यु-गीत

डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

जन्म और मृत्यु जीवन के दो शाश्वत छोर हैं। बुन्देलखण्ड के दतिया जनपद के प्रसिद्ध दार्शनिक चिंतक रामरतन तिवारी ने मृत्यु के विषय में कुछ दोहे लिखे हैं, जो अभी तक अप्रकाशित हैं। उदाहरण–

*मृत्यु द्वार है मुक्ति का, छूटे जग के फन्द।*
*पंजर तज पंछी चला, उड़ने को स्वछन्द।।*

उनके अनुसार मृत्यु हेय नहीं अनिवार्य है और यदि मृत्यु न होती, तो जीवन घोर नरक बन जाता। उनका एक दूसरा दोहा देखिये–

*थकित देह को ज्यों मिले, निद्रा में आराम।*
*चिर निद्रा की गोद में, मिलै चरम विश्राम।।*

अर्थात् मृत्यु थकी हुई देह को विश्राम देने के लिये अनिवार्य नियति के रूप में है। उनके अनुसार आत्मा कभी नहीं मरती है, देह भर जल जाती या मिट्टी में मिल जाती है, एक और उदाहरण–

*देह जली छूटा जगत, टूटे सब सम्बन्ध।*
*मिटा नहीं जो अमर है,आत्म भाव निर्बन्ध।।*

श्री तिवारीजी के ये दोहे, लोक की दार्शनिक व्याख्या के रूप में हैं। दतिया जनपद में मृत्यु के बाद, श्मशान की ओर जाते समय विमान के साथ चलने वाले लोग सामूहिक रूप से बोलते जाते हैं–

*राम नाम सत्य है,*
*और सत्य बोलो तो मुक्ति है।*
*या सत्य बोलो तो गति है।*

अर्थात् दुनिया में राम का नाम ही सत्य है और सत्य मार्ग पर चलने पर मृत्यु के बाद शरीर को मुक्ति का द्वार मिल जाता है, या उसे अपनी गति अर्थात् जीवन के द्वन्दों से मुक्ति मिल जाती है।

भगवद्गीता में जीवन को कर्म प्रधान रखने की शिक्षा दी गई है और मृत्यु को शरीर का अन्त माना गया है, आत्मा का अन्त नहीं। गीता के अनुसार आत्मा तो अजर-अमर है। अतः मृत्यु शोक का कारण नहीं होती, वह तो प्रेमानन्द का कारण होती है। गीता के एक श्लोक में कहा गया है-

*न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।*
*अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणोन हत्यते हन्यमाने शरीरे।।*[1]

गीता भारतीय संस्कृति का एक सर्वमान्य ग्रन्थ है। कर्मवाद में विश्वास करने वाले, मृत्यु की कल्पना से कभी भयभीत नहीं होते। अथर्ववेद के पन्द्रहवें सूक्त में प्राणों को मृत्यु से भयभीत न रहने का उपदेश दिया गया है। जिस प्रकार सत्य-असत्य भयभीत नहीं होते और भूत-भविष्य भयभीत नहीं होते, उसी प्रकार प्राणों को मृत्यु की शंका कभी नहीं करनी चाहिये। उदाहरण-

*यथा सत्यं चानृतं न बिभीतो न रिष्यतः*
*एदा मे प्राण मा विभेः।।5।।*

*यथा भूतं च भव्यं बिभीतो न रिष्यतः*
*एवा मे प्राण मा विभेः।।6।।*[2]

## निर्गुण परम्परा में मृत्यु गान

दतिया जनपद के छोटी बड़ोनी कस्बे में कबीर पंथियों का बड़ा पुराना स्थान है। उल्लेखनीय है कि बड़ौनी कस्बे का इतिहास प्राचीनकाल से बौद्ध संस्कृति, नाथ सम्प्रदाय एवं जैन संस्कृति से जुड़ा रहा था। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के भागों में बड़ौनी से पुराना कबीर पंथियों का कोई स्थान नहीं है। यहाँ के वर्तमान संत प्रेमसाहब एवं भगवत साहब को अपने पूर्व की छः पीढ़ियों के संतों की जानकारी है, परन्तु उनका मानना है कि यहाँ कबीर पंथियों का वास करीब 400 सालों से है। कबीर परम्परा में मृत्यु के बाद संत को समाधिस्थ करते समय कबीर परम्परा के गीत-भजन वाद्य यंत्रों के साथ गाये जाते हैं, अन्य गीतों के साथ बुन्देली भावों की बानगी लिये एक गीत इस प्रकार है-

*जल्दी करलो सहेली सिंगार, लुआवे आ गये साजन रे।*
*घरी पिया सोदन की आ गई, घरी चूक न पाई।*
*मानत नई पिया समझाई, अपनी ठान ठनाई।*
*उनसे झगड़ा में नइयां कौनउ सार, लुआवे आ गये साजन रे।*

× × × ×

*ओ प्यारे पंछी जिस दिन तू उड़ जायेगा।*
*तेरा प्यारा पिजड़ा पीछे यहां जलाया जायेगा।*
*जिस पिजड़े को पाला पोसा सदा सभी ने प्यार से।*
*सब खिलाया सब पिलाया हरदम रखा संभाल के।*
*तेरे होते-होते ही इसे नीचे सुलाया जायेगा।*
*देखो बिना तरसती आंखें रहना चाहती साथ में।*
*तेरे बिना न खाती खाना तू ही था हर बात में।*
*तेरे पूछे बिना ही सारा काम चलाया जायेगा।*
*रोयेंगे ये थोड़े दिन तक भूलेंगे फिर बाद में।*
*ज्यादा से ज्यादा वे इतना कुछ करवा देंगे याद में।*
*हलुआ पूरी खाकर तेरा श्रद्धांजलि मनाया जायेगा।*
*तुझे पता था क्या होगा फिर भी क्यों नहीं सोचता।*
*मूरख वो भी दिन आयेगा पड़ा रहेगा सोचता।*
*जनम अमोलक पाकर हीरा पीछे से पछतायेगा।*

× × × ×

*आशाओं का हुआ है खातमा दिल की तमन्ना धरी रही।*
*जब परदेशी हुआ रवाना प्यारी काया पड़ी रही।*
*एक पंडितजी अपने घर में गणित हिसाब लगाते थे।*
*होनहार तेजी मद्दी का सभी हाल बतलाते थे।*
*आया समय चला गया ज्योतिष घर में पत्री धरी रही।*
*एक मुनीमजी अपने घर में सारा कागज मीड़ रहे।*
*कटा जभी वारंट मौत का कलम कान पर धरी रही।*
*एक वकील अपने दफतर में सोच रहा था अपने मन।*
*फला दफा में बहस करूँगा पोन्ट हमारा बड़ा प्रबल।*
*लगा तमाचा काल बली का कल की पेशी धरी रही।*
*एक राजा का इलाज करने डाक्टर साहब तैयार हुये।*
*दवा बक्स औजार हाथ में मोटर कार सवार हुये।*
*आया समय उलट गई गाड़ी दवा बक्स में धरी रही।*
*धर्मवीर क्या वरनौ कितना इस दुनिया की अजब गति।*
*कोई आता कोई जाता घटे बड़े नहीं पाव रती।*

*नेक करन वाले की नेकी इस दुनियां में धरी रही।*[3]

× × × ×

*मानत नहिं मन मोरा साधो, मानत नहिं मन मोरा।*
*बार-बार मैं कहि समुझावों, जग में जीवन थोरा।*
*या काया का गर्व न कीजै, क्या सांवर क्या गोरा।*
*बिना भक्ति तन काम न आबै, कोटि सुगन्ध चभोरा।*
*या माया लखि के जनि भूलो, क्या हाथी क्या घोरा।*
*जोरि-जोरि धन बहुत बिगूचे, लाखन कोटि करोरा।*
*दुविधा दुर्गति औ चतुराई, जनम गयौ नर बौरा।*
*अजहूं आनि मिलो सत्संगति, सतगुरु मान निहोरा।*
*लेई उठाइ परत भुई गिरि-गिरि, ज्यों बालक बिनु कोरा।*
*कहैं कबीर चाण चित राखी, ज्यों सुई बिच डोरा।*[4]

निर्गुण विचारधारा में लोक के माध्यम से जीवन की नग्न सच्चाई सामने आती है। हम कितना भी अपने भौतिक संसार के अप्राकृतिक गर्व को सामने प्रदर्शित कर उसे अपना कितने ही बड़े सम्मान का प्रतीक मानें, पर सच्चाई में जीवन का प्राकृतिक स्वरूप ही सामने आता है, सत्य अटल रहता है और मृत्यु जीवन का सत्यानन्द है।

**अन्य संदर्भ**

गांधीवादी युग के प्रसिद्ध चिंतक- विचारक, लेखक काका कालेकर ने अपने 'मृत्यु का उत्सव' निबन्ध में लिखा है कि 'दीवाली हमें सिखाती है कि मौत का रोना मत रोओ, मृत्यु में ही नवयौवन प्रदान करने की, नवजीवन देने की शक्ति है, दूसरों में नहीं। दीवाली का त्योहार मौत का उत्सव है, मृत्यु का अभिनंदन है, मृत्यु पर श्रद्धा है, निराशा से उत्पन्न होने वाली आशा का स्वागत है, रुद्र ही शिव हैं, मृत्यु का दूसरा नाम ही जीवन है।'

मृत्यु की नियति को जीवन की अनिवार्यता के रूप में बताने वाला एक प्रसंग, सातवीं सदी का राजा हर्षवर्धन के समय का है। जब युद्ध में हर्षवर्धन की बहन राजश्री के पति ग्रहवर्मा का निधन हो जाता है, तो वह विन्ध्यक्षेत्र के बुन्देलखन्ड के गहन वन की ओर भाग जाती है। उस समय हर्षवर्धन अपनी बहन को खोजता हुआ बुन्देलखण्ड के वनक्षेत्र में स्थित प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र के आश्रम में पहुँचता है। दिवाकर मित्र के सहयोग से हर्ष अपनी बहन के पास उस समय पहुँचता है, जब वह अपने शरीर को अग्नि को समर्पित करने की पूरी तैयारी कर चुकी थी। दिवाकर मित्र ने उस समय राजश्री से कहा-आयुष्मति, शोक पिशाच का ही दूसरा नाम है, वह कभी न बुझने वाली अग्नि है, प्राणों का वियोग न करने वाला यमराज है, कभी न समाप्त होने वाला राज्य क्षमा है। यह नींद ऐसी है, जिससे कोई नहीं जागता। --- हे पुण्यवती! पूर्वजन्म की इन स्थितियों को कौन मेंट सकता है। सभी मनुष्यों के लिये रात-दिन, जन्म- जरा - मृत्युरूपी रहट की घड़ियों की लम्बी माला घूम रही है। पंचमहाभूतों के द्वारा जितने मानस व्यवहार हो रहे हैं, वे सब यमराज के विषय अनुशासन से नियन्त्रित होकर विलय को प्राप्त हो जाते हैं।'

उल्लेखनीय है कि बौद्ध-भिक्षु दिवाकर मित्र का आश्रम दतिया की छोटी बड़ौनी के गहन वनों में तत्समय स्थित था। कन्नौज से चंदेरी की ओर जाने वाला राजमार्ग उस समय बड़ौनी के क्षेत्रों से ही होकर निकलता था।[5]

मृत्यु शाश्वत सत्य है, वह अपरिहार्य नियति है, उससे कोई नहीं बच सकता है, इसलिये मृत व्यक्ति के नश्वर शरीर के लिये शोक करना व्यर्थ है। मृत व्यक्ति की आत्मा को सुकून का अनुभव हो, इसके लिये आप आनन्द गीत गायें, यही उसके लिये सच्ची श्रद्धांजलि होगी। कहा भी जाता है-

*हर पल साथ रहती है।*
*पर न किसी को याद रहती है।*
*यह जीवन का सत्य है,*
*जिसे हम मौत कहते हैं।*

---

**संदर्भ**


1. श्रीमद्भगवतगीता ( गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2067) पृ० 25-47
2. आचार्य वेदांत तीर्थ, अथर्ववेद, भाग-1 ( मनोज पब्ली० दिल्ली, 2008 ) पृ० 80-81
3. भगवत साहब बड़ौनी के सौजन्य से प्राप्त।
4. अभिलाषदास, कहत कबीर (कबीर, पारख संस्थान, इलाहाबाद, 2003) पृ० 91
5. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित्- एक सांस्कृतिक अध्ययन (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1953) पृ० 185-200

# होशंगाबाद के मृत्यु गीत

डॉ. हंसा कमलेश

भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति में संस्कारों का अत्याधिक महत्त्व है। संस्कार वह क्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के जीवन का परिष्कार होता है तथा उसे पवित्र व्यवहारों के द्वारा जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जैमिनी पूर्व मीमांसा में कहा गया है– 'संस्कार उस क्रिया का नाम है, जिसके द्वारा कोई पदार्थ अर्थपूर्ण बन जाता है।'

*संस्कारों नाम भवति यस्मिञजाते पदार्थों भवति योग्यः कस्यचिदर्बस्य।*

'वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश' में संस्कार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि संस्कार वह विशेष क्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति में अनेक शारीरिक और विलक्षण गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है। विभिन्न धर्मग्रन्थों में संस्कारों की संख्या अलग–अलग बताई गई है। गौतम धर्मसूत्र चालीस संस्कारों का उल्लेख करते हैं। 'पारस्कर' तथा 'बोधायन' गुह्सूत्र तेरह संस्कारों का उल्लेख करते हैं। मनुस्मृति में भी तेरह संस्कारों का उल्लेख किया गया है। विभिन्न धर्मग्रन्थों, स्मृति ग्रन्थों तथा विचारकों के अनुसार भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों का उल्लेख किया गया है। हिन्दुओं में षोडश संस्कार माने गये हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार लगभग सभी जातियों में किसी न किसी रूप में माने जाते हैं। मृत्यु मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। हमारे देश में प्रत्येक संस्कार में गीत गाने की प्रथा है। यद्यपि मृत्यु के समय गीत गाने की प्रथा कम देखने को मिलती है। मृत्यु के समय गाये जाने वाले गीतों में विषाद और वेदना की गहराई होती है।

ऋग्वेद में मृत व्यक्ति के प्रति शोक प्रकट करने के अनेक सूक्त मिलते हैं। प्रेत की आत्मा किस मार्ग से स्वर्ग जायेगी, उसकी रक्षा को कौन से रक्षक रहेंगे आदि का वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं में बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। मृतात्मा के लिये कहा गया है–

*प्रेहि प्रेहि पथिभिः पुण्योभः यत्रानः पूर्वे पितरः परेयुः।*
*उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरूणं च देवम्।*

– (ऋग्वेद 10/14/7)

रामायण और महाभारत में विशेष व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप के अनेक प्रसंग आये हैं। ऐसे प्रसंगों को मृत्यु गीतों की श्रेणी में रखा जा सकता है। कालिदास ने 'कुमारसंभवम्' में रति का बड़ा हृदयस्पर्शी विलाप कराया है। 'रघुवंश' में महाकवि ने इन्दुमति की अकाल मृत्यु पर राजा अज का जो शोक व्यक्त किया है, वह विश्व साहित्य में अद्वितीय है। उर्दू साहित्य में 'मर्सिया' के रूप में शोक गीत मिलते हैं। 'मर्सिया' काव्य का एक विशिष्ट प्रकार है। बिना गीतों के विलाप किया जाता है। कहीं-कहीं पर मृत व्यक्ति के विविध प्रिय पदार्थों के नाम ले-लेकर विलाप किया जाता है।

*हाय! अंगोछा खूंटी पै टंगौ रहि गयो रे*
*हाय! सब पीछे छोड़ी गयो रे.....*

मृत्यु के पश्चात् तेरहवीं के दिन श्राद्ध किया जाता है। स्त्रियाँ गीत गाती हैं, जिनमें निर्वेद भाव की प्रधानता होती है। कुछ विशेष भजन इस दिन गाये जाते हैं। भोजपुरी में एक गीत है, जिसमें मृत्यु की शोक संवेदना व्याप्त है। स्त्री अपने पति के निधन से दु:खी एवं व्याकुल होकर विलाप कर रही है-

*आइ के मउवतिया गइल बा नियराई।*
*हमरे संइया के करम त गइल फूटि।।*
*फूटी गइल करम परीत भइल खटिया।*
*हमह रोवेनी सिरहान धइके पटिया।।*
*कबहू ना छवले बालम दुबिओ के सटिया।*
*कबहू ना भइल हमरो बालम से संघतिया।।*
*हमरे सइयाँ के करम ल गइले फूटि।*
*एहि बीचे आइ के अम्मु त लिहले लूटि।।*

इसी प्रकार की भावना से युक्त एक अन्य गीत अवधी क्षेत्र में भी गाया जाता है।

*कन्हैया विरोगिन करि गये हमो*
*खंभा की ओट ससुर समझावै।*
*अरे बहुवर नहीं तुम बिटिया हमारि।*
*का समुझाओ ससुर तुम हमको*
*अरे हरी-हरी चुरिया दुलभ भई हमको।*
*घूंघट ओट जेठ समुझावै*
*अरे मैहो नाहिं तुम बिटिया हमारि।*
*का समुझाओ जेठ तुम हमको*
*अरे मोतिन मांग दुलभ भई हमको।*
*गोदहि बैठि देवर समुझावै*
*अरे भाभी नाहिं तुम माता हमारि।*
*का समुझाओ देवर तुम हमको*
*अरे फूलन सेज दुलभ भई हमको*
*माय और बाबू अति समुझावै*
*एक जनम बेटी खेल गमाओ।*
*का समुझाओ माय औ बाबू*
*अरे पिया की छांह दुलभ भई हमको*

होशंगाबाद क्षेत्र में गाये जाने वाले गीत-

*रसे गगन गुफा में अजर जरे*
*बिन दिये तेल बाती*
*जोत सदा उजियार करे.....रसे.....*
*बिन तालाब यहाँ कमल खिला है*
*भौंरा जहाँ गुल जार करे.....रसे.....*
*बिन बगिया यहाँ फूल खिले हैं*
*भौरा वहाँ रसपान करे.....रसे.....*
*बिन बाजा यहाँ झनकार उठे*
*वहां राग रागिनी गान करे*
*रसे गगन गुफा में अजर जरे।*

स्त्रोत - सुनीता गौर, होशंगाबाद

*करूँ विनती दोऊ कर जोरि*
*अरज सुनो राधा सुमि सतगुरू मोरी*
*सत्पुरुष तुम सतगुरू दाता*
*सब जीवों के पितो और माता*
*दया धार अपना कर दीजे*
*काल-जाल से न्यारा कीजे*
*सतयुग त्रेता द्वापर बीता*
*कबहुँ न जानि सबद की रीता*
*कलियुग में सुमि दया विचारो*
*पर घर करके सबद पुकारो*
*जीव काल सुमि जग में आये*

*भव सागर से पार लगाये*
*तीन छोड़ चौथा पद बीता*
*सत्यनाम सतगुरू गति कीना*
*जगमग जोत होत उजियारा*
*गगन सोक पर चन्द्र निहारा*
*शेष सिंहासन छत्र विराजे*
*अनहद शब्द देव धुन बाजे*
*अक्षर निरक्षर अक्षर बारा*
*विनती करे यहाँ दास तुम्हारा*
*करूँ विनती दोऊ कर जोरि*
*लोक अलोक पहुँसुख धामा*
*चरण-शरण सुभि दीज विभामा*
*करूँ विनती दोऊ कर जोरि*

स्त्रोत - सुनीता गौर, होशंगाबाद

*ले-लो ढोलक मंजीरा भजन करो*
*जैसे जंगल में पेड़ उगत है*
*वैसे उगत सरीरा भजन करो*
*ले-लो ढ़ोलक मंजीरा भजन करो*
*जैसे जंगल मे पेड़ बढ़त है*
*वैसे बढ़त सरीरा*
*भजन करो.....*
*जैसे जंगल में पेड़ फूलत है*
*वैसे फूलत शरीरा*
*भजन करो .....*
*जैसे जंगल में पेड़ सूखत है*
*वैसे सूखत सरीरा*
*भजन करो.....*
*जैसे जंगल में पेड़ घुनत है*
*वैसे घुनत सरीरा है*
*भजन करो.....*
*जैसे जंगल में पेड़ जलत है*
*वैसे जलत शरीरा*
*भजन करो.....*
*जैसे जंगल में राख उड़त है*
*वैसा उड़त सरीरा*
*भजन करो.....*

स्त्रोत- सुनीता गौर, होशंगाबाद

*चरणों से अब ना करियो दूर सतगुरू जी मेरे*
*मैं तो जानती माता संग चलेगी*
*माता तो जनम देके दूर सतगुरू जी मेरे .....*
*मैं तो जानती पति संग चलेंगे*
*पति तो कान्धा देके दूर सतगुरू जी मेरे.....*
*मैं तो जानती बेटा संग चलेंगे*
*बेटा तो अग्नि देके दूर सतगुरू जी मेरे.....*
*में तो जानती कुटढ़म्ब संग चलेंगे*
*कुटढ़म्ब तो पंच लकड़ियाँ देके दूर सतगुरू जी मेरे.....*
*मैं तो जानती माया संग चलेगी*
*माया तो ले जाये लुटेरे चोर सतगुरू जी मेरे*

स्त्रोत- सुनीता गौर, होशंगाबाद

*काए के कारण जौ बए और काए के हरे-हरे बांस*
*हरि रे किसन कैसे तिरयओ*
*लाला धरम के कारन जौ बए*
*मरन के काजे हरे-हरे बांस*
*बेटी न ब्याही अपनी*
*मड़हे न लिपयो कन्यादान*
*साजन न झुलमे द्वार*
*हरि रे किसन तिरयओ*
*काए के कारन गऊ दई*
*काए के दीये गऊ दान*
*पार के कीजे गऊ दान*
*तारन के काजे गऊ दान*
*हरि रे किसन कैसे तिरयओ।*

स्त्रोत- रूक्मणि गौर, होशंगाबाद

मृत्यु की भीषणता से आतंकित स्त्री-पुरुषों के शोक उद्‌गार ही मृत्यु गीतों और भजनों के रूप में प्रकट होते हैं। मानवीय संवेदना के रूप में शोक उद्‌गार लोक जीवन में सर्वत्र व्याप्त है, पर गीतों के रूप में इनका अधिक प्रचलन नहीं है।

# बघेलखण्ड में मृत्यु संस्कार

बाबूलाल दाहिया

बघेलखण्ड भूभाग प्राचीनकाल से ही विभिन्न रीति-रिवाजों, परम्पराओं और संस्कृतियों का संगम रहा है। प्रथम संस्कृति तो यहाँ आदिम युग से रहने वाले गोंड, बैगा, कोल आदि जनजातियों की रही है और दूसरी अन्य क्षेत्रों से आकर सत्ता स्थापित करने वाले राजपूतों, उनके पुरोहितों और उनके द्वारा अन्य क्षेत्रों से लाकर बसाये गए कृषकों और कृषि के सहायक उद्यमियों की, जो समय-समय पर आकर मैदानी भागों मे बसते गये।

रीति-रिवाजों, परंपरा और संस्कृति के विकास में किसी क्षेत्र की भौगोलिक स्थितियों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि सुदूर घने जंगलों और पहाड़ों के बीच बसे आदिवासियों की संस्कृति पूर्णतया प्रकृति पूजक और आरण्यक संस्कृति है। सामूहिकता में रचे-बसे इस समुदाय का जीवन दर्शन कई पीढ़ियों के अनुभव जन्य ज्ञान पर आधारित मौखिक परम्परा में ही है, जिसका प्रभाव मृत्यु संस्कारों में भी देखा जा सकता है। वे पूर्व जन्म और परलोकवाद की अवधारणा को भले ही न मानते हों, पर इतना तो यह समुदाय भी मानता है कि मरने के पश्चात् मृत आत्माएँ उनके बस्ती के आस-पास ही विचरण करती हैं। वे देवी-देवता, वीर या सिंह के रूप में लोगों को सताती हैं, इसलिए उनका मृत्यु संस्कार आवश्यक है। उनके अनुसार वे पशु बलि और मदिरा के तर्पण से प्रसन्न होती हैं।

दूसरा समुदाय आर्य मूल के उन हिन्दुओं का है, जो अधिकांश मैदानी भागों में बसे हैं। यह समुदाय पूर्व जन्म और परलोकवाद की अवधारणा का पक्षधर है। ईश्वर के विभिन्न अवतारों, धार्मिक ग्रंथों, धर्म गुरुओं पर उनकी पूरी आस्था है । यही कारण है कि उसके आमदनी का बहुत बड़ा भाग यज्ञ-होम, तीर्थ-दर्शन और अनेक संस्कारों पर होने वाले उत्सवों में ही खर्च होता है। उनके सोलह संस्कार

में मृत्यु भी एक संस्कार है, इसलिए मृत्यु संस्कार भी अनेक धार्मिक विश्वासों के साथ गरुड़ पुराण या प्रेत मंजरी में बताये गये नियमों के अनुसार सम्पन्न होता है । पर जब दो संस्कृतियाँ समानान्तर चलती हैं तो एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इसलिए मृत्यु संस्कारों में भी कुछ मौखिक परम्पराएँ ऐसी घुली-मिली हैं, जो सभी की साझी विरासत सी बन गई है। कुछ संस्कार तो मरणासन्न अवस्था से ही शुरू हो जाते हैं।

जैसे ही कोई व्यक्ति मरणासन्न अवस्था में पहुँचता है तो समाचार फैलते ही लोग उससे अन्तिम मुलाकात हेतु आने लगते हैं। घर के लोग ब्राह्मणों को अन्नदान देते हैं। कुल पुरोहित को बुलवाकर गोदान देने की रस्म पूरी की जाती है। गंगा जल की दो-तीन बूँद उसके मुँह में डाली जाती है। कहीं-कहीं गंगा जल के साथ सोने का एक छोटा सा टुकड़ा भी मुँह में डाल देते हैं। जीते जी दान की गई गाय कुल पुरोहितों की होती है, पर मरने के पश्चात् का गोदान महापात्र पाता है। लोगों की मान्यता है कि मृत आत्मा को गाय वैतरिणी नामक नदी तैरकर पार कराती है । जब वह व्यक्ति अचेतावस्था में आ जाता है और आँखों की पुतली एक ओर चढ़ी-चढ़ी सी दिखने लगती है अथवा हिचकी आने लगती है तो मृत्यु निकट मानकर उस व्यक्ति को खाट से उतार कर नीचे लिटा दिया जाता है। लोगों का कथन है कि धरती के गुरुत्वाकर्षण से उसके प्राण शीघ्र ही बगैर किसी कष्ट के निकल जाते हैं।

दाह संस्कार में आये निकट सम्बन्धियों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा सत लकड़ियाँ दी जाती है। तुलसी या बेल की लकड़ियों के सात टुकड़े हाथ में लेकर लोग चिता की प्रदक्षिणा करते हैं और उत्तर की ओर आकर मृतक के मुँह के पास उन लकड़ियों को डाल देते हैं। इस रस्म को सत लकड़ियाँ देना कहा जाता है। दाह संस्कार के पश्चात् किसी नदी-तालाब या गाँव से एकान्त बने कुएँ में स्नान करने और तिलांजलि देने की रस्म होती है। दाह संस्कार करने वाले के गले में दो-तीन इंच चौड़ी और तीन फिट लम्बी सफेद कपड़े की धजी डाल दी जाती है, उसके हाथ में सरौता अथवा बेंट रहित खुरपा दे दिया जाता है। मान्यता है कि अपना शरीर जला देने के कारण मृत आत्मा क्रुद्ध होती है। वह दाह संस्कार करने वाले को कोई क्षति न पहुँचाये, इसलिए हाथ में लौह उपकरण दे दिया जाता है। प्रेतात्मा लौह के समीप नहीं आती। अंजली में तिल रख जल लेकर उसे तालाब या नदी में डालते हैं, इसे तिलांजलि देना कहा जाता है।

गाँव के पास के पीपल वृक्ष को एक लोटा जल से स्नान कराया जाता है। एक घड़ा पीपल के डाल में बाँधकर उसमें जल भर दिया जाता है। इसे घट बाँधना कहते हैं। मृत आत्मा के शरीर को जला देने के कारण वह क्रुद्ध होती है। भगवान वासुदेव जिनका पीपल में वास माना गया हैं, उसे समझाते हैं कि तुम इस घट में वास करो । पुनर्जन्म में तुम्हें दूसरा शरीर मिल जाएगा। जल भरे घट में निवास करने के कारण मृत आत्मा का क्रोध ठंडा पड़ जाता है।

पुरुष लोग जब दाह संस्कार करने चले जाते है, तब तक घर की महिलाएँ घर की साफ-सफाई करके द्वार के बगल में पानी से भरा घड़ा रखकर उसमें नीम की डाली रख दी जाती है। ताकि घर में प्रवेश करने वाला हर व्यक्ति पैर धोकर ही अन्दर प्रवेश करे।

मृत्यु के प्रथम दिन और शुद्धता के पहले तक प्रतिदिन घर से कुछ दूर किसी खेत या मैदान में शाम के समय एक दीपक जलाया जाता है। मृत आत्मा के खाने के लिए एक दोने में भोजन एवं चुकड़ी में पानी रखा जाता है। दाह संस्कार करने वाला व्यक्ति प्रतिदिन नदी या तालाब में परिवार के सदस्यों के साथ स्नान करने जाता है।

दाह संस्कार के तीसरे दिन राख-फूल उठाने की रस्म होती है, उस दिन परिवार के लोग लोटे में गोमूत्र भर कर ले जाते हैं। दाह संस्कार करने वाला स्नान कर उस गोमूत्र को चिता में छिड़कता है। कुश या दूब की डाली को चिमटीनुमा बनाकर अस्थियों को घड़े में रख दिया जाता है। अन्य लोग भी अस्थियों को ढूँढकर रखते जाते हैं। अस्थि संचय हो जाने के बाद अस्थियों के घड़े को किसी कटीली झाड़ी के बीच रख देते हैं। भस्मी भी किसी बोरे में भरकर रख दी जाती है। सातवें दिन अस्थियों को गंगा नदी में प्रवाहित करने जाते हैं और भस्मी को किसी पास की नदी में प्रवाहित कर आते हैं। अस्थि संचय के पश्चात् चिता को भी लीप कर उसमे जौ के दाने बिखेरते हैं। 15-20 फीट के उस लीपे हुए मैदान में तरह-तरह के पकवान और तरकारियाँ तैयार कर पत्तल और दोनों में परोसकर मृत आत्मा को भोजन के लिए आवाहन किया जाता है।

गंगा जी में विर्सजन के समय भी मंत्रोच्चारण के साथ पूजा पाठ और दान-दक्षिणा दी जाती है।

सामान्य परिवारों में मृतक यदि महिला हुई तो नौवें दिन और पुरुष हुआ तो दसवें दिन दशगात्र कार्यक्रम होता है। महिलाएँ घर की लिपाई-पुताई करती हैं। घिनौची के घड़े गाँव के बाहर फेंक दिए जाते हैं। महिलायें मेहमानों के लिए भोजन तैयार करने में लग जाती हैं और पुरुष किसी नदी-तालाब के किनारे मुण्डन कराते हैं। परिवार के लोगों का मुण्डन कराना अनिवार्य होता है। अन्य मेहमान सिर्फ दाढ़ी-मूँछ बनवाते हैं। अपनी सामर्थ्य के अनुसार सुपात्रों को दान (द्रव्य एवं उपयोगी वस्तुएँ) किया जाता है।

मृत्यु के तेरह दिन बाद तेरही का कार्यक्रम होता है। पहले यह परम्परा कुछ जातियों तक सीमित थी, पर अब अन्य जातियों के सम्पन्न घरों में तेरहवीं कार्यक्रम आयोजित होने लगा है। तेरही में तेरह ब्राह्मणों को मुख्यरूप से आमंत्रित किया जाता है, जिन्हें एक साथ बैठाकर भोजन कराया जाता है। दान-दक्षिणा दी जाती है। शेष लोग बाद में भोजन करते हैं। उस दिन राख- फूल विसर्जित करके प्रयागराज से लाये गए गंगाजल की भी पूजा होती है । इस तरह प्रथम दिन से लेकर तेरहवें दिन तक मृत्यु संस्कार का कार्यक्रम सम्पन्न माना जाता है। एक कार्यक्रम वर्ष भर चलता है। वह है हर अमावस को नदी-तालाब में स्नान और मुण्डन जिसे दाह संस्कार करने वाला कराता रहता है और एक वर्ष बाद बरसी का कार्यक्रम होता है, जिसमें नातें-रिश्तेदारों को आमंत्रित कर भोजन कराया जाता है।

# बुन्देली मृत्यु गीत

डॉ. ओमप्रकाश चौबे

हममें से प्रत्येक को मृत्यु के किसी भी क्षण आने से अवगत होना चाहिए। इस जीवन का कोई भरोसा नहीं है, क्योंकि किसी भी क्षण मनुष्य की मृत्यु हो सकती है, भले ही वह युवक हो या वृद्ध हो।

गरुड़ पुराण में कहा गया है कि जहाँ जीवन है, वहाँ मृत्यु भी निश्चित है– 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्धुंव जन्म मृतस्य च'। जन्म ग्रहण करने वाले की समय आने पर मृत्यु होना शास्वत् सत्य है, अर्थात् जीवन की समाप्ति ही मृत्यु है। इस ध्रुव सत्य को हमें स्वीकारना चाहिए। हमारे पुराणों में इसकी विशद् विवेचना की गई है।

भारत के लगभग सभी लोकांचलों में मृत्यु विषयक गीत, कथायें, गाथायें वर्णित हैं। बुन्देलखण्ड अंचल की वाचिक परम्परा में मृत्यु संस्कार पर कोई गीत नहीं गाया जाता, लेकिन यहाँ 'अनरये की फागें' प्रचलन में हैं, जिन्हें होली के समय फागों के रूप में गाया जाता है। किसी घर में गमी हुई हो तो उसके यहाँ होली के अवसर पर फाग मंडलियाँ जाती हैं और संवेदना व्यक्त करने के रूप में अनरये की फागें गायी जाती हैं। इन फागों में जीवन की नश्वरता तथा भगवद्भक्ति को प्राथमिकता जैसे प्रसंग होते हैं।

इस अंचल में कबीर भजन भी प्रचलित हैं, जिनमें मृत्यु की विवेचना के साथ ही शरीर की नश्वरता, मृत्यु के उपरांत किये जाने वाले संस्कारों की छाप बहुत गहराई से रही है। कबीर के अलावा लोककवि ईसुरी की कुछ चौकड़ियाँ फागें भी मृत्यु को लेकर रची गई हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से मिलकर मानव शरीर का निर्माण हुआ है। सूर्य, जंगम और स्थिर समस्त पदार्थों की आत्मा है। सूर्य आत्मा है, चन्द्र मन है, भौम सत्व, बल किंवा रक्त है, बुध वाणी है, वृहस्पति ज्ञान है, शुक्र वीर्य काम संचार है, शनि दु:खानुभूति है। आधार चक्र से लेकर सहस्त्रार चक्र पर्यन्त (गुदा से मस्तिष्क तक) आठ चक्र (दो आँख, दो कान, दो नासिका छिद्र,

मुख, लिंग और गुदा) और इन नव द्वारों, छेदों वाला यह मानव देह काल द्वारा युद्ध में न जीती जा सकने योग्य देवताओं की नगरी है। देवताओं द्वारा प्रदत्त यह शरीर जिसका स्वामी जीव है। जब जीव 'कर्त्ताहमिति मन्यते' के अनुसार अपने आपको ही सब कुछ समझने की मूर्खता करे, तब देवसत्ता के रोष से वह इस पिंड से निकाल दिया जाता है।

श्रीमद्भागवत एवं भगवतगीता में वर्णित है कि जन्म लेने वाले की मृत्यु एवं मृत्यु को प्राप्त करने वाले का जन्म निश्चित है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं जन्म-मरण को एक ध्रुव सत्य माना है।

यह शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। शरीर का व्यय होता है और आत्मा का व्यय नहीं होता। शरीर अशुद्ध है और आत्मा शुद्ध है। शरीर का जन्म-मरण होता है। आत्मा का जन्म-मरण नहीं होता। शरीर अत्यन्त जड़ है, अत्यंत अपवित्र है और अत्यंत विनश्वर है तथा आत्मा चेतन है, परम पवित्र है और अविनाशी है। यदि आत्मा और अनात्मा इन दोनों के भेद का विचार किया जाये तो कहीं भी शोक का अवकाश नहीं है। कोई भी मरे, चाहे पिता मरे, चाहे बेटा मरे, मनुष्य का जीवन है तो उसके सामने बाप भी मर सकता है और बेटा भी। यदि ऐसा हो जाये तो उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। यह संसार नि:सार है। संसार के व्यक्तियों और वस्तुओं का वियोग समझदारों को वैराग्य, शांति, सुख दे जाता है।

जो संसार में जन्म लेता है उसके पीछे मृत्यु लगी हुई है, इसलिए जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अपरिहार्य है। अपने-अपने कर्मों के अनुसार सभी प्राणियों का जन्म और मरण होता है। जो समझदार हैं, वह इस तरह संसार में क्यों शोक करेगा? यह तो एक बुलबुला, क्षणमात्र का जीवन है, इसके लिए शोक करने का क्या कारण है?

**मृत्यु उपरांत के विधि-विधान : शास्त्रीय स्वरूप**

*गोमयादाकेन भूमिमुपलित्य, कुशैराच्छाद्य कृष्णतिलान्*
*विकीर्य उत्तराशाशिरस्कं भूमौ*
*उत्तानशायिनं महाप्रमाण पथिकं विदध्यात्*
*शनैः गडोदक तुलसी दलमाचामयेद्*
*यथाशक्ति आतुरदानं दीपदानं च कारयेत्*
*समुपस्थिता हरिस्मरणं हरिनामकीर्तनां च कुर्युः।*

गोमय जल से भूमि को लीपकर कुशाओं से आच्छादित करें और काले तिलों को विकीर्ण करके उस भूमि पर मुमूर्ष मनुष्य को उत्तर की ओर सिर करके सीधा लिटा दें। गंगाजल, तुलसीदल सहित शनैः-शनैः मुख में यथाशक्ति आतुरकालीन दान और दीपक दान करवाया जाए। उपस्थित कुटुम्बी हरि स्मरण-कीर्तन करें।

यदि किसी भाग्यशाली मनुष्य के प्राण स्वयमेव कपाल का भेदन करके प्रयाण करते हैं, तो वह सर्वोत्तम मोक्षगति को प्राप्त हुआ है। अब वह 'न स पुनरावर्तते' का अधिकारी बन गया है।

भूमि पर चित्त लिटाने की दशा में मनुष्य के मलद्वार का भूमि से संस्पृक्त रहना अनिवार्य है। भूमि का आकर्षण सर्वथा अशक्त हुए प्राणों को चुम्बक की भाँति खींचकर गुप्तद्वार से निकलने के लिए बाध्य करे, यह स्वाभाविक है। अतः इस दुर्गति से बचने के लिए मुमूर्ष मनुष्य के शरीर और भूमि दोनों के मध्य में कोई ऐसा पदार्थ होना चाहिए जो कि 'शुचि' असंक्रामक (Nonconductor) हो। इसलिए सभी वैज्ञानिक गोबर को शुचि द्रव्यों में अन्यतम स्वीकार करते हैं। अर्थात् बिजली का करण्ट उसे पार करके दूसरे द्रव्य में प्रवेश नहीं कर सकता। लोक में भी गोबर से लीपने के पश्चात् मृतक को भूमि पर लिटाया जाता है - 'लीप पोतकें भों में पारे, घर के लोग डाराने'।

एक कारण गोबर से लीपने का यह भी हो सकता है कि रोगी के स्थान पर कई प्रकार के संक्रामक रोगों के कीटाणु विद्यमान रहते हैं। मृत्यु के समय उपस्थित रहने वाले परिजनों की स्वास्थ्य रक्षा के विचार से विविध कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता गाय के गोबर में होती है। बिना कष्ट उठाए प्राणोत्क्रमण संभव बनाने के लिए सद्यः मुमूर्ष मनुष्य को भूमि माता की गोद में लिटा देना ही उसकी अन्तिम सेवा करना है। उत्तर की ओर सिर को और दक्षिण की ओर पाँव करके मुमूर्ष को लिटाने की दिशा में ध्रुवाकर्षण के कारण दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर निरन्तर चलने वाला विद्युत प्रवाह कम्पास यंत्र की सुई की भाँति मनुष्य के निकलते हुए प्राणों को ऊपर के छिद्रों की ओर खींच ले जाने में सहायक सिद्ध होता है। मनुष्य के अन्तिम समय में उसके मुख में गंगाजल और तुलसीदल डालने की प्रथा है। आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से तुलसीदल त्रिदोषहनन महौषधि है।

**गरुड़ पुराण के अनुसार-**

*तदा शोकं परित्यज्य कारयेन्मुण्डनं सुतः।*
*समस्तबान्धवैर्युक्तः सर्वपापविमुक्तये।।*
*मातापित्रोर्मृतौ येन कारितं मुण्डनं न हि।*
*आत्मजः स कथं ज्ञेयः संसारार्णवतारकः।।*

*अतो मुण्डनमावश्यं नखकक्षविवर्जितम्।*
*ततः सवान्धवः स्नात्वा धौतवस्त्राणि धारयेत्।।*
*सद्यो जलं समानीय ततस्तं स्नापयेच्छवम्।*
*मण्डयेच्चन्दनैः स्त्राग्भिर्गडांग्मृत्तिकयाध्थवा।।*
*नवीनवस्त्रैः सञ्चछाद्य तदा पिण्डं सदक्षिणम्।*
*नामगोत्रं समुच्चार्य संकल्पेनापसव्यतः।।*
*मृत्युस्थाने शवो नाम तस्य नाम्ना प्रदापयेत्।*
*तने भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता।।*

अर्थात् माता-पिता की मृत्यु होने पर पुत्र को शोक का परित्याग करके सभी पापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये समस्त बान्धवों के साथ मुण्डन कराना चाहिये। माता-पिता के मरने पर जिसने मुण्डन नहीं कराया, वह संसार सागर को तारने वाला पुत्र कैसे समझा जाये? अतः नख और काँख को छोड़कर मुण्डन कराना आवश्यक है। इसके बाद समस्त बान्धवों के सहित स्नान करके धौत वस्त्र धारण करें। तब तुरन्त जल ले आकर उस जल से शव को स्नान करायें और चंदन अथवा गंगाजी की मिट्टी के लेप से तथा मालाओं से उसे विभूषित करें। उसके बाद नवीन वस्त्र से ढँककर अपसव्य होकर नाम-गोत्र का उच्चारण करके संकल्प पूर्वक दक्षिणा सहित पिण्डदान देना चाहिए। मृत्यु के स्थान पर शव नामक पिण्ड को मृत व्यक्ति के नाम, गोत्र से प्रदान करें। ऐसा करने से भूमि और भूमि के अधिष्ठाता देवता प्रसन्न होते हैं।

इसके पश्चात् द्वार पर 'पान्थ' नाम का पिण्ड मृतक के नाम, गोत्रादि का उच्चारण करके प्रदान करें। ऐसा करने से भूतादि कोटि में दुर्गतिग्रस्त प्रेत मृत प्राणी की सद्गति में विघ्न-बाधा नहीं कर सकते। इसके बाद पुत्रवधू आदि शव की प्रदक्षिणा करके उसकी पूजा करें। तब अन्य बान्धवों के साथ पुत्र को (शवयात्रा के निमित्त) कंधा देना चाहिए। अपने पिता को कंधे पर धारण करके जो पुत्र श्मशान को जाता है, वह पग-पग पर अश्वमेघ का फल प्राप्त करता है।

उसके बाद श्मशान में ले जाकर शव को उत्तराभिमुख रखें। भूमि का गोबर से लेपन करें, तत्पश्चात् अग्निदेव का पूजन करें एवं चिता निर्माण करें। शव को चिता पर रखकर दो पिण्ड प्रदान करें। प्रेत के नाम से एक पिण्ड चिता पर तथा दूसरा शव के हाथ में देना चाहिए। चिता में रखने के पश्चात् शव में प्रेतत्व आ जाता है। उसके बाद पुत्र द्वारा अग्नि प्रदान की जाती है।

शव की दाहक्रिया करने पर शव के आधे या पूरे जल जाने पर उसके मस्तक को फोड़ना चाहिए। पितृलोक की प्राप्ति के लिए ब्रह्मरंध्र का भेदन आवश्यक होता है। इस प्रकार मंत्र सहित तिल मिश्रित घी की आहुति देना चाहिए। दाह के पश्चात् स्नान करना चाहिए। घर आने पर मृतक के स्थान को लीपकर वहाँ बारह दिन तक रात-दिन दक्षिणाभिमुख अखण्ड दीपक जलाना चाहिए।

अस्थि संचय के लिए परिजनों एवं स्वजनों के साथ श्मशान भूमि में जाकर मृतक के पुत्र को स्नान करवाया जाता है। ऊन का सूत्र लपेट कर और पवित्री धारण करके पुत्र को 'यमाय त्वा' इस मंत्र से उड़द की बलि देनी चाहिए और तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए। इसके बाद चिता स्थान को दूध एवं जल से सींचना चाहिए, तत्पश्चात् अस्थि संचय प्रारम्भ करना चाहिए। अस्थियों को पलाश के पत्ते पर रखकर दूध और जल से धोयें, उन्हें मिट्टी के पात्र पर रखकर पिण्डदान करें। त्रिकोण स्थण्डिल बनाकर उसे गोबर से लीपें। दक्षिणाभिमुख होकर स्थण्डिल के तीनों कोनों पर तीन पिण्ड दान करें। चिताभस्म को एकत्र करके उसके ऊपर तिपाई रखकर उस पर खुले मुख वाला जल से भरा हुआ घट रखें। अस्थि पात्र को लेकर जलाशय को जायें। वहाँ दूध और जल से उन अस्थियों को बार-बार प्रक्षालित करके चंदन और कुमकुम से विशेष रूप से लेपित करें। उन्हें प्रणाम करके गंगा जी में विसर्जित करें। जिस मृत प्राणी की अस्थि दस दिन के अन्तर्गत गंगाजी में विसर्जित हो जाती है, उसका ब्रह्म लोक से कभी भी पुनरागमन नहीं होता।

## दशगात्र

कई पुत्र रहने पर दशगात्र ज्येष्ठ पुत्र को करनी चाहिए। इसलिए ज्येष्ठ पुत्र को एक समय भोजन, भूमि पर शयन तथा ब्रह्मचर्य धारण करके पवित्र होकर भक्ति भाव से दशगात्र और श्राद्धविधान करना चाहिए। पृथ्वी की सात बार परिक्रमा करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल पिता-माता की क्रिया करके पुत्र प्राप्त करता है। दशगात्र से लेकर वार्षिक श्राद्ध पर्यन्त पिता की श्राद्धक्रिया करने वाला पुत्र गया श्राद्ध का फल प्राप्त करता है।

## सपिण्डीकरण श्राद्ध

सपिण्डीकरण द्वारा मृत प्राणी प्रेत नाम को छोड़कर पितृगण में प्रवेश करता है। सपिण्डीकरण के बिना सूतक की निवृत्ति नहीं होती, इसलिए पुत्र के द्वारा सूतक के अंत में सपिण्डन किया जाना चाहिए।

## श्राद्ध

एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर श्राद्ध में हमेशा तीन पिण्डदान करना चाहिए। तीर्थ श्राद्ध, गया श्राद्ध तथा गजच्छाया योग में युगादि तिथियों तथा ग्रहण में किया जाने वाला पितृश्राद्ध वर्ष के अंदर नहीं करना चाहिए। गयाश्राद्ध करने से पितर भवसागर से मुक्त हो जाते हैं और भगवान गदाधर की कृपा से वे परम गति को प्राप्त होते हैं। गया के बाद विष्णुपद तीर्थ में तुलसी की मंजरी से भगवान विष्णु की पादुका का पूजन करना चाहिए और उसके आलवाल आदि तीर्थों में यथाक्रम पिण्डदान करना चाहिये।

पूर्वजों की अस्थियों को फूल का सम्बोधन देना अर्थात् मृतात्मा के प्रति अगाध श्रद्धा का परिचायक है। सभी जानते हैं कि प्रत्येक वृक्ष में पुष्पोद्गम होने के अनन्तर ही फलोदय होता है। सो हिन्दू परम्परा में चूंकि सन्तान को फल नाम से स्मरण करते हैं, अत: संतान रूप फल माता-पिता की जिन अस्थियों के सार में समुदभूत है, उन्हें 'फूल' नाम से स्मरण करना युक्तिसंगत है।

इस तरह से हमारे रोम-रोम में रमी हुई परम्पराओं की आस्था अंत में अपना अमिट प्रभाव प्रकट किये बिना नहीं रहती।

श्रीमद्भगवत गीता में वर्णित है कि प्राण प्रयाण के समय ऊँकार के जाप का बड़ा महत्त्व है। ऊँ अक्षर ब्रह्म है जो अंत में इसका जाप करता हुआ देह त्यागता है, उसे मोक्ष मिलता है। आर्य शास्त्रों में मृत शरीर को भूमि में गाड़ना, अग्निदाह, जल में बहाना और निर्जन वन में छोड़ देना ये चार विधियाँ वर्णित हैं। कहते हैं कि इसलिए भजन करते रहो, मेरा कहा विस्मृत न कर देना। इस काया रूपी किले में दस द्वार हैं। एक खिड़की आने-जाने के लिए बनी है। पाँच तत्त्वों से मिलकर यह बना है, जिसमें जीव निवास करता है।

कठोपनिषद् में नचिकेता और यम के संवाद के रूप में नचिकेता ने यमराज से मृत्यु के बाद आत्मा के अस्तित्व के विषय में पूछा तो यमराज ने इस तरह से जानकारी दी -

*पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतस:।*
*अनुष्ठाय न शोचति विमुक्ताश्च विमुच्येते।। एतद्वै तत्।।*

यह मनुष्य शरीर रूपी पुर दो आँख, दो कान, दो नासिका के छिद्र, एक मुख, ब्रह्मरन्ध्र, नाभि, गुदा और शिश्न- इन ग्यारह द्वारों वाला है। यह सर्वव्यापी, अविनाशी, अजन्मा, नित्य, निर्विकार, एकरस, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की नगरी है। वे सर्वत्र समभाव से सदा परिपूर्ण रहते हुए भी अपनी राजधानी रूपी इस मनुष्य शरीर के हृदय-प्रासाद में राजा की भाँति विशेष रूप से विराजित रहते हैं। इस रहस्य को समझकर मनुष्य शरीर के रहते हुए ही जीते-जी जो मनुष्य भजन-स्मरणादि साधन करता है, नगर के महान् स्वामी परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन और ध्यान करता है, वह कभी शोक नहीं करता। वह शोक के कारण रूप संसार-बंधन से छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है और शरीर छूटने के पश्चात् विदेहमुक्त हो जाता है- परमात्मा का साक्षात्कार करके जन्म-मृत्यु के चक्र से सदा के लिये छूट जाता है। यह जो सर्वव्यापक ब्रह्म है, यही वह है, जिनके सम्बन्ध में तुमने पूछा था।

*ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।*
*मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते।।*

शरीर में नियमित रूप से अनवरत प्राण-अपानादि की क्रिया हो रही है, इन जड़ पदार्थों में जो क्रियाशीलता आ रही है, वह उन परमात्मा की शक्ति और प्रेरणा से ही आ रही है। वे ही मानव-हृदय में राजा की भाँति विराजित रहकर प्राण को ऊपर की ओर चढ़ा रहे हैं और अपान को नीचे की ओर ढकेल रहे हैं। इस प्रकार शरीर के अंदर होने वाले सारे व्यापारों का सुचारु रूप से सम्पादन कर रहे हैं। उन हृदय स्थित परम् भजनीय परब्रह्म पुरुषोत्तम की सभी देवता उपासना कर रहे हैं। शरीर स्थित प्राण-मन-बुद्धि-इन्द्रियादि के सभी अधिष्ठाता देवता उन परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये उन्हीं की प्रेरणा के अनुसार नित्य सावधानी के साथ समस्त कार्यों का यथाविधि सम्पादन करते रहते हैं।

*अस्य विस्त्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिन:।*
*देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते।। एतद्वै तत्।।*

यह एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन करने के स्वभाव वाला देही (जीवात्मा) जब इस वर्तमान शरीर से निकलकर चला जाता है और उसके साथ ही जब इन्द्रिय, प्राण आदि भी चले जाते हैं, तब इस मृत शरीर में क्या बचा रहता है? देखने में तो कुछ भी नहीं रहता, पर वह परब्रह्म परमेश्वर, जो सदा-सर्वदा समानभाव से सर्वत्र परिपूर्ण है, जो चेतन जीव तथा पेड़ प्रकृति सभी में सदा व्याप्त है, वह रह जाता है। यही वह ब्रह्म है, जिसके सम्बन्ध में तुमने पूछा था।

*न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।*
*इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।।*
*हन्त त दइं प्रवक्ष्यामि गुह्यां ब्रह्म सनातनम्।*

*यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम।।*

यमराज कहते हैं कि नचिकेता! एक दिन निश्चय ही मृत्यु के मुख में जाने वाले ये मनुष्यादि प्राणी न तो प्राण की शक्ति से जीवित रहते हैं और न अपान की शक्ति से ही। इन्हें जीवित रखने वाला तो कोई दूसरा ही चेतन तत्त्व है और वह है जीवात्मा। ये प्राण-अपान दोनों उस जीवात्मा के ही आश्रित हैं। जीवात्मा के बिना एक क्षण भी ये नहीं रह सकते। जब जीवात्मा जाती है, तब केवल ये ही नहीं, इन्हीं के साथ इन्द्रियादि सभी उसका अनुशरण करते हुए चले जाते हैं। अब मैं तुमको यह बतलाऊँगा कि मनुष्य के मरने के बाद इस जीवात्मा का क्या होता है, यह कहाँ जाता है तथा किस प्रकार रहता है और साथ ही यह भी बतलाऊँगा कि उस परम् रहस्यमय सर्वव्यापी सर्वाधार सर्वाधिपति परब्रह्म परमेश्वर का क्या स्वरूप है।

*योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।*
*स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।*

यमराज कहते हैं कि अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार और शास्त्र, गुरु, संग, शिक्षा, व्यवसाय आदि के द्वारा देखे-सुने हुए भावों से निर्मित अन्तःकालीन वासना के अनुसार मरने के पश्चात् कितनी ही जीवात्मा दूसरा शरीर धारण करने के लिए शुक्र के साथ माता की योनि में प्रवेश कर जाते हैं। इनमें जिनके पुण्य-पाप समान होते हैं, वे मनुष्य का और जिनके पुण्य कम तथा पाप अधिक होते हैं, वे पशु-पक्षी का शरीर धारण करके उत्पन्न होते हैं और कितने ही, जिनके पाप अत्यधिक होते हैं, वे स्थावर भाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् वृक्ष, लता, तृण, पर्वत आदि जड़ शरीरों में उत्पन्न होते हैं।

*य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।*
*तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।*
*तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन।। एतद्वै तत्।।*

जीवात्माओं के कर्मानुसार उनके लिये नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करने वाला तथा उनकी यथायोग्य व्यवस्था करने वाला जो यह परम पुरुष परमेश्वर समस्त जीवों के सो जाने पर अर्थात् प्रलयकाल में सबका ज्ञान लुप्त हो जाने पर भी अपनी महिमा में नित्य जागता रहता है, जो स्वयं ज्ञान स्वरूप है, जिसका ज्ञान सदैव एकरस रहता है, कभी अधिक न्यून या लुप्त नहीं होता, वही परम विशुद्ध दिव्य तत्त्व है, वही परब्रह्म है, उसी को ज्ञानी महापुरुषों के द्वारा प्राप्य परम् अमृतस्वरूप परमानन्द कहा जाता हैं। ये सम्पूर्ण लोक उसी के आश्रित हैं। उसे कोई भी नहीं लाँघ सकता। कोई भी उसके नियमों का अतिक्रमण नहीं कर सकता। सभी सदा-सर्वदा एकमात्र उसी के शासन में रहने वाले और उसी के अधीन हैं। कोई भी उसकी महिमा का पार नहीं पा सकता। यही है वह ब्रह्मतत्त्व, जिसके विषय में तुमने पूछा था।

*इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्त्रसः।*
*ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते।।*

इस सर्वशक्तिमान् सबके प्रेरक और सब पर शासन करने वाले परमेश्वर को यदि कोई साधक इस दुर्लभ मनुष्य शरीर का नाश होने से पहले ही जान लेता है, अर्थात् जब तक इसमें भजन-स्मरण आदि साधन करने की शक्ति बनी हुई है और जब तक यह मृत्यु के मुख में नहीं चला जाता, तभी तक (इसके रहते-रहते ही) सावधानी के साथ प्रयत्न करके परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब तो उसका जीवन सफल हो जाता है। अनादिकाल से जन्म-मृत्यु के प्रवाह में पड़ा हुआ वह जीव उससे छुटकारा पा जाता है। नहीं तो फिर उसे अनेक कल्पों तक विभिन्न लोकों और योनियों में शरीर धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अतएव मनुष्य को मृत्यु से पहले-पहले ही परमात्मा को जान लेना चाहिये।

*इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्तवमुत्तमम्।*
*सत्तवादधि महानात्मा महतोऽयक्तमुत्तमम्।।*

इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि उत्तम है, बुद्धि से उनका स्वामी जीवात्मा ऊँचा है, क्योंकि उन सब पर उसका अधिकार है। वे सभी उसकी आज्ञा पालन करने वाले हैं और यह इनका शासक है। अतः उनसे सर्वथा विलक्षण है। इस जीवात्मा से भी इसका अव्यक्त शरीर, भगवान की वह प्रकृति प्रबल है, जिसने इसको बंधन में डाल रखा है। तुलसीदास जी ने भी कहा है -'जेहि बस कीन्हें जीव निकाया'। गीता में प्रकृतिजनित तीनों गुणों के द्वारा जीवात्मा के बांधे जाने की बात कही गई है।

*शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिः सृतैका।*
*तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वड्ङनया उत्क्रमणे भवन्ति।।*

हृदय में एक सौ एक प्रधान नाड़ियाँ हैं, जो वहाँ से सब ओर फैली हुई हैं। उनमें से एक नाड़ी, जिसको सुषुम्ना कहते हैं, हृदय से मस्तक की ओर गई है। भगवान के परमधाम में जाने का अधिकार उस नाड़ी के द्वारा शरीर से बाहर निकलकर सबसे ऊँचे

लोक में अर्थात् भगवान के परमधाम में जाकर अमृत स्वरूप परमानन्दमय परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है और दूसरे जीव मरणकाल में दूसरी नाड़ियों के द्वारा शरीर से बाहर निकलकर अपने-अपने कर्म और वासना के अनुसार नाना योनियों को प्राप्त होते हैं।

*मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोष्थ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्त्रम्।*
*ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यातममेव।।*

इस प्रकार यमराज के द्वारा उपदिष्ट समस्त विवेचन को श्रद्धापूर्वक सुनने के पश्चात् नचिकेता उनके द्वारा बताई हुई सम्पूर्ण विद्या और योग की विधि को प्राप्त करके जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त, सब प्रकार के विकारों से रहित एवं सर्वथा विशुद्ध होकर परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त हो गया। दूसरा भी जो कोई इस आध्यात्म विद्या को इस प्रकार नचिकेता की भाँति ठीक-ठीक जानने वाला और श्रद्धापूर्वक उसे धारण करने वाला है, वह भी नचिकेता की भाँति सब विकारों से रहित तथा जन्म-मृत्यु से मुक्त होकर परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

डॉ. भगवती प्रसाद सिंह द्वारा रचित ग्रंथ मनीषी की लोकयात्रा में 'आत्मा की तीन यात्राएँ' की विषद् विवेचना है। यह स्थूल देह मातृगर्भ से उत्पन्न होकर भूमिष्ठ होता है और समय पूरा हो जाने पर मृत्युमुख में पतित होता है। परन्तु स्थूलदेह के भीतर उसके साथ अविनाभाव से संपृक्त एक सूक्ष्म सत्ता रहती है। सूक्ष्म देह के सम्बन्ध में स्थूलदेह क्रियाशील रहता है। एक दृष्टि से कहा जाये तो सूक्ष्म देह से जो स्थूल देह का सम्बन्ध है - वहीं जन्म और सूक्ष्म देह से स्थूल देह का अलग हो जाना ही मृत्यु है। प्रारब्ध से जन्म, आयु और भोग की निष्पत्ति होती है। यह मृत्यु के समय प्रकट होती है। देह के स्वरूप को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है -

मानव जीवन की तीन यात्राएँ हैं - प्रथम यात्रा में आत्मा, भगवत्सत्ता में लीन ज्ञानहीन अवस्था से उपबुद्ध होकर, ज्ञान प्राप्त कर, प्रकृति के क्रमविकास के अनुसार चौरासी लक्ष्य योनि में भ्रमण करने के अनंतर मनुष्य देह प्राप्त करता है।

दूसरी यात्रा का उद्देश्य मनुष्यत्व से भगवतत्त्व एक उत्थान। इस यात्रा के आरम्भ के पूर्व वैराग्य आ जाता है। गुरु की कृपा से विवेक और ज्ञान का विकास होता है। स्थूल देह तथा स्थूल जगत से वियोगन होता है। अंत में व्यापक मन से सम्बन्ध रूप बंधन छूट जाता है। आध्यात्मिक जीवन का विकास पूर्ण होने पर आनंदमय कोष में जाकर दिव्यजीवन प्रारम्भ होता है। इस दिव्य जीवन का पूर्णत्व ही भगवद्भाव की प्राप्ति, यहीं दूसरी यात्रा समाप्त होती है।

पहली यात्रा में जड़ भाव त्यागकर मनुष्य भाव की प्राप्ति, दूसरी यात्रा में मनुष्यभाव त्यागकर भगवतभाव में पहुँचना।

तृतीय यात्रा में भगवद्भाव में मग्न होकर उसके अनंत वैचित्र्य का संधान चलता है। इसको स्थित दृष्टि से भी देखा जा सकता है और गतिशील दृष्टि से भी। गतिशील दृष्टि से देखने पर अनंत स्थिति में अनंत गति का अनुभव होता है। यही तृतीय यात्रा का रहस्य है।

उपासक आत्मा है, उपास्य भी आत्मा, परन्तु समझने के लिए प्रारम्भ में दोनों का पार्थक्य आवश्यक होता है। उपासक आत्मा गुरुकृपा से विद्ध होने पर इतर आत्माओं से कुछ वैलक्षण्य-लाभ करता है। दृष्टांत स्वरूप मान लिया जाये कि उपास्य आत्मा विष्णुरूपी है और उपासक आत्मा जीव विशेष है। साधारणत: मृत्यु के अनंतर यह जीव अपने देहकोष से निर्गत होकर स्वकर्मानुसार अध, ऊर्ध्व अथवा तियंक गति प्राप्त करता है। इसी गति के क्रम में इसका भोग तत्तद् भुवनों में संपन्न होता है। तद्नंतर अवशिष्टकर्म भोगने के लिए (कर्मानुरूप) देह का आश्रय करना पड़ता है। इसके लिए मातृगर्भ में प्रवेश आवश्यक होता है। इसी का नाम संसार है।

## बुन्देली गीत

बुन्देलखण्ड की वाचिक परम्परा में मृत्यु विषयक एवं मृत्यु के पश्चात् संपादित संस्कारों से सम्बन्धित बहुत से गीत प्रचलन में हैं। इन गीतों में मुख्य रूप से कबीर या निर्गुण छाप के गीत हैं। इस अंचल में अनरये की फागों के रूप में भी मृत्यु विषयक गीत गाये जाते हैं जो कि सम्बन्धित के घर जाकर गाये जाते हैं। इसके अलावा ईसुरी की फागें, चेतावनी, भजन आदि भी गाये जाते हैं।

बुन्देलखण्ड जनपद में कबीर की छाप वाले निरगुण पदों को सबसे अधिक मृत्यु गीत के नाम पर गाया जाता है। गीतों में प्राय: जीवन मोह के प्रति जागृति करने की चेष्टा की गई हैं। हमारी भोग-विलास और उसकी अनन्त लिप्सा की निरभीकता का भाव इन गीतों के माध्यम से किया गया है।

**कहारी-चेतावनी**

टेक : *बसकारे के दिन आये जात, ठिकानो नईयां बखरी में।*

छंद : *एक तो बनी बाहरी बखरी, ईमें हैं दस द्वारे,*
*कच्ची भींत बनी माटी की, लागे नईयां किबारे।*

लौट : *ऐंसे में कैसें निवात, ठिकानों नैयां।*

छंद : *घूमन लगे असढ़वा सिरपै, फिर आंगे का करहैं।*
*इतनो डर मोय उनको नईयां, जो टपका कौ डरहैं।*

लौट : *कैसो आलस में बैठो, अलसियात .... ठिकानों।*

छंद : *रिमझिम-रिमझिम मेह बरस गये, पवन चले पुरबायी,*
*सारी रात खाट जा मैंने, नॉय-मॉय सरकारयी।*

लौट : *अबतो काटी कटे न रात ...*

छंद : *घरके लोग बनेना घर में, भारी है सकरोंदा,*
*कऊं कौ फूटो गयी को खपरा,*
*काऊं को फूट गयो है औंदा।*

लौट : *कीकी उरिया के तरें हो, बैठत जात .....*

छंद : *भरतन बनें तो भरलो भैया, भरो धरम के भांड़े।*
*दुबधा में दोई खो न दईयो, हलुवा मिले न मांड़े।*

लौट : *अब तुम कर लेब उलात .... ठिकानों।*

छंद : *दीनबंधु दीनन के स्वामी, सुनियो मुरली बारे।*
*चतुर सिंह एक दीन पुकारे, करियो नाथ सहारे।*

लौट : *मोरी नईया लगादो बेड़ा पार।*
*ठिकानों नईयां बखरी में।।*

उक्त कहारी भजन में मानव जीवन को बखरी का प्रतीक मानकर चित्रित किया गया है। इस शरीर रूपी बखरी में जीव को रहते-रहते बहुत समय हो गया और अब जीवन का अंतिम पड़ाव है। इसी समय तो ज्यादा परेशानी होती है, वैसे भी नया मकान जब बनता है तो रहने वालों को कहीं कोई दिक्कत नहीं होती, जब नया मकान पुराना हो जाता है तो उसकी दीवारें, छप्पर आदि सभी परेशानी का कारण बनते हैं। कैसी बेजोड़ तुलना की है कवि ने। इस घर की हालत ठीक नहीं है और सिर पर बरसात है, मकान टूटा-फूटा पड़ा है, घर भी तो ठीक नहीं। कच्ची दीवार उस पर बिना दरवाजे के दस-दस द्वार हैं, बरसात अगर कहीं ज्यादा हुई तो फिर कैसे बच सकेंगे इसके रहवासी? बड़ी कठिन समस्या है। पानी बरसने लगा, हवा भी चारों तरफ से चलती है, पूरी रात पानी की अधिकता के कारण ठीक से सोना भी नहीं हो पाया। अपनी खाट को यहाँ-वहाँ खिसकाना पड़ा। इस घर के ज्यादा सदस्य हैं, इसलिए ठीक से रह भी नहीं पाते। छप्पर टूटी पड़ी है, खपरे भी फूट गये।

कवि कहता है कि अब तो धर्म ही तुम्हें इसमें सुरक्षा दे सकता है। अत: धर्म का सहारा लो तो ईश्वर तुम्हारी जीवन रूपी नौका को पार लगा देंगे, क्योंकि अब इस घर में तेरा ठिकाना नहीं।

*जा दिन मन पंछी उड़ जैहें .....*
*घर की कहे बेग हो काड़ो,*
*भूत भये कोऊ खेहें.....*
*जा प्रीतम सें प्रीत घनेरी, सोई देख डरेहें*
*लपट-लपट कें तिरियां रोवै, हंस अकेलो जैहें .....*
*हाड़ जले ज्यौं लाकड़ी, केश जले ज्यों घास,*
*सोने जैसी काया जल गई, कोइ न आयो पास .....*
*राजा जैहें रानी जैहें, जैहे पवन और पानी*
*दास कबीर की भक्ति ने जैहें, रेहें नाम निशान .....*

जिस दिन यह जीव रूपी पक्षी शरीर से निकल जायेगा, उस दिन तेरे शरीर रूपी वृक्ष के सब पत्ते गिर जायेंगे। तेरे घर वाले ही तेरे मृत शरीर को घर से निकाल देंगे। तेरे सगे-सम्बन्धी यह कहेंगे कि देखो किसी को उनका भूत न लग जाये? जिस प्रिय से इतना प्रेम उसकी पत्नी कर रही थी, वही तेरे निश्तेज शरीर को देखकर डर जायेगी। भले ही वह तेरे शरीर से लिपट-लिपट कर बिलखेगी, लेकिन तुझे तो अकेले ही जाना होगा। तेरा शरीर घास की तरह जलता देखकर तेरे परिजन भी तेरे पास नहीं आयेंगे। इस संसार में जो जन्मा है, उसे तो जाना ही पड़ता है। कबीर कहते हैं कि भक्ति ही शाश्वत है जो कभी नहीं जाती। जिससे तेरे चले जाने पर तेरा नाम निशानी के रूप में रह जायेगा।

*मरघट पै राम का गत होने में तन की .....*
1. *सेजों पै सोवन हारे रे, लगी नींद अपार*
*बाढ़ई ने गढ़ दई खटुलिया, से रये सुकमार ....*
2. *फोहन दूध पिलाये रे, करो भौतई प्यार,*
*मात-पिता सब ठांड़े, रो रओ परिवार .....*
3. *नदी तीर दओ डेरा रे, दई चिता बनाय,*

*बहू बेटा सब ठांड़े, दओ साब तन जार .....*

4. *तन पै न रे लंगोटी रे, न रेंने सिंगार,*
*धधक-धधक बर जेहों, तन हो जैहे राख ....*

5. *अंत समय जा माया रे, कछु आवै ने काम,*
*अंत समय जा जा माया, भजलो सीताराम .....*

श्मशान में अन्त्येष्टि के समय मृतक के शरीर को दफनाने से पहले कई प्रकार के क्रियाकर्म करवाये जाते हैं। कुछ कर्मकांड तो ऐसे होते हैं कि देखने वालों की बड़ी अजीब सी मन:स्थिति होती है, जैसे मृतक के सिर पर उसी के पुत्र द्वारा एक लकड़ी से ठोकर मारना, यहाँ तक कि मृतक को अग्नि देने से पहले उसके शरीर के सारे वस्त्र अलग करवा देना, मृतक के शरीर में कोई धागा बंधा हो तो उसे भी तोड़ दिया जाता है। यह देख कवि कहता है कि श्मशान में इस शरीर की पता नहीं क्या-क्या दुर्गति होनी है?

जो नरम गद्दों पर सोता था, वह आज अर्थी पर घास-पूस, लकड़ियों के बीच पड़ा है। उसके जन्म होने के बाद माँ ने उसे फाहे से दूध पिलाकर बड़े जतन से पाला-पोसा था। आज वे ही माता-पिता उसके लिए रो रहे हैं, बिलख रहे हैं। उसका पूरा परिवार रोता है। आज उसकी अन्त्येष्टि के लिए नदी किनारे का स्थान नियत किया गया है। वहीं उसकी चिता रखी गई, उसके बेटे-बहुएँ खड़े हैं।

उस मृतक के शरीर के वस्त्र भी उतार लिए गये, उसका शरीर अब धू-धू कर जल रहा है। शरीर राख में परिवर्तित हो गया। उसके जीवन में उसने जो धन अर्जित किया था, वह उसके किसी काम न आया। कवि कहता है कि जब जीवन का अंत ऐसा होना है तो हमें प्रभु का स्मरण करना चाहिए।

*कर-कर भजन गुजारो ये तन खों,*
*कर-करकें भजन गुजारो लाल .....*
*कायागढ़ सो गढ़ ने मिलहें, कोट जतन कर हारो .....*
*माया मोह के फंदा डरे हैं, जतन-जतन निनवारो .....*
*बैठो काहों भौ सागर में, दीपक जोत उजारो .....*
*कहें कबीरा सुनो भैया साधू, मान लगे सो धारों .....*

कबीर कहते हैं कि हमें अपने जीवन में सदैव प्रभु का स्मरण करना चाहिए। उन्होंने हमें यह सुन्दर शरीर प्रदान किया है। यह कायारूपी किला फिर नहीं मिलेगा, चाहे हम कितना भी प्रयत्न कर लें, इसलिए हमें इस सुअवसर का लाभ उठाना चाहिए। प्रभु के भजन में बहुत से व्यवधान हमारे सामने आते हैं। जैसे कि हम मोह तथा माया में भ्रमित रहते हैं। इसी कारण हम प्रभु को भुला देते हैं। लेकिन प्रयत्न करने से वह बाधा भी दूर हो सकती है। हे मानव! तू इस भ्रम से अपने को उबार और हरि स्मरण कर, तो तेरे हृदय में एक पवित्र ज्योति प्रज्ज्वलित हो जायेगी। इस ज्ञानरूपी ज्योति से मन का अंधकार नष्ट होगा।

कबीर कहते हैं कि यह बात अगर तेरे मन में आये तो उसे अपना ले, वरना भ्रमित ही रहेगा।

*चलती बेर चदरिया उढ़ादे,*
*माई बाप मिल गोंना कर दव,*
*फेर न लेत खबरिया,*
*चर जनें मिल डुलिया सजाई,*
*लै गये बाहर नगरिया,*
*डुलिया उतार समंद ढिग धर दई,*
*फूंक देत जैसे वन की लकरिया,*
*कहत कबीर सुनो भाई साधू,*
*फेर न आहों नगरिया।*

अब तो यहाँ से जाना हो रहा है, क्योंकि मेरा गौना हो गया है। अत: मुझे चादर ओढ़ा दो। मेरे माता-पिता ने मिलकर मेरा गौना कर दिया है। विदाई के समय चादर ओढ़ाई जाती है। इसी तरह से जब इस संसार से विदा होना होता है, तो मृतक को कफन ओढ़ाने की प्रथा है। कबीर ने दोनों को प्रतीक रूप माना है। जिस तरह दुल्हिन की डोली सजाई जाती है, वैसी ही हमारी अर्थी की तैयारी होती है। दुल्हिन को चार कहार कंधे पर ले जाते हैं, तो मृतक को भी चार लोग कंधों पर ले जाते हैं। .... कैसी सजीव कल्पना है। दोनों को ही बाहर ले जाना होता है। मृतक की डोली ले जाकर श्मशान में उतारकर उसकी दाह क्रिया की जाती है। कबीरदास जी कहते हैं कि मृत्यु के उपरांत फिर वापिस यहाँ आना नहीं होगा।

*हो जैहें प्रान विराने इक दिन, हो जैहें प्रान .....*
*लीप पोतकें भौं में धर दये, घर के लोग डराने,*
*एक तो टटिया टाट करत हैं, एक तो लेत उमाने .....*
*चार जनें मिल धरें कंदा पै, ऊपर तंबू ताने,*
*काली हांड़ी चल रयी अंगारें, पाछें से चलत लदाने .....*
*पांच पंच मिल लकड़ी दै दई, तर बैकुंठे जाने,*
*जार-वार कें खाक जा कर दई, ओघट घाट नहानें,*
*सपर खोर कें घरे तो आ गये, तिरिया खों समजाने,*
*कै रये कबीरा सुनो रे साधु, राम के घरे सब जाने,*

*इक दिन हो जैहें प्रान बिराने .....*

एक न एक दिन ये प्राण पराये हो जायेंगे। प्राण यह शरीर छोड़कर चला जायेगा। प्राण निकलने के पश्चात् उस शव को भूमि पर लिटा देते हैं। कुछ समय बाद ही मृतक को श्मशान ले जाने की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। उसकी अर्थी बनाई जानी प्रारम्भ हो जाती है। उस अर्थी पर शव रख दिया जाता है। अर्थी पर कफन डाला जाता है। चार व्यक्ति उसे कंधा देते हैं। एक व्यक्ति काली हांडी जिसमें आग होती है, लेकर अर्थी के आगे-आगे चलता है। आगन्तुक मृतक को पंच लकड़ी देते हैं। मृतक को जलाने के पश्चात् श्मशान यात्रा में गये लोग एक घाट पर स्नान करते हैं, फिर वे लोग मृतक के परिजनों को समझा-बुझाकर अपने घरों को जाते हैं। कबीर कहते हैं कि सबको ही एक न एक दिन राम के घर जाना पड़ता है।

काया का महत्त्व और उसकी नश्वरता दोनों का वर्णन कबीर के बहुत से पदों में आया है। जैसे कायागढ़, चरखा, महल, चुनरिया आदि उनकी काया में हीरा-मोती, लाल-जवाहर जड़े हैं, तो वो हिरन कायारूपी खेत को चर जाता है, गोरी रूपी काया की विदा भी होती है, लेकिन अंत में सब क्षणभंगुर है, नश्वर है, अनश्वर नहीं।

*ननदी सांझे दियला काये ने जरायें, तोरे घुसे महल में चोर।*
*रंगमहल के दस दरवाजे, घुसो कहां सें चोर। ननदी .....*
*ठाट नें टूटें भींट नें फूटी, काहों घुस गए चोर,*
*मार मुगरियां प्रान निकारें, लें गयें खोंपो खोल। ननदी .....*
*उलरी लें गय दुलरी लें गए, लें गए चुनरियां मोर,*
*बारे बलम की पगड़ी लें गए, डारी समुद्र में बोर। ननदी ....*
*मगरें ऊपर कांतर बोलें, लगी राम सें डोर,*
*उठी ननदी दियाला करों, जो लों हो गए भोर। ननदी .....*
*चार जनें मिल द्वारे आयें, जुरों गांव को लोग,*
*कहत कबीर सुनों भाई साधो, मची नगर में शोर। ननदी ....*

कबीर कहते हैं कि मनुष्य को समय रहते सावधान हो जाना चाहिए, क्योंकि हमारा शरीर तो नश्वर है। जब हमें इस संसार से विदा होना ही है तो भगवद् भजन का आश्रय लेना चाहिए। किसी महल में अगर अंधकार होगा तो उसमें चोर अंधकार का लाभ उठाकर पहुँच ही जायेंगे। उसी प्रकार हमारे कायारूपी गढ़ में यमराज ने सेंध लगा ली, हमने अज्ञानतावश पहले ध्यान ही नहीं दिया था। इस किले में जब चोरों का प्रवेश हुआ तो न तो उन्होंने इसकी दीवाल तोड़ी, न ही छत की क्षति हुई और चोर तो किले के अंदर ही प्रवेश कर गये। यम के दूत आये, उन्होंने इस कायागढ़ के प्राण निकाले और चलते बने। वे सब कुछ लेकर चले गये।

ऊपर से किसी ने सचेत किया, उसका तो प्रभु में ध्यान था। जब तक वह कुछ समझ पाया, तब तो भोर हो ही गई। दीपक ही नहीं जल पाया। अब पश्चाताप करने से क्या होगा, हमने अवसर रहते हुए भी सावधानी नहीं बरती? जीव के चले जाने पर मृतक के यहाँ स्वजन परिजन एकत्रित हुए, काफी शोर-शराबा हुआ, लेकिन सब व्यर्थ था, जाने वाला तो चला ही गया था।

*जे सांसें घरी दो घरी के लाने,*
*माने चाय ना माने। जे सांसें .....*
*दिन जाने ना रात जाने ना।*
*ना जाने ठौर ठिकाने। जे सांसें .....*
*देश विदेश ना हाठ पहिचानो,*
*चलें ना कौनऊ बहाने। जे सांसें .....*
*सांसों से संसार चलत है,*
*सांस जीवन के लाने। जे सांसें .....*
*रिश्ते नाते कुछ ना जाने,*
*सांसें प्रभु ही जाने। जे सांसें घरी .....*

प्रभु ने हमें यह श्वास रूपी जीवन बहुत थोड़े समय को दिया है। इसे हमें मान लेना चाहिए, नहीं मानोगे तो क्या फर्क पड़ेगा? इस जीवन में व्यक्ति बहुत कुछ करता है, देश-विदेश की यात्रायें भी करता है। अपने मन को वह भ्रमित रखता है, लेकिन इसका कोई लाभ नहीं मिलता। यह संसार तो श्वास पर ही टिका है। श्वास निकली तो सब कुछ पड़ा रहता है। हमारी आशायें, आकांक्षायें, नाते-रिश्ते सब यहीं छूट जाते हैं।

*दिन निकट गवन के आन लागे,*
*केश स्वेत दिखान लागे।*
*इन्द्रिय शिथल विकल-विकल भई काया,*
*नैनन नीर बहान लगे। दिन निकट .....*
*जिन पर हुकम कर रए अब लों,*
*उनई सें अब गिगयान लगे। दिन निकट .....*
*राम गोपाल गोपाल भजन बिन,*
*यम के दूत दिखान लगे। दिन निकट .....*

जीवन की सांध्य बेला के पूर्व कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होने

लगते हैं। यथा – बालों का पकना, इन्द्रियों का शिथिल होना आदि। जीवन की इस अवस्था में हमें प्रभु के स्मरण का सहारा लेना चाहिए। कवि कहता है कि उनके केश श्वेत हो गये, इन्द्रियों में शिथिलता आ गई, आँखों से अश्रुपात होने लगे, शरीर में विकलता आती गई, अभी तक हम जिन बच्चों पर अपना आदेश चलाते रहे, अब ऐसी स्थिति है कि हम छोटी-बड़ी जरूरतों के लिए उनके समक्ष गिड़गिड़ाने लगे। कवि कहता है कि प्रभु के भजन के बिना अब उसे मृत्यु के निकट आने का अंदेशा होने लगा है।

जो संसार में जन्म लेता है उसके पीछे मृत्यु लगी हुई है। इसलिए जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अपरिहार्य है।

*'स्वकर्मवशत: सर्वजन्तूनां प्रभवाप्ययौ'*

अपने-अपने कर्मों के अनुसार सभी प्राणियों का जन्म और मरण होता है। यह शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। शरीर का व्यय होता है और आत्मा का व्यय नहीं होता। शरीर अशुद्ध है और आत्मा शुद्ध है। शरीर का जन्म-मरण होता है, आत्मा का नहीं।

*हो गव काया नगर गढ़ खाली,*
*बीच महल में गोला ठनके, बान लगे असमानी .....*
*ज्ञानी से तो ज्ञानी मिल रये,*
*अज्ञानी-अज्ञानी .....*
*तारो लगो है बंद कोठरी,*
*ओमें लगी इंदियारी,*
*ज्ञानी मनुवा निकर जात है,*
*नगरी हो गई खाली .....*
*ये हंसों की लूट मची है,*
*कोऊ नहीं कहरव ध्यानी,*
*कै रये कबीरा सुनो भैया साधू,*
*कैसे कढ़ हो ज्ञानी .....*

× × ×

*काऊ दिन लद जायेगा बनजारा,*
*घोड़ा छूटा महल सें रे, कसवा लगी पुकारा,*
*दस दरवाजे बंद पड़े हैं, निकल गया असवारा,*
*लाल पलंग और तोषक तकिया, जाजम लाल गुलाला,*
*लाल गुलाला के धवला उड़ गये, जब जमराज विराजा,*
*ढाल रोई तलवरिया रोई, खुंटी टंगे हथियारा,*
*मोंड़ा-मोंड़ी बिलखत छोड़े, रोवत छोड़ी घर नारा,*
*इक बनजारी घर-घर डोले, लेय लकुटिया हाथा,*
*कहें कबीर सुनो भाई साधौ, ना कोई साथा।*

किसी न किसी दिन इस जीवन की इति होनी है। हम तो इस शरीर में एक सौदागर के रूप में आये हैं, जिस तरह से बनजारे अपना वनज व्यापार करने हेतु अलग-अलग स्थानों पर जाते हैं तथा व्यापार होने के पश्चात् चले जाते हैं, ठीक वैसे ही महात्मा कबीर ने हमारे जीवन की तुलना बनजारे से की है। जैसे ही शरीर से जीवन निकला कि पुरा-बस्ती में खबर फैल गई, परिजन-पुरजन वहाँ आ गये। नाड़ी के दस स्थान होते हैं, सब देख लिए ... वे सब बंद हैं .... जीव तो निकल गया। मृतक का दाह संस्कार होना है, उसके शरीर को अर्थी पर रखा गया, ऊपर से लाल रंग का कफन डाला गया तथा गुलाल छिड़का गया। मृतक के जीवन से सम्बन्धित उसकी समस्त वस्तुएँ ज्यों की त्यों पड़ी हैं। परिजन रुदन करते हैं। बच्चे, पत्नी, भाई-बहिन सब छूट गये। यह मृत्यु तो घर-घर जाती है। कबीरदास जी कहते हैं कि कोई भी उस जीव के साथ नहीं गया।

**ईसुरी की फागें**

*मानुष होनें कै ना होनें, रजऊ बोल लो नौंने।*
*जियत-जियत लौं सबके नाते, मरे घरी भर रोंने।*
*कितनी बेरां प्रान छोड़ दये, कीके संगै कौंने।*
*'ईसुर' हात लगै ना हड़िया, आवै सीत टटौंने।।*

मनुष्य जीवन में हँसी-खुशी से बोलना ही सार है। जीते जी ही सबके नाते हैं, मरने पर कौन किसके साथ प्राण छोड़ता है। जैसे एक चावल से पूरी हांडी का मर्म जान लिया जाता है, वैसे ही एक जीवन का दूसरे के साथ थोड़ी देर का सम्बन्ध है। पूरे काल की थाह कौन ले पाता है? यह जीवन ऐसा है जैसे कोई हंस अपना देश छोड़कर विपत्ति का मारा अकेला आ पड़ा हो और समुद्र का किनारा छोड़कर किसी ताल के किनारे आ बैठा हो। जिसने कभी मोती चुगे थे, वह अब कंकड़ चुग रहा हो और इस बात की प्रतीक्षा में हो कि कब अपने देश में, अपने कुटुम्ब से मिल पायेंगे।

*हंसा फिरत विपत के मारे, अपने देश बिनारे।*
*अब का बैठे ताल-तलैयां, छोड़े समुद्र किनारे।*
*चुन-चुन मोती उगले उननें, ककरा चुनत बिचारे।*
*'ईसुर' कात कुटुम्ब अपने सें, मिलवी कौन दिना रे।*

इस संसार में मनुष्य अनेक हैं, जिन्हें सबेरे से शाम तक हम

देखते रहते हैं, किन्तु जो अपना प्रेमी है, उसकी दो आँखों के बिना यह संसार सूना है –

*बसती बसत लोग बहुतेरे, कौन काम के मेरे।*
*बैठे रहत हजारन कोदीं, कबहुं न जे दृग होरे।*
*गैल चलन गैला रे चरचे, सब दिन सांझ सबेरे।*
*हाय दई उन दो आंखन बिन, सब जग लगत अंधेरे।*
*'ईसुर' फिर तक लेते उनखां, वे दिन विधि ना फेरे।*

उपरोक्त तीनों फागें महाकवि ईसुरी के उदात्त विचारों की सूचना है और उनकी आध्यात्मिक करुणा बहुत ही प्रभावोत्पादक है।

*बखरी रइयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।*
*कच्ची भीत उठी माटी की, छई फुस चारे की।*
*बे बन्देज बड़ी बेबाड़ां, जेई में दस द्वारे की।*
*एकौ नई किबार किबरियां, बिन कुंजी तारे की।*
*ईसुर चाय निकरो जिदना, हमें कौन वारे की।*

प्रियतम के दिये हुए मकान में किराएदार की हैसियत से रहते हैं। मकान भी ऐसा नहीं जो प्रत्येक मौसम और परिस्थिति का सामना कर सके। इस शरीर रूपी मकान में दस इन्द्रिय रूपी द्वार हैं, जिनमें न कोई किवाड़ है और न किवड़ियाँ, ताला–चाबी का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जब इस प्रकार का मकान है तो उसमें रहने का क्या लोभ और क्या लाभ, जिसमें किसी प्रकार की रक्षा नहीं हो सकती, उसमें रहने का क्या मोह?

जब साधक इस स्थिति पर पहुँच जाता है तो वह स्थितप्रज्ञ की कोटि में आ जाता है और परमात्मा की भक्ति का सच्चा अधिकारी होता है और उसके वरदान का भी। यह संसार असार है और देह भी नाशवान –

*राखें मन पंक्षी ना रानें, इक दिन सब खां जाने।*
*खालो पीलो लैलो दैलौ, एही लगै ठिकानें।*
*कर लो धरम कछु बा दिन खां, जा दिन होत रमानें।*
*'ईसुर' कई मान लो मोरी, लगी हाट उट जानें।*

यह मनरूपी पक्षी अर्थात् जीव इसे तो एक दिन जाना ही पड़ेगा, क्योंकि जनम के साथ मृत्यु अवश्यंभावी है, यह ध्रुव सत्य है। ईसुरी कहते हैं कि हमें जीवन मिला है तो हम खाना–पीना, लेना–देना सब कुछ कर लें, लेकिन इन सबके साथ ही प्रभु का भजन, धर्म–कर्म भी आवश्यक है, क्योंकि अंत समय में सत्कर्म ही काम आयेंगे, संसार का यह मेला तो तुम्हारे जाते ही उठ जायेगा।

*हम खां लेव बालम ओली में, प्राण कड़त बोली में।*
*आये बैद लयें रस ठाड़ें, का होने गोली में।*
*हात हमारो सबने देखो, नई प्राण चोली में।*
*'ईसुर' ले गये विदा करावें, चार जने डोली में।।*

अंत समय में अर्थात् मुत्यु के पूर्व जीव को बहुत कष्ट होता है। जीव शरीर से निकलना चाहता है, तो शरीर को कष्ट होता है। उसके पास उसके परिजन बैठे हैं, जाते समय उसे लगता है कि कोई प्रिय उसे अपनी गोदी में ले–ले, अब तो प्राण निकल रहे हैं। वैद्य आये उन्होंने इलाज किया, लेकिन कुछ नहीं हुआ। वैद्य ने देखा तो उसकी नाड़ी भी नहीं थी, जीव चला गया। ईसुरी कहते हैं कि जीव के विदा होने पर शरीर की अंत्येष्टि कर दी जाती है।

*तन के तनक भरोसे नइयां, राखै जाल गुसइयां। तन के .....*
*ना काऊ के भैया भौजी, कोउ काउ को नइयां। तन के .....*
*मुट्ठी बांध के आये हैं, हाथ पसारे जायें,*
*हम खों पार दये भौ मइयां।। तन के...*

इस शरीर का तनिक भी भरोसा नहीं है। ईश्वर लाज रखे। न तो कोई किसी का भाई है और न कोई किसी की भाभी। इस संसार में मुट्ठी बांधे हुए जन्म लिया था और जब मरने लगे तो हाथ पसर गये। कितनी विचित्र बात है कि जिस शरीर को जीवन काल में सभी चाहते थे, उसे मरते ही धरती पर तुरन्त लिटा दिया।

**छंदयाऊ फाग**

साखी : *हंस लिबउआ आ गये, कालबली बलवान।*
*बांह पकर कैहन लगे, करो कछू अब ध्यान।।*

टेक : *हंसा काल बली सें केरओ, बइयां काय पकर रओ।*
छंद : *मेरी काय पकर रओ बइयां, तैने खबर करी है नइया।*
*लैंके आ गओ डोर गिरइयां, मेरे लानें।*
*मेरी कटबे खड़ी उनारी, हारै कड़ गये लरका नारी।*
*मोखों करनै अबै बिआरी, नईं वे मानें।*

सैर : *नए ताल ऊपर मोरवो, अब कुआं खुदाने।*
*कोहर पराऔ लैके, पिसिआ खो बुंआने।*
*तीन बीगा लैके, सोई बइ में मिलानें।*
*मौड़ा को सोधन आ गऔ, सो ब्याव करानें।।*

उड़ान : *इतने काम कराके भइया, सोइ संग में चल रऔ।*
*आठ रोज की मोहलत दे दो, लांच कछू में दै रओ।।*

दोहा : *काल बली हंस के कहै, सुन हंसा की बात।*
*तिल घटै न राई बढ़ै, जो हे सई स्यात।।*

टेक : *चिट्ठी चार आप खो भेजी, तुमखों आज गिना रऔ।*

हंस रूपी जीव के प्राण लेने के लिए बलवान काल आ गया और हंस की बांह पकड़कर कहने लगा कि कहाँ खो गये हो, चलो अब चलने की तैयारी करो। हंस कालबली से कहने लगा- मेरी बांह क्यों पकड़ ली? मेरी बात तो सुनो। तुमने मेरी बांह क्यों पकड़ ली? क्या तुमने अपने आने की मुझे सूचना दी थी? जो मेरे प्राणों को लेने के लिए ऐसे आ गये जैसे कोई किसी ढोर को पकड़ने के लिए डोर और गिरमा लेकर आ जाता है। मेरी रबी की फसल कटने के लिए तैयार खड़ी है। मेरी पत्नी और पुत्र हार के लिए रवाना हो चुके हैं और मुझे अभी रात का खाना भी खाना है। कोई मानेगा नहीं।

मुझे अपने नये खेत में कुआँ खुदवाना है। किसी से कुहुर मांगकर खेत में सिंचाई करना है, और पिसी (गेहूँ) की बुवाई कराना है। मेरा खेत छोटा है। उसमें तीन बीघा का खेत खरीदकर मिलाना है। मेरे पुत्र का विवाह शोधन आ गया है। अत: उसका विवाह भी कराना है। सुनो भाई! मैं इतने काम निबटा लूं, तब ही तुम्हारे साथ चलता हूँ। मैं तुम्हें कुछ रिश्वत भी दे सकता हूँ। मेरी बात मानकर मुझे आठ दिन की मोहलत दे दो।

कालबली हँस पड़ा। कहने लगा- अरे! कोई सुनो, इस हंस की बात, क्या कह रहा है। जबकि सभी को ज्ञात है कि मेरे निश्चय में न तो तिल जितनी कमी आती है और न राई जितनी बढ़ती ही होती है। अरे सुन! मैंने तो तुझे चार-चार बार पत्र भेजकर सूचित किया है। मैं गिनाये दे रहा हूँ कि वे पत्र मैंने कब-कब भेजे।

छंद : *भेजी हमनें पैली पाती, तुमरे सिर पै आइ सुपेती,*
*तुमरी तोइ समज नई आती, नइं ध्यान करौ।*
*पाती दूजी हम पौचाई, जा पे पक्की सील लगाई,*
*तुमरे दांत गिरे जब भाई, नई कूत परौ।*

सैर : *तीजी तो पाती भेजी, जब आँख बनी है,*
*चश्मा तो लगाकर के, जब बात करी है।*
*चौथी तो पाती भेजी, जब कमर झुकी है,*
*लठिया तो लेके तुमने, जब गैल निगी है।*

उड़ान : *पाती कौ नइं ध्यान करो तुम काल अरारे आ गऔ,*
*नई बहानौ चल रओ।*

दोहा : *कालबली और हंस की, काया सुन रइ बात।*
*रो-रो कें कहने लगी, करम ठोक रह हात।।*

टेक : *अब की बलम छोड़ दो लाला नई सिंगार बिगर रऔ।।*

कालबली बोला- मैंने पहली चिट्ठी भेजी तो तुम्हारे सिर के बाल सफेद हो गये। दूसरी चिट्ठी पक्की सील लगाकर भेजी तो तुम्हारे दाँत गिर गये और तुम्हें पता भी नहीं चला। तीसरी चिट्ठी भेजने पर तुम्हारी आँखें खराब हो गई और तुम चश्मा लगाकर बात करने लगे। चौथी चिट्ठी भेजने पर तुम्हारी कमर झुक गई और तुमने लाठी के सहारे आना-जाना शुरू कर दिया। अब तुम्हारा काल तुम्हारे निकट आ गया है। कोई बहाना मत बनाओ और न ही किसी चिट्ठी-विट्ठी की बात करो।

कालबली और हंस की बातचीत काया (शरीर) सुन रही थी। सुनकर वह अपना करम ठोंकने लगी। फिर काल से बोली- अरे देवरजी! इस बार मेरे स्वामी को छोड़ दो, नहीं तो मेरा सारा सिंगार उतर जायेगा। (मैं विधवा हो जाऊँगी)

छंद : *हा हा खाऊं परौं मैं पइयां, लाला छोड़देव तुम सइयां,*
*जिन संग डारत मैं गलबइयां, रंगती रंग में।*
*जिनखों फूल सेज लगवाऊं, बालम छाती से चिपकाऊं,*
*बालम आज कड़न नइं पाऊं, मेरे मन में।।*

सैर : *लांच दऊं लाल कुछ टैम बड़ा दे,*
*बालम की सजा काटो, चाय हमें करा दो।*
*कानून होवै कोनऊं, और राय बता दो,*
*अब की तौ बलम छोड़ो और लाज बचा दो।।*

उड़ान : *कालबली अब सच्ची मानो, कंत कलेवा कर रऔ।*
*बिन बालम के कोऊ नइं पूंछै, संग कोऊ नई दै रऔ।*

दोहा : *कालबली हँस कें कहे, सुन काय चित लाय।*
*बलम तुम्हारे पाउने, आज न रोके जायं।।*

टेक : *खास दिना बालम को आ गओ, सच्ची तोय बता रओ।।*

काया कालबली से कहती है - मैं हाँ-हाँ खाती हूँ, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। लाला, मेरे पति को आज मत ले जाओ, मैं इनके साथ गलबहियां डालती हूँ और जीवन के रंग का आनंद लेती हूँ।

इनके लिए फूलों की सेज सजाती हूँ और इन्हें अपने सीने से लगाये रखती हूँ। मेरी विनती है कि आज मेरे पति मुझसे अलग न हों।

लाला, मैं तुम्हें लांच (रिश्वत) दूँगी। इन्हें कुछ मोहलत दे दो। इन्हें सजा मत दो, चाहे इनके बजाय मुझे सजा दे दो, लेकिन इस बार मेरे स्वामी को न ले जाओ। मेरी लाज रख दो। हे कालबली! तुम सच मानो, मेरा पति अभी कलेवा कर रहा है। पति के बिना एक स्त्री को कोई नहीं पूछता और न कोई साथ देता है।

कालबली हँस कर कहता है- सुन काया, ध्यान देकर सुन। तुम्हारा पति एक मेहमान की तरह है, उसे और अधिक नहीं रुकने दिया जा सकता। मैं सत्य कह रहा हूँ। अब और अधिक मोहलत नहीं दी जा सकती।

छंद : *भोजन दूद भात के करा दो,*
*बल में अपने हाथ खबा दो,*
*संगे धरम पुन्न करा दो, नइं अब जा रये।*
*बांदी कालबली ने मुसकें,*
*जिनके तनक न नैनइ फरकें,*
*ठांड़े कुटुम कबीला फुसकें, मन पछता रये।*

सैर : *भर दुफरै बालम कड़ गये, नई चली काऊ की,*
*काया तो विलख रई है, बिना हंस की।*
*चिता बीच धर दई अब काया मांस की,*
*जुर मिलकें जगन दे दई, जब भई खाक की।*

उड़ान : *ऐसे वे आय लिबहुआ सबके कोउ कभउं नईं बच रऔ।*
*कहें ईसुरी कालबली कौ सब पै फंदा गिर रओ।।*

अत: अपने पति को दूध-भात के भोजन करा दो और अपने हाथों से खिला दो। साथ ही कुछ दान-पुण्य भी करवा दो, क्योंकि इनका जाना अब निश्चित है। इतना कहकर कालबली ने हंस की मुसकें बांधी उसकी आँखें पथरा गई। यह दशा देखकर कुटुम्बीजन रोने और पछताने लगे। ठीक दोपहर के समय हंस के प्राण निकल गये। किसी का भी कोई उपाय कारगर नहीं हुआ। प्राणहीन काया बिलखती सी पड़ी रह गई। लोगों ने हाड़-माँस की काया को चिता पर रख दिया और मुख में अग्नि दे दी, काया खाक बनकर रह गई। ईसुरी कहते हैं कि सबके इसी प्रकार से लिबउआ आते हैं। काल के फंदे से कोई नहीं बच सकता।

*हमखों लेव यार ओली में, प्रान बसे बोली में।*
*एक हात सें हमें समारो, एक हांत झोली में।।*
*दवा हकीम वैद सब हारे, रस नइयां गोली में।*
*कहत ईसुरी भोर के पारे, डार देव डोली में।।*

इस चौकड़िया में मरणासन्न जीव के अंतिम वचन उद्धृत किये जा रहे हैं। अरे भाई! हमें तनिक अपनी गोदी में ले लो। मेरे प्राण मुँह तक आकर अटक गये हैं। अपने एक हाथ में मेरे मृतप्राय शरीर को संभालो और एक हाथ से मेरी झोली को टटोल लो कि उसमें कुछ है या नहीं। मेरी चिकित्सा में दवा व्यर्थ हो गई और हकीम तथा वैद्य सभी प्रकार की चिकित्सा करने वाले हार मान गये। किसी भी गोली (दवा) में इतनी शक्ति प्रमाणित नहीं हुई जो मुझे बचा पाती। ईसुरी कहते हैं कि मैं सबेरे से मरा पड़ा हूँ। मुझे अर्थी में लिटा दो।

**लेद चेतावनी**

*उमरिया थोरे दिनन की पाउनी,*
*जिन करियो मान गुमान। उमरिया ...*
*अरे हां उमरिया जैसे बूंदा ओस कौ,*
*पवन लगे ढुर जाय। उमरिया ..*
*अरे हां उमरिया जैसे पूरा घास कौ,*
*आग लगे जर जाय। उमरिया ...*
*अरे हां उमरिया लीप-पोत भौं में धरे,*
*घर के लोग डरांय । उमरिया ...*
*कहत कबीर सुनो भई साधो,*

*राम नाम संग जाय। उमरिया .....*

यह उम्र थोड़े ही दिन की मेहमान है। इसलिए इस पर गर्व मत करो। अरे! जैसे ओस की बूंदे हवा चलते ही ढुलकर बह जाती हैं, वैसे ही उम्र के साथ होता है। उम्र घास के पूरा के समान है, जो जरा सी चिन्गारी लगते ही जलकर खाक हो जाती है। अरे! जब प्राण निकल जाते हैं तो घर के लोग लीप-पोतकर तुरंत लिटा देते हैं और लोग मृत शरीर से डरने लगते हैं। फिर बाँस और काठ की अर्थी बनाकर उस पर लिटाकर मरघट पर ले जाते हैं तो आगे आग वाली जलती हुई हांडी चलती है। कबीर कहते हैं- अरे सज्जनों! मरने के बाद केवल राम का नाम ही साथ में जाता है और कुछ नहीं।

*मनुआ सो रओ पलंग बिछा कें,*
*रंग महल खों पा कें।*

*इस काया के दस दरवाजे,*
*खिरकी लेओ लगा कें। मनुआ सो रओ .....*
*पहरेदार बने रओ चौकस,*
*नहिं चोर धंसे फिर आ कें। मनुआ सो रओ .....*
*भोर भयें अब कहें बुन्देली,*
*न रे जेहों मौं बा कें। मनुआ सो रओ .....*

अरे मन! तू रंगमहल में पलंग बिछाकर इतनी बेफिक्री से सो रहा है। तुझे पता नहीं, इस शरीर के दस दरवाजे हैं। कम से कम एकाध तो बंद कर ले। सावधानी से अपनी रक्षा कर, नहीं तो कोई चोर घुस आयेगा। अरे मूर्ख! सावधान रह, नहीं तो बाद में तेरा मुँह खुला का खुला रह जायेगा।

*तन के तनक भरोसे नइयां, जाने राम गुसइयां।*
*तरूवर से इक पत्ता टूटो, फिर न डार लगइयां।*
*जमना तट पे बनो चेटका, डलियां शीश धरइयां।*
*जर बर खाक धरन में मिल गई, फिर न चुनन मुनइयां।*
*ईसर कहत सुनो मन प्यारे, कोउ कोउ को नइयां।।*

इस शरीर का कोई भरोसा नहीं है। इसका तो बस राम ही मालिक है। पेड़ से जब कोई पत्ता टूट जाता है तो दोबारा उससे नहीं जुड़ता। यमुना के किनारे श्मशान है, जहाँ चिता सजाई गई, फिर मुख में आग लगाई गई। जब शरीर जलकर खाक हो गया तो वह खाक धरती में मिल गई। किसी को चिंता भी न रही कि तुम्हारे प्राण रूपी पंछी कहाँ चले गये। ईसुरी कहते हैं- अरे मन मूरख! सुन, इस संसार में कोई किसी का नहीं है।

**फाग चौकड़िया**

*मोरो अब गौनो नियरानों, करबी कौन बहानो।*
*आउन लगे पिया के घर के, टिया टारिये कानो।*
*छूट जात साथ सबही को, मन मतंग पछतानो।*
*इक दिन होने विदा ईसुरी, आगमन आन दिखानो।*

मेरे गौने का समय नजदीक आ गया है, अब कौन-सा बहाना करें। मुझे लेने हेतु ससुराल वाले आने लगे हैं। कब तक क्या-क्या बहाने करूँ? मेरा मन घबरा रहा है कि सब संगी-साथी छूटे जाते हैं। ईसुरी कहते हैं कि एक न एक दिन तो जाना ही पड़ेगा। भविष्य दिखने लगा है, जिसने इस संसार में जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन तो विदा होना पड़ता है, उसके सामने कोई बहाना नहीं चलता। इस संसार से विदा होते ही सारे रिश्ते-नाते छूट जाते हैं। यही सबसे बड़ा सत्य है।

*खबर कर लइयो आज, बाहे दिन की दोरे में खड़े जमराज।*
*दोरे में खड़े जमराज, घरी भर की ना मानें।*
*राव रंक और शूर, कूर खें नें पैचाने।*
*नाक कान मुख आंक के, करकें बंद द्वार।*
*ऊपर से जमराज ने, फिर दई गदों की मार।*
*दई गदों की मार, नीर नयनों में बहते।*
*बोलत बनें नई बात, बात सेनों में करते।*
*मात पिता भ्राता बहिन, घेर बैठ गये आन।*
*पता लगे न काहू खें, जे कांहो कड़ गये प्रान।*
*कांहो कड़ गये प्रान, गई ने संग में माया।*
*लोक कुटम परवार, गई ने डग भर नारी।*
*जे काया के संग में, हंसा करै विलाप।*
*वो भी संग में ने गई, फिर क्या दुनियां की आस।*
*क्या दुनियां की आस, चलो अब आंगे भाई।*
*इस मारग में होत, जीव खों बड़ी कठनाई।*
*कांटे कंकर परत हैं, और ततूरी घाम।*
*कई जोजन ने मिले, फिर प्राणी खों आराम।*
*प्राणी खों आराम, नदी एक अगम दुधारा।*
*डूबे और अतरांय, कछू ने मिले सहारा।*
*केवट रा बेपीर है, बहै रूधिर की धार।*
*बिना भजन भगवान के, फिर बंदे ने हुइयो पार।*
*हुइयो ने पैले पार, अगन के खम्भ गढ़े हैं।*
*पूंछत हैं पुटयाय कें, हमखां देव बताय।*
*का कहके तुम गेयते, का करकें तुम आय।*
*का करकें तुम आये, कछु नें करो विचारो।*
*पाप पुन्न सब लिखों धरों है, न्यारो-न्यारो।*
*नीलकण्ड कथकें कहें, पूरी करके छान।*
*जो आवै इन्साफ में, फिर पटक देंय ओई खान।*
*खबर कर लइयो आज, वाहे दिन की।*
*दोरे में खड़े यमराज।*

प्राणी का अंत समय आया, उस समय उसे अपने जीवन में किये गये समस्त सत्कर्म-दुष्कर्म दिखने लगते हैं। कवि कहता है कि अरे बंदे! तू उस अंत समय की खबर तो कर कि तेरा क्या अंत होना है? तू तो इस संसार में बिल्कुल ही अकेला है। समय रहते सत्कर्म कर ले, वरन् अंत में पछतावा होगा। तेरे द्वार पर यमराज खड़े हैं, वे तुझे लिवाने आये हैं। वे एक पल के लिए भी विलम्ब नहीं करते। वे राजा, रंक, शूरवीर, कायर किसी को भी नहीं

पहचानते। वे तो शरीर के समस्त द्वारों को बंद करके गदा के प्रहार से जीव के प्राण हर लेते हैं। उस समय प्राणी की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है। मुँह से शब्द नहीं निकलते, शिथिलता के कारण इशारों में बात करता है। अंत समय में सभी घर के लोग, माँ-बाप-भाई-बहिन, पत्नी, बेटे- बेटी आदि पास में बैठे हैं, लेकिन कोई भी नहीं देख पाया कि प्राण पखेरू कैसे निकल गये? कहाँ से निकले? प्राण तो निकल गये, लेकिन सारी उम्र की कमाई गई दौलत साथ नहीं गई, यहीं पड़ी रह गई। घर-कुटुम्ब के लोग जिन्हें इस संसार में रिश्तों के नाम दिये जाते हैं, वे भी साथ नहीं गये। स्त्री भी तो जो जीवनसंगिनी, अर्द्धांगिनी है, वह भी साथ नहीं गई। जीव अपने शरीर के साथ रुदन करता है। अरे! वह शरीर भी तो नहीं गया, जीव के साथ जब शरीर ही संग नहीं जा सकता तो फिर दुनिया में किसका भरोसा?

जीव के जाते ही पाप-पुण्य के लेखे-जोखे के लिए उसे बड़े कठिन रास्तों से जाना होता है। जीव को बहुतेरी कठिनाईयों का सामना करना होता है। वहाँ पर एक असीम नदी है (वैतरिणी), वह रक्त की नदी है, जीव उसी में डूबता-उतराता रहता है। उसका संचालक तो बड़ा निर्दयी है, वह तो साक्षात् यमराज है। जैसे-तैसे जीव ने नदी पार की तो रक्त तप्त खंभ गड़े हैं, उसमें जीव को यमराज बाँध देते हैं तथा पूछते हैं, कि हे मानव! मुझे यह बतलाओ कि यहाँ से जब तुम इस मनुष्य योनि में गये थे, तो क्या कहकर गये थे कि हम वहाँ जाकर क्या करेंगे? और सारे जीवन में तुमने क्या किया? मनुष्य के जीवन का लेखा-जोखा वहाँ होता है। कवि नीलकंठ कहते हैं कि पाप-पुण्य के आधार पर ही जीव को अलग-अलग योनियों में जन्म मिलता है। इसलिए मनुष्य को सत्कर्म ही करना चाहिए तथा प्रभु का स्मरण करना चाहिए, जिसमें जीव नरक में होने वाले कष्टों से तो बच जाता है।

*हंसा भये चालनहार, बहुर नई मिलबे के।*
*जम आये जमलोक सें, लयें कगदवा हांत,*
*जिनके पन्ना हो गये, चलो हमारे साथ।*
*जम जोतें गाड़ी चले, बरे अगन की झार,*
*कछु-कछु हंसा पार उतर गये, कछू हैं उतरन हार।*
*हंसा पिंगल देश के, उड़ आये बिराने देश,*
*डारे मोती नें चुनें, हीड़े अपने देश।*
*उड़ हंसा खेतों गये, मूरख बिड़ारन जांय,*
*अरे-अरे मूरख बाबरे, हंस नें कौरों खांय।*

एक बार जीव शरीर से निकल जाये तो वह पुनः वापिस नहीं आता, फिर चाहे कितने उपाय कर लो। यम के दूत अपना लेखा-जोखा लगाकर आते हैं। जिसकी उम्र पूरी हुई कि उसका बुलावा आ जाता है। यम के दूत प्राणों को लेकर चले गये। जिस गाड़ी में जा रहे हैं, उसमें भैंसे जुते हैं। आगे-आगे अग्नि की लौ, पीछे यमदूतों की गाड़ी। कुछ जीव तो भवसागर के पार उतर गये, कुछ उतरने वाले हैं। कुछ जीव पिंगल देश के हैं, जो कि गलती से इस जगह आ गये हैं। वे हंस रूपी जीव मोती भी नहीं चुगते, क्योंकि वे अनजानी जगह पर आ गये हैं। उन्हें अपनी जन्मभूमि की याद सताती है। उन्हें यहाँ अच्छा नहीं लगता। तत्पश्चात् वे हंस रूपी जीव दूसरे खेतों की ओर चले गये। कुछ अज्ञानी लोग उन्हें वहाँ से निकालने का प्रयास करते हैं। वे यह भी नहीं समझते कि उस जगह का वे जीव कुछ भी नहीं लेंगे।

*तनक भरोसो नैयां तन के, तनक भरोसे नैयां रे।*
*माटी में मिल जाने ये तन खों, माटी में मिल जाने रे।*

मनुष्य शरीर नाशवान है, इसका जरा-सा भी भरोसा नहीं। जीव के निकल जाने के पश्चात् इस नश्वर शरीर को पंचतत्त्वों में विलीन हो जाना है। पाँच तत्त्वों से निर्मित शरीर उनमें ही मिल जाता है।

*सबखौं राम-राम मोरे भाई।*
*राम-राम मोरे भाई रे, सबखौं राम-राम मोरे भाई जी।।*
*तीन दिना तक तिरिया रोवे, छै मईना तक भाई।*
*अरे जनम-जनम नो माता रोवे, सो कर गये आस पराई रे ।*
*कर गये हैं आस पराई रे, मोरे प्यारे सबखौं राम-राम .... ।।1।।*
*पेट पकरकें रे माता रोई, बांय पकरकें जे भाई।*
*लिपट-लिपट के रे तिरिया रो रई, सो कर गये हैं आस पराई।*
*कर गये हैं आस पराई सो, सबखौं राम-राम ..... ।।2।।*
*माता तो के रयी जो पुत्र हमारो, बेन कहे रे मोरो भाई जी,*
*तिरिया तो कहे जो पुरुष हमारो, हंसा तो अकेलो जाई रे ।*
*हंसा अकेलो जो जाई, सो सबखौं मोरी राम-राम ..... ।।3।।*
*हाड़ तो मांस सब ऐसे तो बर गये, कांस तो जलत मोरे भाई।*
*के रये कबीरा सुनो भैया सादू, संगे कोऊ नें जाई रे ।*
*संगे कोऊ नें जाई सो सबखौं, मोरी राम-राम मोरे भाई ।।4।।*

अब सबको मेरी राम-राम है, क्योंकि मैं तो इस संसार से विदा हो रहा हूँ। मृत्यु को प्राप्त हुए मृतक की पत्नी तीन दिन तक रुदन करती है। उसका भाई छः मास तक उसकी याद करके रोता

है। माता जिसने उसे अपनी कोख में नौ मास तक रखा था, वह अपना पेट पकड़कर अपने पुत्र को याद करके अपने जीवन भर रोती है। भाई को बाँह माना जाता है, अत: वह बाँह पकड़कर अपने मृतक भाई के लिए रोता है। मृतक की स्त्री बड़ी कारुणिक दशा में उसके शव से लिपटकर रोती है, अब उसका कोई नहीं रहा, वह दूसरों पर आश्रित हो गई।

श्मशान में जब मृतक को अग्नि दी गई तो उसका शरीर ऐसे धू-धू कर जलने लगा, जैसे सूखा माँस जलता है। कबीरदास जी कहते हैं कि इतने नजदीकी सम्बन्ध होते हैं, लेकिन मृतक को तो अकेले ही जाना होता है, कोई भी उसके साथ नहीं जाता।

*एक दिन पन पंछी उड़ जेंहें।*
*काऊ नल से बैर ने करियो सातऊ धरम नसेंहें।*
*ये देईरा को गरब ने करियो मीटी में मिल जेंहें।*
*एक दिन पन ..... ।।*
*सूको ताल कमल मुस्काने फूल वासना रेंहें।*
*जैसे मोती चढ़े ओस के घाम लगे दूर जेंहें।*
*एक दिन पन ..... ।।*
*काल करत ते आजई करले ना पीछू पछते हें।*
*जमराजों की चले मुगरिया प्रान नरक खों जेंहें।*
*एक दिन पन ..... ।।*
*कहत कबीर सुनो भाई साधू जस अपजस रे जेंहें।*
*एक दिन पन ..... ।।*

एक दिन आत्मा रूपी पक्षी उड़ जायेगा, इसलिए प्रभु के लिए अप्रिय कोई कर्म नहीं करना। प्रभु से शत्रुता नहीं करना, नहीं तो सातों धर्म नष्ट हो जायेगा। इस देश (शरीर) का अभिमान न करना, यह तो क्षणभंगुर है, यह मिट्टी में मिल जायेगा। जिस प्रकार तालाब के सूख जाने पर कमल के फूल मुरझा जाते हैं, जैसे ओंस की बूंदें मोती जैसी दिखती हैं, किन्तु सूर्य के ताप से अपने आप समाप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार ही यह शरीर नष्ट हो जायेगा। इस कारण जो कार्य कल करने की सोचते हो, आज ही कर लो, नहीं तो पीछे पछताओगे, क्योंकि यमराज की मूसली लगने पर प्राण निकल जायेंगे। मृत्यु कब आ जाये, इसका पूर्वानुमान असम्भव है।

*पिया मोरे सो गये करी नैयां बात मन की।*
*पेले पिया मोरे हँस बोलत ते बात करत ते मन की।*
*अज नींद ने ऐसो धरो भूल गये हर नाम।*
*खबर नैयां तन की, पिया मोर ..... ।*
*तुम तो पिया बिराने हो गये, उठकें करो जवाब।*
*हम चींनत तुम चींनत नैयां, प्रीत दई टोर।*
*लगन बलमा की, पिया मोरे ..... ।*
*हम चींनत तुम चींनत नैयां, प्रीत दई टोर।*
*लगन बलमा की, पिया मोरे ..... ।*
*हम तो पिया अरज करत हैं, हेरो मोरी कोद।*
*सासरो छूटो मायको छूटो, आफत पे डोले नाव।*
*खिवैया नईयां कोई, पिया मोरे ..... ।*
*करम करें करम गति पाई, करम लिखी सो होई।*
*कहत कबीर सुनो भाई साधु भेद सकें ने कोई। पिया मोरे..... ।।*

मेरे पिया (परमात्मा) अब मुझसे विमुख हो गये हैं। मेरे पिया सो गये और मन की बात नहीं कर रहे हैं। पहले पिया हँस-बोलते थे, अब कोई बात नहीं करते। आज मुझे नींद ने ऐसा घेरा है कि सब भूल गये। मेरे प्रियतम! उठकर जवाब दो। हम तो तुम्हें पहचान रहे हैं, पर तुम नहीं जानते। प्रीत क्यों तोड़ दी है? हम तो पिया विनती करते हैं कि मेरी ओर देखो। मेरी ससुराल छूट गई, मायका छूट गया। मेरी जीवन नैया आफत में डोल रही है, कोई खेने वाला नहीं है। जैसा कर्म किया है, वैसी ही गति पाई है। जो भाग्य में लिखा है, वही तो होगा।

*ननदी लगे हैं महल में चोर।*
*मंगरे बैठी बोले सुहागन लगी राम से डोर।*
*उठो ननदी दियरा कर ले घर में हो गये भोर।*
*ननदी लगे ..... ।*
*ईंट ने फूटी भींट ने फूटी चोर कहाँ से आयो।*
*ई काया से प्रान निकारे ले गओ खोपा फोर।*
*ननदी लगे ..... ।*
*उलरी ले गओ दुलरी ले गओ चुनरी बड़ी अमोल।*
*बारे बलम की अंगिया ले गओ दई जमुना में बोर।*
*ननदी लगे ..... ।*
*लाल चदरिया ओढ़े नदनियां अब चलबे की बेर।*
*कहत कबीर सुनो भई साधु मोखों दई है छोर।*
*ननदी लगे ..... ।*

ननदी! शरीर रूपी महल में चोर लग गये हैं। मंगरे पर बैठी सुहागन बोल रही है कि मेरी तो राम से डोर लगी है। उठो ननदी! दिया जला लो, घर में सुबह हो गई है। ईंट नहीं टूटी, दीवाल नहीं टूटी, पर यह चोर कहाँ से आ गया और इस शरीर से प्राण निकालकर

ले गये हैं। प्यार-दुलार सभी ले गया और पिया अर्थात् ईश्वर की दी जीवरूपी अनमोल चुनरी भी ले गया। कम उम्र के बालम की अंगिया ले जाकर यमुना में डुबा दी। लाल चादर ओढ़कर सुहागन बन। हे ननदी! पति के संग जाने का समय आ गया है।

*भज ले राम उमर रई थोरी।*
*शीश महल के दस दरवाजे जऊ ने डारी डोरी।*
*आवत जात लखे नैया काऊ ने हंसा निकल गये चोरी-चोरी।*
*भज ले राम ..... ।*
*माथे पकर के माता रोवे बांये बकसऊआ भाई।*
*तें का रो रई मूरख तिरिया तोरी रास पजो का कोई।*
*भज ले राम ..... ।*
*चार जने जुर कंधा लीनी चले काठ की घोड़ी।*
*जाये उतारी मरघट किनारे बिछड़ गई भैयों की जोड़ी।*
*भज ले राम ..... ।*
*पंच उठ पंच लकड़ी दीन्हीं देत दायनो फेरी।*
*कहत कबीर सुनो भई साधू फूंक दई फागुन सी होरी।*
*भज ले राम ..... ।*

हे मनुष्य! राम का भजन कर ले! उम्र अब थोड़ी रह गई है। शीश महल रूपी शरीर के दस दरवाजे हैं, जिसमें आते-जाते कोई देख नहीं पाया कि हंसा कैसे चोरी-चोरी निकल गये, आत्मा कैसे निकल गई? माथा पकड़कर माता रोती है, बाँह पकड़कर भाई! तू क्यों रो रही है औरत, क्या तेरे लिए ही कौई पैदा हुआ है? चार व्यक्ति मिलकर कंधा दिया और लकड़ी की घोड़ी अर्थात् अर्थी पर ले चले, अर्थी मरघट पर जाकर उतारी है और इस तरह से अपने परिवार से बिछुड़ गया। पाँच लोगों ने लकड़ी ले दाहिनी ओर से चक्कर लगाकर शरीर को ऐसे जला दिया, जैसे फागुन की होली जलाते हैं।

*चदरिया राम बिन रंग हीनी।*
*अष्ट कमल नो चरखा चाले पांच तंत्र गन दीनी।*
*नौ दस मास बुनन में लागे बुनत-बुनत बुन दीनी। राम बिना .. ।*
*लेके चादर बाहर आये रंगरेजा खों दीनी।*
*प्रेम प्रीत के बोल जो घर दे सतगुरु के घर दीनी। राम बिना ... ।*
*उन मूरख ने ओढ़ने जानी दाग दगाली कीनी। राम बिना .... ।*
*जा ओढ़ी प्रहलाद भगत ने संतों निरमल कीनी।*
*कहत कबीर सुनो भई साधू ज्यों की त्यों धर दीनी। राम बिना ... ।*

चदरिया रूपी यह शरीर राम नाम के रंग बिना रंगहीन है। इस शरीर को पंच तत्त्वों से नौ-दस माह में बनाया है। इस शरीर को लेकर दुनिया में आये और रंगरेज रूपी दुनिया को दो प्रेम रूपी बोल के साथ सतगुरु को दे दी। इस चादर रूपी देह का गर्व नहीं करना, क्योंकि यह दस दिन के लिए ही दी गई है। उन मूर्खों ने उसे ओढ़ के सम्भालना नहीं जाना और दाग लगा दिये। यह चदरिया भक्त प्रहलाद ने ओढ़ी थी और संतों ने उसे निर्मल की थी।

कबीरदास जी कहते हैं कि इस चादर को ज्यों की त्यों धर दी है, अर्थात् कबीरदास ने बिना किसी प्रकार का दाग लगाये यह शरीर रूपी चादर जस का तस रख दिया।

*मरघट में राम का गत होने ई तन की।*
*ऐसो रूप सलोनो रे रेहें ने आर।*
*मन माया में भूलो-भूलो सब संसार।*
*मरघट में ..... ।।*
*चार जनें जुर ले जेरें मरघट में राम।*
*ले लूगरा तन वारों कर देहें राख।*
*मरघट में ..... ।।*
*माटी को तन माटी में मिल जेहें आर।*
*रेहें ने नाम निशानी जम आये पास।*
*मरघट में ..... ।।*
*जा नदिया भो सागर रे जाके ओर ने छोर।*
*उतर कबीर पेले भये जय बोलो हिंगलाज।*
*मरघट में ..... ।।*

हे राम! मरघट में इस शरीर का क्या होगा? इस बारे में कभी ध्यान किया है? यह सारा रूप सौन्दर्य वहाँ मिट्टी में मिल जायेगा, फिर इस पर क्यों गर्व करते हो? चार आदमी मिलकर मरघट में ले जाकर इस शरीर में आग लगा देंगे। मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल जायेगा। तेरा नामोनिशान तक नहीं रहेगा और वहाँ घास जम आयेगी। यह संसार रूपी सागर का कोई ओर-छोर नहीं है। कबीरदास जी कहते हैं कि जो उस पार उतर जाये, वही सही है।

*एक दिन होने पिरान बिराने।*
*लोय पोत धरनी में पारी घर के लोग डराने।*
*एक ठाटिया ठाट करत है, एक लेत उमाने।*
*एक दिन ..... ।*
*चार जनें जुर कंधा लगाये ऊपर तम्बू ताने।*
*काली हंडिया संगे ले लइ पाछू चलत लदाने।*
*एक दिन ..... ।*

*पांच जने पंच लकड़ी दीनी देत दायनी फेरी।*
*बार बूर केवला कर डारो औघट घाट नहाने।*
*एक दिन ..... ।*
*सपर खोर के घर खों लौटे क्या तिरिया समझाने।*
*कहत कबीर सुनो भई साधू जस अपजस रे जाने।*
*एक दिन ..... ।*

हे मनुष्य! यह माया मोह का त्याग कर दे, क्योंकि किसी भी तरह यह तेरा होने वाला नहीं है। एक दिन तेरे प्राण पराये हो जायेंगे। तब धरती को लीप-पोतकर उस पर तेरे शरीर को लिटा देंगे और जो तुमसे इतना प्रेम करते थे, वही घर के लोग तुमसे डरने लगेंगे। एक व्यक्ति अर्थी बनाता है, एक नाप ले रहा है, चार व्यक्ति मिलकर कंधा लगायेंगे और ऊपर तम्बू तानेंगे। काली हंडी साथ लेकर एक व्यक्ति आगे-आगे तथा उसके पीछे से लादने वाले चलेंगे। दाहिनी ओर से चक्कर लगाकर पाँच व्यक्ति पंच लकड़ी देंगे, फिर चिता में आग लगाकर जलाकर कोयला कर देंगे और औघट घाट नहाने चले जायेंगे। नहा-धोकर घर लौटेंगे और तुम्हारी पत्नी को समझायेंगे। कबीरदास जी कहते हैं कि सुनो भाई साधु! अच्छाई और बुराई ही रह जाना है। शरीर तथा सगों से सम्बन्ध तो क्षणिक है, अस्थायी है।

*पंछी हो गये चलन गवैया।*
*कोटन और गंजो बावरो झंझरी डरी किबरिया।*
*नैन जोत मुख की है शोभा सुनत कान से नैयां।। पंछी हो गये...*
*दस दरवाजे बंद करै हैं जी में पड़ी मनैया।*
*हंस उड़ गये आकाशे लखे काऊ नें नैयां।। पंछी हो गये ....*
*जब यमराज आय लुआवे पकड़ लेत है बैंया।*
*सबरे घर के घेरे बैठे बस काऊ खों नैयां।। पंछी हो गये .....*
*भैया कहे जे भाई हमारे तिरिया कहे मोरो सैयां।*
*कहत कबीर सुनो भई साधू कोऊ-कोऊ को नैयां।। पंछी हो गये..*

पक्षी अब उड़ने-उड़ने को है, पर चारों ओर पक्का किला बना है और जाली वाला दरवाजा है। सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं। शरीर के इन्द्रिय रूपी दसों दरवाजे बंद जैसे हो गये हैं और उसमें आत्मा-रूपी मैना कैद पड़ी है, अर्थात् शरीर की सभी इच्छाएँ जागृत हो गई हैं। सभी तरह की इच्छाओं की पूर्ति की ओर मन-शरीर दौड़ रहा है। कान से कुछ अच्छी सत्य नाम की बातें सुनाई ही नहीं देती हैं। विषय वासनाओं ने शरीर को किले की तरह घेर लिया है। शरीर में आत्मा जैसे बन्दी हो गई है। आत्मा रूपी हंस उड़ जाता है, जिसे कोई देख नहीं पाता है। जब यमराज लिवाने आते हैं और आत्मा को शरीर से निकालकर ले जाते हैं, तब घर के सब लोग, जो व्यक्ति को चारों ओर घेरे रहते हैं, देखते रह जाते हैं और उस पर किसी का कोई वश नहीं चलता है। भाई कहता है कि यह मेरा भाई है। पत्नी कहती है ये मेरा पति है। पर कबीरदास जी कहते हैं- यहाँ कोई किसी का नहीं है। सभी लोग अपने सम्बन्धों की केवल दुहाई देते हैं, पर उनका सम्बन्ध बस जीवित रहने तक ही है।

**चेतावनी**

दोहा : *काया बोली हंस सें, सुनो कंथ मम बैन।*
*तुमने मोरे संग में, बहुत करे सुख चैन।।*
टेक : *हंसा कहत वचन सुन प्यारी, बीती अवधि हमारी।*
छंद : *अक्षर वैमाता ने डार, जो कुछ लिख दीनी लिलार।*
*पूरन हो गवो आज हमार, हमने जानी।।*
*प्यादे आ गए यमराज के, नईयां दया कलेजे ताके।*
*हमखां जैहें संग लिवाकें, बोले बानी।।*
उड़ान : *पकर-पकर कें मोखां मारें, लेकर खड्ग कटारी।*
*अब बस रहने कौ है नईयां, बीती अवधि हमारी।।*
दोहा : *सइयां ऐसो न करौ, मोरे संग घौ घात।*
*मोय बिहूनो छोड़के, अपन कहां को जात।।*
टेक : *तुमसे पुरुष मिलें न मोखों, तुम्हें न यो सम नारी।*
छंद : *अब तो बात रही न बसकी, मोहलत लै लइयो दिन दसकी।*
*बातें कर लइयो रंग रसकीं, इतने दिन में।*
*करनी कर लईयो सुख देंनी, जाये मिलने स्वर्ग नसेनी।*
*गंगा यमुना और त्रिवेणी, मोरे संग में।।*
उड़ान : *मोरे संग रस के जीने, जैसी धूनी टारी।*
*नरग स्वर्ग मों संग मिलो, नीच चक्र पग धारी।*
दोहा : *प्यारी तेरे प्रेम में, भूलो सब संसार।*
*लेकिन अवधि रघुनाथ की, सको न पल भर टार।।*
टेक : *सको न ढार करम की रेखा, जो विधि अक्षर डारी।*
छंद : *सिर में जो विधि अक्षर डारी, संगत पूरी करो तुमारी।*
*पंछी जैसी रैन गुजारी, अब उड़ जाने।*
*छोड़े अब मिलने की आस, रूंधी घट रूंदा ने सांस।*
*सुनकर काया भई निराश, लगी पछताने।।*
उड़ान : *पत्त बिना तरूवर लगे, चांद बिना निशिकारी।*
*बैसई हंस बिना जा देहिया, लगत भयानक भारी।*
दोहा : *सर सूनो जल बिन लगे, नृप बिन सूनी सेन।*

*जल सूनो यारो लगे, जहां न होय पुरेंन।।*

टेक : *घर सूनो दीपक बिन लागे, फूल बिना फुलवारी।*

छंद : *दीनो जब धरनी में धरकें, हंसा चले काई करकें।*
*अपने पिरमत के दिन भरकें, गए नग अपने।*
*धरनी मिट्टी पड़ी अकेली, छोड़ो संग के सखा सहेली।*
*तज दिये कंचन महल हवेली, हो गए सपने।।*

उड़ान : *चार दिनां की चाँदनी, फिर रजनी अंधियारी।*
*चमक जात बिजली सी ईश्वर, विधि की गति है न्यारी।*
*हंसा कात बचन सुन प्यारी।।*

शरीर जीव से कहता है कि हे प्रिय! मेरी बात ध्यान देकर सुनो। हम दोनों ने बहुत समय तक सुख भोग लिये ....। जीव कहता है कि अब तो मेरा समय समाप्त हो गया, क्योंकि जो अवधि हमें विधाता ने दी थी, वह तो पूरी हो गई। यह मुझे आज विदित हो गया। मुझे लिवाने यमराज के दूत आकर खड़े हैं, उनके मन में किसी के लिए दयाभाव नहीं होता, वे अपने साथ में मुझे लेकर जायेंगे। वे तो मुझे पकड़कर खड्ग और कटारी से वार करेंगे, क्योंकि अब यहाँ रहने की अवधि मेरे वश में नहीं रही।

काया जीव से कहती है कि हे प्रिय! मेरे साथ ऐसा विश्वासघात मत करो ....? अरे! तनिक ये तो सोचो कि तुम मुझे छोड़कर कहाँ जाते हो। देखो, न मुझे तुम्हारे जैसा पुरुष कभी मिलेगा और न तुम्हें मेरे जैसी स्त्री ही कहीं मिलेगी। मेरी तुमसे विनती है कि तुम यम के दूतों से दस रोज की मोहलत माँग लो। इस अवधि में हम कुछ रस-रंग की बातें कर लेंगे और हाँ इस अवधि में हम कुछ ऐसे सत्कर्म कर लेंगे, जिनसे तुम्हें स्वर्ग की सीढ़ी मिल जायेगी। क्योंकि कर्मों के अनुसार स्वर्ग-नर्क मिलेगा, स्वर्ग मिला तो वहाँ चक्र सुदर्शनधारी के दर्शन होंगे।

जीव कहता है कि हे प्रिये! तेरे प्रेम में ही यह संसार भूला रहता है, लेकिन मैंने उन प्रभु श्रीराम को कभी नहीं भुलाया। हाँ, हमें जो भी अवधि विधाता ने दी है, उसे पूरी करके ही यहाँ से जाऊँगा। देखो, जिस तरह से पक्षी किसी स्थान पर बसेरा करता है और सुबह उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चला जाता है, उसी तरह मुझे भी उड़ जाना होगा। देखो, अब मिलने-मिलाने की आस छोड़ दो, क्योंकि मेरा कंठ रूंध रहा है। जीव की बात सुनकर काया निराश हो गई, वह पछतावा करती है।

जिस तरह से बिना पत्तों के वृक्ष, बिना चाँद के रात्रि काली लगती है, उसी तरह से बिना जीव के यह शरीर सूना है। जिस प्रकार से बिना पानी के सरोवर लगता है, बिना राजा के सेना तथा जलाशय में पुरईन न हो तो वह भी सूना लगता है। दीपक के न रहने से घर सूना लगता है। किसी बगिया में फूल न हो तो वह भी सूनी लगती है।

जीव चला गया, शरीर को भूमि पर लिटा दिया गया। शरीर भूमि पर अकेला पड़ा रह गया, उसके सभी संगी-साथी बिछड़ गये, यह घर-द्वार भी छूट गया, सारे सपने समाप्त हुए। यह जीवन तो चार दिन के लिए है, फिर तो अंधेरा ही अंधेरा है।

*हंसा बेईमान, काया खां छोड़ कें चले गये।*

वह जीव तो बड़ा बेईमान निकला, वह शरीर को छोड़कर चला गया।

*जमराजा ने दम-दम मचाई रे*
*धरी रयी तिजोरी की चाबी,*
*चलती बेरां खोलई ने पाई रे।*
*बाहर रोवें बाप-मतारी,*
*भीतर रोवे लुगाई रे।*
*चार जनें मिल देत लकरिया,*
*लै मरघट लौं जाई रे।*
*कहत कबीर सुनो भैया सादू,*
*हंसा तो अकेलो जाई रे,*
*जमराजा नें दम-दम मचाई रे।।*

यमराज ने बड़ी जल्दबाजी कर दी। मैं अपनी तिजोरी की चाभी नहीं ले पाया, अंत समय उसको खोलकर भी नहीं देखा? मृतक के माता-पिता रोते हैं, उसकी पत्नी भी रो रही है। सबने मिलकर दाह-कर्म कर दिया। कबीर कहते हैं कि जीव तो अकेला ही जाता है।